भक्तमाल का सूचीपत्र।

निष्ठा चौदहवीं महिमा भगवत् नाम पांच भक्तों की कथा ॥

निष्ठा पन्द्रहवीं ज्ञान ध्यान की व कथा बारह भक्तों की ॥

निष्ठा सोरहवीं वैराग्य व शांति चौदह भक्तों की कथा ॥

निष्ठा सत्रहवीं महिमा भगवत्सेवा दशभक्तों की कथा ॥

निष्ठा अठारहवीं दास्यता कि जिसमें सोरह भक्तोंकी कथा॥

निष्ठा उन्नीसवीं वात्सल्य नव भक्तों की कथा ॥

निष्ठा बीसवीं सौहार्द छवों भक्तोंकी कथा ॥

इति ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

भक्तमाल।

मंगलाचरण॥

श्रीमद्वृन्दावनं ध्यायेद्वैष्णवो हृदये सदा।
महापद्मं योगपीठं काञ्चनस्थलनिर्मलम् ॥ १ ॥
पूर्णचन्द्रोदयं नित्यं सर्वत्र कुसुमान्वितम्।
कदम्बपादपच्छायं कालिन्दीपुलिनोत्तमम् ॥ २ ॥
माधवीकुञ्जविश्रामभ्रमद्भ्रमरविभ्रमम्।
कोकिलध्वनिसंवीतं मयूरोद्दामनर्त्तनम् ॥ ३ ॥
कृष्णसारसमाकीर्णं कामधेनुसुखास्पदम्।
गोपगोपीप्रियस्थानं कल्पपादपशोभितम् ॥ ४ ॥
मध्ये गोवर्द्धनं तत्र विचित्रमणिमन्दिरम्।
रत्नसिंहासनासक्तं पद्मरागसरोरुहम् ॥ ५ ॥
तन्मध्ये चिन्तयेत्कृष्णं किशोरं नन्दनन्दनम्।
वामे तस्य प्रियां राधां किशोरीं वृषभानवीम् ॥ ६ ॥

स्वभावतोपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाजिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ७॥
अङ्गेतुवामेवृषभानुजांमुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैःपरिसेवितांसदास्मरेमदेवींसकलेष्टकामदाम् ८॥

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥ ९ ॥
गोपीगोपगवावीतं सुरद्रुमलताश्रयम् ।
दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥१०॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयँश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥११॥

इति श्रीमङ्गलाचरणध्यानश्लोकाः शुभदा भूयासुः ॥
श्रीराधाकृष्णौ जयताम् ॥

श्रीराधावल्लभो जयतु ॥ श्रीराधाकान्त वृन्दावनविहारी के चरण-कमलों को कोटानकोट दण्डवत् हैं जिनकी अपार महिमा को शेष व शारदा, ब्रह्मा, शिव, वेद, पुराण, देवता व दैत्य वर्णन नहीं करसके व स्वरूप जिनका मन बुद्धि आदि इन्द्रियन के विचार व समझ से बाहर है प्रासरहने ऐसी प्रभुता व ईश्वरताके भी करुणा व दयालुता इसभांति पर है कि जब कबहीं भक्तन को दुःख हुआ तब अनेक प्रकार के अव-तार धारण करने में विलम्ब व लज्जा न करी व तुरन्त दुःख दूर किये व ऐसे परमपवित्र चरित्र जगत् में फैलाये कि जिनका कीर्त्तन करके कैसा ही अधम व पातकी होवे वह भी संसारसमुद्र से उतरजाताहै और यह विशेषता उनहीं के नहीं कि जो उत्तम कुल व विद्या कला करके युक्त होयँ किन्तु ऐसे असाधुकुल व नीच राक्षस दैत्यादि जो सर्व प्रकार लोक वेद की रीति से बाहर व सब विद्या कला आदि से शून्य व अनधिकारी थे उन चरित्रों को गायकर ऐसे स्थान को पहुँचे कि जहां योगियों का मन भी न जायसके पशु पक्षी जैसे ऋक्ष, वानर, गज, ग्राह, गीध आदि को वह उत्तमगति प्राप्त हुई जिसको ऋषि मुनि नहीं पहुँचते भगवत्नाम जन्म मरण के दुःख दूर करनेको परम औषध है और नहीं कहाजाता है कि नाम ईश्वर का बड़ा कि ईश्वर बड़ा है परन्तु ध्यान करना चाहिये कि यद्यपि किसीके स्वरूप का ज्ञानहै और नाम याद नहीं तो किसी प्रकार विना नामनिर्देश उसका ज्ञान नहीं करसक्ता और यद्यपि किसी वस्तु के रूप का ज्ञान नहीं है व नाम जानता है तो नाम से मिलसक्ती है

जैसे यह कि किसी को बुलाना है तो यद्यपि वह समीप भी है तथापि बेनाम नहीं बुला सक्ता व नाम का ज्ञान है तो दूर भी है तो पुकारने से तुरन्त आ सक्ता है अब विचार लेना चाहिये कि बड़ाई किसको है व सिवाय इसके ब्रह्म के दो स्वरूप हैं एक सगुण दूसरा निर्गुण सो यह नाम दोनों से बड़ा है क्योंकि ब्रह्म एक अविनाशी और व्यापक सत्‌चित् आनन्दघन है सो यद्यपि ऐसा ईश्वर निर्गुण निर्विकार सबके शरीर में प्राप्त है तथापि संपूर्ण जीव दीन व दुःखी हैं और जब उसी जीव ने नाम को जपा व नाम का ध्यान किया तो वह निर्गुण ब्रह्म आपसे आप साक्षात्कार हो जाता है किन्तु अपने स्वरूप को जीव जान लेता है अब विचार करना चाहिये कि ब्रह्म बड़ा है कि नाम और सगुण ब्रह्म से इस कारण बड़ा है कि जब भक्तों को दुःख हुआ तब ईश्वर ने आप अपने ऊपर परिश्रम अङ्गीकार करके अनेक प्रकार के अवतार धारण किये और दुःखों को दूर किया व नाम कैसा है ? कि जब भक्तों ने जपा विना क्लेश व परिश्रम दुःख दूर होगये अर्थात् यह नाम अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ के देने को आप समर्थ है और किसी साधन का प्रयोजन नहीं और इस कलियुग में तो सिवाय कृष्णनाम के और कोई युक्ति व कारण उद्धार का नहीं वामनपुराण में लिखा है कि जिसने भगवत्‌नाम जपा उसने अश्वमेध यज्ञ आदि सब किया भागवत में कहा है कि जो बहुत दुःखी हैं वे संसार के दुःख से डरते हैं सो धोखे से भी भगवत् का नाम लेते हैं तो शीघ्र ही दुःखों से छूट जाते हैं स्कन्दपुराण में वर्णन है कि गोविन्दनाम ऐसा एक कोई धरती पर है कि जिसका जपना पापों के हज़ार टुकड़े कर देता है नारद पुराण में कहा है कि नारायण नाम को नित्य नवीन जानकर कहते और सुनते हैं वे अमृत जानकर जपते हैं वे जीव जीवन्मुक्त हैं तात्पर्य यह कि हज़ारों श्लोक व वेद श्रुति नाम की महिमा में हैं सो उसी नाम को जपकर व दण्डवत् करके प्रारम्भ लिखना भाषान्तर भक्तमालप्रदीपन जो तुलसीराम ने उर्दू में किया है सूक्ष्म करके करता हूँ ॥

श्रीगुरु की महिमा ॥

प्रथम श्रीगुरु के चरणकमलों को दण्डवत् है कि जिनकी कृपा हृदय के अन्धकार के दूर करने के निमित्त सूर्य से अधिक प्रकाश करती है व वेद श्रुति कहती हैं कि अज्ञान अन्धकार करके जो अन्धे हैं तिनको गुरु का वचन ज्ञानाञ्जन की सलाई है वह भगवत् कि जिसकी महिमा ब्रह्मा और शिव भी नहीं कह सक्के सो गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है वेद व सब शास्त्रों

ने विना गुरुउपदेश दूसरा कोई उपाय जन्म मरण के दुःख से छूटने के निमित्त नहीं लिखा ॥

भगवत्भक्ति की महिमा ॥

पश्चात् श्रीभगवत्भक्ति को करोड़ों दण्डवत् हैं यद्यपि भगवत् में व भक्ति में कुछ अन्तर नहीं परन्तु एक विशेष विचार स्मरण हो आया जिस करके भगवत्भक्ति को बड़ाई प्राप्त हुई किन्तु भगवत् तो कर्म के अनुसार सबको सुख दुःख दोनों देता है व भक्ति महारानी दुःखों को दूर करके सुख ही देती है व दुःख को समीप नहीं आने देती भक्ति की महिमा वेद व शास्त्रों ने इस प्रकार लिखी है जैसी भगवत् की वरु अधिक भगवत् सो पद्मपुराण में लिखा है कि जैसे प्रज्वलित अग्नि सब प्रकार की लकड़ी को भस्म कर देती है इसी प्रकार भगवत्भक्ति इस जन्म व जन्मान्तर के पापों को भस्म कर देती है व उसी पुराण में लिखा है कि देवता भगवत् से प्रार्थना करते हैं कि जो हमने जप तप किया है उसके फल से हमारा जन्म भरतखण्ड में हो कि तुम्हारी भक्ति करें नारदपुराण में लिखा है कि भगवत् केवल भक्ति से प्राप्त होता है धन आदिक से नहीं जो भक्ति से पूजन उसका करते हैं सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त होता है और गुण यह है कि केवल पानी से पूजा हुआ सब दुःख दूर कर देता है वामनपुराण में कहा है कि जिनकी अनन्य भक्ति शङ्खचक्रधारी नारायण में है वे लोग निश्चय करके नारायण को पहुँचते हैं महाभारत में लिखा है कि हज़ारों जन्मों में जो तप व ध्यान करके पाप दूर हुये हैं उसीकी भगवत् में भक्ति होती है वैशाखमाहात्म्य में वर्णन है कि प्रथम तो भरतखण्ड में जन्म होना दुर्घट है तिसपर मनुष्य फिर मनुष्य में भी स्वधर्म करनेवाला तिस में भक्त होना बहुत दुर्लभ है पद्मपुराण में लिखा है कि जिसके हृदय में प्रेम भक्ति का निवास है तिसको यमराज स्वप्न में भी नहीं देखता और जिसको प्रेत व पिशाच व राक्षस व देवता भी विघ्न नहीं कर सके नारदपुराण में लिखा है कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों के निमित्त लोग परिश्रम करते हैं सो यह सब भगवत्भक्ति से अनायास प्राप्त हो जाते हैं फिर पद्मपुराण में कहा है कि भगवत्भक्तों को मुक्ति का द्वारा खुला है और यह निस्संदेह निश्चय किया गया कि भक्ति से अधिक अन्य कुछ साधन नहीं है ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है कि जो भगवत् के भक्त नहीं हैं उनके निमित्त करोड़ों कल्प तक मुक्ति व ज्ञान प्राप्त न होगा भागवत में लिखा है कि नारायण की

भक्ति वास्ते ब्राह्मणकुल में जन्म अथवा देवता होने का प्रयोजन नहीं व न ऋषीश्वर होनेका न व्रत न दान न यज्ञ केवल भक्ति से नारायण प्रसन्न होते हैं और सब स्वांग हैं भागवत में उद्धव से श्रीकृष्ण कहते हैं योग और सांख्य और वेद का पढ़ना और वैराग्य हमको वश नहीं करसक्के एक भक्ति वश करती है स्कन्दपुराण में लिखा है कि भगवत्भक्ति करने से और कोई उत्तम पन्थ नहीं है भगवत् का वाक्य है कि भक्ति के अवलम्ब से गोपी और गऊ और वृक्ष और पशु और साँप आदिक पवित्र होकर हमको प्राप्त हुये भागवत में कहाहै कि जो कर्मों से और तपसे और योग व ज्ञान वैराग्य और दानादिक सब धर्मों से फल होता है सो केवल भक्ति से होजाताहै नारदपुराणमें लिखाहै कि विशेषकरके मुक्ति की प्राप्ति ज्ञान से कहतेहैं सो वह ज्ञान भक्तिही के अधीनहै उसीमें फिर कहा है कि विना भगवत्भक्ति के जो सहस्र अश्वमेधयज्ञ और वेद के अनुसार कर्म किये सब निष्फलहैं स्कन्दपुराणमें कहाहै जहाँ भगवत् का भक्त रहता है तहां ब्रह्मा विष्णु महेश और सब सिद्ध निवास करते हैं भगवद्गीता में कहा है कि केवल भक्ति से जानाजाताहै जैसा मैं हूँ फिर उसी में लिखाहै अनन्य भक्तिसे प्राप्त होता है फिर लिखा है अर्जुनने भगवत् से पूछा कि ज्ञान और भक्ति इसमें अधिक कौन है भगवत् ने आज्ञा की कि मेरे भक्त योग्यतम हैं नाम सबसे अति अधिक हैं यद्यपि ज्ञान सेभी मेरी प्राप्तिहै परन्तु उस में क्लेश अधिक है इसीप्रकार से हज़ारों श्लोक पुराणों के और वेदकी श्रुति है विस्तार के भयसे नहीं लिखा फिर जब कि शास्त्रों का और वेदों का प्रत्यक्ष यह अर्थ है कि भगवत् के प्राप्त होनेके निमित्त व अन्य फलके हेतु एक भगवत्भक्ति ही समर्थ है तो बड़ी दुर्भाग्यता है कि ऐसी भक्ति को त्याग करके इधर उधर दौड़ता फिरे ॥

भगवद्भक्ति का स्वरूप कि भक्ति किसको कहते हैं ॥

अब यह वर्णन उचित हुआ कि जिस भक्ति की यह महिमा है सो क्या वस्तु है और क्या उसका वृत्तान्त है ? सोई वर्णन होता है कि वेद और सूत्रों के सिद्धान्त के अनुसार यह बात स्थिर व दृढ़ हुई है कि भगवत् में परम अनुराग का होना यही भक्ति है सो शाण्डिल्यऋषीश्वर ने अपने सूत्र में लिखा है और सूत्र उसको कहते हैं कि कई जगह के वेद की आज्ञाको ऋषीश्वरों ने संग्रह करके थोड़े अक्षरों में एक जगह रचि दिया (सापरानुरक्तिरीश्वरे) यही सूत्र है अर्थ इसका यह कि ईश्वर में

दृढ़स्नेह होना भक्ति है और विशेष स्पष्ट वर्णन इस सूत्र का प्रेमनिष्ठा में होगा इस सूत्र में यह शङ्का प्रकट हुई कि गीताजी में भगवत् ने भक्ति उसको कहा कि जो अनन्य भजन और ध्यान करते हैं दूसरी जगह सेवाको भक्ति वर्णन किया तीसरी जगह लिखा है कि मन और प्राणका लगाना और भगवत् ही को समझना व भगवत्ही का वर्णन करना उसका नाम भक्तिहै और रामानुज और माध्व और निम्बार्क और विष्णुस्वामी इत्यादि आचार्यों ने यह निर्णय व निश्चय किया है कि दिन रात निश्चल जिसप्रकार गङ्गा का प्रवाह अनुक्षण प्रवर्त्त है और एक जगह भगवत्वाक्य है कि जो कोई जिस प्रकार के भाव करके मेरे शरण होतेहैं उसी प्रकार उनको मिलता है और एक जगह भगवत् के प्रसन्नता को भक्ति लिखा है और लिङ्गपुराणमें लिखाहै मन, वच, कर्म से भगवत् सेवा जो है उसीका नाम भक्ति है तन्त्रशास्त्र का वचन है कि भक्ति के तीन अक्षर हैं प्रथम अक्षर (भ) यह अक्षर भव जो संसार तिसके दुःख को दूर करता है दूसरा अक्षर (क) कल्याण करता है तीसरा अक्षर (ति) तीव्र ज्ञान को देता है इसी हेतु भक्ति नाम हुआ और सनत्कुमारसंहिता का वचन है कि जो सब दुःख दूर करे उसको भक्ति कहते हैं और एक जगह लिखाहै कि भगवत् को स्वामी और अपने को दास भृत्य जानना इसीका नाम भक्तिहै भगवत्का वचनहै कि भक्तों के अनेकभाँति के भावके हेतु भक्ति अनेकभाँति की है सो भावही को भक्ति जानना चाहिये विष्णुपुराण में लिखाहै कि शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार कर्म करना और जो कर्म त्यागने योग्य हैं तिनका छोड़देना व भगवत् आज्ञाके बन्धनमें रहना इसका नाम भक्तिहै कि उसीके कारणसे भगवत्की कृपा होगी और साहित्यशास्त्र कि जिस शास्त्रमें स्नेह व काव्य व रस इत्यादि को वर्णन किया है उसमें लिखा है कि सात्त्विकभाव से जो ज्ञानशुद्ध होय तिसको भक्ति कहते हैं अर्थात् इन सब वचनोंसे भक्तिस्वरूपके निर्णयमें बहुत विरोध पायागया सिद्धान्त एक बात क्या है ? तहाँ कहते हैं कि सिद्धान्त उसी अनुराग तात्पर्य भगवत् में दृढ़ स्नेह होनेको भक्ति कहते हैं यह सब विरोध ऊपर कहनेमात्र को है विचार करने में उन सबका परिणाम भगवत् की प्रीति है जिस रीति भाँति से मनका रोकना भगवत् में लगाना शास्त्रों में लिखा है अथवा जिस भाँति भाँति की रीति से भक्तलोग भगवत् को प्राप्तहुये उसको भक्ति लिखा इस हेतुसे विरोध दिखलाई देने लगे नहीं तो वास्तव

करके कुछ विरोध नहीं और विशेष निर्णय उस अनुराग का यह है जिस उपासक के सम्पूर्ण अन्तर्बाह्य की वृत्ति मित्र शत्रु, सुख दुःख से अलग होकर वेद व स्मृति व पुराण व नारदपञ्चरात्र इत्यादि शास्त्रोंकी आज्ञा के अनुसार श्रवण, कीर्त्तन, पूजादिक में विना चाहना कोई वस्तु के लगीहुई ऐसे उपासक की वृत्ति शास्त्र व नरकादिक के भय को छोड़कर व स्वर्गादिक के सम्पूर्ण सुख भोगसे उदासीन होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी शोभा व सुन्दरता का सार जो भगवत् का रूप तिसमें स्वभाव करके आपसे आप अखण्ड निश्चल अनुक्षण लगीरहे इसका नाम भक्ति है सो दो प्रकार की है एक विहित दूसरी अविहित सो विहित उसको कहते हैं कि जिसप्रकार शास्त्र में रीति व आज्ञा है उसीके अनुसार होय सो विहित है सो चार प्रकार की है एक काम अर्थात् चाहनासे जैसे गोपिका व ध्रुव इत्यादि की दूसरी द्वेष अर्थात् शत्रुतासे जैसे रावण शिशुपालादिक की तीसरी भय अर्थात् डरसे जैसे कंस व मारीचादि की चौथी स्नेह अर्थात् केवल प्रीति जैसे नारद व सनकादिक इत्यादि की सो इन चारोंप्रकार में से दो प्रकार की एक शत्रुता एक भय से उपासना की रीति से त्याज्य हैं और दूसरी अविहित उसको कहते हैं कि जो स्वभाव करके आपसे आप बुद्धि के विचारसे विना शास्त्र की आज्ञा के भगवत् में प्रीति हो और यह गति फलरूप अन्तका है यद्यपि इसमें भिन्न भिन्न करके वर्णन करने का प्रयोजन नहीं तथापि कोई कोई इसमें दो भेद वर्णन करते हैं एक ज्ञानाङ्गा जो ज्ञानको उत्पन्न करके मुक्ति देतीहै दूसरी स्वतन्त्रता जोकि आप मुक्ति देती है ज्ञान उसका एक अङ्ग है इसमें भगवद्गीता का वचन है कि मेरे भक्त मेरी माया को तरते हैं फिर द्वितीयवार वर्णन किया कि मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं तृतीयवार गीताजी के अन्त में कहा कि जो संसार से छूटा चाहे तो केवल मेराही सेवन करे सो इसमें वेद श्रुति और सब स्मृति व पुराण इत्यादिक इस बात में युक्त हैं फिर उसी भक्ति के तीन प्रकार हैं उत्तम, मध्यम, प्राकृत सो प्रथम पदवी का नाम उत्तम है उसका स्वरूप यह है कि जो भगवत् को सब जगह व्यापक और वर्तमान देखताहै और सबको भगवन्मय जानता है जल व तरङ्ग के सदृश सो उत्तम है और जिसकी भगवत् में प्रीति है परन्तु भगवत्भक्त को अपना मित्र जानता है और प्राकृतभक्तों पर दया व अनुग्रह करता है और द्वेषीजनों से अनमिल रहता है सो मध्यम है और जो भगवत् और भगवत् अर्चा मूर्त्ति इत्यादि को ईश्वर जानता है

और भगवत्भक्तो में प्रीति नहीं सो प्राकृत है फिर वही भक्ति सात्त्विक राजस तामस के विवरण से भागवत के वचन के प्रमाण से तीन प्रकार की है किन्तु जो निष्काम है सो सात्त्विकहै जैसे प्रह्लाद आदिक और जो किसीप्रकार की कामनायुक्तहै सो राजस है जैसे ध्रुव गज इत्यादिक और जो शत्रुके विजय के हेतु करके है सो तामस जैसे इन्द्रादिक कि वृत्रासुर के वध के निमित्त भगवत् का आराधन करा व फिर उस भक्ति के तीन प्रकार और भी भागवत में लिखे हैं एक मानस जो मन से होय दूसरा वाचक जो बोलने से होय तीसरा कायिक जो शरीर से होय फिर वही गीताजी में चार प्रकार की लिखी है एक आर्त्त जो किसी दुःख के कारण से भगवत् का आराधन होय जैसे द्रौपदी व गज आदिक दूसरा जिज्ञासु मुक्ति की राह ढूँढ़नेवाले जैसे परीक्षित आदि तीसरा अर्थार्थी जैसे ध्रुव आदि चौथे ज्ञानी जैसे प्रह्लाद नारद सनकादिक इत्यादि फिर उसी भक्ति के तीनप्रकार और लिखते हैं एक वह जो आप करे दूसरा वह कि और लोगों से समझायके करावे तीसरे वह कि और लोगों को भक्ति करतेहुये देखकर प्रसन्न होय फिर उसी भक्ति के नव प्रकार भागवत में लिखे हैं श्रवण १ कीर्त्तन २ स्मरण ३ सेवा ४ अर्चा ५ वन्दन ६ दास्य ७ सख्य ८ आत्मनिवेदन ९ व इन नव प्रकार में से कई एक इस भक्तमाल में निष्ठानाम धर के लिखा है फिर वही भक्ति भूमिका के निश्चय से ग्यारह प्रकार की है प्रथम भूमिका सत्संग दूसरी भक्तों की दया व प्रसन्नता के योग्य होजाना तीसरी भक्तों के आचरण जो शान्त व दया इत्यादि हैं सो उसमें श्रद्धा व विश्वास करना चौथी भगवत्चरित्रों को श्रवण करना पांचवीं श्रवण किया जो भगवत्स्वरूप जिसमें प्रेम की उत्पत्ति होना छठवीं यह कि भगवत् के स्वरूप और अपने स्वरूप को यथार्थ जानलेना जैसा है व इस अवस्था को अद्वैतवादी ज्ञान कहते हैं सातवीं उस भगवत् के स्वरूप में प्रेम अधिक होना आठवीं उस भगवत् का प्रकाश दिन दिन हृदय में होना नवीं दया और सब ओर से निर्मल इत्यादि जो भगवत् में धर्म हैं उन धर्मों का आना प्रारम्भ होना दशवीं ईश्वरता और दयालुता और सर्वज्ञता इत्यादि ईश्वर के धर्म से पूर्ण इस पुरुष में आजाना ग्यारहवीं यह कि इस पुरुष को जितनी प्रीति अपने शरीर में है तैसीही प्रीति भगवत् में निश्चल कि कोई क्षण उस श्यामसुन्दर रूप चितवन से चले नहीं है जानो फिर वही भक्तिदान

इत्यादि के विभाग से क्रम २ अधिक होती हुई तीस प्रकार की है सो यह सब भेद भक्ति में केवल इस हेतु है कि जिस २ भांति से भक्तों के मन लगें वह एक प्रकार की होगई जैसे भगवत् से उद्धव ने पूछा कि हे महाराज! तत्त्व को कोई चौबीस, कोई सत्रह, कोई सोलह, कोई तीन, कोई पांच, कोई आठ, कोई सात कहते हैं सो विरोध का हेतु क्या है? भगवत् ने कहा कि वास्तव में कुछ विरोध नहीं कारण यह बात है जिसने एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में मिला समझा तो उसकी गणना में तो कम और जिस किसी ने अलग समझा उसकी गणना में अधिक हैं जैसे जिस किसी ने ईश्वर और माया और जीवको अलग जाना उस गणना में तीन हैं और जिसने माया को भगवत् की इच्छा जाना उसकी गिनती में दो हैं और जिस किसी ने तीनों तत्त्व परमहितू तत्त्व व अहंकार व पञ्चमहाभूत को अधिक किया तिसकी गिनतीमें दश हैं इसीप्रकार छत्तीसतक संयोग पहुँचा है कारणमूल एक भगवत् है दूसरा दृष्टान्त और है कि किसी ने बरगद के वृक्ष को देखकर कहा कि दो शाखावाला है किसी ने चारशाखा का देखा था उसने चारशाखावाला बतलाया वास्तव करके वह बरगद एक है इसी प्रकार यह भक्ति एक है भक्तों के मन को लगन के अनुसार कई प्रकार की दिखाई परती है और तात्पर्य सबका यह है कि कोई हो किसी प्रकार से कोई लाभ के निमित्त किसी विधान से करो परन्तु अनुराग का होना अतिही प्रयोजन है जबतक वह प्रीति सिद्धपद को नहीं पहुँचती तबतक साधनरूप है और जब स्थायीभाव को पहुँचगई वही फलरूप है और वह दृढ़भाव जो किसी और पदार्थ का साधन नहीं जीवन्मुक्त उसीको कहते हैं और मुक्ति का स्पष्ट वर्णन ग्रन्थ के अन्त में होगा॥

भगवद्भक्तों की महिमा॥

अब उन भगवद्भक्तों को कि उस भक्ति के जो ऊपर कही हैं तिसके अभ्यास व साधना करनेवाले हुये और आगे होंगे और अब हैं भगवद्रूप जानकर दण्डवत् करता हूँ यद्यपि साधुसेवानिष्ठा में कुछ वर्णन उनका होगा तथापि यहाँ भी इस पोथी के मङ्गलाचरण के हेतु उनका प्रताप थोड़ासा लिखता हूँ भागवत में लिखाहै कि जिनके स्मरण करने से लोग अपने परिवार सहित पवित्र होजाते हैं उनके दर्शन और स्पर्शन व सेवन करने का क्याही कहना है फिर भागवत के "एकादशस्कन्ध" में लिखा

है कि संसारसमुद्र में जो डूबते उछलते हैं तिनको भगवद्भक्ति नौका के सदृश है फिर भागवत में भगवत् ने आप कहा है कि मैं भक्तों के आधीन हूँ और भक्त आप स्वतन्त्र हैं "पद्मपुराण" में भगवत् का वचन है कि जो मेरे भक्तों के भक्त हैं सो मेरे ही भक्त हैं गोसाईं तुलसीदासजी ने जो यह चौपाई लिखी है कि (विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी) उसके अर्थ बहुत प्रकार के हैं तिसमें से एक यह भी है कि मनुष्य को भक्तों के सत्संग से ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी पदवी प्राप्त होती है इस हेतु उनकी वाणी सकुचती है कि हम और हमारे स्वामी भगवद्भक्तों के सँवारे हुये हैं हम उनकी क्या महिमा वर्णन करें अच्छे प्रकार मनन करने से अवलोकन करीजाती है तो जिस किसी को जो पदवी लाभ हुई सो भगवद्भक्तों के सत्संग से हुई एक समय विश्वामित्र और पर्वत ऋषीश्वर से वाद हुआ विश्वामित्रजी तप को बड़ा कहते थे और पर्वत ऋषीश्वर सत्संग को बड़ा कहते थे पञ्चशेषजी ने इस विवाद के तोड़ने के समय कहा कि एक मुहूर्त्त तुम दोनों में से कोई धरती को अपने शिरपर रखलेव विश्वामित्रजी ने कई लाख वर्ष का वरु अपने जन्मभरके तप का फल लगाया धरती न ठहरी पर्वत ऋषीश्वर ने एक मुहूर्त्त के सत्संग का फल लगा दिया कि धरती ठहरिगई और इसी में न्याय होगया (सत्संगति मुदमङ्गल मूला। सोइ फल सिध सव साधन फूला) अर्थ इसका यह है कि सत्संग आनन्द व सुख का मूल अर्थात् जड़ है और वही सिद्धफल है और सव साधन फूल हैं अव मन में विचार करना चाहिये कि भगवद्भक्तों को कितनी बड़ाई होगी कि जिनके सत्संग की यह महिमा है और ध्यान करके देखना चाहिये कि भगवत् को सव कोई देहधारी अपना स्वामी जानकर पूजन करते हैं और भक्त कैसे हैं कि वही भगवत् उनके में होकर आप उनकी सेवा करता है और एक दूसरा प्रसंग है कि एक कवि ने चाहा कि जो सबसे बड़ा हो उसका महत्त्व वर्णन करूँ धरती को सबसे बड़ा जाना उससे बड़ा शेषजी को और शेषजी से बड़ा शिवजी को और शिवजी से बड़ा ब्रह्माजी को और ब्रह्मा से बड़ा भगवत् को फिर जब अच्छी प्रकार सोचा तव भगवत् से अधिक भगवद्भक्त को जाना कि जिन्होंने भगवत् को भी वल से अपने वश कर लिया है और अपने हृदय से बाहर नहीं जाने देते तात्पर्य यह कि भगवद्भक्तों की जो कुछ पदवी व बड़ाई है सो लिखने व वर्णन करने

के प्रमाण से बाहर है और उनमें और भगवत् में कुछ भिन्नता नहीं॥

देवनागरी में भाषान्तर होने का कारण॥

अब यह पोथी भक्तमाल कल्पद्रुम जिसप्रकार देवनागरी में भाषान्तर हुई सो लिखाजाता है इसका वृत्तान्त यह है कि प्रथम मेरे चित्त को यह चाह हुई कि भक्तिमार्ग के सिद्धान्त के वचन भागवत व गीता व नारदपञ्चरात्र व गोपालतापिनी इत्यादिग्रन्थों का संग्रह करिके पोथी बनावें सो बहुतसे श्लोक भागवत इत्यादि के व भक्ति के पांचों रसों की सामग्री अर्थात् विभाव व अनुभाव व सात्त्विक व व्यभिचारी व स्थायी भाव इत्यादि के संग्रह करिके एकत्र किये व इस परिश्रम में प्रवर्त्त रहे तब तक संवत् उन्नीससौ सत्रह १९१७ श्रावणके शुक्लपक्ष में पड़रौना ग्राम में जो श्यामधाम में मुख्य भगवद्धाम है तहां श्रीराधाराजवल्लभलालजी ठाकुर हिंडोला झूल रहे थे उसी समय उमेदभारती नामे संन्यासी रहने वाले ज्वालामुखी के जो कोटकांगड़े के पास है भक्तमालप्रदीपन नाम पोथी जो पञ्जाबदेश में अम्बाले शहर के रहनेवाले लाला तुलसीराम ने जो पारसी में तर्जुमा करिके भक्तमालप्रदीपन नाम ख्यात कियाहै तिसको लिये हुये आये उनके सत्कार व प्रेमभाव से पोथी हम ईश्वरीप्रतापराय को मिली जब सब अवलोकन करि गये तो ऐसा हर्ष व आनन्द चित्त को प्राप्त हुआ कि वर्णन नहीं होसक्ता साक्षात् भगवत् प्रेरणा करके मनोवाञ्छित पदार्थ को प्राप्त कर दिया व लाला तुलसीरामके प्रेम व परिश्रम की बड़ाई सहस्रों मुख से नहीं होसक्ती कुछ काल उसके श्रवण व अवलोकन का सुख लिया तब मन में यह अभिलाषा हुई कि इस पोथी को देवनागरी में भाषान्तर अर्थात् तर्जुमा करें कि जो पारसी नहीं पढ़े हैं उन सब भगवद्भक्तों को आनन्ददायक होय सो थोड़ा२ लिखते२ तीसरे वर्ष संवत् उन्नीससौ तेईस १९२३ अधिक ज्येष्ठशुक्ल पूर्णिमा को श्रीगुरुस्वामी व भगवद्भक्तों की कृपा से यह भक्तमाल नाम ग्रन्थ संपूर्ण व समाप्त हुआ व चौबीस निष्ठा में सत्रह निष्ठातक तो ज्यों का त्यों क्रमपूर्वक लिखागया परन्तु अठारहवीं निष्ठा से भक्तिरस के तारतम्य से क्रम न लगाकर इस ग्रन्थ में लिखा है कोई पारसीवाले ग्रन्थ पढ़नेवाले हमारी भूल चूक न समझें हमने विचार से यह क्रम इस प्रकार से लगाया है कि प्रथम धर्मनिष्ठा जिसमें सात उपासकों का वर्णन और दूसरी भागवतधर्मप्रचारकनिष्ठा तिसमें बीस भक्तों का वर्णन, तीसरी साधुसेवानिष्ठा

व सत्संग तिसमें पन्द्रह भक्तों की कथा, छठई भेषनिष्ठा तिसमें आठ भक्तों की कथा, सातई गुरुनिष्ठा तिसमें ग्यारह भक्तों की कथा, आठई प्रतिमा व अर्चानिष्ठा तिसमें पन्द्रह भक्तों की कथा, नवई लीलाअनुकरण जैसे "रासलीला रामलीला" इत्यादि तिसमें छवों भक्तोंकी कथा, दशवीं दया व अहिंसा तिसमें छवों भक्तों की कथा, ग्यारहवीं व्रतनिष्ठा तिसमें दो भक्तों की कथा, बारहवीं प्रसादनिष्ठा तिसमें चार भक्तों की कथा, तेरहवीं धामनिष्ठा तिसमें आठ भक्तों की कथा, चौदहवीं नामनिष्ठा तिसमें पाँच भक्तों की कथा, पन्द्रहवीं ज्ञान व ध्याननिष्ठा तिसमें बारह भक्तों की कथा, सोलहवीं वैराग्य व शान्तनिष्ठा तिसमें चौदह भक्तों की कथा, सत्रहवीं सेवानिष्ठा तिसमें दश भक्तों की कथा, अठारहवीं दासनिष्ठा तिसमें सोलह भक्तोंकी कथा, उन्नीसवीं वात्सल्यनिष्ठा तिसमें नव भक्तों की कथा, बीसवीं सौहार्दनिष्ठा तिसमें छवों भक्तों की कथा, इक्कीसवीं शरणागती व आत्मनिवेदननिष्ठा तिसमें दश भक्तों की कथा, बाईसवीं सख्यभावनिष्ठा तिसमें पाँच भक्तों की कथा, तेईसवीं शृङ्गार व माधुर्यनिष्ठा तिसमें बीस भक्तों की कथा, चौबीसवीं प्रेमनिष्ठा तिसमें सोलह भक्तों की कथा का वर्णन लिखा गया अब भगवद्भक्तों से मेरी यह प्रार्थना है कि यह भक्तमाल नाम ग्रन्थ परमानन्द का देनेवाला पढ़ने व सुनने पर तुम्हारे विचार में सत्य करिके यह मेरा परिश्रम तुम्हारे प्रसन्नता के योग्य होय तो इस अपने किङ्कर को यह प्रसन्नता दान देव कि जो ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में ध्यान लिखि आया हूँ सो सदा अनुक्षण निश्चल मेरे हृदय में बसा रहे कदाचित् इसमें कोई दो बात की शङ्का व प्रश्न करे एक यह कि जो चरित्र तुमने वर्णन किया है सो सब चरित्र भगवत् व भगवद्भक्तों के किये हुये हैं सो सब प्रसिद्ध हैं नई कोई नहीं है व दूसरी यह कि पारसी में जो रचा है तिसको तुमने देवनागरी में भाषान्तर अर्थात् तर्जुमा कर दिया है तो इन दोनों बातों में तुम्हारी कौन नवीन उक्ति व विशेष परिश्रम सूचित है कि जिस करिके तुम को भगवद्भक्त लोग प्रसन्नता दान अर्थात् इनआम देंगे सो पहले प्रश्न का उत्तर तो यह है कि जैसे राजा लोगों के किये हुये चरित्रों को गायक व दसौंधी व कवि लोग गद्य पद्य व छन्दप्रबन्ध में बांधकर उसी राजा को सुनाते हैं व मालाकार लोग राजा ही की पुष्पवाटिका के फूलों के स्तवक व हार आदि आभूषण रचिकर उसी राजा के आगे धरते हैं तो यद्यपि उनके ही किये हुये चरित्र व उन

के ही फुलवारी के फल हैं तथापि रचना पर प्रसन्न होकर वह राजा इन-आम देता है इसी प्रकार यद्यपि उनहीं के चरित्र हैं परन्तु मैं रचि के आगे निवेदन करता हूँ तो क्या नहीं वाञ्छितरूप अनूप का चिन्तवन-रूप धन प्रसन्नदान मैं पाऊँगा और दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस प्रकार कोई ऊँचे आम्रादि के वृक्ष पर अति मीठे मीठे फल पके पके लटकि रहे हैं और किसी प्रकार हाथ नहीं आते और उसके स्वाद लेने को जी तरस रहा है और जो किसी ने बड़े श्रम से वृक्ष पर चढ़कर उन फलों को लाकर आगे धर दिया तो यद्यपि वह वृक्ष व फल उसका लगाया व बनाया नहीं है परन्तु निश्चय करिके उस फल के स्वाद प्राप्त होने पर उस पुरुष के परिश्रम पर प्रसन्नता होती है तिसी प्रकार यद्यपि यह ग्रन्थ पारसी में रचना और का किया है मैंने केवल देवनागरी में भाषान्तर कर दिया है तौ भी इसके स्वाद को लेकर भगवद्भक्त लोग क्यों न प्रसन्न हो-कर मेरे वाञ्छित को पूर्ण करेंगे कदाचित् कोई यह कहे कि जो भगवद्भक्त पारसी नहीं पढ़े हैं सोई प्रसन्न होंगे व जो पढ़े हैं सो नहीं सो यह बात कदापि नहीं वरु पारसी पढ़नेवाले भगवद्भक्त दो बातों से अधिक प्रसन्न होंगे एक तो पारसी के पदों के अर्थ व भाव भाषा में यथार्थ बूझ करिके दूसरे परोपकार पर दृष्टि करिके सो सब प्रकार से दृढ़ विश्वास है कि मेरे वाञ्छित को भगवद्भक्त लोग प्रसन्न होकर निश्चय कृपा करेंगे ॥

मुख्यकर्ता भक्तमाल और भाषान्तरकर्ताओं का नाम वर्णन ॥

नारायणदास नाम प्रसिद्ध नाभाजी मुख्यकर्त्ता भक्तमाल के हुये हनुमान्वंश में उनका जन्म हुआ वृत्तान्त यह है कि दक्षिण में तैलङ्ग देश गोदावरी के समीप उत्तर में रामभद्राचल एक पहाड़ है श्रीरामचन्द्रजी ने वनवास के समय कुछ दिन उसपर निवास किया तहाँ रामदास नाम ब्राह्मण महाराष्ट्र हनुमान्जी के अंश अवतार हुये रामचन्द्रजी की उपा-सना में बहुत लोगों को प्राप्त किया बड़े पण्डित थे उनके परिवार हनुमान् अवतार होने से हनुमान्वंश करिके प्रसिद्ध हैं गानविद्या के अधिकारी हैं राजा लोगों के यहाँ नौकरी गाने पर करते हैं नाभाजी जन्म से सूर थे पिता के मरने पर अकाल का समय था कि उनकी माता ने जङ्गल में छोड़ दिया कील्हदास व अग्रदासजी ने देखा उनके नेत्रों पर जलका छींटा दिया नेत्र खुल गये वृत्तान्त पूछकर गलताजी में ले आये चेला करिके नारायणदास नाम रक्खा सब साधुओं की प्रसादी खाते खाते दिव्यज्ञान होगया

अग्रदासजी के मानसी पूजा के समय जो साहूकार के जहाज़ अटकने की दुचिताई मन में उत्पन्न हुई सो वतलाय दिया कि महाराज जहाज निकल गया सेवा में सावधान हूजिये तब प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि जिन भक्तों की प्रसादी से यह ज्ञान तुमको हुआ तिनका यश वर्णन करो तब छप्पय छन्द में नाभाजी ने भक्तमाल बनाया यह माला भक्तजन मणिगण से भरा है जिसने हृदय में धारण किया तिसने भगवत् को पहिंचाना ऐसी यह माला है श्रीप्रियादासजी माध्वसंप्रदाय के वैष्णव श्रीवृन्दावन में रहते थे उन्होंने कवित्व में इस भक्तमाल की टीका बनाई तिनके पश्चात् लाला लालजीदास ने सन् ११५८ हिजरी में पारसी में प्रियादासजी के पोते वैष्णवदास के मत से तर्जुमा किया व तर्जुमे का नाम भक्तोर्वशी धरा यह रहनेवाले कांधले के थे लक्ष्मणदास नाम था मथुरा की चकलेदारी में सत्संग प्राप्त हुआ हित हरिवंशजी की गद्दी के सेवक हुये लालजीदास नाम मिला राधावल्लभलालजी के उपासक हुये दूसरा तर्जुमा एक और किसी ने किया है नाम याद नहीं है तीसरा तर्जुमा लाला गुमानीलाल कायस्थ रहनेवाले रत्थक के संवत् १६०८ में समाप्त किया चौथा तर्जुमा लाला तुलसीराम रामोपासक लाला रामप्रसाद के पुत्र अगरवाले रहने वाले मीरापुर अम्बाले के इलाक़े के कलक्टरी के सरिश्तेदार उस मूल भक्तमाल और टीका को संवत् १६१३ में बहुत प्रेम व परिश्रम करिके शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार बहुत विशेष वाक्यों सहित अति ललित पारसी में उर्दू वाणी लिये हुये तर्जुमा करके चौवीस निष्ठा में रचि के समाप्त किया ॥

भक्तमाल की महिमा का वर्णन ॥

महिमा व बड़ाई श्रीभक्तमाल की कोई वर्णन नहीं कर सक्ता अपार है और इस लोक व परलोक की कामना पूर्ण करने को जैसे कल्पवृक्ष व कामधेनु है जो कोई सर्वदा पढ़ते हैं निश्चय करके तिनको भगवद्भक्ति प्राप्त होती है जो कोई संसारी कामना के सिद्ध होने के निमित्त पढ़ते हैं तो वह भी बहुत शीघ्र सिद्ध होजाती है बहुत लोगों को परीक्षा मिली है जितना तीर्थों के स्नान दानादिक से पुण्य होता है उससे दशगुणा अधिक इस भक्तमाल के पढ़ने से मिलता है संसार में तीन प्रकार के मनुष्य हैं एक विमुक्त, दूसरे साधक, तीसरे विषयी सो विमुक्त व साधक को तो यह पोथी प्राण से भी अधिक प्यारी है कि उनका अभिप्राय

अच्छी भांति से निकलता है और विषयी को इस निमित्त लाभ देने वाली है कि संसारी कामना इसके पढ़ने से प्राप्त होती है और भगवत् की ओर मन लगजावे तो आश्चर्य नहीं व इसके सिवाय यह कि अ- द्भुत अद्भुत वार्ता व योग खोलकर मर्यादा प्रेम और वियोग ऐसे योग व रस और शृङ्गार के लिखे हुये हैं यद्यपि वह सब सम्बन्ध किये गये भगवत् के प्रेम के हैं तथापि रीति प्रेम वास्तवी और मनमुखी को एक ही भांति की है इस हेतु वे लोग उन मर्यादाओं को मनमुखी प्रेम के सम्बन्धी समझ कर प्रेम की रीति व मर्याद से ज्ञानयुक्त होंगे और सुख आनन्द पावेंगे तात्पर्य यही है कि तीनों भांति के लोगों को लाभ व प्रसन्नता देनेवाला है और क्यों न ऐसा होय कि भगवत् को अपने भक्तों के सदृश प्यारा है कि आप सुनते हैं एक वैष्णव गुरु धन- दास नामे व्रजमण्डल में कामा का रहनेवाला नगर जयपुर में गया श्री- गोविन्ददेवजी के मन्दिरके पुजारीने कि नाम उनका राधारमण था उस वैष्णव से भक्तमाल की कथा का श्रवण प्रारम्भ किया कथा समाप्त नहीं हुई थी कि वैष्णव साम्हर के दिशा चले गये जब फिर आये तब पूछा कि कथा कहांतक होचुकी थी कोई न बतलासका और श्रीगोविन्दजी ने बतलाया कि फलाने भक्ततक कथा होचुकी थी इससे निश्चय होगया कि भगवत् आप इस भक्तमाल को सुनते हैं दूसरा यह वृत्तान्त है कि प्रियादासजी कि जिसने मूल भक्तमाल की टीका को किया है सो होडल गांव में व्रज से बीस कोस है तहां गये और लालदास महन्त ठाकुरद्वारे में कथा सुनाई संयोगवश मन्दिर में चोरी होगई और मूर्खों ने कारण चोरी होने का कथा को समझा परन्तु महन्तजी को कुछ दुचिताई न हुई और स्वामी प्रियादासजी के कथा कहने को कहा स्वामीजी बोले कि श्रोता इस कथा के आप भगवत् हैं जबतक सिंहासन भगवत् का फिर न आवेगा तबतक कथा बन्दरही और सब लोग ठाकुरद्वारे के ठाकुरजी के वियोग से उस दिन बेअन्न जल रहे जब रात्रि हुई तो भगवत् ने उन चोरों को ऐसा भय दिया कि प्रातही सिंहासन भगवत्का शिरपर रखकर सब सामग्रीसहित महन्तजी की सेवा में प्रकट हुये सबको श्रीभक्तमाल पर विश्वास हुआ और मूर्ख लोगों के मुँह में धूल पड़ी और कथा प्रारम्भ हुई यह बात कुछ औघट नहीं है क्योंकि आप अपने भक्तों की सहाय के हेतु निजधाम को छोड़कर चले आते हैं और अनेक प्रकार के

अवतार धारण करते हैं जो कथा उनकी सुनी तो क्या अनुचित है? अब दो एक बात वह लिखी जाती हैं कि जिनके मनोरथ केवल पोथी के विश्वास से प्राप्त हुये सुमेरुदेव ब्राह्मण नर्मदा के किनारे कोड़बने के रहने वाले ने गलताजी में अतिप्रेमसे भक्तमाल की कथा सुनी और पोथी की प्रति एक लिखाय लेकर घरको चले राह में ठगोंने मारा व उनकी पोथी सब वस्तु सहित लेगये और यह पोथी जहां रहती है मनके मैल को दूर करदेती है इसहेतु चोरों को अपने पापकर्म का पश्चात्ताप हुआ और श्रीभक्तमाल ने स्वप्न में भयङ्कर स्वरूप से दर्शन देकर यह आज्ञा की कि सुमेरुदेव के शरीर को उसके घर पहुँचा दे और पोथी उसके शीश पर रखदे कि वह जी जायगा ठगों ने उसी भांति किया और तुरन्त सुमेरुदेव जीगया मानो सोतेसे उठबैठा इस चरित्रको देखकर सबको अचम्भा हुआ और भक्तमाल में विश्वास होगया व भगवत्शरण होगये और वैष्णव होकर कृतार्थ होगये इसी प्रकार एक वणिक् ने इस कथा को श्रीप्रियादासजी से सुना और विश्वास करके पोथी की प्रति लेगया कुछ काल पीछे उसकी मृत्यु आन पहुँची तब यमदूतों के डरसे अपने लड़कों से कहा कि पोथी हमारी छातीपर रखदेव जबतक पोथी आवे तबतक उसका प्राण निकलगया घरके सबने मरे पर पोथी उसके शिरपर रखदी उस प्रताप से यमदूत तो भागगये और वणिक् उठबैठा कहनेलगा कि यमदूत तो यमलोक को लिये जाते थे भगवद्भक्तों ने छोड़ाया अब मैं वैकुण्ठ को जाता हूँ और उपदेश किये जाता हूँ कि जो कोई मेरे वंश में हो सो इस पोथी को पढ़ता सुनता रहे और अन्तसमय अपनी छाती पर राखे यह कहकर परमधाम को गया और उसके वंश में अबतक वह परम्परा वर्त्तमान है व लाला गुमानीलाल भाषान्तरकर्त्ता तीसरा अपना वृत्तान्त लिखते हैं कि एक पुत्र उनको बड़ी प्रार्थना से प्राप्त हुआ उस को दुःख मृगी का रहता था एक दिन लाला गुमानीलाल भाषान्तर लिख रहे थे कि रोने की ध्वनि अपने घर में सुनी उठकर भीतर गये देखा कि लड़का ज्ञान चेष्टारहित धरती पर पड़ा है और माता उसकी रोती है उसने शोक की पीड़ा से क्रोधभरी बातें कहीं और पोथी के ऊपर भी एक बात कठोर मुख से निकलगई। लाला इस कठोर वचन को नहीं सहिसके और भक्तमाल की पोथी लड़के के शिरपर रखदी जिससे वह लड़का तुरन्त उठबैठा और फेर वह दुःख उसको न हुआ॥

अथ भक्तमाल ॥

रस के भेद का वर्णन ॥

मङ्गलाचरण समाप्त होगया–परन्तु जो चौवीस निष्ठा लिखी जायँगी उनका सम्बन्ध रसों से है और मूल भक्तमाल में पाँच रस भगवद्भक्ति के संयोगी लिखे हैं परन्तु किसी तिलक मूल में स्वरूप रसों का और जड़ लिखी नहीं थी सो निर्णय करके लिखता हूँ जानलो जड़ रसों की वेद श्रुति है (रसो वैसः) यही श्रुति है अर्थ इसका यह है कि ईश्वर परमात्मा स्वरूप और अर्थ रस के यह हैं कि एकाग्रचित्त की वृत्ति जिस आनन्द के स्वाद को चखकर सुख में डूबके बेसुध होजाय तात्पर्य यह कि सच्चिदानन्दघन परब्रह्म अपने स्वामी को जो स्वरूप ध्यान में साक्षात्कार हुआ उसमें वह चित्त की वृत्ति दृढ़ होजाय वह रस है फिर उसीका दूसरा अर्थ है कि जो स्वरूप भगवत् का शृङ्गार अथवा वात्सल्य वो सखा इत्यादि रसों की सामग्री से कि वह सामग्री सब अपनी जगह पर लिखी जायँगी भक्तों के हृदय में प्रत्यक्ष हुआ और उस स्वरूप में चित्त की वृत्ति दृढ़ होजाय उसको रस कहते हैं और कोई कोई रसभेद के वर्णन करनेवालों ने वह स्वरूप जो हृदय में साक्षात्कार हुआ उस का नाम भाव लिखा और उस भाव में मन की वृत्ति दृढ़ होजाने को रस निश्चय किया सो वह रस एक और व्यापक पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द

घन है उपकरण जो उसके प्रकट होने के अलग २ हैं इस हेतु पृथक् २ नाम हुये वास्तव में वह रस एक और व्यापक है जिस प्रकार एक मिट्टी से बहुत प्रकार के घट अलग २ नाम और स्वरूप के होते हैं परन्तु मिट्टी सबमें एकही और व्यापक है जैसे पानी में जैसा रङ्ग मिलाया जावे वैसाही दिखलाई देने लगता है परन्तु पानीका रङ्ग कई प्रकार नहीं इसी भाँति वह रस जिस जगह सौन्दर्यता और आभूषण और सुकुमारता और कटाक्ष इत्यादिक के अनुकरण सहित प्रत्यक्ष हुआ उसको शृङ्गार कहते हैं और जहाँ शूरता व बल व शस्त्र व उत्साह इत्यादिक के अनुकरण सहित प्रकट हुआ उसको वीररस कहते हैं इसी प्रकार दूसरा अनुकरण वात्सल्य और सख्य इत्यादिक के पृथक् २ हैं अर्थात् रस एक है अनुकरण के विरोधके कारण से अनेक नाम हुये अब एक शङ्का यह प्रकट हुई कि प्रथम तो चित्त की दृढ़वृत्ति को रस लिखा और फेर रस को व्यापक सच्चिदानन्द ईश्वर वर्णन किया दोनों में ठीक क्या है ? सो बात यह है कि रस भगवद्रूप व्यापक है चित्त की दृढ़वृत्ति को जो रस लिखा तो हेतु यह है कि जैसे कहने में आता है कि जीव का आहार जीवन नहीं है सो वास्तव में आहार जीवन नहीं परन्तु जीवन का अनुकरण वही है इसी प्रकार वह दृढ़वृत्ति अनुकरण दृढ़ रस का है और उसीको रस कहा जाता है रसों की संख्या में आपस में शास्त्रों में विरोध है शृङ्गार उपासक कहते हैं कि आनन्दस्वरूप केवल शृङ्गार से प्राप्त होता है दूसरे रस व्यर्थ हैं उत्तर यह है कि जो मूल आनन्द का शृङ्गार होवे तो व्याघ्र व मेढ़ा व गज आदि की लड़ाई देखने और दूसरा ही ऐसे कार्यों से जीवन का शृङ्गार से सम्बन्ध नहीं आनन्द होना चाहिये कोषशास्त्रवाले आठ रस कहते हैं शान्तरस वर्णन नहीं करते हैं उपनिषद् शास्त्रवाले शान्तरस को मूल वर्णन करते हैं व दूसरे रसों को उसकी शाखा बतलाते हैं साहित्यशास्त्रवाले कि वह शास्त्र प्रेम व काव्य व रस भेद आदिक का है सो नवरस इस विवरण से कि शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शान्त कहते हैं व भगवत् उपासक किसी की हानि नहीं करते परन्तु उपासना के योग्य संपूर्ण उन नव रसों में से दो रस एक शृङ्गार दूसरा शान्त व तीसरा अधिक उसमें एक सख्य, दूसरा दास्य तीसरा वात्सल्य सब लेकर पाँचरस अङ्गीकार करते हैं यद्यपि सब रसों के अवलम्ब से भगवत् का चिन्तन होसक्ता है क्योंकि

भगवत् सव रसों में व्यापक है परन्तु उपासना व लानेयोग्य केवल पांच रस अङ्गीकार करे तो कारण यह है कि उन पांचों रसों को भगवत् के शीघ्र और निश्चय प्राप्त होजाने में विशेषता है दूसरे रसों से ऐसी शीघ्र भगवत् की प्राप्ति नहीं और कोई कोई उन नव रसों में जैसे भयङ्कर और वीभत्स कई एक ऐसे हैं कि कोई उपासक उन रसों के अवलम्ब से उपासना नहीं करता हिरण्यकशिपु और रावण और कंस इत्यादिक को जो उस रूप से भगवत् ने उद्धार करके मुक्ति दी इस हेतु रसों में उनकी भी गिनती हुई सिद्धान्त उपासना के सम्बन्धी पांच रस हैं और इस ग्रन्थ में वह पाँचों रस निष्ठा नाम करके लिखे जावेंगे व दूसरी निष्ठा सब उन रसों के अङ्गभूत हैं—कोई पुरुष किसी भाव और किसी प्रकार और किसी विश्वास और किसी रीति और निष्ठा से भगवत् आराधन करे रस व्यतिरिक्त नहीं अब जो बातें कि संयुक्तसम्बन्धी सब रसों की हैं वह तो यहाँ लिखी जाती हैं और जो निज रस की सम्बन्धी हैं सो अपने प्रयोजन के स्थान पर लिखी जावेंगी परन्तु अच्छे प्रकार समझने के हेतु दृष्टान्त सब श्रृङ्गार रस के सम्बन्ध के यहाँ लिखे जावेंगे अब जानना चाहिये कि वह रस जिसका ऊपर वर्णन हुआ सो चार सामग्री से प्रकट होता है एक तो विभाव, दूसरा अनुभाव, तीसरा सात्त्विक, चौथा व्यभिचारी अर्थात् प्रियवल्लभादिरूप। विभाव उसको कहते हैं जो कारण और मूल उस रस के प्रकट होने का हो सो उसके दो प्रकार हैं एक आलम्बनविभाव दूसरा उद्दीपनविभाव सो आलम्बनविभाव दो प्रकार का है एक आश्रयालम्बन जो रस के रहने का स्थान अथवा रस के उत्पत्ति का स्थान सो वह ध्यान करनेवाला अर्थात् भगवद्भक्त और स्नेहासक्त अर्थात् आश्रित है दूसरा विषयालम्बन अर्थात् मूर्त्ति श्रृङ्गार रस कि जिसका ध्यान किया जाय तात्पर्य भगवत्स्वरूप व जिस पर स्नेह होय व दूसरा उद्दीपन सो चार प्रकार का है प्रथम गुण यह कि सौन्दर्य व स्वरूप की लावण्यता व नवयौवन व मनमोहन किशोर अथवा बालकस्वरूप व सुन्दर बोलन व प्रीति इत्यादि, दूसरा चेष्टा यह कि कान्ति व झलक व सुकुमारता का गर्व व हावभाव कटाक्ष व सुकुमारताई इत्यादि, तीसरा अलंकार यह कि वस्त्र व आभूषण की सजावट इत्यादि, चौथा तटस्थ यह कि अतर पान फूल इत्यादि यह विभाव का वर्णन होचुका दूसरी सामग्री अनुभाव यह कि स्नेह करनेवाला व

जिसपर स्नेह है दोनों के एकत्र होनेसे जो बात प्रकट में आवे और उस कारण से वह रस प्रत्यक्ष होवे वह अनुभाव है यह कि परस्पर मिलना गलबाहीं बैठना और खेलना एक शय्या पर लेटना हँसी ठट्ठा चुम्बन व आलिङ्गन इत्यादि यह अनुभाव है अब रही सामग्री तीसरी व चौथी जो सात्विक व व्यभिचारी उनका वृत्तान्त यह है प्राचीनलोगों ने उन दोनों की प्रीति करनेवाले की चञ्चलदशा समझ कर केवल व्यभिचारी एक नाम लिखा सो उनका निर्मूल कुछ वर्णन नहीं है जैसे भरतरि ऋषीश्वर ने अपने सूत्रों में लिखा है परन्तु नवीन लोगों ने यह सूक्ष्मता निकाली कि जो एक दशा सब रसों में व्यापकता रखती होय उसका नाम सात्विक है और जो दशा ऐसी है कि एक रस में तो व्यापक होती और दूसरे रस में व्यापक नहीं होती वह व्यभिचारी है कि दश रूपक इत्यादि रसभेद के शास्त्र में सात्विक व व्यभिचारी पृथक् २ लिखे हैं सो सात्विक उसको कहते हैं कि अपने प्रियवल्लभ को देखकर अथवा उसकी ओर से दुःख सुख के पहुँचने से जो मनकी वृत्तिको एकदशा प्राप्त हो और वह दशा आठ हैं और जिस प्रकार सामग्री प्रथम व द्वितीय जैसे विभाव और अनुभाव सब रसों के अलग २ हैं तिस प्रकार यह सात्विक जो सामग्री तीसरी सब रसोंको भिन्न नहीं एकही भाँति व्याप्त सबरसोंमें है प्रथमदशाका नाम स्तम्भ है ज्यों का त्यों रहजाना, दूसरी दशा प्रलय नाम मूर्च्छा, तीसरी रोमाञ्च अर्थात् शरीर पर रोम खड़े होजाने, चौथी दशा स्वेद पसीना हो आना, पाँचईं विवर्ण मुख का रङ्ग और होजाना, छठईं कम्प शरीर कांपना, सतईं अश्रु आँसू बहना, आठईं स्वरभङ्ग शब्द में भेद पड़जाना और यह भी ज्ञातरहे कि यह आठों दशा और एक दशा मरण कि वह व्यभिचारी के वर्णन में लिखी जायगी सो अत्यन्त हर्ष व अत्यन्त शोक अथवा वियोग व संयोग दोनों अवस्था में एकही भाँति बराबर होती हैं और जो मृत्युदशा सब रसों में बराबर व्यापक नहीं होती है इस हेतु से उसको व्यभिचारी की सम्बन्धिनी में ज्ञाता लोगोंने गिनती करी है और सामग्री चौथी व्यभिचारी उसको कहते हैं कि जो दशा रस के दृढ़ होने के पहले अथवा पीछे प्रकट होकर फिर जाती रहै सो दशा तेंतीस हैं और सब रसों में बराबर उन सबकी व्यापकता नहीं है ॥ प्रथम निर्वेद ॥ निर्वेद उसको कहते हैं कि प्यारे का वियोग अथवा दूसरे के साथ अपने प्यारे की प्रीति अथवा कोई बात विपरीत समझ लेने का

दुःख १ ॥ ग्लानि ॥ उसको कहते हैं कि बल घट जाना और उमंग का न रहना २ ॥ शङ्का ॥ यह कि प्यारे के मिलने में किसी विघ्न के संदेह का ध्यान होना ३ ॥ श्रम ॥ यह कि पन्थ चलने से अथवा संभोग के पीछे थक जाना ४ ॥ धृति ॥ मन की संतुष्टता ५ ॥ जड़ता ॥ यह कि वियोग इत्यादिक की व्यथा के दुःख से ज्यों का त्यों रह जाना ६ ॥ हर्ष ॥ यह कि प्यारे को देखकर अथवा उससे वार्त्तालाप होने से कै कोई दूसरे हेतु से हर्षित होना ७ ॥ दीनता ॥ यह कि बेचैनी से मन छोटा होजाना और वियोग होने को न सहसकना ८ ॥ उग्रता ॥ यह कि अवज्ञा जो प्यारे से हुई इस कारण क्रोध का आ जाना ९ ॥ चिन्ता ॥ यह कि प्यारे के मिलने के निमित्त शोचना १० ॥ त्रास ॥ यह कि अचानक किसी भय का आ जाना ११ ॥ ईर्षा ॥ अपने प्यारे में दूसरे की प्रीति का साभीपना न सहिसकना १२ ॥ अमर्ष ॥ यह कि प्यारे में अवज्ञा जो किया उस का दुःख होना और न सहारना इस दशा में और नम्रई दशा में भेद बहुत है १३ ॥ गर्व ॥ यह कि अपने से दूसरे को अधिक न जानना १४ ॥ स्मृति ॥ यह कि अपने प्यारे को अथवा उसके गुणोंको स्मरण करना १५ ॥ मरण ॥ यह कि मरने का उपाय करना अथवा मर जाना १६ ॥ मद ॥ यह कि हर्ष व गर्व के एकत्र होने से जो दशा होती हो अर्थात् कार्याकार्य का विवेक न करना १७ ॥ निद्रा ॥ यह कि बाहर के अनुसंधान से अन्तर की वृत्ति में एकाग्रचित्त का होना जैसे स्वप्न १८ ॥ सुषुप्ति ॥ यह कि घोर निद्रा १९ ॥ अवबोध ॥ यह कि अवधानता बेसुधि भये पीछे सुधि होनी २० ॥ व्रीडा ॥ यह कि लज्जा २१ ॥ अपस्मार ॥ यह कि दुःख और आशा और अन्य से मनको ताप होनी २२ ॥ मोह ॥ यह कि मनके डगमग और दुःख व भय से जो अनवधानता होय २३ ॥ मति ॥ यह कि आदि सिद्धान्त जो पथ है विचार करके निश्चय कर लेना २४ ॥ आलस ॥ यह कि कार्यों में उपाय की अनवधानता २५ ॥ आवेश ॥ यह कि मन की रुचि अथवा अनरुचि का अचानक प्रकट हो जाना और इस हेतु मन का डगमग होना २६ ॥ वितर्क ॥ यह कि संदेह से नाना प्रकार का ध्यान होना २७ ॥ अवहित्था ॥ यह कि हर्ष अथवा शोक के कारण करके अपने जाने हुये को छिपाना २८ ॥ व्याधि ॥ यह कि वियोग में शरीर से दुःखी होजाना २९ ॥ उन्माद ॥ यह कि जड़ चैतन्य को बराबर जान लेना अर्थात् मतवारा जैसे ३० ॥ विषाद ॥ यह कि

जो अपने मन के विरुद्ध है उसके दूर करने का उपाय दिखाई न पड़ना ३१॥ औत्सुक ॥ अपने प्यारे के मिलने में विलम्ब का न सहारना ३२ ॥ चपलता ॥ यह कि मित्र और शत्रु के कारण से मनका स्थिर न होना ३३॥इति॥

वर्णन चारों सामग्री का हो चुका अब स्थायी भाव उसको कहते हैं कि जो रस अपने सजातीय व विजातीय से दूर न हो सके और बराबर अपनी दशा पर बना रहे वह स्थायी भाव है रसों के वर्णन के आरम्भ में जिसकी चर्चा हुई सजातीय यह कि रस से रसका मिट जाना जैसे लड़के हँसी और ठट्ठा अर्थात् हास्यरस में मग्न हैं कि किसी बड़े ने क्रोध अर्थात् रौद्ररस से रस हँसी को निवृत्त कर दिया और विजातीय यह कि जैसे लड़के हास्यरस में मग्न हैं फिर रोटीखाने चले गये और वह रस निवृत्त होगया तात्पर्य यह कि रससे रस निवृत्त न हुआ दूसरी वस्तु से निवृत्त हुआ अभिप्राय यह कि किसी अभिघात और किसीप्रकार पर मन भगवत् स्वरूप के ध्यान और चिन्तन से न हटै वह पदवी अन्त की और दृढ़भाव है ॥ इति ॥

अब तुलसीराम की प्रार्थना ॥ हे रघुनन्दन स्वामी, कृपासिन्धु, दीनवत्सल, हे करुणाकर ! हे पतितपावन, अधमउधारण, महाराज ! मैं कैसा अधम और मतिमन्द हूँ कि आप तो अनुक्षण व सर्वकाल स्पर्द्धा व कपट व क्रोध व अभिमान व मिथ्या बोलना व हिंसादिक सहस्रों अपराध में प्रवृत्त रहता हूँ भूलकर भी आपकी ओर सावधान नहीं होता और दूसरे लोगों के कर्म व आचरण पर व्यंग व दंश करके उनके निमित्त शिक्षा लिखता हूँ मेरा वही हाल है ३६ ॥ आप पाप के नगर बसावत सहि न सकत परखेरो ॥ जो यह विनती करूँ कि कुछ मेरे ऊपर भी कृपा की दृष्टि हो तो कौन मुख लेकर निवेदन करूँ कि एक बात भी अच्छी नहीं है जो विनती करूँ तो दूसरा उपाय नहीं सूझता सो अब एक बात दृष्टि में आई है कि सब पापिन में अनुपमान व अद्वितीय हूँ सो राजसभा में सब प्रकार के कला के बड़े प्रवीणों का प्रयोजन होता है इस निमित्त जो यह गुण मनोवृत्त्यनुकूल होय तो संक्षेप यह प्रार्थना अंगीकार होवे कि कोई देह में मेरा जन्म हो और नरक में जाऊँ अथवा स्वर्ग में परन्तु यह स्वरूप आपका मेरे मनमें बसा रहै सरयू के निकट अयोध्या निजधाम में जो राजद्वारी और उसमें निज सभा का मन्दिर बना हुआ है जिसका द्वार और प्राकार व भूमि भाँति भाँति के मणिगण से जटित है और तहां एक ऐसा मण्डप स्वर्णसूत्र का

है कि जिसकी झालरों में दिव्य स्वर्णसूत्रों के गुच्छे और मोती टँकेहुये हैं उसके नीचे रत्नसिंहासन है कि जिसके जड़ाऊ मणिगण को देखकर नेत्र को चकचौंधी होती है उस सिंहासन के ऊपर आप इस शोभा से कि किशोर अवस्था है और मुख की सुन्दरता से सुन्दरता भी सुन्दरता पाती है कि किरीट मुकुट धारण कियेहुये कानों में कुण्डल और उसमें श्रीमहारानी जीने फूलों के गुच्छे गुंधकर डाले हैं बड़े सजावट के साथ दिव्य वस्त्राभरण जगर मगर की पहिरे हुये और उसपर माला मणिगण और फूलों की मढ़ीहुई मोतियों के कण्ठे गले में हाथों में कड़े और पहुँची अँगुलियों में अँगूठी और चरणकमलों में घुंघुरू और कड़े विराजमान और शोभित हैं और ऐसी ही शोभा के साथ श्रीजनकनन्दिनी अखिलब्रह्माण्डेश्वरी वाम अङ्ग शोभायमान हैं और झलक मुख और आभूषण का परस्पर आभूषण व मुखपर जो पड़ता है तो ऐसी एक धार व शोभा की छटा है कि जो वहाँ प्राप्त हैं सो अपने को भूलकर सुख में मग्न होरहे हैं वसिष्ठजी राजतिलक करते हैं भरत लक्ष्मण शत्रुघ्नजी छत्र चँवर धनुष बाण इत्यादिक लियेहुये और हनुमान्जी सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं और शिव ब्रह्मादिक देवता और राजा सब देश देश के भेंट लियेहुये प्राप्त हैं और दूसरी सामग्री व साज राजतिलक का जो भक्तों के मन में समाया है और सो प्राप्त है और यह दास भी अपने ओहदे उपानत् की सेवा पर प्राप्त था ॥

दो० कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
ऐसे है कै लागहू, तुलसी के मन राम ॥

आत्मनिष्ठों की प्रथम धर्मनिष्ठा ॥

प्रथम श्रीकृष्ण स्वामी के चरणकमलों के अंकुश रेखा को दण्डवत् है कि जिसका ध्यान करने से मन जो मतङ्ग गज के समान है तुरन्त वश में होजाता है और भगवत् के मीन अवतार को दण्डवत् है कि जगत् की शिक्षा के निमित्त राजा श्रुतदेव को धर्म उपदेश किया और अपनी माया उसको दिखलाकर रक्षा करी वेद और सूत्रों के अनुकूल जो आचरण शुभकर्म लिखे हैं वह धर्म है और उसके प्रतिकूल अधर्म है तो अङ्गीकार करना आचरण शुभ और छोड़ना कर्म निन्दित वेद की आज्ञा के अनुरोध अत्यन्त उचित है और जो कोई वेदआज्ञा विरुद्ध कर्म करते हैं सो नरकगामी होकर अतिकठिन यातना का दुःख

भोगते हैं इसके ऊपर चौरासी लक्ष शरीर में जन्म होने का ऐसा कठिन दण्ड है कि वर्णन नहीं होसक्ता क्योंकि नरक से उद्धार होने का तो काल का प्रबन्ध है परन्तु आवागमन जन्म मरण के दुःख से छूटने का कोई प्रबन्ध निबन्ध नहीं इस हेतु कि आवागमन रहँट के चक्र की भाँति है कि इस योगवश मनुष्य का शरीर मिलता है व संसारसमुद्र तरने के निमित्त नौका के सदृश है जो इस शरीर को पाकर अपने छूटने का उपाय किया तो बेड़ा पार है नहीं तो फिर उसी दुःख में बद्ध होता है कर्मशास्त्र की आज्ञा में युक्त रहना सीढ़ी के सदृश है कि शीघ्र व विना परिश्रम उत्तम पद को पहुँच जाता है और जो कोई इससे निराश हैं सो सदा उद्धार से निराश हैं कोई कोई मनुष्य ऐसे देखे कि कर्म करने में तो प्रीति नहीं और उत्तम पद की बातें बनाते हैं ऐसे लोग कदापि सिद्धपद को नहीं पहुँचेंगे विचार करना चाहिये कि आप भगवत् वेदआज्ञा व कर्मशास्त्र के प्रकाश व प्रवृत्ति कारण के निमित्त अवतार लेता है जो कोई विना कर्म करने के उद्धार चाहे यह कब होसक्ता है व जब आप भगवत् ने अपने आपको कर्म करने से निवृत्त न किया और श्रीगीताजी में भगवत् का वचन है कि मैं आप कर्म करता हूं जो कर्म न करूं तो दूसरे लोग भी छोड़ देवें तो मैं ही जगत् का वर्णसंकर व नाश करनेवाला होजाऊं श्रीरघुनन्दनस्वामी को रावण के विजय किये पीछे यह ज्ञात हुआ कि रावण का जन्म ब्राह्मणवंश में था पाप दूर होने के निमित्त एक अश्वमेधयज्ञ किया व कर्मशास्त्र की मर्याद से चरण बाहर न रक्खा तो इस मनुष्य की क्या बात है कि विना कर्म करने के आवागमन के दुःख से छुट्टी पावे जो यह शङ्का होय कि कर्म तो आप जड़ है इस मनुष्य चैतन्य को किस प्रकार छुड़ावेंगे सो उत्तर यह है कि जिस प्रकार नौका जड़ है कैवर्त्त के हाथ के सहारे से सहस्रों को पार उतार देती है अथवा सीढ़ी जड़ है परन्तु विना उसके कदापि अटारी पर न जा सका इसी प्रकार कर्म हैं संसारसागर से पार उतारने के निमित्त सहाय होते हैं व उत्तम पद को पहुँचाय देते हैं जो यह शङ्का होय कि जो शुभकर्म करेंगे तो उनके भोगने के निमित्त शरीर अवश्य होगा व जब कि शरीर हुआ उसको एक दिन मृत्यु आवेगी और इसी प्रकार जन्म मरण में रहेंगे शुभकर्म से छूटने के प्रकार की रचना क्या होगी सो वृत्तान्त यह है कि शुभकर्म दो प्रकार के हैं एक

सकाम कि जो किसी कामना की सिद्धि के निमित्त करेजावें वे तो अवश्य आवागमन के कारण होते हैं काहेसे कि जब उस कर्म का फल इतिश्री होगया तव स्वर्गादिक से पृथ्वीपर जन्म लेताहै दूसरा निष्काम कि वह उद्धार व छूटने का कारण है निष्काम के अर्थ यह कि विना किसी कामना के करने में आवे तात्पर्य यह कि जो कर्म करे तो फल उसका कदापि न चाहै भगवत् के अर्पण करदेवे क्योंकि भगवत् अच्युत व अनन्त व अविनाशी है इस कारण से वह फल जो भगवत् को अर्पण कियागया सो भी अनन्त व अच्युत व अविनाशी होजाता है और उसी प्रसन्नता से भगवत् अपना स्वरूप उस मनुष्य के हृदय में प्रकाश करताहै अर्थात् भगवत् चरणों में प्रीति होजाती है जिस प्रकार कोई कंगाल मनुष्य कि महाराजाधिराज की सेवा में कोई वस्तु दो चार पैसेकी लेजावे तो राजा उसको उस वस्तु का मोल विचारके अथवा उस मनुष्य की मर्याद के योग्य का द्रव्य नहीं देता है किन्तु अपनी ओर देखकर देताहै और उसका दरिद्र दूर करदेता है उसके अलग लोगों की रीति है किसी ने किसीको कोई वस्तु विना मोल दी तो उसके कृत को मानिके कार्य कर देते हैं इसी प्रकार वह भगवत् कि सब कृतज्ञता की मिति के जाननेवालों का मुकुटमणि है सब कार्य करदेता है अभिप्राय यह कि जब इस मनुष्य की भगवत् में प्रीति हुई और नित्य के कर्म सहायक हुये दिन २ भगवत् की प्रीति बढ़ावते हुये ऐसे अनन्त होजाते हैं कि हृदय निर्मल होकर भगवत् की भक्ति दृढ़ होजाती है और उस भक्ति की कृपा से कृतार्थ होकर भगवत्पद को पहुँच जाताहै और जन्म नहीं होताहै और फिर यह कर्मशास्त्र भगवत् की आज्ञा है और रीति है कि जो कोई सेवक अपने प्रभु की आज्ञापालन में तत्पर रहता है तो वह प्रभु उस भृत्यपर प्रसन्न होकर सब मनोरथ सिद्ध करदेताहै तो भगवत् कि जो सब प्रभुलोगों का प्रभु है जो सेवक उसकी आज्ञा को पालन करेगा उसपर प्रसन्न होकर क्यों नहीं कार्य सिद्ध करदेगा और क्यों नहीं आवागमन की पीड़ा से छुड़ावेगा और चमत्कार यह कि निष्काम कर्मों के कारणसे संसारी कामना भी आप भगवत् करदेते हैं कि प्रह्लाद, अर्जुन, युधिष्ठिर, ध्रुव इत्यादि भक्तों की कथासे प्रकट है अब शङ्का यह भारी हुई कि भला शुभकर्म तो इस हेतु न रहे कि भगवत् में जा मिले परन्तु अशुभकर्म भी तो इस मनुष्य से होजाते हैं वे किस प्रकार जावेंगे सो बात यह है कि कर्म दो

प्रकारके हैं एक अज्ञात दूसरा ज्ञात सो अज्ञात कर्म तो नित्य के सन्ध्या व बलिवैश्वदेव व श्राद्ध व अभ्यागत पूजन इत्यादिक से दूर होजाते हैं और वही भगवत् को पहुँचकर अनन्त फल के देनेवाले होते हैं और ज्ञातकर्म रहा सो उनका हाल यह है कि जिसकी निष्ठा शुभकर्मों में है उससे महापातक होताही नहीं और जो कोई दैवयोग से होभी गया तो जो भगवत् शुभकर्म का स्वामी होताहै वहही अशुभकर्मों के पातक को मार्जन करदेता है सो वेद श्रुति प्रकट लिखती है और न्याय से भी जानने योग्य है कि जिसने शुभकर्मों का तो फल भगवत् को दिया अशुभ कर्म उसके निमित्त क्यों रहैंगे? इस व्यवहार से काम और निष्काम में एक दृष्टान्त स्मरण हो आया कि जो कोई चाकर या ठेकेदार किसी का होता है और उससे कुछ वस्तुकी हानि होजावे तो उसीके ऊपर देन उतरता है और जो घर के दासीपुत्र से हानि होजावे तो स्वामीपर उतरताहै दास से कुछ सम्बन्ध नहीं तात्पर्य यह कि सकाम कर्म करनेवाला चाकर ठेकेदार के सदृश है और निष्काम कर्म करनेवाला जैसे दासीपुत्र सिद्धान्त यह कि निष्कामकर्मों का करना वेद की आज्ञा के अनुसार उचितहै जो ज्ञानी और भक्त अगले समय में हुये और जो कि अब हैं व जो आगे होंगे केवल कर्मोंके प्रभाव से वह पद उत्तम उनको प्राप्त हुआ और होगा जैसा कि भगवद्गीता में लिखाहै कि कर्मोंही के प्रभाव से जनक इत्यादि को मन की स्थिरता सिद्ध भई फिर लिखा है कि विना कर्म करने के कदापि नहीं छूटते सर्वशास्त्र इस बात में युक्त हैं कि विना कर्म उद्धार नहीं और वेदआज्ञा में बुद्धि से तर्क करके कहना कि यह वेदआज्ञा है सो इस लाभ के हेतु होगी यह बात वर्जित है और यह बात स्मृति में भी लिखी है परन्तु प्रयोजन पाय करके लिखा जाताहै कि विधिनिषेध जो हैं वेदाज्ञा सो यद्यपि परलोक के हेतुहैं तथापि संसार के लाभको भी विशेष हैं जैसे प्रभात का उठना व स्नान करना, माता, पिता, गुरु की वन्दना, सत्य बोलना, सुहृदता, मीठे वचन, विवेकी जनों का सङ्ग करना, विद्या पढ़ना और किसी को बुरा न कहना, जिसका लोन खाइये तिस पालन करनेवाले की सेवा निश्छल धर्म से करना, मित्रसे कपट न रखना व जो कोई कुछ विद्या सिखलावे व शिक्षा करके भगवत् की ओर लगावे तिस को गुरु जानना व भगवद्भजन इत्यादि सहस्रों प्रकार के शुभकर्म का अङ्गीकार करना व मिथ्या बोलना, चोरी, परस्त्रीगमन, हिंसा, जुवा का

खेलना, मद्यपान, असाधुजनका सङ्ग, मिथ्या उत्पात, कपट, मिताई, मूर्खता, अकृतज्ञता इत्यादि का त्याग करना व नदी में नहाते हुये, पानी बरसते में, चलतेहुये, वार वनवांते हुये दूसरी ओर चित्त न करना, बासी अथवा गरिष्ट किसी का जूठा व तीक्ष्ण व खट्टा व क्षार इत्यादिक का न खाना, स्निग्ध सुस्वादु मिष्ट कोमलरङ्ग आहार का भोजन करना, रात को पहाड़ पर न चलना ऐसे २ सहस्रों आज्ञा धारण करने के योग्य हैं कि इस संसार में कैसे लाभ के देनेवाले हैं इति ॥ कोई कर्म ऐसे हैं कि जो नित्य उस कर्म को न करे तो मनुष्य अपनी ज्ञाति से पतित होजाते हैं परन्तु ऐसी दुर्भाग्यता ने वल बाँध रक्खा है कि कदापि उस ओर चित्तकी वृत्ति नहीं होनी बरु बहुत लोग यह कहते हैं कि अजी साहब ! शास्त्र के अनुसार किससे कर्म होसक्ताहे पायँ धरने का भी ठिकाना नहीं कहो न कहो का व्यवहार है सो समझ में आता है कि उन लोगों को उस आज्ञा का पालन तो अलग रहा सुनने का भी संयोग न हुआ काहेको जो आज्ञा विधि निषेध हैं ऐसी सहज हैं कि सब कोई उसपर चलसके और जहाँ कोई ऐसी भी विधि की गति लिखी हैं कि वह अतिकष्ट से साध्य होय तो उसीके समीपही दूसरी रीति की आज्ञा ऐसी लिखदी है कि सब कष्ट सुलझावें जैसे दीपक व तेल हाथ में लगजाय तो इतनी मिट्टी लगाकर धोने को लिखा है कि बड़ा कष्ट है तहाँहीं यह बात लिखदी है कि धरती से हाथ रगड़के धो डाले बहुत जगह कि पाप के प्रायश्चित्त के निमित्त चान्द्रायणव्रत लिखते हैं और उसी जगह यह भी लिखा है कि जो न हो सके तो कृच्छ्र नहीं तो तीन दिन अथवा एक दिन का व्रत करे तात्पर्य यह है कि शास्त्राज्ञा सब ऐसी हैं कि सहज से होसकें परन्तु प्रथम तो समझना और फिर करने पर फेंट बाँधना कठिन हो रही है और यह भी तो अनुमान करना योग्य है कि जो अङ्गीकार उन आज्ञाओं का न हो सकने के योग्य होता तो शास्त्र में लिखी ही काहे को जातीं बहुतसी जाति जो नास्तिक और म्लेच्छ कहे जाते हैं तो कारण यह है कि वे लोग वेद की आज्ञा को नहीं मानते और विरुद्ध आचरण हैं तो जो कोई वेदशास्त्र की आज्ञापर प्रवृत्ति न करे सो नास्तिक और म्लेच्छ हैं और जो कोई वेद शास्त्रको मिथ्या कहते हैं अथवा अन्य सामान्य विद्या के सदृश समझते हैं उनकी दुर्गति होने में तो कुछ संदेहही नहीं है और जो नरक स्वर्गको मिथ्या कहते हैं वेभी निस्संदेह दुर्गती हैं यह सब वचन स्मृतिके वार्ता

करके लिखे गये हैं अब कथा व नाम उन महात्मालोगों का संक्षेप से लिखे जाते हैं कि जो इस निष्ठा में दृढ़ होकर और भगवद्भक्तों को पाकर भगवत्परायण हुये ॥

दो० रूप राशि आनन्द घन, गौर श्याम कमनीय ।
युगल किशोर बसो सदा, जन प्रतापके हीय ॥ १ ॥

कथा राजा हरिश्चन्द्र की ॥

ये राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी अयोध्या के राजा बड़े प्रतापी हुये जिन की कथा शास्त्र व पुराण में प्रसिद्ध है विश्वामित्र को यज्ञ की दक्षिणा में राज्यादिक सब देकर तीन भार सुवर्ण के हेतु राजा, रानी व कुँवर रोहिताश्व किसी नगर में बिकने को गये वह भी नगर राजा का था विश्वामित्रने वशिष्ठजी की शत्रुता से व धर्म की परिक्षा के अर्थ न अङ्गीकार किया राज्यके अन्तर्गत वह राजा से कल्पित ठहराया वशिष्ठजी ने राजा को सैनसे जनाथा कि काशी के राज्य में नहीं है वहाँ जावो राजा काशीजी में चाण्डालके यहाँ बिके उसने मृतकघटिया पर वस्त्र व कर लेनेकी सेवा सौंपी रानी व कुँवर एक ब्राह्मण के यहाँ बिके विश्वामित्रने तव सांप होकर कुँवर रोहिताश्वको काटा रानी रोदन करती हुई मृतक को जलानेके हेतु घाटपर गई राजा ने वहाँ करके निमित्त रोंका रानी ने बहुत करुणा वचन सुनाया पर राजा धर्म में दृढ़ था ऐसी दशा में भी धर्म न छोड़ा रानी के पास कुछ नहीं था कि कर दे रातको गङ्गाकिनारे बैठी रही तब विश्वामित्र काशीराज के लड़के को मारकर रानी के पास रखके प्रभात को काशीराज से जनाया कि गङ्गाके किनारे एक स्त्री रहती है लड़कों को खाती है उसीने यह कर्म किया होगा लोगों ने उस लड़के को मृतक स्त्री के पास पाया काशीराज ने विना विचारे उस चाण्डाल को स्त्री के वध करने की आज्ञा दी उसने राजा हरिश्चन्द्र के पास वध करने के हेतु भेज दिया राजा की आज्ञा सुनतेही तुरन्त तरवार खींचकर उठा चाहा कि रानी के गले पर मारे कि धरती कँपने लगी व आकाश से हाय २ शब्द हुआ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सब देवताओंने राजा का हाथ पकड़ लिया भगवत् ने प्रसन्न होकर कहा वर माँग राजा ने कहा भक्ति छोड़ दूसरे की चाह नहीं भगवत्ने भक्ति वरदान देकर कुँवर रोहिताश्व व काशीराजके लड़के को जिलाकर अयोध्या के राज्य करनेकी आज्ञा दी संपूर्ण वयक्रम न्याय अरु भक्ति में व्यतीत कर और भगवद्भक्ति की रीति में प्रजालोगोंको प्रवृत्त

करके अन्त समय कुँवर रोहिताश्व को राज्य देकर परमधाम को गया अब विचारना चाहिये कि धर्म की दृढ़ता व निर्वाह कौन २ पदार्थ दुर्लभ को नहीं देता है ॥

कथा राजा बलि की ॥

ये राजा बलि विरोचन के पुत्र व प्रह्लाद के पौत्र परम भगवद्भक्त व प्रतापी हुये जिसके यहां आप भगवत् ने भीख मांगी व जिसने अपनी पीठ को नपाय दिया व अबतक जिसके द्वार पर आप भगवत् वामनरूप से खड़े रहते हैं कथा लोक में उनके यश की प्रसिद्ध है यहां ध्यान करके देखना चाहिये कि भगवत् ने अपने भक्त से छल व कपट किया तिसके हेतु अपने उस रूप को यह दण्ड दिया कि राजा के द्वारपाल होगये तो भला और कोई भक्तों के साथ छल व कपट करेगा तिसको न जाने कैसा दण्ड करेगा॥

कथा राजा दधीचि की ॥

राजा दधीचि ज्ञानी भक्त परोपकारी ऐसे हुये कि अपने अस्थि को देवता लोगों को दे डाला और इन्द्र ने वज्र बनवाकर उसीसे वृत्रासुर का वध कर सुख पाया कथा प्रसिद्ध है अब विचार कर लेना चाहिये कि जो लोग सिद्ध अवस्था को प्राप्त थे कर्म करने न करने का प्रयोजन कुछ न था तिनको भी कर्मशास्त्र की आज्ञापालन में कैसी निष्ठा थी अब हमारी यह गति है कि शास्त्र आज्ञा को पालन करना तो अलग है यह भी नहीं जानते कि कर्मशास्त्र किसको कहते हैं धन्य है ॥

कथा दशरथ महाराज की ॥

दशरथ महाराजाधिराज परम भागवत धर्मकर्मनिष्ठ हुये इनकी बड़ाई व भाग्य का वर्णन किससे होसक्ता है कि पूर्ण ब्रह्म भगवत् ने वश होकर जिसके पुत्र होकर बालचरित्र आदिक से आनन्द दिये ये महाराज पहले जन्म में स्वायंभुव मनु थे और शतरूपा उनकी रानी थी तप करके भगवत् से वरदान मांगा कि आपके सदृश हमारे पुत्र होय व हमारे जीवन का सम्बन्ध आपके दर्शन से रहे वही दशरथ हुये व भगवत् आप उनके पुत्र होकर प्रकट हुये अयोध्याजी में रामरूप से नाना प्रकार के चरित्र किये वाल्मीकि ऋषीश्वर ने सौ कोटि श्लोक में वर्णन किये रामचन्द्र महाराजाधिराज के चरित्र तीनों लोक में सूर्य के सदृश व्याप्त व प्रकाशित हैं राजा ने कैकेयीरानी को पूर्व वरदान दिया था तिस कारण से श्रीरामचन्द्र ने चौदह वर्ष वनवास किया रावणादिक दुष्टों का

वध करके अपने यश का सेतु संसारसमुद्र में बांधा व दशरथ महाराज ने रघुनाथजी के वनगमन होते ही तनु को त्याग करके स्वर्गवास किया ॥

कथा भीष्मपितामह की ॥

भीष्मजी परम भगवद्भक्त रहे और बारह महाभागवतों में उनकी गिनती है इस कर्मनिष्ठा में उनको लिखा सो कारण यह कि प्राप्त होने भक्ति व ज्ञान के भी प्रवृत्ति आज्ञा कर्मशास्त्र का कर्तव्य समझते रहे कि श्राद्ध के समय उनके पिता का हाथ निकला परन्तु हाथ पर पिण्डा न दिया वेदी पर रख दिया और दुर्योधन के लोन से पालित अपने को जानकर युधिष्ठिर की ओर न गये गङ्गाजी के उदर से उत्पत्ति उनकी है जब गङ्गा जी स्वर्ग चली गईं व शंतनु महाराज विकल हुये तब योजनसुगन्धा को आप राजा न होने का वाचा प्रबन्ध करके ले आये इसी हेतु अपना विवाह न किया काशीराज की लड़की अम्बा नाम तिससे विवाह नहीं किया परशुरामजी गुरु से लड़ाई का संयोग पहुँचा परन्तु न विवाह किया व दयालुता यहां तक रही कि युधिष्ठिर महाराज महाभारत में रातको जाकर रोये तब अपने वध का उपाय आप बतलाया तब दूसरे दिन अर्जुन ने उसी रीति से शिखण्डी को बीच में खड़ा करके बाण मारे तब शरशय्या पर शयन किया और भगवत् ने अपना प्रण छोड़कर भीष्मजी का प्रण रक्खा रथ का चक्र लेकर उनपर दौड़े और अपने पिता के आशीर्वाद से मृत्यु उनकी उनके आधीन रही इसी कारण से बावन दिन तक शरशय्या पर रहे और तनु त्याग कर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज को आंखों के आगे देखते परमधाम को पधारे ॥ इति ॥

कथा सुरथ सुधन्वा की ॥

ये दोनों भाई सगे राजा नीलध्वज के पुत्र परमभागवत रहे राजाने सुधन्वा को विना विचारे आज्ञाभङ्ग के अपराध का दण्ड मन्त्री की शत्रुता से दिया तेलके कड़ाह जलते में डलवादिया तेल ठंढा होगया जैसे प्रह्लाद की गति हुई सोई हुआ फिर सुधन्वाने अर्जुन से अश्वमेध के घोड़े रोंकने में अत्यन्त युद्ध किया अन्त में दोनों भाई खेत आये भगवत् को प्राप्त हुये व शिर उनका महादेव ने अपने मुण्डमाल में लिया ॥ इति ॥

कथा हरिदास की ॥

राजा हरिदास परमभक्त हुये धर्मशास्त्र की आज्ञा पर बहुत दृढ़ रहे इस हेतु इस निष्ठा में लिखे गये यह राजा पाटननगर के जाति राजपूत

तोदर शरनपाल राजा शिवि के समान व दान देने में राजा दधीचि क सदृश अपने वचन के पालने में राजा बलि के समान व भगवद्भक्ति म प्रह्लाद के तुल्य व रिझवार राजा जगदेव के समान हुये कि वृत्तान्त उस का इस जगह लिखा जाता है कि राजा जगदेव बड़े शूरवीर व न्यायनिष्ठ व उदार रहे और रिझवारनिष्ठा इतनी रही कि एक नटिनी ने तमाशा राजा के सम्मुख किया उसके राग व नाचपर कला इत्यादिक से प्रसन्न होकर कुछ प्रसन्नद्रव्य देने के हेतु चिन्ता करने लगे । परन्तु उसके गुण के सम्मुख कुछ ध्यान में न आया सिवाय इसके कि शीश अपना दे डालें नटिनी ने निवेदन किया कि जब मुझको आपके शिरका प्रयोजन आन पड़ेगा तब ले जाऊँगी और राजासे निश्चय किया कि रिझवारता तुम्हारे ऊपर अन्त होचुकी अब मेरा दहिना हाथ किसी के आगे कुछ लेने को नहीं फैलेगा पीछे दूसरे राजाके यहाँ उसकी नृत्यकला हुई राजा रीझकर कुछ देने लगा नटिनी ने बायाँ हाथ पसारा राजा ने क्रोध करके कारण पूछा नटिनी ने कहा कि मेरा दहिना हाथ राजा जगदेव के भेंट हो चुका है उससे सिवाय कौन दानी है जिसके आगे फैलाऊँ राजाने कहा मैं दशगुण अधिक उससे देसक्ता हूँ कह उसने क्या दिया है पीछे बहुत बातचीत होने के राजा ने प्रतिज्ञा की कि दशगुण अधिक देऊँगा निश्चय जान तब नटिनी राजा जगदेव के पास आई उसका शिर लेकर राजाके पास आई कि राजा जगदेव ने यह शिर अपना हमको दान दिया रहा यह कहकर शिर राजाके सम्मुख रख दिया व बोली कि तूभी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर राजा लज्जित होकर उठगया फिर मुख न दिखाया व नटिनी ने शिर राजा जगदेव का उसके धड़पर रखकर वही राग कि जिस पर राजा रीझा था गाया तुरन्त जी उठा और यह रिझवारता की बात राजा जगदेव की संसार में फैली और एक प्रसंग राजा जगदेव का यह है कि कोई राजा की लड़की उसपर आसक्त हुई विवाह का संवाद भेजा राजा जगदेव ने अङ्गीकार न किया लड़की की माता ने किसी बहाने से राजा को अपने नगर में बुलाया व राजा को मन्त्रियों के द्वारा बहुत समझाया राजा ने न माना उस लड़की ने भी अपने प्रेम व आसक्तता के दुःखको प्रकट किया परन्तु उस जगदेव ने न अङ्गीकार किया यहाँतक हुआ कि उस लड़की दुष्टा ने राजा जगदेव का शिर देखने के निमित्त कटवा मँगाया परन्तु इस दशामें भी भगवत् ने राजाकी ऐसी प्रतिज्ञा पूरी

की कि मृतकशिर ने उस लड़की के मुख को न देखा कईवार वह शिर के सम्मुख गई परन्तु जब सम्मुख आवे तब शीश उसके दूसरी ओर फिर जाय तात्पर्य यह निकला कि स्त्री से पराङ्मुख होय तो इसप्रकार होय व निश्चय करके स्त्रियों का संग मुमुक्षु को ऐसा दुःखदायी है कि कबहीं भगवत् प्राप्तिके आनन्द को समीप आने नहीं देता अभिप्राय इस प्रसंग कहने का यह कि यह राजा हरिदास भी रिझवारनिष्ठा में ऐसेही रहे मानो तोदरकुल में सूर्य के समान हुये कलियुग में धर्मात्मा रहे तिलक माला से प्रीति रही कि वर्णन नहीं होसक्ता बात यह है कि एक वैरागी दुष्ट उसकी लड़की के साथ रात को सोता था आंख से देखा परन्तु क्षमा करगये वह दुष्ट डरकर भागनेलगा तब यह बोले कि ऐसे कर्मों से वेषकी निन्दा होती है इतनाही कहने से उस वैरागी को ज्ञान होगया वनमें निवासकर भगवद्भजन करनेलगा ॥ इति ॥

निष्ठा दूसरी धर्मप्रचारक ॥

श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के व्यास अवतार को दण्डवत् है कि जगत् के उद्धार के हेतु वेदों को विशेष प्रकाशित और ब्रह्मसूत्र और महाभारत और अठारह पुराण व स्मृति को बनाय कै भागवतधर्म की प्रवृत्ति की और चरणकमलकी कुलिशरेखा को दण्डवत् है कि महाघोररूप वृत्रासुर और पापके पहाड़ों को नाश करनेवाला है भागवतधर्म उसको कहते हैं कि भगवद्भक्ति के सम्बन्ध से जो कुछ किया जाय सेवा, पूजा, भजन, स्मरण, कीर्त्तन इत्यादि जो किसीको संदेह होय कि धर्मनिष्ठा और भागवतधर्म में क्या अन्तर है ? सो बात यह है कि धर्मनिष्ठा का अभिप्राय कर्म से है चाहे वह कर्म सकाम हो अथवा निष्काम और भागवतधर्म उसको कहते हैं कि जो निष्काम कर्म इस जन्म में चाहे अगिले जन्मों में किये हैं और उनको भगवत्अर्पण करके भगवद्भक्ति प्राप्त हुई होय उस भक्ति के सम्बन्ध से जो कुछ करना योग्य है वह भागवतधर्म है जब कि भागवतधर्म में सावधान होकर भक्त का मन लगा और प्रतिक्षण उसीओर बाहर भीतर के चित्तकी वृत्ति हुई तो और कर्म करने न करने का स्वाधीन है व बहुत आचार्यों का मत इस बात पर है कि कर्मों के प्रभाव से भगवद्भक्ति प्राप्त हुई है जबतक देहानुसंधान को भूलिके मग्न न होजाय तबतक संध्या इत्यादिक जो आवश्यक कर्म उनको करता रहे और समझना चाहिये कि यद्यपि देखने में यह बात विरुद्धसी समझने में आती है परन्तु

सिद्धान्त में कुछ विरुद्ध नहीं काहेसे कि जो कोई भागवतधर्म में एकाग्रचित्त है वह जो कर्म करता है सो सब भगवद्भक्ति के सम्बन्ध के हैं उनको कर्म न समझना चाहिये सो उस भागवतधर्म के कि जिसका वर्णन हुआ प्रचारक उसकी नौका के समान हैं कि आपभी पार जावे और दूसरों को उतार देवे तरणतारण जो पद विख्यात है सो ऐसे ही भक्तों के निमित्त है यद्यपि भागवतधर्म के प्रचारक आप भगवत् हैं कि ब्रह्माजी को वेद का उपदेश किया और वेद के अनुकूल भागवतधर्म ने प्रवृत्ति को पाया परन्तु विशेष कृपालुता के हेतु उस धर्म की प्रवृत्ति में इतनी निरन्तर कृपादृष्टि की कि वेद और ब्रह्मापर भी प्रबन्ध उसका न रक्खा और कई युक्ति और प्रकट कर दीं यह कि भक्तों और ऋषीश्वरों के मुख से सूत्र और तन्त्र और स्मृति और वेदान्त पातञ्जलि मीमांसा इत्यादि छओंशास्त्र व वाल्मीकीय रामायण व महाभारत इत्यादि इतिहास व पुराण वर्णन व रचना कराया कि उसके अनुकूल प्रवृत्ति उसकी हुई और लोग उनका श्रवण व कीर्त्तन करिके कृतार्थ हुये और होते हैं पश्चात् जब भगवत् ने देखा कि लोगों के चित्तकी चाह काव्य के पद पदार्थकी है तो नाटक व चम्पू व काव्य व साहित्य शास्त्रों के योगसे शिक्षा को किया और उनके बोधसेभी लोगोंकी बुद्धि अमित व भ्रमित देखी तो टीका करनेका प्रचार चलाया और जब उनको भी लोग अच्छे प्रकार न समझसके तो सूर-दास व तुलसीदास व नाभा व अग्रदास व नन्ददास व कृष्णदास इत्यादि को कलियुग में प्रकट करके भाषा में चरित्र व भागवतधर्मों को रचना कराया व जगत् में प्रवृत्त किया उसके अलग उस भागवतधर्म के प्रवृत्त होने के निमित्त दूसरा उपाय यह किया कि आप अपने मुखारविन्द से उन धर्मों को स्पष्ट करके समझाया और लक्ष्मीजी व अपने पार्षद व ब्रह्मा व शिव व सनकादिक व नारद व शुक्राचार्य व बृहस्पति व वशिष्ठ व व्यास इत्यादि सहस्रों को गुरु बनाकर उपदेश व विशेषता उन भागवतधर्मों की करी और कलियुग में शङ्कराचार्य और रामानुज स्वामी व निम्बार्कस्वामी व माधवाचार्य व विष्णुस्वामी व वल्लभाचार्य व हित-हरिवंशजी इत्यादिक सैकड़ों आचार्य अपनी विभूति और कला व अंश व आवेश अवतार से प्रकट करिके अब तक जिनकी कृपा से करोड़ों जीव महापापात्मा सबोंका उद्धार होता है फिर तीसरा विचार यह किया कि अपना मन्दिर व मूर्ति और भजन व तप का स्थान जैसे

बदरिकाश्रम आदि और अपने धाम जैसे मथुरा अयोध्या आदि और तीर्थ जैसे गङ्गा यमुना पुष्कर आदि प्रकट किये कि उनके प्रभाव से भक्ति का प्रचार हुआ तात्पर्य इस लिखने का यह कि भगवत् को प्रवृत्त करना अपने भागवतधर्म का और दृढ़ रखना उसका इतना अंगीकार है कि जब कभी थोड़ा भी उसमें विघ्न आय पड़ता है अथवा कोई विघ्न करने को उद्यत होता है तो आप भगवत् अवतार लेकर उन विघ्न करने वालों का वध करदेते हैं और अपने धर्म को स्थिर रखते हैं गीताजी में भगवत् का वचन है कि हे अर्जुन! जब धर्म में हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तो मैं आप अपने भक्तों के सहाय के हेतु और नाश करने दुष्टों के और स्थिर करने अपने धर्म के अवतार लेता हूँ तो आवश्यक व बहुत प्रयोजन हैं कि जहांतक होसके भगवद्धर्मके प्रचार करने में परिश्रम व यत्न करे कि उससे प्रसन्नता भगवत् को होती है और प्रचार करनेवाला इस धर्म का भगवत् की विभूति अवतार में विचार किया जाता है एक जगह शास्त्र में लिखा है कि जो कोई एक जीव विमुख को भगवत् सम्मुख कर देता है उसको दशहजार अश्वमेधयज्ञ का फल होताहै भगवत्कथा कराना, ठाकुरद्वारा, भजन, कुटी, धर्मशाला, वाटिका, कूप, तड़ाग, पाठशाला इत्यादि और ऐसे मन्दिर कि जिससे भगवद्भजन करनेवालों और संसार को आराम हो रचना करावना और भगवत् चरित्रों को बनावना और प्राचीन पोथियों की टीका बनावना, अधर्म से हटाकर भगवद्धर्म में लगाना, सदावर्त्त इत्यादि सब जगह और विशेष करिके जैसे बदरिकाश्रम व अयोध्या व हरद्वार आदिक स्थान में प्रवृत्त करना व एकादशी आदि भगवत् के व्रत के दिन में जागरण करना व भगवत्कीर्त्तन का समाज होना और जिस दिन भगवत् के अवतार हुये हैं उस दिन और दूसरे व्यवहार जो भगवत् के हैं तिनको भगवत् का व्यवहार जानकर अति आनन्द और स्नेह और धूमधाम के साथ उत्साह कराना और विद्याके पढ़ने पढ़ाने में परिश्रम व उपाय करना ऐसे ही और काम कि जिनके कारण करिके लोगों को भगवत् की ओर मन सम्मुख करना यह सब सामग्री बढ़ाने भागवतधर्म की हैं जो कोई कि भगवद्भक्त हैं और केवल लोगों के उद्धार व उपकार के निमित्त जिनकी मनोवृत्ति है उनकी बड़ाई व वर्णन तो किससे होसक्ती है कि वे कृतार्थरूप हैं और जो कोई अपने यश व संसार के दिखाने के हेतु इस भगवद्धर्म का

प्रचार करता है वह भी भगवत् को प्यारा है कि उसके प्रभाव से सहस्रों को शुभगति हुई व उस धर्म के पुण्य से अथवा किसी भक्त के आशीर्वाद से उसका मन भी भगवत् में लगिजायगा महिमा भागवतधर्मप्रचारकों की शास्त्रों में इस आधिक्यता से लिखी है कि जिसका वर्णन नहीं होसक्ता और एक कथा अनन्ताचार्य की जो पोथी प्रपन्नामृत में लिखी है स्मरण हुई कि उससे महिमा ऐसे भक्तोंकी प्रकट होती है ठाकुरद्वारे व नगर के मार्ग जाने आनेके बीच में एक गड़हा पड़गया व रास्ता क्लिष्ट होगया अनन्ताचार्यजी आप टोकरी और फावड़ा लेकर उस गड़हे को भरनेलगे इस हेतु कि लोगों को आनेजाने का क्लेश न होवे और स्त्री उनकी कि वह गर्भवती रही उसको भी इस धन्धे में शामिल किया जब प्रसवकाल समीप आया और उस स्त्री को टोकरी के ढोने से क्लेश होने लगा तो भगवत् ने पनिहारे का रूप बनाकर उसकी स्त्री को आज्ञा की कि तुम्हारे बदले मैं टोकरी ढोताहूं तुम विश्राम करो पश्चात् थोड़ेही विलम्ब में अनन्ताचार्य ने देखा कि स्त्री के धन्धे पर कोई पनिहार टोकरी ढोता है सोंटा लेकर दौड़े और कहा कि तू कौन है जो हमारे भाग में बलात्कार साझी होता है जब समीप पहुँचे तो भगवत् को एक भागने विना दूसरा उपाय न सूझा और मन्दिर में जा घुसे व अनन्ताचार्यजी सोंटा लिये पीछे रहे जो मन्दिर में पहुँचे तो भगवत् का श्रीअङ्ग मिट्टी और धूलि में भराहुआ देखकर बूझ-गया कि आप भगवत् स्त्री पर दया करके टोकरी ढोते रहे अनन्ताचार्य-जीने हाथ जोड़कर प्रेममें मग्न होके विनय किया कि महाराज कृपा करके किङ्करों को उचित है न कि स्वामी को ऐसे विचार से सब लोगों को उचित व योग्यहै कि अपने २ अभिलाष व विश्वास के अनुसार इस परमधर्म के प्रवृत्त करने में सब तन मन प्राण से उपाय व परिश्रम करें जिस किसीको जिस बोली में विद्या प्राप्त हुई है और काव्यरचना में चित्त की वृत्ति है तो भगवत्चरित्रोंही की रचना करें परन्तु सैकड़ों काव्यकर्त्ता देखने में आये कि विना अलाप सलाप बकवाद के भगवत्चरित्रों के ओर तनक भी एकाग्रचित्त नहीं होते और कोई कोई से बात कहने में आई कि तुम भगवत् यश वर्णन करके अपनी वाणी व अन्तःकरण को क्यों नहीं पवित्र करतेहो तो उत्तर देते हैं कि महाराज हम अभेद का वर्णन करते हैं और कोई कहते हैं कि समय का जैसा चलन है वैसे ही पद पदार्थ की रचना का करना अच्छा होता है और कोई कहते हैं कि कविलोगों का मन पद

व अर्थ की रचना चिन्तन के व्यतिरिक्त दूसरी ओर नहीं जाता यह भी तो भगवद्भजन है बस ऐसे ही ऐसे उत्तर अयोग्य निरर्थक देते हैं उनका वर्णन करना व्यर्थ है तात्पर्य सब कहने का यह कि जिस काव्य व रचना व चित्रपद में भगवत्चरित्रों का वर्णन नहीं वह काव्य निराला निष्फल व अधम है जैसे कोई परमसुन्दरी चन्द्रवदनी स्त्री है और विना वस्त्र नङ्गी होवे व और अधिक व्यवहार संसार का वैभव व धनपर निबन्ध है सो धनवान् लोगों को अच्छेप्रकार ज्ञात व प्रकट है कि धन किसी के घर न पहिले रहा न अब रहेगा शून्य हाथ आये और इसी प्रकार चलेजावेंगे इस धनका नाम माया है और लक्ष्मी अर्थात् भगवत् की पतिव्रता स्त्री है जहां उसका स्वामी रहेगा वहीं वह रहेगी नहीं तो तुरन्त चली जायगी अभिप्राय यह है कि जो धन को सदा स्थिर करने को चाहे तो भगवत् पन्थ में उसको लगाके सदा सेवा व भजन में काल व्यतीत करे सहस्रों साहूकार और ऐश्वर्यवान् होगये किसीका नाम भी कोई नहीं जानता और जिन लोगों ने ठाकुरद्वारा तड़ाग भजनकुटी इत्यादि बनवाया अबतक उनका नाम प्रकाशित है और रहेगा अब बड़े शोच व मसोस की बात है कि धन को पाइकै भगवद्धर्म का प्रचार न करे ईश्वर और जीव और संसार और स्वर्ग और नरक और भक्ति और ज्ञान और वैराग्य और सब रीति सम्प्रदाय व मत का जानना विद्या के आधीन है जब से चारोंवर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से शास्त्र का पढ़ना उठगया तबसे सब धर्मों का नाश होगया दक्षिणदेश चीनापट्टन व तैलङ्ग व द्राविड़ व बारह मल्हार में रीति है कि जो किसीका लड़का शास्त्र पढ़ने में मन न लगा के क्रूरता करता है तो उसके बड़ेलोग वहां के देशाधिपति से आज्ञा लेकर पैरों में बेड़ी डालकर पाठशाला में भेज देते हैं और जबतक शास्त्र न पढ़ लेवे बेड़ी नहीं निकालते इस कारण से उस देश के सबलोग धर्मों में स्थिर हैं और ब्राह्मण से लेकर नीच जाति पर्यन्त कोई मनुष्य इष्ट उपासना से शून्य और अज्ञ नहीं और विरुद्धधर्मी लोगों के वचन फांस में थोड़े फँसते हैं इस हेतु जहांतक होसके और अपने व बिराने को शास्त्र पढ़ने की सहायता करे जो संस्कृत न पढ़सके तो भाषा का पढ़लेना मनोरथ को पहुँचादेता है सूरसागर तुलसीकृत राम··ण को भगवत् ने ऐसा प्रताप दिया है कि जो नेम करके पढ़ते हैं वो। २ भगवत् के प्यारे होजाते हैं और इसी प्रकार

नन्ददास व कृष्णदास व अग्रदास व छीत स्वामी इत्यादि की वाणी को प्रताप है और भक्तमाल का वाक्य तो प्रारम्भ ही में लिखा गया भगवत् कथा कहलाना और उसके सुनने की शिक्षा देना और अपने अनुगामी व पुत्र पौत्रादि को जिस प्रकार व्यवहार सांसारिक के सिद्धि के हेतु प्रवृत्त माना विद्या को पढ़ाते हैं व शौच करते हैं इसी प्रकार भगवत् की ओर लगाना और भगवत् सहस्रनाम व गीता व स्तवराज इत्यादिक स्तोत्रों का पढ़ा देना अति प्रयोजन से है और जो कोई अपने वंश को और अनुगामी लोगों को भागवतधर्म में नहीं लगा देते व भगवद्धर्म के सम्बन्ध की विद्या नहीं पढ़ाते तो जो पाप जीवन पर्यन्त उनसे होते हैं उनके बड़ों के शिर हैं क्योंकि पढ़ा देना उन विद्याओं का उन पर अवश्य था सो न किया व जिनके वंश में भगवद्भक्त होते हैं तो अपने पुरुषों को भी नरक से उद्धार करके मुक्त कर देते हैं इसमें प्रह्लाद आदिक भक्तों की साक्षी है हे कृपासिन्धु ! हे दीनबन्धु ! हे श्रीव्रजचन्द्र, महाराज ! कुछ इस घरजाये किंकर की ओर भी निगाह है कि बिन आपके चरणकमलों के और कोई शरण और रक्षक मेरे नहीं जो मेरे कर्मों की ओर दृष्टि करोगे तो अगणित जन्मों तक मेरा ठिकाना नहीं लगेगा इस हेतु केवल कृपा व दया का आसरा है व यद्यपि यह बात जानता हूं कि जितना विमुख व संसारी लोगों की स्तुति व आराधना व मुख जोहन व मनरञ्जन करता हूं व भय से उनसे कम्पमान रहता हूं जो उसके सहस्रवें भाग में एक भाग भी आपका भय करिके भजन स्मरण में व्यतीत करूं तो एक क्षण में बेड़ा पार होता है परन्तु यह मन ऐसा भाग्यहीन व दुष्ट पापी है कि भूल के भी उस ओर नहीं लगता जो अब भी मूर्ख मतिमन्द मन ऐसा चिन्तवन आप का करता रहे तो शीघ्र अपने परम मनोरथ को प्राप्त हो सक्ता है श्रीयमुना जी के किनारे एक वाटिका परम मनोहर है कि जिसमें सुन्दर मार्ग व क्यारियों में जल चल रहा है और सब प्रकार के फल व फूलों के वृक्षों पर हरी लहलही डहडही बेल छाय रही हैं व बीच में फुलवारी नानारङ्ग के फूलों की छवि देती है, मयूर, कोकिल, शुक, सारिका, कपोत, सारस, हंस आदि अपने मधुर शब्द व चहचहाहट से बरबस मनको मोहित करते हैं उस वाटिका में श्रीनन्दनन्दन शोभाधाम अपने सखन के संग भांति भांति के आनन्द व खेल कर रहे हैं मुखारविन्द की शोभा की उपमा सूर्य चन्द्रमा मणिगण अथवा कोई फूल कमल व गुलाब आदि की

री जाय तो उनमें एक ही एक प्रकार की शोभा है व इस मुखारविन्द मनो-
हर में उन सबकी शोभा एक ही जगह संपूर्ण है मुकुट जड़ाऊ मोरपक्ष का
शीश पर कानों में कुण्डल कि उनमें फूलों के गुच्छे गुँथे हैं विराजमान
हैं गले में मोतियों की कण्ठी व मणिगण की माला उस पर फूलों की
माला है कड़े और पहुँची हाथों में सुवर्णतारी दुपट्टा जैसा कि खेलने के
समय बांधना चाहिये बँधा हुआ व पीताम्बर की धोती पहिने हुये चरण-
कमलों में कड़े व झाँझ शोभित हैं और खेल की दौड़ धूप में जो पसीना
आ गया है तिसकी छोटी छोटी बूंदें मुख पर झलकती हैं और अलकें
घूँघुरवारी जो पवन के लगने व दौड़ने से बिथुरि के कपोलों पर आई हुई
हैं ऐसी शोभा व आनन्द प्रकट करती हैं कि देखनेवालों का मन बरबस
हाथ से जाता है ॥

कथा ब्रह्माजी की ॥

ब्रह्माजी जगत् के पिता व भगवद्भक्तों व सब धर्मप्रचारकों में श्रेष्ठ हैं
व भगवद्विभूति स्वरूप हैं जब नाभिकमल से उनका जन्म हुआ व तप
करने के पश्चात् अपनी व संसार की उत्पत्ति करने का ज्ञान व सामर्थ्य
पाई तो भगवद्धर्मों को संसार में प्रवृत्त किया और अब तक ब्रह्माजी का
उपदेश चला जाता है जिस प्रकार कि ब्रह्मलोक में नारद सनकादिकों को
उपदेश करते हैं और जो कोई उत्तम कर्म करके उनके लोक में जाता है
उसको उपदेश भक्ति व ज्ञान का करते हैं कि उस प्रभाव से मुक्ति होजाती
है यह बात सब पुराणों से व्यवस्थित है जब कबहीं उस भगवद्धर्म में
बाधा पड़ती है व उस कारण से देवता व भगवद्भक्तों को क्लेश होता है
तब ब्रह्माजी भगवत् के अवतार होने का उपाय करते हैं और दुष्टों का
नाश होकर भगवद्भक्ति की प्रवृत्ति होती है ब्रह्माजी की कथा पुराणों में
सब प्रसिद्ध लिखी है इसी हेतु यहां संक्षेप से लिखा गया ॥ इति ॥

कथा शिवजी की ॥

शिवजी की पदवी भक्तराज है व भगवद्धर्म प्रचारकों में राजा हैं
भक्ति के प्रचार करने में यहां तक उद्यत हैं कि आप आचार्य होकर
संसार को उपदेश करते हैं विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के आचार्य शिवजी
हैं व जब से बड़े बढ़े तब स्मार्त्तसम्प्रदाय में शंकराचार्य का अव-
तार लेकर स्मार्त्त मत प्रवृत्त किया व क्षीरसागर से हलाहल निकला
सब देवता भस्म होने लगे तब दया करके आप पान कर गये ऐसी कृपा

लुता है व रसिक भक्तराज ऐसे कि सती ने वन में रामचन्द्र की परीक्षा लेनेको जानकीजी का स्वरूप धारण किया तिस हेतु त्याग किया जब सती ने उस तनु को छोड़कर हिमाचल के यहां जन्म लिया तब बड़ी तपस्या करने से अङ्गीकार किया पार्वतीजी से कहा कि रामनाम लेने से हज़ार नाम का फल है पार्वतीजी ने विश्वास दृढ़ करलिया व सहस्र नाम के पाठ के पूर्णता को एक नाम लेकर शिवजी के बुलाने पर चली आईं आप अतिप्रसन्न होकर अङ्ग में बायें ओर रखलिया एक समय भगवत् प्रसाद सनकादिक ने दिया आनन्द से बेसुधि होकर भोजन करिगये पार्वती को भूलगये पार्वती ने शाप दिया तुम्हारा निर्माल्य आज से जो खायगा नरक में जायगा इसहेतु शिव-निर्माल्य त्याग है एक समय शिवजी पार्वती के सहित चले जातेरहे दोऊ जगह उजाड़ में वाहन से उतर २ साष्टांग दण्डवत् किया पार्वतीजी ने कारण पूछा तब शिवजी ने कहा कि एक जगह तो एक सहस्रवर्ष व्यतीत हुआ कि एक भगवद्भक्त यहां हुआ रहा दूसरी जगह यह हेतु है कि सहस्रवर्ष व्यतीत होजायगा तब एक भगवद्भक्त यहां होगा इस हेतु ये दोनों खेरे दण्डवत् व पूजन के योग्य हैं ऐसे अनेक चरित्र हैं कोई कहते हैं शिवजी रामचन्द्रजी के बालस्वरूप के उपासक हैं सो ठीक है परन्तु जो दूसरी निष्ठा हैं उन सब में भी वैसी ही प्रीति है कि श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के रासविलास के समय सखीरूप होकर पहुँचे व वीररस की शोभा बड़े उत्साह से जायके देखी इससे शिवजी महाराज ज्ञानी भगवत् के भक्त हैं ॥

कथा अगस्त्यजी की ॥

अगस्त्यजी ऋषीश्वर परमभक्त रामोपासक व बहुत विद्या के आचार्य हैं अगस्त्यसंहिता जिनकी बनाई हुई विख्यात है घट से जन्म है समुद्रको गण्डूषमें धरके पान करगये देवता दानव के बोझसे धरती उत्तर ओर नीची व दक्षिण ऊंची होगई तब अगस्त्यजी दक्षिण जा रहे तब उनके प्रभावसे उत्तर ऊंची दक्षिण नीची होगई मन्दराचल पहाड़ पड़ा है खड़ा नहीं होता अगस्त्यजी ने मांगा कि जबतक हम न आवें तब तक तू पड़ा रह इसी कारण से उत्तर को अगस्त्यजी नहीं आते हैं व मन्दराचल ज्यों का त्यों पड़ाहै ॥ इति ॥

कथा रामानुजस्वामी की ॥

जिस प्रकार भगवत् ने संसार के उद्धार के हेतु चौविस अवतार धारण किये इसी प्रकार कलियुग में चार अवतार धारण करके भागवतधर्म को प्रकाश व प्रवृत्त किया व चार सम्प्रदाय को स्थापित किया एक सनकादिक सम्प्रदाय उसके आचार्य निम्बार्कस्वामी हैं दूसरा श्रीसम्प्रदाय कि उसके आचार्य रामानुजस्वामी हैं तीसरा शिव सम्प्रदाय उसके आचार्य विष्णुस्वामी हैं चौथे ब्रह्म सम्प्रदाय उसके आचार्य माधवाचार्य हैं सब का वृत्तान्त संक्षेपसे लिखाजायगा रामानन्द व्यास हितहरिवंशआदि ने जिन सम्प्रदायों को प्रकट किया तो अन्तर्गत चार सम्प्रदाय की हैं व चारों सम्प्रदाय भक्तिरूपी भूमि के स्थिर रखने को दिग्गजों के सदृश हैं चारों सम्प्रदायों में श्री सम्प्रदाय के आचार्य जो रामानुजस्वामी हुये कि जिनके प्रभाव करके कोटानकोट महापापी व पातकी संसारसमुद्र को तरिगये व तरते हैं भक्ति व प्रताप की महिमा उनकी सूर्य के समान प्रकट व विख्यात है व जन्म से लेकर परमधाम जाने के दिनतक का वृत्तान्त स्वामी रामानुजजी के प्रपन्नामृतग्रन्थ में सम्पूर्ण लिखा है व गुरु परम्परा प्रारम्भ से रामानुज स्वामीतक यहां लिखी है और आगे केवल एक गादी कि रामानन्दजी की कथा में लिखी जायगी और चौहत्तर गादी की परम्परा मिलनी अत्यंत दुर्लभ है १ नारायण २ लक्ष्मीजी ३ विष्वक्सेन ४ शठकोप ५ श्रीनाथ ६ पुण्डरीकाक्ष ७ राममिश्र ८ यमुनाचार्य ९ पूर्णाचार्य १० रामानुजस्वामी ॥

कथा स्वामीरामानन्दजी की ॥

यह रामानन्द स्वामी परम भगवद्भक्त व सिद्ध व आचार्य व भक्ति के प्रचार करनेवाले ऐसे हुये कि संसारसमुद्र के उतरने के हेतु अपनी कृपा व संप्रदाय का सेतु बांधा व अनन्तानन्द व सुरेश्वरानन्द व सुखानन्द व भावानन्द व पीपा व सेन व धनाजाट व रैदास व कबीर को उन्हीं की कृपा व प्रभाव और उपदेश से हुआ रहा यह स्वामी दक्षिण देशमें एक संन्यासी का उपदेश लेकर स्मार्त की रीति से भगवत् आराधन किया करते रहे एक दिन फूलों के लेने को फुलवाड़ी में गये वहां राघवानन्द स्वामी जो रामानुज संप्रदाय के रहे उनका दर्शन हुआ उन्होंने कहा कि तुमको कुछ अपना वृत्तान्त भी ज्ञात है कि तुम्हारी आयुर्बल शेष नहीं रही इस अन्तसमय में भगवच्छरण होजाना चाहिये

रामानन्दजी ने अपने गुरु संन्यासी के पास आयके सब बात कही उन्होंने भी अपने ध्यान में देखा कि सच है रामानन्दजी की आयु गत होगई परन्तु कुछ उपाय न होसका दोनों राघवानन्दजी की सेवा में आयके शरण हुए राघवानन्दजी ने उनपर दया करके मन्त्र उपदेश किया और रामानन्दजी के प्राण को योगाभ्यास से दशवें द्वार ब्रह्माण्ड में पहुँचा दिया जब मृत्यु की घड़ी टलगई तब फिर जिलाकर चैतन्य करदिया व बहुत जीने का वरदान दिया रामानन्दजी ने बहुतकाल गुरु की सेवा की फिर तीर्थाटन करते बदरिकाश्रम की ओर आये कुछ काल काशीवास किया पञ्चगङ्गा घाटपर निवास रहा वहां खड़ाऊं उनकी विराजमान हैं फिर जब गुरु की सेवा में गये तब आचारीलोगों ने क्रिया व आचार का वृत्तान्त पूछा व जाना कि कभी जो निश्चय आचारधर्म में भेद पड़गया है तब अपने में से न्यारे करदिया राघवानन्द उनके गुरु ने आज्ञा दी कि तुम अपना पन्थ अलग चलाओ सो रामावतनाम करिके संप्रदाय चलाई वही रामानन्दी भी कहलाते हैं इस संप्रदाय में श्रीरघुनन्दन व जानकी महारानी का ध्यान उपासना है व आचारीलोगों की रीति आचार नहीं है शास्त्र को मन से यह सिद्धान्त करलिया कि जो कोई भगवच्छरण हुआ उसको बन्धन वर्ण आश्रम का नहीं सब अच्युतगोत्र होगये सबका भोजन एक पंक्ति में होनाहै सो यह शास्त्र के अनुसार है नारदपञ्चरात्र इत्यादिक में लिखा है कि जैसे चारों आश्रम हैं इसी प्रकार भगवद्भक्ति आश्रम है यह कि सब भगवद्भक्त एकवर्ण हैं भागवत में लिखाहै कि जो ब्राह्मण अपने सबकर्मों में सावधान है परन्तु भक्त नहीं तो उससे कोई नीच वर्ण जो भगवद्भक्त होय सो वरिष्ठ है और एक यह भी प्रमाण प्रसिद्ध है कि भगवत् ने राजायुधिष्ठिर के यज्ञ होजाने के पीछे वाल्मीकि श्वपच को भगवद्भक्ति के कारण सब वर्णाश्रमवालों से अधिक प्रतिष्ठित किया इस बात में बहुत प्रमाण हैं सो यह रीति जो वर्ण आश्रमधर्म में है तिनमें नहीं है जो कोई गृहत्यागके किसी संप्रदाय में भगवच्छरण होकर विरक्त होगये उनमें अबतक प्रवृत्ति है व कपिलजी का स्थान गङ्गासागर में लुप्त होगया रहा उसको रामानन्दजी ने निर्देश करके प्रकट किया गुरुपरम्परा रामानुज से लेकर गोविन्ददास तक और दो गद्दी गलता व रामगढ़ की अबतक की लिखी जाती हैं १ रामानुज २ देवाचार्य ३ प्रधानानन्द ४ राघवानन्द ५ रामानन्द ६ अनन्तानन्द ७ कृष्णदास

८ कील्हदास ९ अग्रदास १० नारायणदास ११ गोविन्ददास ॥

कथा कृष्णदास पयआहारी की ॥

कृष्णदासजी अनन्तानन्द के चेला व ब्राह्मणकुल में जन्म ले ऐसे परमभगवद्भक्त हुये कि लाखोंको संसार से उद्धार किया कील्ह व अग्रदास केवलराम व हठीनारायण व पद्मनाभ व गदाधर व देवा व कल्याण इत्यादि सौकरों चेले ऐसे सिद्ध व प्रेमभक्त हुये कि लाखों का उद्धार किया पहले गलताजी में योगी रहते रहे कृष्णदासजी ने अपनी सिद्धता से निकालकर पृथ्वीराज राजा को चेताया व एक दरिद्री लड़के को राजा बना दिया ऐसे २ अनेक प्रभाव व प्रताप जिनके हैं ॥

कथा गोविन्ददास की ॥

गोविन्ददास नारायणदास जो नाभाजी का नाम है तिनके चेला रहे व बड़े भक्त हुये नाभाजी ने प्रथम भक्तमाल उन्हीं को पढ़ाई पीछे इन्हीं ने भक्तमाल को जगत् में प्रकाश किया ॥

कथा विष्णुस्वामी की ॥

विष्णुस्वामी महाराज परमभागवत और प्रवृत्ति करनेवाले भगवद्भक्ति के हुये दक्षिणदेश ब्राह्मणवंश में हुये चारों संप्रदाय में जो रुद्र संप्रदाय विख्यातहै उसके आचार्य स्वामीजी हैं यद्यपि यह संप्रदाय प्राचीन है परन्तु विशेष करके प्रकाश विष्णुस्वामी से है और शिवजी के नाम से विख्यात होनेका कारण यह है कि मुख्य आदि आचार्य इस संप्रदाय के शिवजी महाराज हैं इस हेतु कि प्रथम इस उपासना का उपदेश शिवजी ने प्रेमानन्द मुनि को किया इस संप्रदायमें ईश्वर को शुद्ध अद्वैत मानते हैं और वह ईश्वर नन्दनन्दन वृन्दावनचन्द्र गोलोकनिवासी सर्वदा सातवर्ष की अवस्था अपने सखाओं के साथ खेल विहार करताहै व्रजभूमि और गोलोक में कुछ न्यून विशेष नहीं तिलक व संन्यास का हाल वेषनिष्ठा में वर्णन होगा व जो रीति मुख्य इस संप्रादायवालोंकी है उसके वैष्णव व तदनुवर्ती गुजरातदेश में विशेष हैं परन्तु वल्लभाचार्य की प्रवृत्ति की हुई रीति के अनुसार अति अधिक प्रवृत्ति इस संप्रदाय की है यद्यपि रीति प्राचीन व विष्णुस्वामी व वल्लभाचार्य में कुछ भेद नहीं कि सब बालस्वरूप के उपासक हुये परन्तु वल्लभाचार्यजी ने कोई २ भाव व रीति अपने अन्तःकरण के प्रेम की तरङ्ग के अनुसार ऐसी निकाली कि बरबस चित्त को खोजती है सो हाल उनका कुछ सूक्ष्म करके

वल्लभाचार्य की कथा में व वात्सल्यनिष्ठा में लिखा जायगा और बाबा लाल कि जिसका बड़ा विश्वास आलमगीर के भाई दाराशिकोह बादशाह को रहा सो वह भी इसी निष्ठा और संप्रदाय में रहे कोई २ माध्वी संप्रदाय में कहतेहैं परन्तु निश्चय करके इसी संप्रदायके अनुगामी हुये उन्होंने एक दो रीति में कुछ घट बढ़ करके अपनी रीतिपर प्रवृत्त इस संप्रदाय को किया व विष्णुस्वामी महाराज की संप्रदाय में करोड़ों भक्त इस उपासना के प्रताप से भगवत्पद को पहुँचे व मुख्य गुरु द्वारा विख्यात गोकुल में है और गुजरातदेश में है पर गोकुल का सा नहीं। गुरु परंपरा १ शिवजी २ परमानन्दमुनि ३ आनन्दमुनि ४ प्रकाशमुनि ५ श्रीकृष्णमुनि ६ नारायणमुनि ७ जयमुनि ८ श्रीमुनि ९ शङ्करभट्ट १० पद्मभट्ट ११ गोपालभट्ट १२ श्रीधरभट्ट १३ श्यामभट्ट १४ रामभट्ट १५ सेतभट्ट १६कृष्णभट्ट १७दिवाकरभट्ट १८ कृपालभट्ट १९ विद्याधर भट्ट २० दिनकरभट्ट २१ मधुनिधानभट्ट २२ ज्ञानदेवभट्ट २३ सुखदेव भट्ट २४ शिवदेवभट्ट २५ शान्तभट्ट २६ दयालदेव २७ क्षमादेव २८ संतोषदेव २९ धीरजलदेव ३० ध्यानदेव ३१ विज्ञानदेव ३२ महाचार्य ३३ तत्त्वाचार्य ३४ नृसिंहाचार्य ३५ सुआचार्य ३६ सुबुद्धाचार्य ३७ बुद्धाचार्य ३८ प्रबोधाचार्य ३९ असूयाचार्य ४० रुद्राचार्य ४१ भगवन्ताचार्य ४२ रामेश्वराचार्य ४३ ब्रह्मविधिचर्याचार्य ४४ सुदर्याचार्य ४५ लक्ष्मीनारायणआचार्य ४६ ज्ञानदेव ४७ नामदेव ४८ तिलोचनदेव ४९ श्रीविष्णुस्वामी ५० लक्ष्मणभट्ट ॥

कथा वल्लभाचार्यजी की ॥

वल्लभाचार्य परम भागवत व प्रेमी व संप्रदाय के आचार्य संसार समुद्र से पार उतारनेवाले हुये अपने स्थान जन्मभूमि को छोड़कर प्रथम गोकुल में और फिर वृन्दावन में आये भगवत् आराधन करनेलगे भगवत् से यह मनोरथ किया कि वात्सल्यनिष्ठा की रीति संसार में फैले इस हेतु गोकुल में निवास करके भगवत्सेवा पूजा की ऐसी रीति व पद्धति वात्सल्यनिष्ठा की बांधी कि वर्णन उस भाव का नहीं होसक्ता व स्वप्न में भगवत् ने आज्ञा विवाह करलेने की दी हेतु यह है कि जो कोई भक्त जिस दृढ़ भाव से भगवत् आराधन करता है तो भगवत् उसके हृदय में सिद्धपद को पहुँचजाने पर प्रेमभक्ति के साक्षात् उसी भाव से दर्शन देते हैं सो भगवत् ने एक ब्राह्मण को प्रेरणा करके लड़की उसकी

भेंट करायदी विवाह हुआ कुछ दिन पीछे विट्ठलनाथ महाराज ने जन्म लिया कि वात्सल्य निष्ठा के भक्तों में उनकी कथा लिखी जायगी उनके सात पुत्र हुये व सब पुत्रों के नाम से सातगद्दी अबतक गोकुल में विराजमान हैं कोई गद्दीमें सात बार कोई गद्दी में नव बार सेवाकी रीति है श्रीराधिका महारानी को स्वकीयाभाव से भगवत्प्रिया जानकर आराधन करते हैं परन्तु पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण महाराज को मानते हैं इस संप्रदाय के अलौकिक भाव की कथा कुछ कही नहीं जाती जो बाबा नन्द और यशोदा महारानी लाड़ लड़ाते होंगे उसी प्रकार गोसाईं गोकुल का भाव है आंगन से घरको बहुत ऊंचा नहीं रखने इस विचारसे कि ऐसा न हो कि लड़का घुटुवन चलते गिरपड़े शयन के समय ऊंचे शब्द से नहीं बोलते इसहेतु कि प्रेमसुकुमार लड़का कच्चीनींद में न जाग पड़े ऐसे ऐसे सहस्रों अलौकिकभाव हैं और यहांतक पक्क और दृढ़ भाव अपनी निष्ठा में है कि जिस समय भगवत् शयन करते हैं अथवा बे समय कोई मनुष्य सम्पूर्ण संसार का धन चढ़ानेवाला आजावे तो क्या बात कि मन्दिर खोलैं बरु जयपुर के राजा इस बात की परीक्षा भी लेचुकेहैं और अबतक वही भाव व रीति वर्त्तमान है किसी गद्दी में पचास हज़ार किसी में तीस हज़ार चालीस हज़ार रुपया सालकी आमदनी है सब भगवत् आराधन और सजावट शोभा व सामग्री बालस्वरूप व रागभोग इत्यादिक में उठाय देते हैं इसपर ऋणी रहते हैं यह गोसाईं गोकुलस्थ पदवी से विख्यात हैं जैसा उत्तम भाव इन गोकुलस्थ गोसाइँयों का देखा और सुना सो लिखने में नहीं आ सका और उनके चेलों को जैसी भावभक्ति गोसाइँयों में है वह भी वर्णन नहीं हो सकी मारवाड़ और गुजरात में सेवक इस संप्रदाय के बहुत हैं वल्लभाचार्य के कुल में बहुत लोग भक्त पहुँचे हुये और सिद्ध हुये और जो उनकी कृपा के अवलम्बन से भगवत्परायण हुये उनकी गिनती कौन कर सक्ताहै और वल्लभाचार्य स्वामी के भाव को ध्यान करके देखना चाहिये अपना नाम भी अपने भाव के अनुकूल विख्यात किया यह कि वल्लभ गोपजाति को कहते हैं जिस जाति में बाबा नन्दरायजी रहे सो अपने कुलको वल्लभकुल अर्थात् गोपकुल विख्यात किया एक समय एक साधु ब्रजमें आया बटुआ शालग्राम का छोड़कर वृक्ष की डालपर भुलाकर वल्लभाचार्यजी के दर्शनों को गया जब आया तब बटुआ न मिला तब

आचार्यजीके आगे वृत्तान्त कहा तब उन्होंने आज्ञा की कि तुम कैसे सेवक हो स्वामी को छोड़कर इधर उधर फिरते हो साधु ने विनय करके फिर आकर जो देखा तो सैकड़ों बटुआ एकभांति के उस वृक्षपर देखे फिर आचार्यजी से जाकर वृत्तान्त निवेदन किया आपने आज्ञा करी कि तुम कैसे सेवक जो अपने स्वामी को नहीं पहिचान सक्तेहो साधु चुप रहा अन्तःकरण का अभिप्राय वल्लभाचार्यजी का समझकर चरणों में पड़ा और अपना बटुआ शालग्रामजी का लेकर भगवत् आराधन में लगा अभिप्राय यह कि उपासक को चाहिये कि जैसे मूर्ख को अपने शरीर में प्रीति और अहंकार होताहै वैसेही भगवत् में निष्ठा व प्रीति राखै यह नहीं कि स्वामी डार में आप बाज़ार में अब वल्लभाचार्यजी की गुरुपरम्परा लिखी जाती है परन्तु सातगद्दी में कई गद्दी पुत्र के न होने से पुत्री के वंशके पास हैं दो तीन गद्दी निज विट्ठलनाथजी के वंश के पास हैं समझकर उन में से एक गद्दी की परम्परा लिखना बहुत है सो लिखी जाती है । विष्णु स्वामी । लक्ष्मणभट्ट । वल्लभाचार्य । बिट्ठलनाथ । गोकुलनाथ । रघुनाथ । यदुनाथ । घनश्याम । बालकृष्ण । गोविन्दस्वरूप । गिरिधरराय । वृन्दावनदास । कृष्णदास । दामोदरदास । स्वामीशुकदेव । स्वामीहरिचरण । स्वामीतुलसीदास । हरिशरणजीव । मोहनदास । सीताराम । मनसाराम आदि विद्यमान हैं ॥

कथा माधवाचार्य की ॥

माधवाचार्य स्वामी ब्रह्मसंप्रदाय में परम भागवत व भक्त आचार्य व प्रवृत्ति करनेवाले इस संप्रदाय के हुये यद्यपि संप्रदाय प्राचीन है परन्तु माधवाचार्य स्वामी ने सम्पूर्ण संसार में प्रकाशित की माधवी संप्रदाय करके विख्यात इसी हेतु हुई ब्रह्मसंप्रदाय इस हेतु से कहते हैं कि प्रथम भगवत् ने इस संप्रदाय की रीति ब्रह्माजी से वर्णन की ब्रह्माजी ने गुरु चेले की परम्परा करके जो भक्तलोग परम्परा में लिखे गये हैं तिनको उपदेश करके प्रवृत्त किया और कोई कोई गौड़िये और कोई महाप्रभु संप्रदाय वर्णन करते रहैं तिसका हेतु यह है कि श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभु गौड़देश के रहनेवाले इस संप्रदायमें आचार्य और भक्तनामी भगवत् अवतार हुये सम्पूर्ण गौड़ बंगाले देश को शिक्षा करके भगवत् सम्मुख किया इस हेतु महाप्रभु गौड़िये नाम से भी विख्यात हुये उड़पीमाधवा करके भगवत् माधवाचार्यजी ब्राह्मणवेष द्राविड़देश में उड़पी कृष्णागांव कांचीपुरी

से पश्चिम दक्षिण कोने पर है तहां हुये शारीरकसूत्र और गीताजी पर भाष्यरचना किया निश्चय इस उपासनावालों का यह है कि ईश्वर तटस्थ है उसकी प्रेरणा से माया जगत् को रचती है और यद्यपि इस निष्ठा में ध्यान और आराधन विष्णुनारायण का प्राचीन रीति से है परन्तु अब वह माधवाचार्य महाराज के समय से उपासना श्रीकृष्ण अवतार की इस संप्रदाय में वर्तमान हैं और ईश्वर पूर्ण सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण स्वामी गोलोकनिवासी को मानते हैं और माधुर्यनिष्ठा से कि उसका वर्णन उन्नीसवीं निष्ठा में होगा ध्यान और चिन्तवन करते हैं यद्यपि माधुर्यनिष्ठा में युगल स्वरूप का ध्यान और चिन्तवन योग्य है और युगल स्वरूपही का आराधन वा सेवा इस संप्रदाय में प्रवर्तमान है और राधिका महारानी में परकीया भाव रखते हैं परन्तु ईश्वरता और अद्वैतता और पूर्णब्रह्मता श्रीकृष्णस्वामी में चिन्तवन करते हैं कि उनके भाष्य और दूसरे ग्रन्थों से वह बात प्रकाशित है इस संप्रदाय में लाखों भक्त और सिद्ध नामी होगये और होते हैं और आवागमन के दुःख को दूर करने के निमित्त भगवत् ने एक उपाय ऐसा विचारिके कियाहै कि विना परिश्रम इस संप्रदाय के अवलम्ब से करोड़ों महाअधम भगवत् को प्राप्त होते हैं यद्यपि दक्षिणदेश में प्रकाश इस उपासना का बहुत है गुरुद्वारे बड़े २ वहां हैं परन्तु इससमय व्रज में और बंगाले में भी यह संप्रदाय विशेष प्रकाशित है और वृन्दावन में कई गुरुद्वारे विख्यात व प्रसिद्ध हैं जैसे मन्दिर गोविन्ददेव और मदनमोहन वा शृंगारवट इत्यादि हैं कि जिनका प्रभाव प्रसिद्ध है जिनको भगवत् के दर्शन और दीक्षा लेनेका विचार होता है वह वहां दीक्षा लेता है परीक्षा माधवाचार्य स्वामी की लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं इतनीही बहुत है कि जिनका नाम लेकर और उनकी पद्धति सिद्धान्त के अभ्यास से करोड़ों महापापी भगवद्भक्त होकर अपने वाञ्छितपद को पहुँचे अब उनके घर की गुरुपरम्परा गुरु चेले के रीति की एक दो गुरुद्वारे की लिखी जाती है इस संप्रदाय में सहस्रों गुरुद्वारे हैं सबकी परम्परा मिलना और लिखना कठिन है एक लिपि से श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चेले स्वरूप दामोदर और उनके चेले गदाधरभट्ट और उनके चेले कृष्ण ब्रह्मचारी जानेजाते हैं यह थोड़ा विरुद्ध है सो कुछ बात नहीं परम्परा में भक्तमाल के अनुसार जो निश्चय समझने में आया सो लिखा। श्रीनारायण।

ब्रह्मा। नारद। वेदव्यास। सुबुद्धाचार्य। नरहराचार्य। माधवाचार्य। जाह्नवीतीर्थ। विद्यामुनि। महानन्दतीर्थ। राजेन्द्रमुनि। जयधर्ममुनि। ईश्वरपुरी। वेणीमाधवपुरी॥

कथा नित्यानन्दजी की॥

नित्यानन्दजी महाराज ऐसे परमभक्त और भगवद्धर्म प्रचारक हुये जिनकी महिमा और प्रताप सम्पूर्ण संसार में विख्यात है जिन्हों ने गौड़देश बङ्गाले में पाखण्ड और अधर्म को दूर करके भगवद्भक्ति और उपासना का प्रचार चलाया जन्म महाराज का नदियाशांतीपुर बङ्गाले देश में हुआ श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के भाई रहे गौड़देश के लोगों को भागवतधर्म से विमुख देखकर दया आई क्लिष्ट तप करके भगवत् को प्रसन्न किया वरदान हुआ तब भगवद्भक्ति को सम्पूर्ण उस देश में नित्यानन्दजी ने गुरु और महन्त रूप होकर फैलाया अबतक उस देश में इस प्रकार भक्ति का प्रचार है कि बहुत भगवत्परायण होते हैं व घर छोड़कर श्रीवृन्दावन वास करते हैं जो भाव और प्रेम उस देश के रहनेवालों का श्रीवृन्दावन में देखा लिखा नहीं जासक्ता अब भी वृन्दावन में आधे वेही लोगहैं भगवद्भजन और कीर्तन में रहते हैं॥

कथा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की॥

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु नित्यानन्दजी के छोटे भाई श्रीकृष्ण महाराज के अंशावतार हुये गीताजी में भगवत् का वचनहै कि जब धर्म का नाश और अधर्म की प्रवृत्ति होती है तब धर्म के स्थापन और अधर्म के नाश के हेतु मेरा अवतार होता है सो गौड़देश बङ्गाले में भागवतधर्म व भगवद्भक्ति नहीं रही विपरीत धर्म प्रवृत्त हुआ रहा इस हेतु भगवत् ने वेदमार्ग स्थित करने के लिये जैसे व्रज में अवतार लिया था इसीप्रकार बङ्गाले में शचीजी के उदर द्वारा प्रकाश किया सातवर्ष के वयक्रम में केशवभट्ट काश्मीरी ब्राह्मण को वाद में क्षणमात्र में जीतकर कृपाकरके भगवद्भक्त करदिया कि स्पष्ट वृत्तान्त केशव की माधुर्यनिष्ठा में लिखा जायगा एकसमय महाप्रभु जगन्नाथरायस्वामी के आगे कीर्त्तन में ऐसे बेसुध प्रेम में होके तन्मय होके चतुर्भुजीरूप होगये तब सब लोग कहने लगे कि इस पुरी का प्रभाव है सिद्धताई क्या है तब महाप्रभु ने अनुजाई व सेवक आदि के विश्वास व भक्ति के दृढ़ता के हेतु

छःभुजा धारण कीं अबतक सबको दृढ़ विश्वास हुआ सो पुरी में महाप्रभु के छःभुजा स्वरूप के अद्यापि दर्शन होते हैं॥

कथा रूप सनातनजी की॥

रूप और सनातनजी दोनों सगे भाई प्रेमभक्त वा भागवतधर्मप्रचारक हुये ये दोनों भाई गौड़देश बङ्गाले के रहनेवाले और बादशाही अधिकार वाले रहे धनवान् बड़े रहे एक रात रुपैया गिनते गिनते प्रभात होगया तब दोनों भाइयों को ग्लानि आई व आपस में विचार किया कि देखो जो भगवद्भजन व समाज में बैठते तो घड़ी २ बूझते रहते कितनी रात गई इस व्यर्थ कार्य झूठे में कुछ ज्ञान न रहा कि कितनी रात गई यह विचारकर अपने गुरु नित्यानन्द महाप्रभु के पास आयके शिक्षा मांगी गुरु ने आज्ञा दी कि व्रजभूमि में जाव वहां के वन और स्थान सब श्रीकृष्णस्वामी के विहार के जो काल पायके गुप्तहोरहे हैं तिनको प्रकट करो और ग्रन्थचरित्र व लीलामाधुर्य व रसविलास का फैलावो उसी आज्ञा के अनुसार दोनों भाई आयके व्रजभूमि में पहुँचे पहुँचतेही आपसे आप रम्यता उस भूमि की दियो पवन सुखदायी व हरियाली आकर्षणकरने वालों में रूपमाधुरी में श्रीप्रिया प्रियतम के उन्मत्त व बेसुधि होगये और ऐसीगन्ध प्रेम प्रियाप्रियतममहाराजकी प्राणके मस्तकमें पहुँची कि दुःख सुख सब भूलके प्रेम आनन्द में मग्न होगये जब सुधिहुई तब व्रजगांव के लोगों से पूछा कि व्रज कहां है एकने उत्तर दिया कि तेरा बाप अन्धा होगया है यह व्रज नहीं और क्या है गोसाईं महाराज इस गाली से बड़े आनन्दित हुये प्रेम आनन्द में छकेहुये पहले श्रीमथुराजी फिर वृन्दावन में पहुँचे देखा कि श्रीयमुनाजी प्रवाहवान् हैं वन सघन हरित ऐसा छाय रहा है कि सूर्य का उदय अस्त नहीं दिखाई देता बहुत ढूंढ़ने से दुइचार घरोंकी बस्ती मिली और रहनेवाले वहांके वृन्दादेवीकी पूजा करनेको गये हैं तब वहां से वृन्दादेवी को ढूंढ़ते चले देखा कि वे लोग एक जगह भूमि पर दूध दही चढ़ाकर चलेगये उसीजगह टिके रात को वृन्दादेवी ने दर्शन दिया कहा कि हमारा स्वरूप इसीजगह है निकालकर स्थापित करो गोसाईंजीने स्थापित किया अबतक विराजमान है गऊ बच्चा देती है तब पहले उनको दूध चढ़ाते हैं और गोविन्ददेवजी ने गोसाईं रूपजीको स्वप्न दिया तब गोसाईंजी ने उनको निकालकर स्थापित किया और पूजा करने के निमित्त अपने भतीजे जीवगोसाईं को कि वे भी त्याग लेकर आयगये

रहे आज्ञा दी फिर पीछे राजा मानसिंह आमेर से राजमन्दिर बनवाया उन्हीं दिनों अकबराबाद का क़िला बनता था पत्थरलाल कहीं नहीं जाने पाता रहा राजाने बादशाह से आज्ञा लेकर मन्दिर लालसङ्गीन निर्मित किया तेरहलाखरुपया केवल मसाले मँजूरी में लगा अबतक वह मन्दिर वृन्दावन में प्रकट व विख्यातहै और मुहम्मदशाहबादशाहके समयमें राजा जयसिंह ने वाराहपुराण में सुना कि गोविन्ददेवके दर्शन करने से जीवका आवागमन छूटजाता है बड़ी प्रीति व प्रार्थना से वह मूर्त्ति जयपुर लेगया वहां विराजमान है वृन्दावन में दूसरी मूर्ति स्थापित हुई व गोसाईं रूप जी ने गुरु की आज्ञा व शिवजी के स्वप्न देने से बहुत ग्रन्थ भक्ति रसामृत के रस सिद्धान्त व भगवत् अमृत इत्यादि सब पांचलाख श्लोक में रचना किये एक श्लोक में प्रियाजी की वेणीकी उपमा लिखी कि नागिनी के सदृश है गोसाईं सनातनजी का यह विचार हुआ कि रूपजी की काव्य अधिक मधुर है परन्तु प्रिया प्रियतम का भाव अच्छे प्रकार नहीं समझा क्रूर जन्तु की उपमा वेणीकी दी कि वे परमसुकुमारी चित्र के साँप को भी देखते भय करती हैं यही ध्यानपर खटकतारहा एक दिन वनमें घूमते देखा कि एक वृक्षके नीचे एक लड़का परमसुन्दर व कई एक लड़कियाँ परम सुन्दरी तिसमें एक लड़की ऐसी सुन्दरी कि कभी ऐसी सुन्दरी न देखीरही हिंडोरा झूलते हैं यह लड़की परमसुन्दरी चुनरी ओढ़े है तिसमें वेणी श्याम नागिनीसी ऐसी लहलहाती है कि नागिनी में और उसमें तनक भेद नहीं गोसाईं सनातनजी देखके घबराये पुकारा मार मारकर कहा कि कोई दौड़कर नागिनी को इस सुन्दरी के शिरपर से उतारो यह कहिके बेसुधि होगये जब सावधान भये तब श्लोक रूपगोसाईंजी का स्मरण हुआ और जाना कि लाड़िलीजी ने उस श्लोक के भाव के सन्देह दूरकरने के कारण यह चरित्र कियाहै रूपजी के पास आये परिक्रमा करिके सब बात कही देखिये गोसाईं सनातनजी बड़े भाई रूपगोसाईंजी के थे परन्तु भक्ति में उनको बड़ा जानकर दण्डवत् और परिक्रमा करि गोसाईंरूपजी मोटे रहे और गोसाईं सनातनजी सुकुमार और नित्य परिक्रमा व्रजकी किया करते थे एकदिन परिक्रमा करे पीछे जो रूपगोसाईं के पास आये तो रूप गोसाईं को यह ध्यान चित्त पर आया कि सनातनजी अपने घरपर ऐसे पदार्थ भोजन दिव्य व मधुर खातेरहे कि सबको नहीं मिलसक्ता अब सूखी रोटी मधुकरी वृत्ति से कैसे तृप्त होते होंगे ? यह ध्यान ही था कि

श्रीलाड़िलीजी दूध व चावल व और सब सामग्री समेत व्रजवासी की लड़की का स्वरूप धरके लेआईं व अतिकोमल वचन से बोलीं कि हमारी गाय आज बच्चा जना है मेरी माने यह सामग्री तुम्हारे लिये भेजी है दोनों गोसाइयों ने उस सामग्री का भोजन बनाकर भोग लगाया वह स्वादु पाया कि कभी अपनी अवस्था भर में किसी वस्तु में न प्राप्त हुआ रहा सनातनजी ने रूपजी से इसका कारण पूछा तब उन्होंने मन की बात सब कही तब सनातनजी ने कहा कि सब ऐश्वर्य वा सम्पत्ति के त्याग देनेपर भी जिह्वा का स्वादु रहिगया कि जिसके हेतु लाड़िलीजी को परिश्रम हुआ अब आगेको चेतरहे एकदिन वृन्दावन में समाज हुआ सब भगवद्भक्त व साधु इकट्ठे हुये ऐसे प्रेम व अनुराग के साथ कीर्तन व भजन हुआ कि जितने लोग रहे सो सब प्रिया प्रियतम के प्रेममें छक के बेसुधि होगये परन्तु रूपजी गोसाईं अपने चित्त को दृढ़ करके खड़े रहे गोसाईं करनपुरीजी ने देखा कि रूपजी महाराज सब प्रेमियों के अग्रणीय हैं उनको जो प्रेम भगवत् का न आया तो औरोंके निमित्त अच्छा नहीं रूपजी के पास गये समीप पहुँचे तो उनके श्वास की ऐसी तप्त पवन गोसाईं करनपुरी के शरीर में लगी कि फफोले उपट आये गोसाईंरूपजी ने आज्ञा की कि जिनको कुछ शरीर का सम्बन्ध रहगया है असावधानताई उनको है और जिन लोगों को शरीर से सम्बन्ध नहीं है उनका मन देखना चाहिये शरीर नहीं यहांतक कथा रूपगोसाईंकी लिखीगई सनातनजी सिवाय कमण्डलु कोपीन के और कुछ नहीं अपने पास रखतेरहे विचरते हुये एक भाट के घर पहुँचे उसके घर में स्वरूप मदनमोहनजी का विराजमान रहा सनातनजी दर्शन करके आसक्त होगये और नित्य उसके घर पर जाया करते और आंखों से आंसू का जल बहा करता उस भाटने कि पहले साहूकारी करता रहा अब दरिद्री होगया रहा समझा कि जैसा इस मूर्ति ने हमको दरिद्री व भिखारी किया क्या जाने इसको भी ऐसाही भिखारी किया हो कि इस मूर्ति को देखकर रोया करताहै भाट ने गोसाईंजीसे पूछा कि महाराज क्या तुमको भी धन, सम्पत्ति, घरबार से इस मूर्तिने बेचैन करादिया है गोसाईंजी विश्वासता भाट की विचारिके बोले कि भाई तेरे साथ इस मूर्ति ने कुछ भी नहीं किया जो मेरे साथ किया है भाट ने कहा कि क्या उपाय करूं गोसाईंजी ने कहा कि इस भगवान् को शीघ्र अपने घर से बाहर निकाल नहीं तो न जाने अब क्या करै ? उसने कहा कि जो

यह ऐसा क्रूरस्वभाव है तो कौन लेवेगा गोसाईंजी ने कहा कि मेरे साथ जो कुछ इसको करना रहा सो करचुका मैं लेजाऊँगा सो लेआये और वृन्दावन में विराजमान करके पूजा सेवा प्रारम्भ किया भिक्षा मांग के भगवत् को भोग लगाया करते एक दिन भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा दी कि थोड़ासा लोन भी लाया करो जब लोन लानेलगे तब आज्ञा दी कि थोड़ासा घी भी लाया करो तब घी भी भिक्षा मांगके लाया करें तब बोले कि वन में से तरकारी लेआना सहज है वहभी लाया करो तब सनातनजी ने प्रेमकी दृष्टि से ध्यान किया कि मदनमोहनजी चटोरे होगये मेरे वैराग्यको धूलमें लाकर मुझकोभी चटोरा किया चाहते हैं तब बिनती की कि जो ऐसाही स्वादु जीभ का है तो कोई धनाढ्य किंकर ढूँढ़ लीजिये और यह कहकर बाहर आय बैठे संयोगवश किसी साहूकार की नावमाल भरी हुई अकब्बराबाद को जाती रही जब वृन्दावन में कालीदह के समीप पहुँची तो रुकिगई साहूकार ने विकल होकर अपने आदमियों को चारों ओर भेजा कि देखो इस वन में कोई फ़क़ीर साधु है कि जिससे इसकी निवेदन करें आदमियों ने जाकर कहा एक साधु बैठाहै साहूकार आय के चरणों में पड़ा गोसाईंजी ने उसको भगवत् के आगे लेजाकर कहा कि जो कुछ करतूति है इस बाबा की है बिनती करले साहूकार हाथ जोड़कर उस की सेवा की आज्ञा की आशाकर खड़ाहुआ भगवत् की आज्ञा हुई कि मन्दिर अच्छा सङ्गीन बनवादे व राग भोगके बन्धान करदे साहूकारने अङ्गीकार किया नाव रवाने हुई साहूकार ने मन्दिर बड़ा भारी बड़ी भक्ति से निर्मित किया व राग भोग के निमित्त महीना बन्धान करदिया जब सब सामग्री भगवत्सेवा की जुटिगई तब सनातनजी वहांका अधिकार कृष्णदास ब्रह्मचारी को देकर आप ब्रजमण्डलकी परिक्रमा को चलेगये एकबेर मानसरोवर के तटपर नन्दगांव के समीप एक हींस के वृक्ष के नीचे तीन दिन बैठे रहगये चौथे दिन भगवत् सुन्दर मनोहर स्वरूप एक ब्रजवासी के लड़केका स्वांग धर लालचीरा शिरपर महीन पीताम्बरी पहिने कटि पीत पट से कसे एक रङ्गीन छड़ी कुक्षि में दबायेहुये थाली दूध भात की लेकर आये गोसाईंजी को दी व कहा किस हेतु गांव के समीप जायके नहीं बैठता यहां वन में कौन तेरे निमित्त खानेको लाया करे भगवत् ने हाथ पांव दियेहैं विना सुकृतका माल खाना अच्छा नहीं गोसाईंजी इन बातोंको सुनकर परम आनन्द में मग्न होगये इसीप्रकार तीन दिन भोजन ब्रजचन्दमहाराज

पहुँचाते रहे तब गोसाईंजी अपने प्यारे को श्रम देना उचित न समझकर पता नाम गांव का पूछकर दूसरे दिन बहुत ढूंढ़ा कहीं पता न लगा तब बहुत विकल हुये और अनेक भांति शोच करने लगे तब स्वप्न हुआ कि वह लड़का हमहीं हैं जैसी तुम्हारी इच्छा होय हम करें तब गोसाईंजी ने विनय किया और उस स्वरूप अनूप के ध्यानरूपी आनन्द के समुद्र में मग्न होगये ॥

कथा गोसाईं नारायणभट्ट की ॥

गोसाईं नारायणभट्ट प्रेमीभक्त भागवतधर्म के प्रवृत्त करनेवाले हुये और ये गोसाईंजी चेले कृष्णदास ब्रह्मचारी चेले सनातनजी पुजारी ठाकुरद्वारे मदनमोहन के सेवक हुये गुरुसे कथा श्रीभागवत दशमस्कन्ध बालचरित्र इत्यादिक जो सुनी सखन के संग खेल व गोपियों के संग रासविलास सब गोसाईंजी के हृदय में समायगई तब यह अभिलाष हुआ कि वह सब स्थान जहां२ जो क्रीड़ा किया है दर्शन करते सो उनका पता मिल न सका क्योंकि पांचहज़ारवर्ष भगवत् अवतार को व्यतीत हुये गोसाईंजी परमभाव से आराधन भगवत् में लीन हुये भगवत् ने अपने भक्त का मनोरथ पूर्ण करने को हृदय में प्रकाश किया व सब स्थान वाराहसंहिता में जैसे लिखे हैं सब दिखलाय दिये उसी अनुसार नारायणभट्टजी ने वन व उपवन व गृह व कुञ्ज व विहारस्थान प्रकट किये सो सबका वर्णन कौनसे होसक्ता है परन्तु मुख्य २ स्थानों को लिखते हैं ॥

वर्णन स्थानों का गोकुल व महावन का ॥

रोहिणीमन्दिर व श्याममन्दिर कि जहां जन्म भगवत् का हुआ किला महावन में विख्यात है ॥

ब्रह्मघाट जहां नन्दनन्दन महाराज ने माटी खाई व अपनी माता यशोदाजी को अपने मुख में सब दिखलाये ॥

पूतनाखार जहां पूतना का प्राण दूध के बहाने खींच लिया ॥

घाट सब जैसे वैराग्यघाट रामघाट व अक्रूरघाट व वैकुण्ठघाट व बङ्गालीघाट व सूर्यघाट इत्यादि विवरण स्थान सब श्रीवृन्दावन के ॥

मन्दिर श्रीगोविन्ददेवजी व गोपीनाथजी व मदनमोहनजीवराधावल्लभजी व बांकेविहारी व अटलविहारीजी व चौरासीखंभा व आठखंभा दही विलोवने यशोदाजीका स्थान ॥

रमनरेती जहां नन्दनन्दन महाराज ने अपने सखनसंग भांति २ की लीला करी ॥

यमलार्जुनवृक्ष ऊखलसे अटकाय के नन्दनन्दन महाराज ने गिराये॥

दर्शन सातंगदी गोकुलस्थ गोसाईं

लोगों की जिनका वर्णन वल्लभाचार्य की कथा में हुआ ॥

रानीघाट व यशोदाघाट व वल्लभाघाट इत्यादिक मन्दिर केशवदेव जी जहां चतुर्भुजरूप होकर प्रकट हुये रङ्गभूमि जहां कंस को मारा ॥

कंसखार जहां कंस को मारकर डाला ॥

दर्शन ठाकुर वाराहजी ॥

क्षेत्रादिक इधर उधर जेह मथुरा देवी भूतेश्वर महादेव सप्तर्षिदेवी वलिटीवा दशाश्वमेध चक्रतीर्थ ध्रुव क्षेत्र सरस्वतीकुण्ड योगमार्ग ॥

गोपकूप कि सोमवती अमावस के दिन किनारे तक जल होकर फिर ज्योंका त्यों होजाता है ॥

दर्शननन्दवावा व यशोदा माता विवरणस्थानसवमथुराजी-विश्रान्त जहांकंसको मारकर विश्राम किया॥

सात समुद्र कूप ॥

दर्शन द्वारकाधीश कि जो अव पारख नामे साहूकार ने वनवाया रावणकुटी छाकविहारी कृष्णगंगा कण्ठाभरण ॥

ऊपर किनारेश्रीयमुनाजी काली-दहघाट व विष्णुघाट व लुकलुक व विहारघाट व चीरघाट व केशीघाट व सूर्यघाट इत्यादिक घाट बहुत हैं रसिकविहारीजी व राधारमणजी व शृङ्गार वट व छैलचिकनियाँजी विख्यातहैं और दो मंदिर नयेभारीहैं॥

भारी एक कृष्णचन्द्र माजी का लाला बाबू बङ्गाली दूसरा रङ्गनाथ जी का राधाकृष्ण भाईलक्ष्मीचन्द्र साहूकार ने बनवाया अधिक इससे सहस्रों दूसरे हैं निधिवन व सेवाकुञ्ज ये भगवत् के लीला और विहार के कुञ्ज हैं और जो राजों ने व अमीरों ने व साहूकार इत्यादिकों ने कुञ्ज व मन्दिरवनाये सो अलग हैं ॥

ब्रह्मकुण्ड व गोविंदकुण्ड व वेणुकूप इत्यादि के सैकड़ों कूप हैं ॥

धीर समीर व वंशीवट व ज्ञानगूदरी व मौनीदासजी की टट्टी व दूसरे स्थान सब साधुलोग इत्यादिकों के निवासस्थल विख्यात हैं ॥

राधाबाग़ व मधुवन व देवीसिंह वाला बाग़ और दूसरे बाग़ जहां सब हरियाली छाई सघन दर्शन योग्य विराजमान हैं ॥

विवरण उन स्थान इत्यादि का कि वनयात्रा के समय जिनके दर्शन होते हैं और यह जानिये कि वनयात्रा करनेवाले भादोंबदी छठि तक मथुराजी में पहुँचजाते हैं जिनको जन्माष्टमी वृन्दावन में करनी अङ्गीकार होती हैं ते मथुरा के घाटों का स्नान व दर्शन करके वृन्दावन को चलेजाते हैं और जिनको गोकुल में जन्माष्टमी करनी स्वीकार होती है वे गोकुल में और कोइ २ मथुरा में टिकरहते हैं वे लोग जन्माष्टमी कर

के दशमी के दिन सांझतक मथुराजी में आके न्हाते हैं और एकादशी से यात्रा आरम्भ होती है पन्द्रह दिन में सम्पूर्ण यात्रा परिक्रमा व्रज मंडल चौरासी कोस की करके भादों सुदी दशमी अथवा एकादशी तक मथुराजी में आजाते हैं और द्वादशी के दिन मथुराजी की परिक्रमा होती है दूसरीयात्रा बल्लभाचार्य के कुलवालों की तात्पर्य गोकुलस्थ गोसाइँयों की होती हैं परन्तु प्रतिवर्ष का नियम नहीं ये गोसाईं आश्विनबदी द्वितीया को यात्रा के निमित्त उठते हैं दीपमालिका जो दीवाली सो गोवर्द्धनजी में करके कार्त्तिकसुदी द्वितीया को मथुराजी के मेलों में आ मिलते हैं यह यात्रा बड़े सुख व आनन्द से होती है व बहुत लोग उनके अनुयायी उस यात्रा में मिलके जाते हैं अब विवरण टिकान्त व स्थान दर्शन यात्रा पन्द्रहदिनवाले की लिखी जाती है ॥

पहले दिन ॥

प्रातःकाल विश्रान्तघाट स्नान करके यात्रा के निमित्त पांय पियादे नङ्गेपांयन उठते हैं और भगवद्भजन का नेम उचित है पहली मंजिल में दर्शन व यात्रा मधुवन व तालवन व कुमुदवन की होजाती है कल्याण-नारायण व यशोदानन्दन व कपिलमुनि व गिरिधररायजी के होते हैं व शान्तनुकुण्ड के स्नान ॥

दूसरे दिन ॥

बहुलावन में टिकान्त होता है और वहां दर्शन ठाकुरद्वारे मोहनलाल जी के हैं ॥

तीसरे दिन ॥

गोवर्द्धनजी में पहुँचते हैं ॥

चौथे दिन ॥

वहां टिकान्त होता है गिरिराजजी की परिक्रमा होती है हरदेवजी व नाथजी विराजमान हैं एक मन्दिर व गुरुद्वारा श्रीसंप्रदायवालों का भी है मानसीगङ्गा व संकर्षणकुण्ड व अप्सराकुण्ड व पुछण्डीकुण्ड व रासोली व गांठोली व गुलालकुण्ड व हरजीकुण्ड व रुद्रकुण्ड व विजयनाम सरोवर व राधाकुण्ड व कृष्णकुण्ड व कुसुमसरोवर व नारदकुण्ड व ऐरा-वतकुण्ड व सुरभीकुण्ड और दूसरा सरोवरकुण्ड और भरतपुर के राजालोगों के बनाये हुये स्थान दर्शन व स्नान होते हैं दीपमालिका को गोवर्द्धनजी में मेला बड़ाभारी होताहै व दीपदान ऐसा कहीं होता

है व कार्त्तिकसुदी प्रतिपदा को अन्नकूट व पूजा गिरिराज की उत्साह-पूर्वक धमधाम से होती है ॥

पांचवें दिन ॥

इस समय डीघमें टिकान्त होताहै वहां बहुत बड़े २ स्थान राजा भरतपुरके हैं अगिले समय में वहां टिकान्त नहीं होता रहा ।

छठवें दिन ॥

कामा में पहुँचते हैं वहां दर्शन ठाकुरगोकुलचन्द्र व विजयगोविन्द व गोपीनाथजी व वृन्दादेवी व राधावल्लभ व सीतारामजी के होते हैं व भोजनथाली व घिसिनीशिला परिक्रमा में आते हैं सातवें दिनतक रहकर॥

आठवें दिन ॥

वरसाने में जो जन्मभूमि श्रीलाड़िलीजीकी है वहां पहुँचतेही श्री लाड़िलीजीका मन्दिर वहुत ऊंचा व भारी पहाड़के ऊपर है व बाबा वृष-भानु व कीर्तिजी व श्रीदामाजी के दर्शन होते हैं और दानगढ़ जहां दान-लीला हुई और मानगढ़ जहां वृषभानुकिशोरी ने नन्दाकिशोरी से मान किया व विलासगढ़ जहां प्रियाप्रियतम ने विहार व विलास किया व मोर-कुटी जहां मोर की नाईं वोल के लाड़िलीजी को बुलाया व सांकरी खोर जहां अकेली देख नन्दकिशोर ने लाड़िलीजी को पकड़लिया और जो चाहा सो किया और गह्वरवन जो वह भी विहारस्थान है और दूसरे स्थान व मन्दिरों के दर्शन होते हैं व भानुसरोवर व श्रीपोखर व प्रेमसरो-वर इत्यादि कुण्ड व लाड़िलीजी के झूलने और खेलने के ठौर सब हैं और ऊंचागांव जो जन्मभूमि गोसाईं नारायणभट्टजीकी कि जिनकी कथा में यह सव वृत्तान्त लिखाजाता है वरसाने के समीप है और एक मन्दिर में वलदेवजी का भी दर्शन होता है और देहकुण्ड व त्रिवेणी वहां हैं ॥

नवें दिन ॥

नन्दग्राम वावानन्दजी के स्थान में पहुँचते हैं वहां बाबानन्दजी व यशोदा माताजी व यशोदानन्दन व बलदेवजी व विहारी विहारन के मन्दिर व मानसरोवर व ललिताकुण्ड व विशाखाकुण्ड व यशोदाकुण्ड व मधुसूदनकुण्ड व मोतीकुण्ड व कृष्णाकुण्ड व कदमखण्डी इत्यादिक तीर्थ हैं व मथानी कि जहां यशोदा महारानी ने दूध विलोया व हाऊ कि जहां नन्दनन्दन को हाऊ कहकर डरपाया वहांहै जाव वट कि जहां ला-ड़िलीजी के चरणों में जावक लगाया कोकिलावन कि जहां कोकिला

की भांति बोलके लाड़िलीजी को बुलाया रासौली कि जहां रास किया बठेन कि जहां लाड़िलीजी की वेणी गूंथी व रङ्गमहल व संकेतविहारी ठाकुर व संकेतदेवी विराजमान ॥

दशवें दिन ॥

शेषशायी में पहुँचते हैं वहां शेषशायी महाराज विराजमान हैं इस हेतु करके उस गांवको भी शेषशायी कहते हैं विष्णुनारायण का मन्दिर व क्षीरसमुद्र तीर्थ हैं व मार्ग में कदमखण्डी व क्षीरवन दर्शन होते हैं यहां से बहुतलोग राधाष्टमी करने के हेतु बरसाने को चलेजाते हैं और कोई वृन्दावन को चलेआते हैं और लोग व्रजमण्डल की परिक्रमा पूरी करने को यमुनापार उतरते हैं ॥

ग्यारहें दिन ॥

शेरगढ़ होकर चीरघाट जहां कात्यायनी देवी के दर्शन होते हैं शेरगढ़ में दो मन्दिर हैं व चीरघाट के थोड़ीदूर नन्दघाट है तहां उतरके भद्रवन व भाण्डीरवन व बेलवन की यात्रा होती है ॥

बारहें दिन ॥

माटवन में विश्राम होताहै भगवत्मन्दिर वहां है परन्तु प्राचीन व विख्यात मन्दिर कोई नहीं है ॥

तेरहें दिन ॥

लोहवन में टिकान्त होतीहै व पक्ष में नन्दीदेवी व वन्दीदेवीके दर्शन होते हैं ॥

चौदहें दिन ॥

बलदेवजी में पहुँचते हैं व बलदेवजी महाराज के दर्शन होते हैं एक मन्दिर भगवत् का व दो तीर्थ भी वहां हैं ॥

पन्द्रहें दिन ॥

मथुरा में पहुँचते हैं पन्थ में गोकुल व महावन के दर्शन होते हैं कि वहां के स्थानों व तीर्थों का विवरण पहलेही लिखचुके हैं जो सब लिख आये ऊपर तिससे अधिक वन व स्थान बहुते हैं सब यात्रा के समय पन्थ में नहीं पड़ते हैं ॥

जब सब स्थान व वन जो ऊपर लिखआये प्रकट होगये तब नारायणभट्टजीको यह अभिलाषा हुई कि जिस प्रकार व्रजचन्द महाराज ने इन स्थानों पर रास विलास व चरित्र किये वह सब प्रत्यक्ष व साक्षात्

देखें सो भगवत् ने उनको आज्ञा की कि वल्लभनामा नृत्यक बादशाही सेवा छोड़कर वृन्दावनवास करता है तुम और वह ब्राह्मणों के लड़कों को मेरा और गोपिकाओं का रूप बनाकर लीलानुकरण से मेरे चरित्रों का अवलोकन करो तब गोसाईंजी ने वल्लभनामा नर्तक को आज्ञा दी उसने एक ब्राह्मण बालक को श्रीव्रजचन्द का रूप एक को लाड़िलीजी का रूप और आठ लड़कों को ललिता विशाखा इत्यादि सखियों का रूप बनाकर सब साधना नृत्य गाने की सिखाई और जहां २ जो चरित्र और रास विलास भगवत् किये रहे सब चरित्र किये मानो श्रीकृष्ण अवतार को नवीन कर दिया और अबतक वह रासलीला की परम्परा वर्त्तमान है जब यह सब उपकार जगत् के वास्ते प्रकट कर दिया तब इच्छा परमधाम गोलोक की और अपने सेवकन से आज्ञा किया कि हमारा शरीर त्रिवेणी पर ले जाना सबने पूछा त्रिवेणी कहां है बतलाया कि ऊंचागांव में बरसाने के निकट त्रिवेणी हैं गोसाईंजी ने एक यह भी तीर्थ प्रकट किया और अब तक गोसाईंजी के वंश उस गांव में वर्त्तमान हैं जब रास अथवा समाज होता है तब पहले उनके वंश को अधिष्ठाता व मुखिया समझकर सत्कारपूर्वक आगे बैठालते हैं ॥

कथा निम्बार्कस्वामी की ॥

निम्बार्कस्वामी परमभक्त ऋषीश्वर भागवतधर्मप्रचारक हुये महाराष्ट्र ब्राह्मण मुंगेर में गोदावरी के निकट अरुण ऋषीश्वर की जयन्ती धर्मपत्नी के गर्भ से जन्म हुआ सनकादिक संप्रदाय जो विख्यात है उसके प्रवृत्त करनेवाले व आचार्य ये स्वामी हैं यद्यपि परम्परा इस संप्रदाय की भगवत् के हंस अवतार से है परन्तु इस संसार में निम्बार्कस्वामी से प्रकाशमान हुई इस हेतु निम्बार्कस्वामी के नाम से विख्यात हुआ और हंसभगवान् ने प्रथम उपदेश सनकादि को किया रहा इस हेतु सनकादि संप्रदाय कहते हैं गुरु परम्परा से वृत्तान्त गुरु व चेले शाखोपशाखा का ज्ञात होगा यद्यपि सेवक लोग इस संप्रदाय के शारीरिक सूत्रों पर निम्बार्कभाष्य वर्णन करते हैं परन्तु इस देश में नहीं मिलता जो स्तोत्र निज रचित स्वामीजी के हैं वे विशेष करके मिलते हैं उन स्तोत्रों में रीति उपासना और ईश्वर माया जीव का निर्धार और पद्धति उपासना की कथित है और व्याख्या उनकी विस्तार के सहित है कि स्पष्ट करके वृत्तान्त उपासना का उनसे ज्ञात होता है उन स्तोत्रों में मुख्यतर दश

श्लोकी स्तोत्र हैं उन स्तोत्रों के अनुसार तात्पर्य निश्चय यह संप्रदाय का यह सिद्धान्त समझने में आता है कि ईश्वर द्वैताद्वैत है जैसे सर्प का कुण्डल सर्प से भिन्न नहीं और पानी तरङ्ग से भिन्न नहीं इसी प्रकार यह जगत् ईश्वर से भिन्न नहीं परन्तु नाममात्र को भिन्न की भांति दिखाई देता है वह ईश्वर एक पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण गोलोकनिवासी हैं और माधुर्य जो शृङ्गार की एक शाखा है और अच्छी प्रकार उसका वर्णन तो दशवीं निष्ठा में होगा उसी माधुर्य की रीति से ध्यान व चिन्तन करते हैं यद्यपि इस उपासना में युगलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण का ध्यान और सेवा की रीति पुष्ट है परन्तु आदि आचार्य के वनाये हुये ग्रन्थों से पूर्णब्रह्मता श्रीकृष्ण स्वामीकी और उनकाही ध्यान करना पाया जाता है जैसे कि संक्षेप सिद्धान्त निम्बार्कस्वामी का यह है कि नहीं देख पड़ती कोई गति विना कृष्णचरणारविन्द के कैसे हैं वह चरण कि ब्रह्मा और शिव उनको दण्डवत् करते हैं और श्रीकृष्ण महाराज कैसे हैं कि भक्तों के अभिलाषा हेतु भांति २ के अवतार धारण करते हैं और मन व बुद्धि के तर्क में नहीं आसक्ते हैं जिसकी मूर्त्ति और जिसका अवतार विचार में नहीं आसक्ता है गूढ़ है भेद जिसका एक जगह युगल ध्यान लिखा है और दूसरी जगह केवल श्रीकृष्णस्वामी का यह कुछ वास्तव करके विरोध नहीं यह विचार कर लेना चाहिये कि जब गोलोकनिवासी की उपासना दृढ़ ठहरती तो युगलस्वरूप का ध्यान व चिन्तवन आप से आप सूचित व उचित हुआ व तिलक आदिक का वृत्तान्त वेषनिष्ठा में लिखा जायगा व अलौकिक चमत्कार निम्बार्क स्वामी के बहुत हैं परन्तु उनमें से एक चमत्कार वह लिखते हैं जिस कारण से निम्बार्क नाम विख्यात हुआ एक समय एक संन्यासी स्वामी के स्थान पर उतरा उसका शिष्टाचार स्वामी ने किया परन्तु रसोई के सिद्ध करने में सन्ध्या होगई संन्यासी सन्ध्या भये पीछे भोजन स्वीकार न करे स्वामीजी को दया आई तब आंगन में निम्ब का वृक्ष रहा उसपर अर्क अर्थात् सूर्य को दिखा दिया कि संन्यासी ने सन्तुष्ट होकर भोजन किया जब भोजन कर उठा तब चार घड़ी रात वीती देखी उस दिनसे नाम स्वामी का निम्बार्क करके विख्यात हुआ और कोई मुख्यनाम अर्क कहते हैं नामी गुरुद्वारा एक स्थान अरुण दक्षिण देश में दूसरा स्थान सलेमाबाद है और तो हज़ारों स्थान हैं ॥

हंस भगवान् १	सनकादिक २	नारद ३	निम्बार्कस्वामी ४	श्रीनिवासाचार्य ५
विश्वाचार्य ६	पुरुषोत्तमाचार्य ७	श्रीविलासाचार्य ८	श्रीस्वरूपाचार्य ९	श्रीमाधवाचार्य १०
श्रीपद्माचार्य ११	श्रीश्यामाचार्य १२	बलभद्राचार्य १३	गोपालाचार्य १४	कृपाचार्य १५
देवाचार्य १६	सुन्दरभट्ट १७	पद्मनाभभट्ट १८	उपेन्द्रभट्ट १९	चन्द्रभट्ट २०
वामनभट्ट २१	कृष्णभट्ट २२	पद्माकरभट्ट २३	श्रवणभट्ट २४	भूरिभट्ट २५
माधवभट्ट २६	श्यामभट्ट २७	गोपालभट्ट २८	बलभद्रभट्ट २९	गोपीनाथभट्ट ३०
केशवभट्ट ३१	मांगलभट्ट ३२	केशवकाशमीरी भट्ट ३३	श्रीभट्ट ३४	हरिव्यासदेवजी ३५
परशुरामदेवजी ३६	हरिवंशदेवजी ३७	नारायणदेव ३८	गोविन्ददेव ३९	गोविन्दशरणदेव ४०
ईश्वरशरणदेव ४१	श्रीनिम्बार्कशरण देव ४२	श्रीव्रजराजशरण देव ४३	गोपेश्वरशरणदेव ४४	विराजमान ४५

गोपेश्वरशरणदेव महाराज विख्यात श्रीजी-संवत् १९१३ में सलेमाबाद की गद्दीपर विराजमान हुये ॥

कथा हरिव्यासजी की ॥

हरिव्यासजी सुमुखनशुक्ल ब्राह्मणके पुत्र निम्बार्कसंप्रदाय में परमभक्त ऐसे हुये कि अबतक जिनकी कृपासे लाखों को भगवद्भक्ति प्राप्त होती है तिलक मालासे अत्यन्त प्रीति जिनकी हुई पूर्वनाम उनका हरीराम रहा और रहनेवाले वोड़छे के थे संवत् १६१२ में अपने घर को छोड़कर पैंतालीस वर्ष की अवस्था में वृन्दावन में आये भागवतधर्म की प्रवृत्ति चलाई हज़ारों को सेवक करके भक्त करदिया परन्तु बारह सेवक तो ऐसे

सिद्ध और परमभक्त और प्रतापी हुये कि जिनके नामसे अलग २ गुरुद्वारे चले और अबतक गुरुद्वारों से बढ़वारी भगवद्भक्ति की सबको है गुरुद्वारे सब आदि परम्पराकी रीति से निम्बार्कसंप्रदाय के विख्यात हैं और कई प्रकार की रीति जो आप व्यासजीने चलाई सो गुरुद्वारे अलग बारह गुरुद्वारे से हैं कि यह निज जो वंश व्यासजी के हुये उस पद्धति की रीति से उनका गुरुद्वारा है और उनका पट्टगोसाई करके वृन्दावन विख्यात है और इस गुरुद्वारे के सेवक हरिव्यास करके विख्यात होते हैं जब व्यासजी ने वृन्दावन में वास किया तब ऐसी प्रीति उस परमधाम में और भगवत् में हुई कि एक कदम भी वृन्दावन से अन्यत्र रहि न सकें वरन और कोई जो जानेके निमित्त कहता तो अत्यन्त उससे दुःखित होते रहे मुद्दरनामी वोड़छे का राजा व्यासजी का सेवक रहा अपने यहाँ ले जाने की कामना करके वृन्दावन में आया और बड़ी विनय प्रार्थना की तब व्यासजी ने कहा कि वृन्दावन के द्रुमलता शाखा व वन की छाया के शरण में सदा रहा हूँ उनसे बिदा होकर चलूंगा सो विदा होनेके निमित्त चले व राजा भी साथ हुआ जिस वृक्ष के नीचे जाते हाथ जोड़कर बिनती करते कि महाराज तुम्हारी शरण आया रहा अब क्या आज्ञा है राजा ने अपने मन में समझा कि इसी प्रकार कहते २ देशको चले चलेंगे तबतक एक भंगिनि गोविन्ददेवजी के मन्दिर से पत्तल सीथ प्रसादी हरिभक्तों का और भगवत् का प्रसाद उठाकर उस राह से जाती रही व्यासजी ने पूछा कि क्या है भंगिनि ने उत्तर दिया कि महाप्रसाद है व्यासजी ने दौड़कर एक फुलौरी महाप्रसाद की उससे लेकर भोजन कर लिया राजाने यह जाना कि गुरुदेव महाराजको चित्तभ्रम होगया है जो देश में जावेंगे तो लोगों को बेधर्म करेंगे इस हेतु विदा होके अपने आप चलागया और व्यासजी ने उसका जाना भगवत् की बड़ी कृपा समझ कर धन्य माना सर्वकाल श्रीकिशोर किशोरीजी की सेवा पूजा में रहते रहे एक दिन शृङ्गार के समय जरकशी का चीरा बांधते रहे सो जरीकी चिकनाई के कारण से बांधते में सुन्दर नहीं आता रहा कई बार बांधा परन्तु सुन्दर नहीं उतरा व्यासजी ने क्रोधित होके कहा कि जो लड़काईपन में यह दशा ढिठाई की है तो फिर न जाने क्या होगा जो मेरा बांधना नहीं भावता है तो आप बांधलेव और यह कहकर कुञ्जसे बाहर जा बैठे थोड़ेकाल पीछे जो लोग दर्शन करके गये तो व्यासजी से कहा कि

आज भगवत् का चीरा बहुत सजीला बँधा है व्यासजी अभिलाषा भरेहुये आये देखकर कहनेलगे जहां अपने हाथ ऐसे प्रवीणता व सुघरता है तो दूसरे की कब मनभायसक्ती है एकदिन हरिभक्तों का समाज भोजन करने को बैठा था व्यासजी की स्त्री परोसती रही संयोगवश दूध की मलाई व्यासजी के कटोरे में गिरपड़ी व्यासजी ने यह जाना कि पतिभाव की प्रीति के वश हमको अधिक दिया है तुरन्त पंगत से निकाल दिया स्त्री ने विनती किया कुछ न सुना तब तीनदिन विना दाना पानी रहगई और सब हरिभक्तों ने व्यासजी को समझाया तब अङ्गीकार किया परन्तु दण्ड में सब गहना बेंच के साधों का भण्डारा कर दिया व्यासजी के लड़कीकी सगाई रही और पकवान कईप्रकार का बरातके निमित्त बना हुआ रहा व्यासजी ने वह सामग्री सुन्दर मधुर भगवद्भक्तों के योग्य समझ तुरन्त छिपायकर भगवद्भक्तोंको भोजन करादिया जब बरात आई और कोठे पकवान को रीता पाया तब तुरन्त लोगों ने पकवान बनाकर बरात को जिमाया घरके लोग व्यासजी से बहुत उदास हुये व्यासजीने तुरन्त एक विष्णुपद बनाकर भगवत् भेंट किया अर्थ उसका यह है कि जिन लोगों को समधी प्यारे हैं और वे लोग भगवद्भक्तों को सूखा आटा देते हैं और समधी को भोजन मीठे तो ऐसे विमुखों को यमके दूत खीं-चते खींचते हार जाते हैं एक समय व्यासजी भगवत् के हाथ में बांसुरी चांदी की देतेरहे उसकी कोर से उँगली छिलगई रुधिर निकल आया व्यासजीने चिन्ता में होकर भगवत् अँगुलीपर कपड़ा पानी से भिगोकर बांधा कि अबतक यह रीति किशोर महाराजके शृंगारके समय वर्त्तमान है इस चरित्र से भगवत् अपने भक्त के माधुर्यभाव को पक्का व दृढ़ करके उपदेश व प्रेमके पन्थको दिखलाते हैं कि जिस भाव से मेरे भक्त मेरा आराधन करतेहैं उसी भावसे प्रकट होताहूँ एक ब्राह्मण वोड़छे का रहने-वाला व्यासजी के पास आया और जहां हरिभक्तों के निमित्त रसोई बनती रही तहां भोजन करना अङ्गीकार न किया व्यासजी ने उसको अन्न दिलादिया वह ब्राह्मण चर्म के छागल में जल लाकर रसोई करनेलगा व्यासजी जूती में घी उसके निमित्त लेगये और रसोई में रखदिया ब्राह्मण क्रोधयुक्त उदास होकर उठा व्यासजी ने हाथ जोड़कर कहा कि आपके उदासी की कोई बात नहीं हुई जिस धातु का बरतन पानी के निमित्त आप अपने पास रखते हैं उसी धातु के कटोरे में घी लायाहूँ वह

ब्राह्मण लज्जित होकर अभिप्राय व्यासजी के मन का समझकर भगवत् शरण होकर भगवद्भक्त होगया एक साधु बहुत दिन तक मन्दिर में व्यास जी की सेवा में रहा किशोर किशोरीजी के सम्मुख कीर्तन अच्छा किया करता था जब इच्छा चलने की करता तब व्यासजी उसको समझाकर ठहरालिया करते कि वृन्दावन को छोंड़कर कहां जाते हो एक दिन ठहर करके बिदा हुआ और बटुआ शालग्रामजी का जोकि मन्दिर में पधराय दिया रहा मांगा व्यासजी ने एक गौरैआ चिड़िया डिब्बे में बन्द करके साधुको दिया साधु झोला लेकर चला गया जब यमुनाजी के किनारे पर सेवा पूजा के निमित्त डिब्बा खोला तो चिड़िया उड़गई वह साधु व्यासजी के पास गया कि महाराज मेरे ठाकुरस्वामी इस ओर आये हैं ढूँढ़वादेव व्यासजी ने उत्तर दिया कि सत्य है तुम्हारे स्वामी दरश परस किशोर महाराज से होगये हैं क्या जाने उसी स्नेह से चले आये होंगे सो ढूँढ़ैंगे और यह कहकर मन्दिर में गये आकर साधु से कहा कि तुम्हारे स्वामी किशोरजी के पास बैठे हैं तुम्हारे स्वामी वृन्दावन से जाया नहीं चाहते तो तुम किस हेतु जाते हो उस साधु ने सब ओर के जाने आने की इच्छा त्याग करके वृन्दावन में वास किया शरदपूनों को भगवत् का रास समाज वृन्दावन में होता रहा सब रसिकजन प्रिया प्रीतम की छवि से छके हुये प्रेममग्न रहे नृत्य में प्रियाजी के चरण से नूपुर टूटगया और ताल के समामें भेद आने लगा व्यासजी ने तुरन्त अपना जनेऊ तोड़कर नूपुर गूंथकर पहना दिया और कहा कि अपनी अवस्थाभर इस यज्ञोपवीत को गले का भार जानतारहा आज उसका रखना सुफल हुआ भक्तमाल में जो व्यासजी के वर्णन में नाभाजी ने यह पद लिखा है कि भक्त इष्ट आदि व्यास के यह सुनकर एक महन्त परीक्षा लेने के निमित्त लाहौर से आया जमात भारी साथ में रही सब साधु संग के भूख जनावनेलगे व्यासजीने कहा अब रसोई बनकर भगवत् को भोग लगाया जाता है कुछ विलम्ब नहीं है परन्तु साधुलोग मानें नहीं व्यास जी पै जो भगवत्प्रसाद रहा साधुन के आगे लाये वे लोग दोचार ग्रास भोजन करके और कुछ दर्द का बहाना करके उठ खड़े हुये व्यासजी ने उन साधुओं की सीथप्रसादी को बहुत यत्न से रखलिया और हाथ जोड़ कर विनय किया कि आपने अत्यन्त दया से पालन किया कि अपनी जूठनको कृपा करके दिया और कुछ दिन के भोजन के निमित्त पूंजी हो-

गई अब कृपा करें कि दूसरा भोजन बनता है उसको अङ्गीकार करें सब महन्तों को व्यासजी में दृढ़ विश्वास आया और जाना कि इस प्रकार निश्चय भक्तोंका विना व्यासजी के और किसको होगा ? व्यासजी ने एक पद भगवत् भेंट किया कि उससे महिमा सीथप्रसाद भगवद्भक्तों की प्रकट होती है अर्थ उसका यह है कि जो हरिभक्तों का सीथ नहीं खाते हैं उनके मुख शूकर और कूकर के मुखके सदृश हैं इस हेतु कि लड़का छोटी अवस्था का जिसके नाक से रेंट बहता है और गालों तक लगा हुआ है उसका मुख चूमते हुये और काम के वश में होकर स्त्री की राल चाटते हुये तो मन को घृणा नहीं होती और भगवद्भक्तों का सीथप्रसाद खाते हुये घृणा करते हैं तो क्यों न दुर्गति होंगे व्यासजी के तीन पुत्र रहे सो झगड़ा निवृत्त के हेतु विभाग कर देना सम्पत्ति का उचित समझकर तीन भाग बनाये एक भाग तो संपूर्ण द्रव्य का और दूसरा श्रीकिशोर किशोरीजी महाराज का और तीसरा तिलक छाप और श्यामवन्दनी का सो भाग पहला और दूसरा तो रामदास और बिलासदास पहले और दूसरे पुत्रों ने लिया और किशोरदासजी के बाँट में तिलक इत्यादिक आया उन्होंने वह तिलक और छाप लेकर और स्वामी हरिदासजी से छाप धारण कराकर भगवद्भजन आरम्भ किया और थोड़े ही काल में सिद्ध और शुद्धचित्त होकर भक्त दृढ़ होगये एक दिन किशोरदासजी और व्यासजी स्वामी हरिदासजीके साथ यमुना पर गये थे वहां एक विष्णुपद भगवत् के रासविलास का अपना बनाया हुआ गान किया और चले आये व्यासजी ने उसी विष्णुपद को नित्य रास के निज भगवत्पुराण में ब्रह्मा को ललिताजी के मुख से कहा हुआ सुना व्यासजी ने इस कारण से किशोरदासजीकी भक्ति को निश्चय किया हरिव्यासजी महाराज के चेले सिद्ध और बड़े योग्य भये उनमें से परशुरामदेवजी की गुरुपरम्परा निम्बार्कस्वामी की कथा में लिखी गई और शोभूरामजी का वृत्तान्त उनकी कथा में लिखा जायगा और यद्यपि परम्परा विन्दुवंश और नादवंश हरिव्यासजी का भी विवरण सहित प्राप्त हुआ था परन्तु सन्देह कुछ होगया इस हेतु न लिखा यही दो परम्परा विशेष समझना ॥

कथा शोभूरामजी की ॥

शोभूरामजी जाति के ब्राह्मण रहनेवाले ओड़िया के चेला हरिव्यास जी के जिनकी कथा ऊपर हुई परमभक्त निम्बार्कसंप्रदाय में हुये अब

तक मन्दिर व वाटिका उनके निवासका ओड़िये जगाधरी के समीप एक कोस पर विराजमान है और ऐसा प्रतापी गुरुद्वारा है कि लाखों को जिस के प्रभाव करके भगवद्भक्ति प्राप्त हुई व होती है शोभूरामजी की कृपा करके उस देश में भक्ति का प्रचार हुआ एकबेर यमुनाजी चढ़ीं नगर डूबने लगा सबने आयके पुकारा तब आपने विनय किया व कहा कि ऐसी ही इच्छा है तो मैं भी सहायता को प्राप्त हूँ यह कहिके फावड़ा लेके पानी आने की राह बनावने लगे यमुनाजी हट गईं व आरती के समय शंख ध्वनि हुआ करती थी हाकिम ने सुनी और क्रोधयुक्त होकर विचारा कि इसको काला मुँह कर गधे पर चढ़ाना चाहिये शोभूरामजी वैसा ही रूप बनाकर उसके द्वार पर गये देखिके आधीन होगया व लज्जित होकर अपराध क्षमा कराया व आत्माराम जिनके भाई उनकी कृपा व दीक्षा से सब गुण करके युक्त परमभक्त थे मानो कृष्णभक्ति के खम्भ हुये व सन्तदास व माधवदास दो भाई दूसरे उनकी भी भक्ति और महिमा वैसीही हुई कि माधवदासजी ने योगियों को ज्ञानसमर में विजय किया एकबेर योगियों के स्थान में उतरे आग जलाकर बैठे रहे योगियों का स्वामी क्रोधयुक्त हुआ तब सब अग्नि बरती हुई अपने अचला से उठाकर लेजा के अलग जा बैठे योगी यह चरित्र देखकर आधीन होगया चरणों में पड़ा इन दोनों भाइयों ने भक्ति के प्रकाश करने को मानों अवतार लिया था एक ही समय में दोनों भाइयों ने यह प्रकाश किया ॥

अथ गुरुपरम्परा हरिव्यासदेवजी की ॥
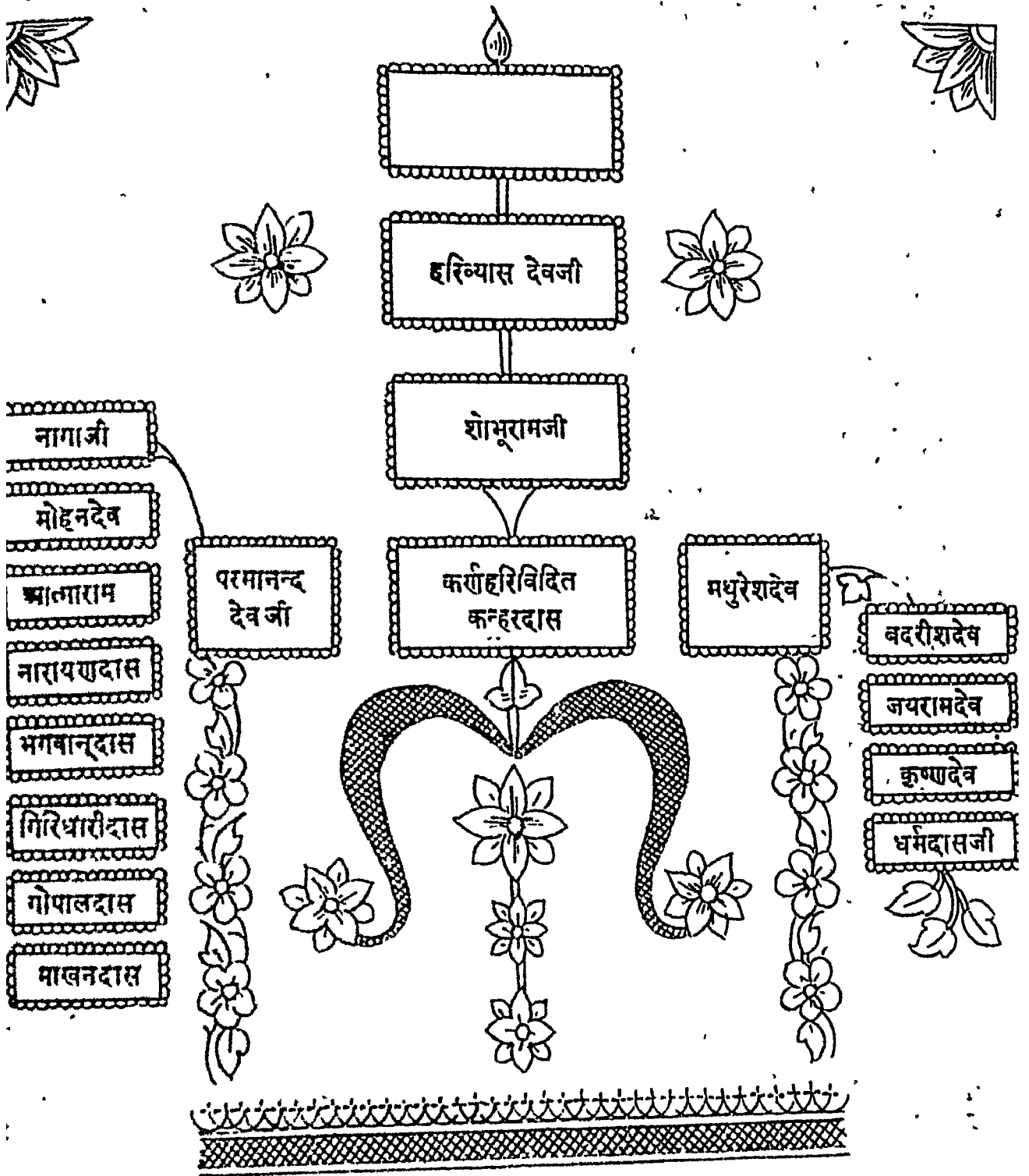
गाथा हितहरिवंशजी की ॥

हितहरिवंशजी गोसाईंजीके भजन और भावको ऐसा कौनहै जो वर्णन करसके कि जिनसे राधिकामहारानीकी प्रधानता करके मनको दृढ़विश्वास से लगाया और प्रियाप्रियतम के नित्यविहार और कुञ्जमहल में मानसी ध्यान करके प्राप्त होकर सखीभाव से टहल व सेवा शृङ्गार आदि की करी

व भगवत् के महाप्रसाद में ऐसा विश्वास था कि अपना सर्वस्व जानते रहे व विधिनिषेध के व्यवहारसे अलग होकर अनन्य दृढ़भक्ति में मग्न रहते रहे व्याससूनुके विश्वास और मार्गपर जो कोई होवे वह भी अच्छे प्रकार उस पन्थ को जानसक्ता है नाभाजीने जो व्याससूनु यह पद मूल भक्तमाल में लिखा तो उसके अर्थ से शुकदेवजी का भी बोध होता है और हरिवंशजी का भी क्योंकि उनके पिता का नाम व्यास रहा ये गोसाईं महाराज राधावल्लभजी संप्रदाय के आचार्य हुये कि जिनके प्रभाव से सहस्रों भगवत् सम्मुख होकर संगति को पहुँचे हैं व्यास उनके पिता गौड़ ब्राह्मण रहनेवाले देवनन्दन इलाके सरकार सहारनपुरमें बादशाही अधिकारी रहे परन्तु वंश नहीं था नरसिंह आश्रम बड़े भाई उपासक नृसिंहजी के आशीर्वाद व कृपासे हरिवंशजी तारानाम व्यासपत्नी के गर्भ से संवत् १५५६ में उत्पन्न हुये पहलेही से भक्ति श्रीराधाकृष्ण महाराजकी रही राधिका महारानी ने पीपलके वृक्षपर मन्त्रका पता स्वप्न में दिया व एक भगवन्मूर्ति का पता भी कूप में जनादिया गोसाईंजी ने वह मन्त्र और मूर्ति प्राप्त करके मन्त्र का तो जप आरम्भ किया और भगवन्मूर्ति व राधिकाजी की गादी विराजमान करके सेवा पूजा करनेलगे रुक्मिणीनाम स्त्री के गर्भ से दो पुत्र और एक पुत्री जन्मे व विवाहादि उनका होगया तब वृन्दावन सेवन की इच्छा करके चले चरथावल ग्राम में भगवत् आज्ञा करके एक ब्राह्मणने अपनी दो लड़की और राधावल्लभ जी की मूर्ति भेंटकरी वृन्दावन में पहुँचकर मन्दिर बनवाया और भगवन्मूर्ति व राधिकाजी की जगह गादी स्थापना करके पद्धति राधावल्लभी संप्रदाय की चलाई इस संप्रदाय में राधाकृष्ण युगलस्वरूप की उपासना है परन्तु राधिका महारानी की भावना विशेष है अपने आपको सखी और दासी श्रीराधिकाजी की जानकर ध्यान युगलस्वरूप और शृङ्गार राधिका महारानी में मग्न रहते हैं और यह उनको निश्चय है कि कृपा व अनुग्रह राधिका महारानी का होना चाहिये श्रीकृष्णस्वामी आपसे आप कृपा करेंगे वृत्तान्त शृङ्गार व तिलक आदिका निष्ठाशृङ्गार और वेष में लिखा जायगा राधासुधानिधि ग्रन्थ संस्कृत में कि उसकी प्रेमभक्ति व काव्य की रचना पद की मधुरताई वर्णन में नहीं आसक्ती है और भाषा में हित चौरासी रचना किया हुआ गोसाईंजी का प्रसिद्ध व विख्यात है गोसाईंजी को भगवत्प्रसाद में ऐसी निष्ठा रही कि पान का बीड़ा भगवत्-

प्रसादी को करोड़ एकादशीव्रत पर अधिकतर समझते रहे कोई २ माध्वसंप्रदायवाले पूर्व कुछ सेवक होने माध्वसंप्रदाय का गोसाईंजी को कहते हैं परन्तु कुछ बात नहीं व हरिवंशजी राधिकाजी की कृपा करिके स्वयंसिद्ध भये इसमें कुछ संदेह नहीं व रीति भजन की नई रसभक्ति प्रेममयी निकाली व निम्बार्कसंप्रदाय व माध्वसंप्रदाय से सिद्धान्त उपासना चुन करके अद्भुतरस भजन की रीति पुष्ट करी इस संप्रदायमें राधिका महारानी में परकीयाभाव है व वंश गोसाईंजी के देवनन्दन व वृन्दावन दोनों जगह विराजमान हैं और श्रीराधावल्लभलालजी के उपासना का उपदेश प्रसिद्ध व प्रभाव संसार में प्रकट है ॥

कथा चतुर्भुजजी की ॥

चतुर्भुजजी चेले हितहरिवंशजी के भगवद्भक्त ऐसे हुये कि भगवद्भक्ति और भजन का प्रताप बहुत लोगों के हृदय में दृढ़ करके भगवत् की ओर लगादिया और श्रीराधावल्लभलालजी के ऐसे चरित्र पवित्र काव्य किये कि हज़ारों उनको पढ़ सुनकर संगति को प्राप्त हुये हरिभक्तों की ऐसी सेवा करी कि उनके चरणरज को अपने शिर का भूषण समझा और सत्संग का यह विश्वास रहा कि उसी में मग्न रहतेथे जिन्होंने गुरुचरण की कृपा से गोड़वाने देशको भगवद्भक्त करदिया यह कि उस देशके आदमियों को कालीजी की उपासना थी आदमी को मारकर चढ़ाते थे भगवद्भक्ति का प्रवेश निर्मल तनक नहीं रहा चतुर्भुजजी का संयोग उस देश में जानेका हुआ यह दशा देखी तो पहले कालीही को भगवद्भक्त करना प्रयोजन जानकर भगवन्मन्त्र सुनाया काली जब हरिभक्त हुई तब लोगों को स्वप्न में शिक्षा किया कि तुमलोग स्वामी चतुर्भुजजी के शीघ्रही सेवक होकर भगवद्भक्ति अङ्गीकार करो नहीं तो सबका नाश होजायगा सब कोई दौड़े आये और चेले हुये माला तिलक धारण करके भगवद्भक्त होगये और पूर्व के पापों से छूटगये स्वामीजी ने कुछ दिन उस देश में रहकर भगवत् आराधना और उत्साह व साधुसेवा को अच्छा फैलाया और श्रीमद्भागवत सुनाकर भगवत्प्रेम में पूर्ण करादिया एक उचक्का किसी बनियें की थैली उठाकर चला धनी पीछे पड़ा उचक्केने जब कोई जगह छिपनेकी न देखी तो स्वामीजीकी कथामें जा बैठा उस समय यह कथा होती थी कि कोई शास्त्रविहित दीक्षा लेता है उसका जन्म नवीन होजाता है यह सुनकर वह उचक्का भी चेला स्वामीजी का हो-

गया तिसके पीछे थैलीवाला बनियां भी जा पहुँचा और लोहेका गोला तप्त करके हाथपर रक्खा साधुने राजा के सामने सौगन्द दी कि इस जन्म में किसी का धन नहीं चुराया निदान साधु जीतगया राजा ने बनियें को शूली देने की आज्ञा दी जब साधु ने सब वृत्तान्त वर्णन किया तब राजा ने बनियें को छोड़ा भगवद्भक्त होगया एक दिन स्वामी का खेत पकाथा साधु आते रहे उसमें घुसके खानेलगे रखवाले ने पुकार किया कि स्वामी चतुर्भुजजी का है साधुओं ने कहा तो हमाराही है शोर क्यों करते हो यह सुन स्वामी आयके साधुओं को लेगये भोजन कराये व आनन्द का जल आंखों से बहाया कि आज साधुओं ने हमारी चीजों को अपना समझा॥

कथा शंकरस्वामी की ॥

शंकरस्वामी कलि में धर्म के रक्षक और भागवतधर्म के प्रवर्तक शिवजी का अवतार और आचार्य हुये जितने अनीश्वरवादी और जैनधर्मी और पाखण्डी और विमुख और दुर्बुद्धि थे सबको ध्वस्त करके शास्त्रों की पद्धतिपर चलाया दक्षिणदेश में विक्रमादित्य के समय में स्वामी का अवतार हुआ स्मार्तमत की रीतिसे दण्ड धारणकर संन्यासी हुये और उसी धर्म की पद्धति से भागवतधर्म को फैलाया सैकड़ों को परास्त किया मण्डनमिश्र जिनको ब्रह्मा का अवतार कहते हैं मीमांसा मतवादी रहे उनको वाद में निरुत्तर किया मीमांसा कर्महीको ईश्वर मानताहै पीछे मिश्रजीकी स्त्री ने वाद आरम्भ किया और कामशास्त्र में प्रश्न करनेलगी और ये स्वामी यती संन्यासी रहे उस गली से तनक भी बोध न था इसहेतु राजा अमरुक के शरीर में कि उसीदिन मरगया था योगबल से अपने प्राणको उसमें प्रवेश करके छःमहीनेतक उस शरीर में रहे एक ग्रन्थ अमरुकशतक बहुत ललित उस शरीर में रचना किया जितनी रानी राजा अमरुककी रहीं सबने जान लिया कि यह कोई योगी है और निजदेह इसका कहीं गुप्त होगा सो उसको जलादेना चाहिये कि जिसमें यह शरीर और राज्य और हमारा सुहाग बनारहे इस हेतु उस शरीर को ढुँढ़वा के जलादेने की आज्ञा देदी आगदियेही रहे कि स्वामी के प्राण ने राजा का तनु छोड़कर निजशरीर में प्रवेश किया और अग्नि से रक्षाके हेतु नृसिंहजी का स्मरण किया प्रभुने उस अग्निको शीतल कर दिया स्वामी ने चिता से निकलकर मण्डनमिश्र की स्त्रीको निरुत्तर कर दिया मिश्र स्वामी के चेले होगये पश्चात् चारवाक मतवालों को परास्त

करके धर्म में प्रवृत्त किया सो अब चारवाक मत का अनुगामी दृष्टान्त कोई भी नहीं मिलता मुसल्मानों में सुने जाते हैं जो कि दहरिया कहाते हैं फिर सांख्यशास्त्र और हठयोगवालों को शिक्षा किया तब पीछे सेवड़ों के साथ मतवाद युद्ध बड़ाभारी आनपड़ा निदान पहले वाद में जीतकर फिर उनकी धूर्तताई व मन्त्र चेटक आदि को दूर किया और इन्द्रजाल उन्होंने किया तो वहभी उनकेही गलेपर पड़ा इस प्रकार कि कोठे परसे गिरकर मरगये और कुछ नदी में डूबे और जो रहे बचे तिनको उस समय के देशाधीश ने नावोंमें भरवाकर नदी में डुबवाय दिया और जितने भगवत् के शरण में हुये वे सब उपद्रव से बचगये तात्पर्य यह कि जो कोई भगवत् से विमुख रहा अथवा वेदविरुद्ध चलता था उसको विद्या के बल से व प्रभाव दिखाके अथवा जिस प्रकार उसने बोध चाहा भागवतधर्म पर दृढ़ कर दिया फिर पीछे ठौर २ मन्दिर व शिवालय आदि बनवाये और हरएक देवता के वर्णनमें स्तोत्र रचना किया और रीतिपूजा इत्यादि की शिक्षा करी गीताजी व शारीरिकसूत्र व विष्णुसहस्रनाम पर भाष्य अलग २ रचना किया तिलक आदि की पद्धति का वेषनिष्ठा में वर्णन होगा विस्तार करके कथा स्वामी की शंकरदिग्विजय में लिखी है यहां एक नाममात्र सूक्ष्म वृत्तान्त लिखागया निर्गुणउपासक तौ यह बात कहते हैं कि ये स्वामी केवल निर्गुणब्रह्म के उपासक रहे और सगुण उपासकों का यह वचन है कि वैष्णव रहे और वाद सुष्ठुतर उनके वैष्णव होने की ठानते हैं कि स्मार्त सगुण उपासना की पद्धति यह है कि अपने इष्टको अङ्गी और दूसरे देवताओं को अङ्ग मानते हैं एक तो भगवत्की जिस प्रकार दूसरी संप्रदायों में दृढ़ है इसी प्रकार इस संप्रदाय में भी पूजा व स्मरण जप इत्यादि वैसाही व निर्गुणब्रह्म का वर्णन इस पोथी के अन्तमें लिखाजायगा शंकरस्वामी के बहुतसे चेले ऐसे हुये कि उनसे इस संप्रदाय की प्रवृत्ति अधिकतर हुई उनकी गुरुपरम्परा से उनके नाम खोले जायँगे व मठ गुरुद्वारे भी बहुत हैं परन्तु चार स्थान चारों चेलों के सब में मुख्य हैं कि उन मठों का नाम चारों चेलों के पास लिखाजाता है और गुरुद्वारे सहस्रों हैं इस हेतु उनकी गुरुपरम्परा इस समय तक की नहीं लिखी केवल शंकरस्वामी के चेलों तक की लिखी ॥
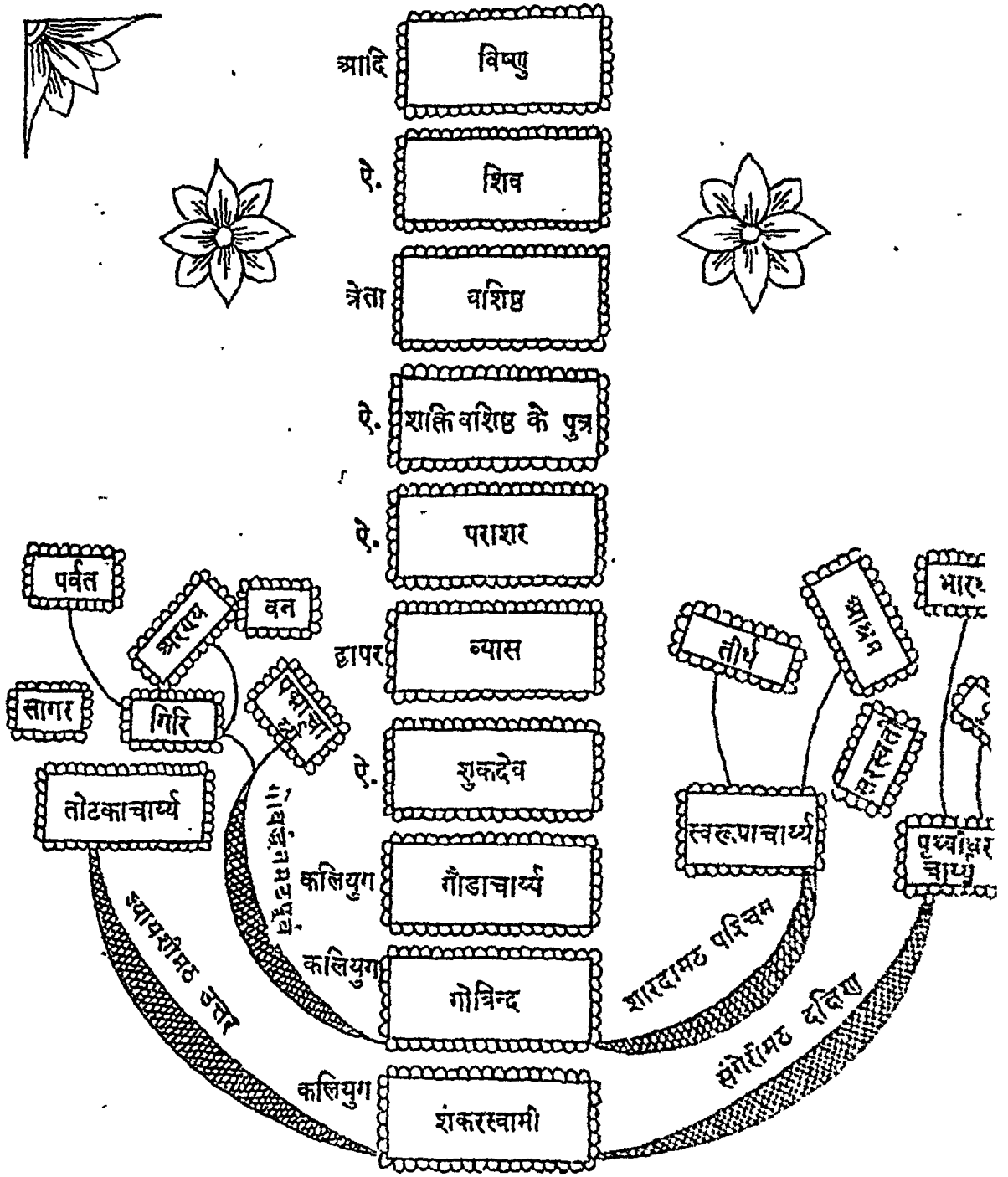
निष्ठा तीसरी ॥

साधुसेवा व सत्संग जिसमें तीसभक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमल की अम्बर रेखा को और वाराह अवतार को दण्डवत् है कि निज धाम ब्रह्मपुरी में वह अवतार धारण करके पृथ्वी का समुद्र से निकाला और हिरण्याक्ष को वध किया व सब शास्त्रों का सिद्धान्त है इस जीवको आवागमन के बन्धनसे छूटने के हेतु सत्संग व्यतिरेक और कुछ साधन नहीं जिसके प्रभाव से शीघ्र भगवत्-

प्राप्ति होती है महिमा सत्संग की अपार है तथापि किञ्चिन्मात्र लिखी जाती है और सत्संग की प्राप्ति साधुसेवा करके है इस हेतु साधुसेवा की महिमा भी इस निष्ठा में लिखी जायगी और यद्यपि वास्तव अर्थ सत्संग शब्द के ये हैं सत् जो भगवद्भक्त तिनका संग परन्तु कोई उस सत्संग के अर्थ कई प्रकार से वर्णन करते हैं उनमें दो प्रकार मुख्य हैं एक सत्संग शास्त्र और तीर्थों का दूसरा भक्तों का शास्त्र सत्संग से यह तात्पर्य है कि उसका पढ़ना और विचारना और अभ्यास रखना और उसके अनुकूल चलना जिससे सार और असार और ईश्वर माया जीव का ज्ञान होकर और नरक के दुःखों से डरकर रूप अनूप माधुरी और परमशोभा भगवत् में कि सब शास्त्रों का सार और मुख्य लाभ है ऐसी बुद्धि लगिजावे कि दृढ़ स्थिर होकर यह जीव कृतार्थ होकर सब दुःख सुख भलाई बुराई से अलग होकर आनन्द होजायगा सो पढ़ने व अभ्यास रखने योग्य ये शास्त्र हैं कि जिनमें भगवच्चरित्र और भगवत् स्वरूप व गीता आदि पुराण स्मृति व वेद अथवा दूसरे ऋषीश्वरों के रचित और हरिभक्तों के कथित और जो उनके पद में व अभ्यास में नहीं जानने से वाणी संस्कृत के हेतु से दुर्बोधता होय तो भाषाग्रन्थ जैसे तुलसीकृत रामायण व विनयपत्रिका व सूरसागर व दशम व ब्रज-विलास व कृष्णदास व नन्ददास की वाणी आदि का पढ़ना सदा कि उस के अवलम्ब से संस्कृत से जो बोध होता है सोई होजायगा व दो चार महीने का परिश्रम करने से थोड़ेही में भाषा पढ़ने की गति होजाती है पर असावधानता व दुर्भाग्यता की बात न्यारी है बहुत लोग विरुद्ध धर्मियों के रचेहुये को भाषान्तर करनेमें विशेष करके काल व्यतीत करते हैं सो मेरे विचार में वे त्याज्य हैं जो वह विवाद कि जिस हेतुसे भाषा-न्तर ग्रन्थ धर्मविरोधियों का पढ़ना अयोग्य है विस्तार करके लिखें तो बहुत हैं परन्तु एक दो बात लिखी जाती हैं प्रथम उन भाषान्तर करने वालों में मुख्य अभिप्राय उस ग्रन्थ का निर्वाह नहीं होसक्ता यह कि कोई श्लोक भागवत व गीता व महाभारत का तर्जुमा जिसको भाषान्तर लिखाहै पढ़कर फिर अपने धर्म के आचार्यों का तिलक है तिससे मिलान करे कि मुख्य अभिप्राय लुप्त व ध्वस्त है दूसरे कोई तर्जुमा ऐसा नहीं कि तर्जुमा करनेवालों ने अपने दीन के विरुद्ध व द्वेष के कारण से उनमें प्रकट अथवा कोई व्याज करके अथवा कटाक्ष लेकर हिंदूके दीन की निन्दा

न लिखी होय जैसे अबुलफ़ज़ल ने महाभारत आदि ग्रन्थों के तर्जुमों का प्रारम्भ किया वह जलादेने योग्य हैं और उनमें विशेष अर्थों का तर्जुमा लिखा है व तर्जुमे योगवाशिष्ठ व भागवत से प्रकट है और जो किसी ने दूषणरहितका तर्जुमा करदियाहै तो इसभांति की लिखावट है कि भगवत् व महात्माओं के सम्बन्ध में तनक मर्याद नहीं और वचन कठोर व तीक्ष्ण जैसे बाण हृदय में लगते हैं तीसरे ऋषीश्वरों व भक्तों की वाणी में जो प्रभावहै अन्य मतवालोंके तर्जुमे में नहीं और प्रतिकूल होता है यह कि जैसा विरुद्धभाव तर्जुमा करनेवालों का है वैसाही पढ़ने सुननेवालों का होजाता है इस हेतु कोई आरूढ़पद को नहीं पहुँचता व आजतक उन तर्जुमों के पढ़नेवालों को भगवद्भक्त न देखा होगा परन्तु इतना विशेष होगा कि ब्राह्मणों को वाद करके दुःखित करना व सत्संग में विश्वास नहीं चौथे यह कि जो मन्त्र ऋषीश्वर और भगवद्भक्तों ने मूलग्रन्थों में गुप्त अथवा प्रकट लिखे हैं वे मन्त्र उन तर्जुमों में नहीं कि जिसके प्रभाव से मन भगवत् में लगे इस भेद करके उनका पढ़ना उचित नहीं और अच्छे प्रकार विचार कर देखिये कि जिन लोगोंने संस्कृत व भाषा थोड़ीसी भी पढ़ीहै वे सबलोग थोड़े बहुत भगवत् के मार्गपर हैं और जिनलोगों ने केवल तर्जुमे भागवत व रामायण व महाभारत व योगवाशिष्ठ व दूसरे सैकड़ों किताब तर्जुमा की हुई विरुद्धधर्मियों की पढ़ीं और अभ्यास किया कभी किसी को कुछ भी गुण न किया भला यह बात रहने दीजिये जो ऐसाही हठ है कि बिला तर्जुमे फ़ारसी के हमारा अभिप्राय नहीं निकलता तो तर्जुमा हिन्दुओं का किया भी तो प्राप्त है उनको क्यों नहीं पढ़ते जैसे रामायण तर्जुमा किया टोड़रमल व तर्जुमा भागवत किया हुआ एक कोई कायस्थ का व तर्जुमा गीता किया कोई काश्मीरी का ऐसे बहुत लोगों के ॥ इति ॥

और तीर्थ सत्संग से हेतु स्थान गङ्गा व यमुना व पुष्करआदि तीर्थों और यात्राआदि से है उसमें कोई का यह सिद्धान्त है कि तीर्थों के जल को भगवत् ने यह प्रताप दिया है कि उसके दर्शन और स्नान और पान करनेसे हृदय पवित्र होजाता है और कोई यह कहते हैं कि भगवद्भक्तलोग एक कोई नियत समयपर एक जगह इकट्ठे होते हैं इस हेतु उस स्थान का नाम तीर्थ कहाजाता है और उन भक्तों के संग का पुण्य और जल के स्नान आदिके प्रभाव कि जिस जल में चरण उन भक्तों के पड़े मनुष्यों को चित्त

की उज्ज्वलता प्राप्त होती है इस वचन से शास्त्र ने तीर्थों से अधिक बड़ाई भगवद्भक्ति की प्रकट की परन्तु दोनों दशा में निस्संदेह तीर्थों के सत्संग व यात्रा से ये मनुष्य पवित्र होकर भगवत् में लगजाते हैं और रीति तीर्थ स्नान की धामनिष्ठा में लिखी जायगी प्रथम प्रकार के सत्संग का निर्णय तो होचुका अब वर्णन द्वितीय प्रकार का होता है और जो महिमा सत्संग की निष्ठा के प्रारम्भ में लिखीगई और कुछ वर्णन ग्रन्थ के आदि में हुआ और सब शास्त्रों ने जो सत्संग वर्णन किया उसका तात्पर्य भगवद्भक्तों से है निस्संदेह जिस किसी ने भगवद्भक्तों का सत्संग किया अपने वाञ्छित अर्थ को प्राप्त हुआ भक्तों का मिलना भगवत् हैं सो भगवत् का वचन है कि एक क्षण सत्संग के सम्मुखपर स्वर्ग व अपवर्ग का सुख बराबर नहीं होसक्ता दशमस्कन्ध का वचन है कि इस संसार से छूटने का और अपवर्ग व मुक्ति के प्राप्त होने का सत्संगही उत्तम उपाय है एकादश में भगवत् का वचन है कि म योग इत्यादि से वश नहीं होता परन्तु सत्संग से व पद्मपुराण व स्कन्दपुराण व विष्णुपुराण आदि में भी यही निश्चय वचन है अब यह संदेह उत्पन्न हुआ कि सब साधन तीर्थादि से जो भगवद्भक्तों के सत्संग को बड़ा व अधिक लिखा इसका कौन कारण है सो यह है कि प्रथम तो भगवत् और शिवजी का वचन है कि जहां भगवद्भक्त रहते हैं तहां आप भगवत् विराजमान रहते हैं सो जब इस पुरुष को भगवद्भक्तों का सत्संग होगा निस्संदेह भगवत् मिलजायँगे कि यह वृत्तान्त प्रचेता और नारदजी की कथा जो भागवत में लिखी है उससे अच्छे प्रकार समझने में आसक्ता है दूसरे अन्यसाधन जो तीर्थ व्रत व जप तप व नेम व संयम आदि सब ऐसे हैं कि अनुक्षण भक्त का मन उनमें नहीं लगता दूसरी ओर होकर संसार के स्वाद में जा लगता है और भगवद्भक्तों के सत्संग से अनुक्षण भगवत् में रहता है इस हेतु कि वहां भगवच्चरित्र और कथा व सेवा व भजन कीर्त्तन आदि के बिना और कुछ काम नहीं होता जो किसी काल में मन दूसरी ओर गया तो फिर भगवत् के सम्मुख होजाता है तीसरे अन्यसाधन तीर्थ शास्त्रआदि का यह वृत्तान्त है कि कहीं भगवद्भक्ति का साधन वस्तु प्राप्ति है पर साधनेवाले जो भक्तजन सो नहीं और कोई जगह भक्त साधना करने को उद्यत हैं परन्तु उनको पद्धति नहीं मिलती और कोई जगह ऐसा संयोग है कि भक्त और पद्धति सब एकत्र हैं परन्तु संदेह निवृत्त करनेवाला कोई नहीं अथवा कोई ठग उस पन्थका जैसे

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्षाआदि आयगया कि उसने सब पूंजी बटोरी हुई को एक निमिषमें लूटलिया सो दूसरे साधन तो इस हेतु न्यूनतर हैं कि वह सब वस्तु के प्राप्त करनेवाले नहीं और भगवद्भक्तों के सत्संगको इस हेतु बड़ा कहैं कि जिस वस्तुका प्रयोजन लगे वह सब वस्तु एक जगह प्राप्त है और वास्ते पहुँचाने भगवत्पद तक भक्ति ज्ञान वैराग्य के ओड़ा लेकर सम्मुख हैं सो जिस किसी को चाह भगवत्भक्ति की है और इस संसारसमुद्र को उतरना चाहता है तो सत्संग करे और यह भी जानले कि सत्संग सब जगह वर्त्तमान व प्राप्तहैं परन्तु यह अपनी कुतर्क व कुचेष्टा है कि सूझ नहीं पड़ती काहेको आप पाप और अवगुण युक्त होनेके हेतुसे दूसरे को भी अपनेही सदृश जानते हैं और उसके अच्छे स्वभाव और भजन आदिपर दृष्टि न करके और उसके अवगुण व शुद्ध स्वभाव के अङ्गीकार की दृष्टि होय तौ सत्संग के सब जगह प्राप्त होने में क्या संदेह है जो ऐसेही दुर्भाव व अवगुण दूषण देखना है तो कोई जड़ चेतन अवगुणरहित नहीं इसके सिवाय तीर्थ के स्थानों में जैसे वृन्दावन व चित्रकूट व प्रयाग व अयोध्या व काशी व जगन्नाथपुरी व उज्जैन व काञ्ची व हरिद्वार व पुष्करआदि सैकड़ों स्थानपर सत्संग जैसा चाहे मिलता है परन्तु भक्त यह बात समझे रहें कि सत्संग का यह अर्थ नहीं है कि चलो साहिब कोई साधु आये हैं दर्शन कर आवें सत्संग उसका नाम है कि भक्तों को भगवद्रूप जानकर उनके वचन पर ऐसा विश्वास पक्का हो कि कबहीं बेविश्वास न होयँ और वह सत्संग का अनुक्षण तबतक अत्यन्त प्रयोजन है कि जबतक अच्छे प्रकार दृढ़ स्थिर भगवच्चरणों में न होजावे अब अधिक विस्तार करना प्रयोजन नहीं नारद और व्यास, बाल्मीकि, अजामिल, शबरी, वारमुखी व अगस्त्य व प्रचेता व ध्रुव व प्रह्लाद आदिक सहस्रों भक्तों की कथा जो पुराणोंमें लिखी है और कोई इस भक्तमाल में पढ़ सुनलेवे कि सत्संग के प्रभाव करके कैसे कैसे पापियों को क्या २ पदवी प्राप्त हुईहै सो वह सत्संग इस समय इस मनुष्य को विना प्रयास मिलता है जैसे भगवत् की सेवा में निष्ठा भगवद्भक्तों को होती है जो वैसेही भगवद्भक्तों की सेवा में तन मन लगे भागवत में भगवत् का वचन है कि ऋषीश्वर मेरे भक्त मेरा शरीर हैं और वेही पूज्य हैं और उपाय छोड़कर उनहीं की सेवा कर पद्मपुराण में भगवत् का वचनहै कि मेरे भक्तोंको भोजन करावना व सेवा करना वह

भोजन व सेवा निज मुझको होता है और जिसप्रकार मेरे भक्त मुझको भोजन कराये विना कुछ नहीं खाते इसी प्रकार मैं विना उनको भोजन कराये कुछ नहीं खाता और पुराणों में भगवत् ने कहाहै कि जो मेरे भक्तों के भक्त हैं वे मेरे भक्त हैं फिर भगवत् का वचन है कि गङ्गा तो पाप और चन्द्रमा ताप व कल्पवृक्ष दरिद्र को दूर करते हैं और मेरे भक्तों का दर्शन कैसा है पवित्र किये तीनों दुःख क्षणमात्र में दूर होजाते हैं फिर ऋषीश्वरों का वचन है कि तीर्थादि पवित्र नहीं करसक्ते जैसा कि सन्त शीघ्र इस लोक और परलोकसे निर्भय और पवित्र करदेते हैं इस प्रकार शास्त्रों का वचन है सो जिस किसीको चाहना भगवत् के नित्यानन्द और संसार से छूटनेकी है उसको भगवद्भक्तों की सेवा मन व प्राण से उचित है और कुछ विचार जातिपांति आदि का तनक नहीं चाहिये जो कोई भी जाति भगवद्भक्त होवे वह भगवद्रूप है महाभारत में भगवद्वचन है कि जो कोई हरिभक्तों में जाति आदि का विभेद करके उनकी सेवा नहीं करते वे नास्तिक हैं साधुसेवा के पन्थ में पांच ठग हैं एक तो जातिका गर्व कि साधु को छोटी जाति जानकर सेवा न करे दूसरे विद्या का गर्व कि नहीं पढ़े हुये साधु को छोटा जाने तीसरे ऐश्वर्य का गर्व कि उसके मद में कुछ भला बुरा समझ न पड़े चौथा साधु का कुरूप देखकर सेवासे विमुख रहे अथवा रूप के गर्व से कुछ ध्यान में न लावे पांचवां बल शरीर का कि उसके गर्व से भी भले बुरे का विचार नहीं रहता है सो इन पांचों गर्व को तो ताकपर रखदेवे और वे चरित्र भगवत् के अनुक्षण स्मरण रक्खे कि भगवत् ने आप वाल्मीकि श्वपच को युधिष्ठिर की निज रसोईं के घर में बैठकर द्रौपदी के हाथ से सेवा कराई और आप श्रीरघुनन्दन स्वामी ने भीलिनी के जूठे फल खाये एक साधुसेवी का वृत्तान्त है कि वह दुःखी था अपनी स्त्री से साधु की सेवा के निमित्त दृढ़ायके कहा उसने अपने शिर दुखने का वहाना किया संयोगवश उसी समय दामाद आगया वह स्त्री तुरन्त उठी और मोहनभोग आदिक बनाने लगी साधुसेवी ने तुरन्त उस स्त्री को घरसे निकाल दिया और कहा कि जब मेरा दामाद आया तबतो शिर दुखने लगा और जब तेरा दामाद आया तब वह शिरका दुखना तुरन्त दूर हुआ तात्पर्य यह कि जिस प्रकार कामी और झूठेको स्त्री और लोभी को द्रव्य प्यारी है इसी प्रकार भगवद्भक्तों को अपना निजप्यारा समझकर और सांची प्रीति जानकर तन मन से सेवा करे जिसको भगव-

द्भक्तों में प्रीति नहीं कदापि कोई मनोरथ इस लोक और परलोक का सिद्ध न होगा और आजतक ऐसा संयोग कबहीं नहीं हुआ कि भगव-द्भक्तों की सेवा करनेवाले का मनोरथ इस लोक व परलोक का सिद्ध न हुआ हो जो कोई भक्तों से विमुख हैं और निन्दा करते हैं वे भगवत् के घरसे निकाले हुये हैं जो भक्तों के साथ शत्रुता करते अथवा दुःख देते हैं उनका नाश होजाता है रसातल को जाते हैं रावण, दुर्योधन, कंसआदि भगव-द्भक्तों के साथ वैर ठानकर ध्वंसको प्राप्त हुये भगवत् को हिरण्यकशिपु पर कबहीं क्रोध न आया देवता सब दुःख पायेभी परन्तु जब प्रह्लाद भक्तको दुःख दिया तब नहीं सहिसके तो दूसरोंकी क्या बात है भगवद्भक्तों के द्रोही तीनों लोक में दुःख पाते हैं जिस प्रकार दुर्वासा कि जहां गये किसीने शरण नहीं दिया अब इस दास की बिनती भगवद्भक्तोंकी सेवामें यह है कि कुछ कृपा की दृष्टि इस अपराधकर्मी पर भी होवे जो मेरे अपराधों पर नि-गाह करोगे तो उस वचन में विरोध आवेगा कि साधु सजलमेघ के सदृश हैं शत्रु मित्र, साधु असाधुपर बराबर दया करते हैं इसहेतु अपने ऊपर कृपादृष्टि योग्य है मेरे अपराधों पर दृष्टि योग्य नहीं सिवाय इसके एक प्रकार से आश्रित भी हैं कि तुम्हारा भाट भी हूँ कदाचित् यह कहोगे कि यह बिरद रचना तेरे अन्तःकरण से नहीं ऊपरही गावना है तो यह वि-नय है कि सब भाट ऊपरही स्तुति बिरद की किया करते हैं परन्तु यजमान उनको विमुख नहीं करता व इसके ऊपर एक सम्बन्ध भी तुम्हारे चरण से है कि श्रीकृष्णमहाराज का घरजाया चेराहूँ. जो यह कहोगे कि ऐसे पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन का दास होकर हमसे क्या चाहना करता है और किसका भय है सो विनय यह है कि अवगुणी चेराहूं स्वामी की आज्ञा के अनुकूल आचरण नहीं और भूलकर भी सम्मुख कबहूं नहीं होता हूं सब बातें बतानेसे मेरा तात्पर्य यह कि कोई प्रकारसे यह दुष्ट भाग्यहीन मन भगवच्चरणों में लगे और जो मन उस समाज के चिन्तन में लगे तो आ-नन्द पदकी प्राप्ति में क्या संदेह है कि अयोध्या निजधाम में कल्पवृक्ष के नीचे महामण्डप है वहां पुष्पकसिंहासन पर कि जिसका प्रकाश करोड़ों सूर्य के समान है आप वसन आभूषण समाजी अङ्गपर सजेहुये वीरा-सन विराजमान हैं और वामभाग में श्रीजनकनन्दिनी शोभित हैं ऐसा मनोहररूप अपार है कि लक्ष्मी और विष्णु भी लज्जित होकर क्षीरस-मुद्र में जा छिपे भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न सेवा में तत्पर हैं चारों वेद व

नारद व सनकादिक व ब्रह्माआदि स्तुति करते हैं और एक ओर सुग्रीव विभीषण आदि और दूसरी ओर सब राजमन्त्री और सामने हाथ बांधे हनुमान्जी खड़े हैं ॥

कथा विदुरजी की ॥

विदुरजी रहनेवाले गांव छटेरा राज्य जोधपुर साधुसेवी हुये एक साल अवर्षण हुआ खेत सूख गये साधुओं के भोजन की चिन्ता करके घबराने स्वप्नमें आज्ञा हुई कि सूखा खेत काटके मलके झाड़ो दोहज़ार मन अन्न होगा वैसेही करने लगे सबलोग हँसी करते रहे दोहज़ार मन अन्न ढेर लगा क्या आश्चर्य कि साधुसेवा इस लोक व परलोक में सूखे वृक्ष को फल फूल लगादेती है ॥

कथा भगवान्दास की ॥

ठाकुर भगवान्दास भीमसिंह राजपूत तोदर के बेटे परमभक्त भगवद्भक्तोंकी सेवामें सावधान व दृढ़ विश्वास करनेवाले हुये प्रतिवर्ष मथुराजी में जायके साधु ब्राह्मणों का भण्डारा बड़ा करते रहे और रासबिलास उत्साह में बड़ा रुपया उठायके घर चले आते रहे समय के फेर करके व धन के बहुत उठावने से धनका संकोच आयगया तौ भी ऋण लेकरके मथुरा आये कुछ कम करके देनेका विचार किया तब चौबेलोग अड़े कि जितना मिलता रहा उतनाही मिलेगा तो लेंगे ठाकुरसाहब ने सब रुपया जो पास था सबके आगे रखदिया तब यह ठहरा कि अब इसका सूखा अन्न साधु ब्राह्मणों को बँटजाय एक कोठरी में नाज व रुपया इकट्ठे करके बँटने लगा भक्तोंके द्रोहियों ने यह विचारा कि इनका नाम हँसाजाय सो एक सीधेकी जगह दश सीधे दिलानेलगे प्रभु भक्तवत्सल ने ऐसी लज्जा भक्त की राखी कि अनगिनत लूट चांदी सोनेकी होगई द्रौपदी के चीरकी नाईं कोई वस्तु न घटी सब द्रोही लज्जित हुये भक्तिपर सबको निश्चय हुआ ॥

कथा बारमुखी की ॥

एक नगर बलाद दक्षिणदेश में बारमुखी बड़ी धनवाली रहती थी उसके द्वारपर एक वृक्ष हरित छाया नीचे सुन्दर वेदी बड़ी विमल बनी हुई रही एकदिन साधुलोग टिकगये संध्या के समय बारमुखी द्वारपर निकली देखा विचार किया कि मेरा नाम सुनैंगे तो साधु उठजायँगे अपने घर में छिपगई और रात के समय कुछ मोहर रुपैया एक थाली में रखके भेंट लेकर साधुओं को दण्डवत् किया साधुओं ने जब सब वृत्तान्त जाति

का व धन का सुना तब उपदेश दिया कि एक मुकुट बनाकर रङ्गनाथ की भेंट कर तब धन शुद्ध होजायगा तब उसने तीनलाख रुपये का एक मुकुट जड़ाऊ बनवाया और बड़ी प्रीति व विश्वास से नाचती गाती बाजे बजवाती मुकुट लेकर चली जब श्रीरङ्गनाथ के मन्दिर के समीप पहुँची तब रजोधर्म होगया तब शोक से विकल होकर गिरपड़ी उसके प्रेम को अन्तर्यामी प्रभु ने देखा तो पुजारियों को आज्ञा हुई उन लोगों ने सामने प्रभु के पहुँचादिया जब मुकुट पहिनाने को हाथ उठाया तो सिंहासन ऊंचा तिससे हाथ न पहुँचा शोचती ही रही तबतक रङ्गनाथजी ने अपना शिर झुकादिया उस बड़भागिनी ने पहिनादिया और महाबड़भागिनियों की गणना में विख्यात हुई अहो धन्य है कि एक क्षणमात्र के सत्संग की यह महिमा है हे मेरे मनकठोर ! तुझको भी धन्य है कि ऐसे चरित्रों को लिख पढ़के भी कोमल होकर प्रभुकी ओर सम्मुख न हुआ ॥

कथा तिलोकजी की ॥

तिलोकजी जाति के स्वर्णकार पूरबदेशके एक नगर में हुये भगवद्भक्तों की सेवा में बड़ी प्रीति रही जो कुछ उद्यम में लाभ होता सो सेवा में लगादेते रहे उस देश के राजा ने लड़की के विवाहसमय बहुत रुपया गहना बनाने को दिया सो सब साधुसेवा में उठादिया तगादा हुआ तब आज काल्ह करके जैसी सुनारों की चाल है टालते गये जब सम्मुख पहुँचा तब प्रभात को देना निश्चय करके चले आये साधु आये उनकी सेवा में लगे रातको राजा का डर हुआ भोरही एक जङ्गल में छिपकर बैठरहे भगवत् अपने दासों की लज्जा रखनेवाले सब गहना तिलोकजी का रूप धर राजा के पास लेगये इनाम लेआकर तिलोकजी के घर महोत्सव करके साधु ब्राह्मणों को भोजन कराया प्रसाद लेकर तिलोकजीको जाकर दिया तिलोक के घर महोत्सव हुआ तुमको प्रसाद है उन्होंने पूछा कौन तिलोक ने जवाब दिया जिसके बराबर तिलोक में कोई नहीं समझगये प्रभु के चरित्र हैं घर आये साधुसेवा व भजन सुमिरन में मग्न हुये ॥

कथा तिलोचनदेवकी ॥

तिलोचनदेव वैश्यवर्ण चेले ज्ञानदेवके भगवद्भक्त विख्यात हुये विष्णुस्वामी संप्रदाय के थे साधुसेवा में बड़ा प्रेम रहा एक स्त्री व आप दोही रहे चिन्तना करते रहे कि एक चाकर ऐसा मिलता कि साधुओं के मनकी जान जान सेवा करता भगवत् आप एक टहलुआ का रूप बना

कर टूटीजूती फटीकमली से आन पहुँचे तिलोचनजी ने उनका घर मां बाप सब पूछा तब उत्तरदिया मां बाप घरबार कुछ नहीं रखता टहलुआ हूं पांच सात सेर खाता हूं चारोंवर्ण की पद्धति मेरे हाथ में है भक्तों की सेवा अच्छी करसक्ता हूं अन्तर्यामी नाम है तिलोचन बहुत आनन्द हुये नहलाकर कपड़े बदलाकर रक्खा सेवा भक्तों की सौंपी स्त्री से भोजन को बहुत समझायकै दृढ़ाय दिया अन्तर्यामी ने सब प्रकार से साधुओं की सेवा ऐसी करी कि तिलोचनजी का नाम विख्यात हुआ तेरह महीने इसी प्रकार से व्यतीत हुये एक दिन तिलोचनजी की स्त्री परोसिन के घर गई उसने दुर्बलता का कारण पूछा इसने कहा कि रातदिन आटा पीसते रोटी पोते गत होता है मेरे स्वामी ने एक टहलुआ रक्खा है बहुत खाता है इतना मुख से निकलते ही अन्तर्यामी अन्तर्द्धान होगये इसहेतु कि पहले दिन बहुत भोजन का गिला होनेपर नहीं रहने का प्रबन्ध करलिया था पीछे तिलोचनजी शोकयुक्त हुये तीन दिन विना अन्नजल पड़ेरहे तब आकाशवाणी हुई कि तिलोचनजी तुम्हारे मनका हेतु बूझकर वह टहलू मैं था जो तुम्हारी इच्छा अबभी हो तो हमको अङ्गीकार है तब तिलोचन जी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ सन्तों ने समझाया सेवा स्मरण भगवत् की करने में लीन हुये ॥

कथा जस्सूस्वामी की ॥

जस्सूस्वामी रहनेवाले दुआवे गङ्गा व यमुना के बीच के भगवद्भक्त हुये खेती से जो लाभ हो सो साधुसेवा में उठादेते एक समय चोर उनके बैल चुरालेगये भगवत् ने जैसे ब्रज में वैसेही बछरा बालक रचकर ब्रह्मा का मोह दूर किया तैसेही बैल जस्सूस्वामी के यहां प्राप्त करदिये फिर चोर सब आये यहां देखा कि वही बैल हैं तब घर दौड़गये वहां वही बैल देखा फिर दौड़आये यहां वही देखा कईवार दौड़े तब चकित होकर स्वामी से सब वृत्तान्त कहा स्वामी ने कहा ये भगवत् के चरित्र हैं तुम अपना काम करो हम अपना काम करते हैं चोरों को दृढ़ विश्वास हुआ बैल लाकर स्वामी को दिये तब माया के बैल गुप्त होगये वो चोर चोरी का धंधा छोड़कर स्वामी के चेले होगये और भगवद्भजन करनेलगे ॥

कथा रामदासजी की ॥

रामदासजी रहनेवाले ब्रज के परमभागवत और साधुसेवी ऐसे हुये जिसप्रकार कमल सूर्य को देखकर फूलता है इसी प्रकार हरिभक्त को देख

कर प्रसन्न हुआ करते थे एकबेर कोई साधु रामदासजी की बड़ाई सुनकर आया पूछा रामदास कहां हैं रामदासजी उठे और उस साधुके चरण धो चरणामृत लेकर विनय किया कि रामदास भी आयाजाता है आप भोजन प्रसाद करें साधु ने कहा हमको रामदास से मिलना है तब विनय किया कि रामदास यहाँ सेवक है साधु बहुत प्रसन्न हुआ चरणों को पकड़ लिया रामदासजी की लड़की के विवाहमें पकवान बनके धरा था साधुकी जमात आगइ ताला तोड़कर साधुओं को भोजन करायदिया साधुसेवा व विहारीलालजी के स्मरण भजन में सारा वयक्रम व्यतीत किया ॥

कथा सन्तभक्त की ॥

सन्तभक्त रहनेवाले जोधपुर के भगवद्भक्त साधुसेवी हुये गांवों में से मांगलाते साधुसेवा करते विख्यात होगये एकदिन साधु आये स्त्री सन्तभक्त की घरमें रही पूछा सन्तभक्त कहां हैं उसने उत्तर दिया चूल्हे में हैं साधुओं ने सुनकर राहली उधरसे सन्तभक्त जो मांगने गये थे आते रहे वहां साधुओं ने पूछा कहां गयेरहे सन्तभक्त की स्त्री ने जो उत्तर दियारहा सो सेवा के प्रभाव करके हृदय विमल होरहा था जानगये थे सोई बात बोले कि चूल्हे में गये थे साधु चकित हुये तब कहा कि चूल्हे में जानेसे यह तात्पर्य है कि प्रभातही से साधुओं को रसोई की चिन्ता होती है कि कब होगा कि उनका सीथ प्रसाद मुझको मिलेगा साधुलोग सुनके बहुत आनन्द हुये उनके घर गये भोजन भजन सत्संग के सुख में मग्न हुए ॥

कथा सेनभक्त की ॥

सेनभक्त जात हज्जाम चेला स्वामी रामानन्द के रहनेवाले माधवगढ़ के ऐसे प्रेमी भक्त हुये कि जैसे गऊ अपने बछड़े की पालना करती है इसी प्रकार उनकी पालना और सहाय प्रभुने करी वृत्तान्त यह है कि सेन साधुसेवी रहे एकदिन तेल लगाने राजा के जाते रहे बाट में साधु मिलगये उन को अपने घरपर लाकर भोजनआदि सेवा में लगे राजा का भय कुछ न रहा जब राजा की सेवा का समय हुआ तब आप भगवत् सेनभक्त का रूप धरके राजा की सेवा तेल मर्दन आदि करके राजा को प्रसन्नकर चलेआये पीछे सेन पहुँचे विलम्ब होनेका अपराध क्षमा कराने लगे भगवत् स्पर्श होने से राजा ने प्रभाव भक्ति का जानलिया सेन के चरणोंमें गिरा उसका चेला होकर भजन करनेलगा अबतक उनके वंशमें सब सेनवंशके चेले होते हैं ॥

कथा सदाव्रती की ॥

साहूकार सदाव्रती वैश्यवर्ण परम भगवद्भक्त हुये साधुसेवा बड़ीप्रीति व विश्वास से किया करते रहे एक साधु उनके घरपर टिका था साहूकार का एक छोटा लड़का कि जिसकी साधु के साथ प्रीति होगई उस साधु के पास खेला करता था उसको एकदिन साधुने जङ्गल में लेजाके मारकर गाड़दिया जब सांझतक लड़का न आया तब उसकी माने पुकार करी ढूँढ़ने दौड़ी तब एक संन्यासी ने साहूकार को वह जगह जहां लड़का गाड़ारहा दिखादी और कहा जो साधु तुम्हारे घर में रहता है उसी ने यह कर्म कियाहै साहूकारने मरना लड़के का अपने कर्म का फल समझ दण्ड देना उस साधु को सेवाधर्म से अयोग्य जानकर उस बात के छिपाने की यह युक्ति विचारी कि उसी संन्यासी को पकड़ा कि तैंनेही मारा है जब संन्यासी व्याकुल हुआ तब साहूकार ने कहा कि यह बात मत कह और इस नगर से चलाजा तो तुझको छोड़देंगे उसने अङ्गीकार किया तब छोड़ दिया जब साहूकारने उससाधुको लज्जित देखा तब उसके संकोच मिटाने के हेतु अपनी स्त्री से विचार पूछा उसने कहा कि जो लड़की बिन व्याही है उसके साथ व्याह दीजाय तो भरोसा साधुके रहने का है दूसरा उपाय देख नहीं पड़ता साहूकार अपनी स्त्री पर बहुत प्रसन्न हुआ और धन्य मानकर उस साधु को बुलाकर पहले अपने भाग्य का खोंट व हरि की इच्छा की बात सब कहकर अपना विचार था सो कहा वह साधु अपने अपकर्म से महाग्लानि को प्राप्तरहा बोला हमारे ऐसे अधर्म पर ऐसी दया अयोग्य है यातना के साथ वध उचित है साहूकार ने समझा बुझा के सावधान करके अपनी लड़की से व्याह करदिया यह वृत्तान्त व यश संसार में फैला तो साहूकार के गुरुने भी भगवत् की आज्ञा से आयके साहूकार का घर पवित्र किया साहूकार ने सेवापूजाको बड़ेआनन्द व हर्ष से किया गुरुने पूछा कि तुम्हारा लड़का कहां है साहूकारने जवाब दिया कि थोड़ेदिन हुये मरगया पूछा कैसे मरा साहूकार बोला कि हे महाराज! आप तो जानतेही हैं कि संसार इसजगत् का नाम है मृत्यु का कौन कारण वर्णन करूँ गुरुने उसी की परीक्षा करी तब लड़का धरती से निकलवाकर जिला दिया सब लोगों को विश्वास भक्ति और साधुसेवा का हुआ ॥

कथा केवलकूवां की ॥

केवलकूवां जाति के कुम्हार ऐसे परमभक्त साधुसेवी हुये कि अपने

कुल को पवित्र करके भगवत् को प्राप्त करदिया एकबेर उनके घर साधु आये घर में कुछ न था चूणभी न मिला नितान्त कुवां खोददेने के प्रबन्धपर एक दूकानदार ने सामग्री रसोईं की दी साधुओं की सेवा करी जब कुवां खोदने लगे तब दशबीस गजपर रेत निकला टूटके सब केवलजी पर पड़ा मरा जानकर सबलोग चलेगये कि हज़ारों मन मिट्टी के नीचे कब जीते होंगे एक मास पीछे किसी ने वहां शब्द राम राम सुनकर गांव में सबसें कहा सब गांव आया हाथों हाथ मिट्टी टालकर देखा केवलजी आसन लगाये बैठे हैं एक लोटा जल आगे धराहै एक ओर महीने दिन के भोजनके पनवाड़े हैं बाजा बजाते घर लाये मिट्टी गिरने से कुछ कुबड़े होगये तब से केवलकूवां विख्यात हुये किसी समय साधु भगवन्तमूर्ति स्थापन करने के लिये जाते रहे केवलजी के घर उतरे वह मनोहर रूप देखकर केवलजी को इच्छा हुई कि हमारे यहां रहते तो अच्छा था प्रभात को साधु मूर्तिको उठा थके न उठी वहांई रही स्थापन करके सेवा करने लगे भसेरागांव जहां केवलजी रहे वह मूर्ति विराजमान है अब तक केवलजी के घरमें है अपने भक्त के हृदय की प्रीति जानकर रहगये इस से जानराय उस मूर्ति का नाम है एकबेर केवलजी को शङ्ख चक्र लेनेको द्वारावती जानेकी इच्छा हुई भगवत् ने आज्ञा की तुमको घर बैठे सब हो जायगा कहीं मत जाओ शरीर पर सब चिह्न होगये ऐसे ऐसे कितनेही प्रभाव केवलजीके हैं समुद्र व गोमती के बीच में बड़ी रेती है जब लहर आवे तब समुद्र गोमती मिलकर रेती जल में होजाय फिर खुलजाय एकसमय लहर आना बन्द होगया रेती खुली रहगई हवासे रेती के उस देशके लोग दुःखी हुये केवलजी की माला गई तब से समुद्र गोमती में मिलनेलगा यह प्रभाव देखकर बहुत लोग चेले केवलजी के हुये भक्ति की रीति उस देश में चली एकदिन केवलजी के घर साधु आये उनके निमित्त उनकी स्त्री ने सूखी रोटी बनाई संयोगवश उस स्त्री का भाई उसी समय आगया उसके निमित्त खीर बनाई केवलजी देखकर उसको पानी लाने को भेजा खीर साधुओं को खिलादी स्त्री ने आनकर क्रोध किया उसको घर से निकाल दिया उसने दूसरा खसम करके बेटा बेटी जन्माया एक समय अकाल पड़ा तब अन्न की व्याकुलता से केवलजी के यहां आई देखा भंडारा चेतरहा है केवलजी को दया आई बोले कि अरी निगोड़ी जो खसम करना अङ्गीकार था तो ऐसा खसम क्यों न किया

जैसा मेरा खसम है कि तेरा खसम भी जिसका भिखारी हुआ केवलजी साधुओं के आने जाने की राह में झाडू देना उसको कहदिया सुकाल हुआ तब विदा करदिया ॥

कथा ग्वालजी की ॥

ग्वालजी परमभक्त साधुसेवी हुये अपने उद्यमसे जो कुछ लाभ होता साधुओं की सेवा करते एकसमय वनमें साधुसेवा में रहे उनकी भैंस चोर लेगये घरमें अपनी मा से कहा कि एक ब्राह्मण घीके दाम समेत भैंसको देनेका प्रबन्ध करके लेगयाहै मा उनकी जानगई पर कुछ न बोली पुत्र स्नेह करके एकदिन दीपदान को चोरों ने भैंसके गलेमें चांदी की हँसुली डाली भगवत् जोकि ब्राह्मणों के ब्राह्मण हैं रस्सी तोड़कर भैंस को ग्वाल की हँसुली समेत पहुँचायगया ॥

कथा गोपालजी की ॥

गोपालजी भक्त कृष्ण उपासक जयपुर के राज्यमें हुये साधुसेवा की उनकी बड़ी ख्याति हुई तब उनके कुल में कोई विरक्त होगया रहा सो परीक्षा लेने को आया अच्छे प्रकार उनकी सेवा करी घरमें भोजन कराने को लेगये उन्होंने कहा स्त्री को हम नहीं देखते गोपाल ने कहा सब अलग होजायँगी भोजन करनेलगे तो झरोखे से भक्तकी स्त्री दर्शन करने लगी तब विरक्त ने एक तमाचा गोपाल के मुँहपर एक ओर मारा दूसरी ओर बाकीरहा उसे फेरकर विनय किया कि इसको भी पवित्र करिये वह विरक्त बोला कि ऐसेही वंश से कुलका उद्धार होता है ॥

कथा गोपालविष्णुदास की ॥

गोपालजी रहनेवाले बाबुली काशी के समीप व विष्णुदास रहनेवाले काश्मीर देश दक्षिण के दोनों गुरुभाई भक्तों की सेवा परमभाव से करते थे और जो कुछ धर्म अच्युतगोत्रके कुल को चाहिये सो दोनों भाइयों ने ऐसा पालन किया कि विख्यात होगये भण्डारे महोत्साह में जो कोई उन को बुलाते तो गाड़ों में सामग्री भरके लेजाते कि कोई बात की घटी आने से भण्डारेवाले की निन्दा न होय गुरु उनके सिद्ध थे दोनों भाइयों ने विनय किया कि आज्ञा हो तो महोत्साह करें गुरुने आज्ञादी और बुलाने के निमित्त अपने चारों ओर जल डालकर बोले कि तुम सामा महोत्साह की बनाओ जो दिन उत्साहका है उसदिन सबसाधु आवेंगे गुरुके वचन पर निश्चयकर किसी को बुलाने को कहीं न भेजा सामग्री को इकट्ठा

किया उस दिन पर सारे संसार के साधु पहुँचे सबकी रीति मर्यादकर भण्डारा बड़ी धूमधाम से हुआ पांच दिनतक भांति भांति के भोजन करवाये सबको वस्त्र द्रव्य भेंट किया गुरुने आज्ञा की कि इस मेले में नामदेवजी व कबीरजी भी आये हैं पता बतलादिया व कहा कि दोनों महापुरुषों का दर्शन कर आओ दोनों भाई दौड़े नामदेवजी का चरण प्रीति से पकड़लिया नामदेवजी कृपा करके बोले कि जहां भगवद्भक्तों की प्रीति नहीं तहां हम नहीं जाते जहां प्रीति व सेवा भक्तों की होती है तहां निश्चय करके आते हैं तुम्हारी साधुसेवा देखकर बहुत प्रसन्न हुये अब तुम कबीरजी का भी दर्शन करो तब दोनों भाइयों ने राह में कबीरजी का दर्शन किया उन्होंने भी वैसेही कृपा की विदा होकर दोनों भाई गुरु के निकट आये भगवत् से मिलनेका दृढ़ अवलम्ब साधुसेवा को समझ कर स्मरण भजन करते रहे ॥

कथा गणेशदेई रानी की ॥

रानी गणेशदेई मधुकरसाह राजा ओड़छे की धर्मपत्नी भगवद्भक्ति में अद्वैत रही राज्य से जो मिलै साधुसेवा में लगाती एक साधु ने धन के ठिकाने की जगह रानी से पूछा रानी ने कहा साधुसेवा धन्य है तिसपर रानी की जानु में छूरी मारकर वह साधु भागगया कितने दिनों रानी बहाना रजोधर्म व बेचैनी शरीर की करके राजाकी सेजपर न गई इसहेतु कि यह घाव देखकर राजा सब साधु से भाव घटादेगा नितान्त राजाके पास गई देखकर राजाने पूछा तब वृत्तान्त कहा राजा अतिप्रसन्न हुये अपना भाग्य सराहा ॥

कथा लाखाभक्त की ॥

लाखाभक्त हनूमान्‌वंश में रहनेवाले मारवाड़देशके हंस के सदृश हुये राममन्त्रोपासक साधुसेवी विख्यात हुये अकाल पड़ा साधुओं का आना जाना बहुत हुआ दूसरी जगह कहीं जा बैठनेका विचार किया भगवत् ने स्वप्न में कहा कि इसी जगह रहो प्रभात एक गाड़ी गेहूं और एक भैंस आवेगी गेहूं तो कोठी में रखना जितना प्रयोजन होगा उतना निकलता रहेगा घटेगा नहीं व घी, दूध, मट्ठा भैंस से होगा जब प्रभात हुआ तब गेहूं व भैंस एक आदमी पहुँचाय गया लाखा शुचि जीते होकर साधु सेवा करते रहे उस भैंस व गेहूं के पहुँचाने के हेतु भगवत् ने यह चरित्र किया कि किसी ने किसीको बोलमारा कि देखेंगे तू गेहूँ व भैंस लाखा-

भक्त को देखआवेगा वही देगया फिर लाखा साष्टाङ्गदण्डवत् करते एक सुमिरणी भेंट लेकर जगन्नाथजी गये थोड़ी दूर जब मन्दिर रहा जगन्नाथ-राय ने पालकी भेजकर दर्शन दिये सुमिरणी अङ्गीकार की कुछदिन पुरी में रहे एक लड़की कुँवारी रही साधुसेवा के लालच ब्याह में चित्त उठा विना रुपया कौन करे जगन्नाथजी ने आज्ञा दी हमारे भण्डार से लेकर ब्याह करो अङ्गीकार न किया पुरी से चलखड़े हुये तब जगन्नाथजी ने एक राजा को स्वप्न दिया तब उसने एक हज़ार मुद्रा भेंट किया भगवत् आज्ञा जानी अङ्गीकार किया घर आनिकै लड़की का ब्याहकर जो बचा साधुओं की सेवामें लगाया ॥

कथा रसिकमुरारिकी ॥

रसिकमुरारिजी परमभक्त हुये सेवा पूजा उत्साहसहित करते व प्रिया प्रियतमके रङ्गमें रँगे युगलछवि माधुरी के आनन्द में मग्न रहा करते सदा चरणामृत पीते जल नहीं एक समय भण्डारा हुआ चरणामृत सन्तों का लिया स्वादु न पाया कारण ले आनेवाले से पूछा तो एक कुष्ठी साधु का चरणामृत घृणा से नहीं उतारा था उसका भी चरणामृत उतर आया तब स्वादु पाया एक साधु ने अपने सोंटेका भी पारस मांगा न पाया तब जाकर पत्तल आधी खाई रसिकमुरारिजी के शिरपर मारा उससमय बारह राजा चेले मुरारिजीके उसको मनाने को उठे सबको मना करके आप जाकर विनय करी कि आज सीथ प्रसाद कृपाकर आपने दिया और दिन चरणा-मृत मिलता था यह कहकर कई पारस दिलवाये एकबेर बगीचे में साधु उतरे आपके जानेपर एक साधु हुक्का पीता रहा संकोचकर छिपाया आपने देखकर आदमियों से कहा हुक्का भरला दर्द होताहै जब आया तब थोड़ा पीकर उस साधु को दिया उसे साधुने पिया एक बेर जागीर के गांव दोचार रहे सो राजा ने निकाल लिये श्यामानन्द गुरुदेव ने लिखा जिस दशामें हो वैसेही आओ भोजन कर उठेथे जूठेही हाथ मुँह गुरु के पास पहुँचे गुरु ने प्रसन्न होकर राजा के पास जानेको आज्ञा दी जब राजा से भेंट करने चले पालकी में तब राजा ने एक बौड़हा मत्तहाथी राह में छुड़वा दिया सब भाग गये कहारभी भागे तब हाथी से कहा कि हरे कृष्ण, हरे कृष्ण क्यों नहीं कहता सुनतेही वह हाथी शोरगुल सब छोड़कर चरणोंपर मस्तक झुकाकर आंखों से जल प्रेम का गिराने लगा गोसाईं ने माला गले में पैन्हाकर भगवन्नाम कान में उपदेशकर गोपालदास नाम रख दिया राजा

सुनके दुष्टता छोड़ चरणों में आनकर गिरा अपराध क्षमा कराय चेला हुआ गांव छोड़दिये और भी दिये हाथी साधुसेवा करनेलगा वनजारों की जिन्स लाकर भण्डारा महोत्साह करता सबकी हानि का वृत्तान्त जब पहुँचा तब गोसाईंजी ने हाथी को समझा दिया तब से पांच सात सौ की जमात साधुओंकी लेकर महन्त के डौल से रामत करने लगा जहां पड़ें तहां भेंट व सामग्री सबकोई पहुँचाय देते यह वृत्तान्त संसार में विख्यात हुआ देशके आमिल ने भी सुना पकड़ने का उपाय किया हाथ न आया एक कोई साधु का रूप बनाकर सहज में ले आया कारागार में बन्धन किया वह गोपालदास विना भगवत्प्रसाद व सीथप्रसाद के कुछ और नहीं खाता रहा तीनदिन बिन अन्नजल खड़ा रहा आमिल ने कहा कि गङ्गा जी में ले जाव गङ्गाजल तो पान करेगा जब गङ्गा में गया तो शरीर को छोड़ परमधाम को गया यहां एकबात अति कोमल व सूक्ष्म भी है एक कारण करके वर्णन नहीं करसक्ता सब कोई अपने अभिलाप व विश्वास के अनुकूल समझलेवें गो ब्राह्मण व हरिभक्त और हरिभक्तों की कृपा ॥

कथा मनसुखदास की ॥

मनसुखदासजी जाति कायस्थ ऐसे भगवद्भक्त हुये जिनको भगवत् ने साक्षात् दर्शन दिये साधुसेवा में बड़ी प्रीति रही कंगालता आयगई उपवासों से दिन कटतेथे ऐसी दशा में किसी दुष्ट के बहकाने से एक साधु ने मिठाई का भोजन मांगा तब स्त्री से आपने उपाय पूछा उसने नाक में से नथ उतारकर हाथपर रखदी गहने धरके साधुसेवा की भगवत् मनसुखदास के रूपसे रुपया देकर नथ बनियां के यहां से लाये वह बड़भागिनी चौका देती रही बोली पहिनादेव प्रभुने श्रीहस्त से पहिनाई मनसुखदास से स्त्री की भक्ति अधिक जानकर स्त्रीको दर्शन दिया क्योंकि ऐसी दरिद्रता में तनु में केवल एक गहना सोभी नाक का जिस करके सुहागिन कहलाती है सो उतार दिया साधुसेवा को किया तो भगवत् क्यों न दर्शन दें जब मनसुखदास ने देखा सब वृत्तान्त सुना तो जाना भगवत् के चरित्र हैं सब बातें समझकर आनन्द में मग्न होगये अब अपने भाग्य को सोचने लगे स्त्री के भाग्य को धन्य माना अन्नजल छोड़कर दर्शन की अभिलाषाकर भजन करनेलगे स्वप्न हुआ काशी में दर्शन होगा वहां जाकर काशी में भजन करनेलगे चतुर्भुजरूप से प्रभुने दर्शन दिये वर यही मांगा कि यही रूप मन में बसारहे अन्त में उसी रूप को प्राप्त हुये ॥

कथा हरिपाल निष्कञ्चन की ॥

हरिपाल ब्राह्मण ऐसे भक्त और साधुसेवी हुये कि धन सब साधुसेवा में उठाय दिया ऋण से जहांतक मिला वहभी साधुसेवा में उठाया भगवद्भक्तों को खिलादिया निष्कञ्चन विख्यात हुये तब चोरी ठगी करने लगे जिसको तिलक कण्ठी अथवा भक्त जाने तिससे न बोलैं भगवत्सेवी मुख्य जानते तिसको हाथ न लगाते एक जमात साधुओं की आई टिका कर भोजन की सामग्री की चिन्ता में निकले कुछ हाथ न लगा विकल हुये भगवत्को भी भक्तों के विकल होनेसे चिन्ता हुई द्वारका से रुक्मिणीजी समेत चले श्रीकृष्णजी साहूकारके रूप रुक्मिणी साहूकारिणी के रूप से आये निष्कञ्चनजी से कहा कि उस गांव तक पहुँचा देव एक रुपया दिया निष्कञ्चनजी तीर कमान लेकर चले पन्थ में सोचने लगे कि यह साहूकार अच्छा चिकना चांदना मोटा ताजा है और भगवत् से विमुख दिखाई पड़ताहै कि तिलक माला नहीं रखता इसका माल लेना चाहिये जङ्गल में पहुँचे तब तरवार खींच डरवा कर सब आभूषण उतरवा लिया एक छल्ला साहूकारिणी की अँगुली में रहगया निष्कञ्चनजी उसको भी बल करके उतारने लगे साहूकारिणी बोली अरे निगोड़े तू बड़ा बेदर्द व कठोर है कि मेरा सारा गहना लेलिया अब एक छल्ले के कारण मेरी अंगुली मरोड़ता है निष्कञ्चनजी बोले चल बावली कहां की कठोरता और कोमलता लाई है तेरा खसम तुझको सौ छल्ले गढ़ा देगा मैं इस छल्ले बिना दश हरिभक्तों की सेवा कहांसे करूँगा यह सुनतेही आप प्रभु प्रकट हो छाती से लगाकर राजा यह पदवी निष्कञ्चन को देकर अन्तर्द्धान हो गये अब विचारना चाहिये साधुसेवा की महिमा को जिसके प्रभाव करके पापकर्म पुण्यरूप और भगवत् जो काल का भी काल और भय का भी भय है सो वशीभूत होकर भक्त के मनोरथ पूर्ण करनेको निजधाम छोड़कर आता है ॥

कथा हरीराम की ॥

हरीरामजी ऐसे भगवद्भक्त रहे कि भजन के आगे सर्वसाधन तुच्छ समझते रहे बड़े प्रतापी व बुद्धिमान् चतुर व प्रेम की मूर्ति रहे और प्रिया प्रियतम के ध्यान में दिन रात व्यतीत होता रहा व साधुसेवा का वर्णन उनका कौन करसके एक साधुकी धरती एक संन्यासी ने राजा के समीप बैठने व राजा की मित्रता के गर्व से छीनली उनने राजा के सम्मुख दुःख

निवेदन किया तो धरती न मिली और धक्के पाये तब उस साधु ने हरी-रामजी से वृत्तान्त कहा हरीरामजी ने राजा के आगे जाकर वृत्तान्त निवेदन कराया जब न माना तब वचन कठोर भगवद्भक्तों का व दुष्टों का हिरण्यकशिपु आदिका कह धरती साधु को दिलाई सच है कि सन्त जन काल यम किसी से नहीं डरते राजा की कितनी बात है ॥

कथा रानी व राजा की ॥

एक राजा परमभागवत साधुसेवी ऐसा हुआ कि साधुओं की भीड़ उसके यहां बनी रहती थी अपने हाथ सेवा करता एक महन्त परमभक्त और ज्ञानी से बड़ी प्रीति होगई जाने नहीं देते एक वर्षपर्यन्त महन्त टिके रहे प्रभात जानेका निश्चय किया राजाने बहुत विकल होकर रानी से कहा रानी ने देखा कि महन्त के जाने से राजा नहीं जीवेगा तब विचार किया कि लड़के को विष दे कि इस हेतु कुछ दिन महन्त ठहर जायँगे सोई किया राजमन्दिर से महारुदन की ध्वनि हुई महन्त भी दौड़कर गये लड़के को श्याम देखा जाना कि विष दियाहै वृत्तान्त पूछते पूछते राजा ने कहा तब महन्त उनके प्रेम को समझकर बेसुध होकर मग्न होगये सब साधुओं को बुलाकर भजन प्रारम्भ किया थोड़ी विलम्ब में लड़का जी उठा खेलने लगा फिर महन्त साधुओं को बिदाकर आप राजा रानी के प्रेममें बँधकर रहगये सच है जो जन भगवद्भक्तों की महिमा और सत्संग के सुख को जानते हैं उनको वियोग भगवद्भक्तों का करोड़ नरक के दुःख से भी अधिक दुःख देनेवाला है ॥

कथा एक राजाकी लड़की की ॥

एक भक्त साधुसेवी राजाकी लड़की जो ऐसे विमुख के साथ व्याही गई कि वह कुछ न जानताथा कि भगवत् व भक्ति व साधु किसको कहते हैं अपने ससुराल में गई तब अतिविकल भई साधुका दर्शन दुर्लभ हुआ तब एक लौंडी से कहा कि जब साधु आवें तब कहना एक जमात साधुओं की बाटिका में उतरी सुनकर उस लड़कीने अपना दो तीन वर्ष का लड़का रहा उसको विष दिया मरगया राजा उसका खसम रोदन करनेलगा तब वह लड़की बोली कि मैके में हमने देखा है साधु के चरणामृत से लड़का निस्संदेह जियेगा उसने कहा साधु कैसे होते हैं तब लौंड़ी के साथ कर दिया उसने दण्डवत् आदि की विधि जनादिया वह जाकर साधुओं को दण्डवत् बन्दन कर साधुओं को घर लाया उस लड़की ने दर्शनकर धन्य

माना साधुलोगों ने चरणामृत मुख में लड़के के देकर भगवत् ध्यान व भजन प्रारम्भ किया लड़का उठ बैठा वह राजा भगवद्भक्त होकर उस देश को भक्त किया देखा चाहिये सत्संग की महिमा को एक लड़की बड़भागिनी के प्रताप से कितने लोगों का उद्धार हुआ और भगवद्भक्त जन्म व मरण का दुःख दूर करके लाखों करोड़ों को अमर करदेते हैं एक लड़का जिला दिया तो क्या बड़ी बात है ॥

कथा नीवांजी की ॥

नीवांजी राजपूत ऐसे भगवद्भक्त साधुसेवी हुये कि जे भक्त उनके घर आवें अतिप्रेमसे उनको दण्डवत् कर चरणोंको धोकर अपने घर ठहराते जगह २ कथा बैठाकर अपनी मधुरवाणी और सेवा से प्रसन्न रखते इसी प्रकार जबतक रहे वयक्रमभर उनके प्रेम को भगवत् ने निबाहा ॥

कथा कृष्णदासजी की ॥

कृष्णदासजी गलताजी जयपुर के राज्य में भगवद्भक्त हुये रघुनन्दन स्वामी के चरणकमल में मन भँवर की भांति लगाये रहते सुख, दुःख, शत्रु, मित्र बराबर जानते स्त्री को नहीं देखते अभ्यागत की सेवा करते कलियुग को मानो जीतलिया जो दधीचि ऋषीश्वर ने किया सो किया एकदिन गुफ़ा में बैठे भजन करते द्वारपर व्याघ्र आया अभ्यागत जानकर अपने जानु का मांस काट के डालदिया भगवत् ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया विचार करना चाहिये इस धर्म को अब हमलोग थोड़ा सा पानी और चुटकी आटा देते रोते हैं ॥

कथा राजाबाई की ॥

राजाबाई धर्मपत्नी रामराजा पुत्र खेमाल भगवत् और गुरु और भक्तों की ऐसी भक्ति व सेवा करनेवाली हुई कि सन्तोंने कृपा करके दोनों लोकसे निर्भय करदिया और जिसने अपने स्वामी की शिक्षा के अनुकूल आचरण किया और नवधा भक्ति को मुख्यतर समझकर अन्यधर्म सब छोड़ दिये और उस भक्ति की प्राप्ति का हेतु सिवाय भगवद्भक्तों की प्रीतिके दूसरा न जानकर सार असार के मूल तत्त्वको अच्छे पहुँचकर भगवत् की अनन्यदास्यता में दृढ़ हुई उदारता इतनी रही कि एकबेर अपने पति के सङ्ग मथुराजी गई वहां सब धन जो पास रहा साधु ब्राह्मणों को देदिया कुछ राहके निर्वाह को भी न रक्खा उसीसमय नाभाजी कर्त्ता भक्तमाल के आगये हाथों में केवल कड़े एकसौ पाँच रुपये के दाम

के रहगये थे जो बेचकर घर जाने का विचार किया था उसको रानी साहबने भेंट करदिया और राजा से कहा आजतक शरीरपर बोझ रहा आज काम आया राजा प्रसन्न हुये किसी प्रकार करके राजधानी पर पहुँचे सत्य है कि जिसने साधुसेवा के समय कल्ह की चिन्ता को किया सो साधुसेवा क्या करेगा ॥

कथा नन्ददासजीकी ॥

नन्ददास ब्राह्मण रहनेवाले बरेली के परमभक्त साधुसेवी हुये खेती से जो लाभ होता साधुसेवा भगवत् उत्साह में लगादेते एक दुष्ट विमुखने एक मरी बछिया उनके खेतमें डालकर उनको हत्या लगाई नन्ददासजी ने उसको जिलादिया सबको भक्ति का निश्चय व विश्वास हुआ ॥

कथा हरिदासजीकी ॥

हरिदासजी योगानन्द महाराज के वंश में परमभक्त हुये वामनजी की भांति उनकी भक्ति थोड़े ही कालमें बढ़गई साधु के अपराध कबहूं चित्त पर न लाये भक्तों को गुरुतुल्य जानते तिलक माला से अत्यन्त प्रीति रही रघुनन्दन महाराज के उपासक व गृह में रहनेपर वैराग्य जनक महाराजके सदृश रहा ॥

कथा कान्हड़जी की ॥

कान्हड़ विट्ठलदासजी के पुत्र जात के चौबे रहनेवाले मथुरा के भगवत् महोत्साह ऐसा करते रहे कि चारों वर्ण चारों आश्रम और कङ्गाल व राजा सब इकट्ठे उस महोत्साह में होते रहे सबका शिष्टाचार करते कोई विमुख न जाता चन्दन पान व वस्त्र से भगवद्भक्तों की सेवा सत्कार करते और समाज ऐसी होती मानो अमृत की वर्षा होती है जब भगवद्भक्तों को सेवा सत्कार करके बिदा करते तो प्रेममें बेसुध होजाते रहे सो कारण दो प्रकार का समझ में आता है एक तो भक्तों का वियोग कि अपने को बड़भागी जानकर प्रेम में मग्न होजाते रहे और उसी महोत्साह में सब कोई इकट्ठे होकर नाभाजी जिन्होंने भक्तमाल रचना किया उनको गोसाईं पदवी दी थी ॥

कथा माधवग्वाल की ॥

माधवग्वाल ऐसे भक्त साधुसेवी हुये कि दिन रात भगवद्भक्तों के सुख के हेतु चिन्ता रहती थी व नवप्रकार की नवधा भक्ति दशवीं प्रेमलक्षणा सोई मानसर है तिसके मराल थे सबकी भलाई की चाहना सदा भग-

वच्चरित्रोंके स्मरण में रहते क्षमाशील सबसे बराबर सबके मित्र व निर्मल चित्त प्रेम की खानि हुये ॥

कथा गोपाली की ॥

गोपाली गिरिधरग्वाल कि जिसका वर्णन वेषनिष्ठा में होगा तिसकी माता भगवद्भक्तों के पालने को यशोदा का अवतार हुई मनमोहन महाराज से ऐसी प्रीति रही कि ब्रजचन्द्र महाराज के माधुर्यरस और प्रेम भक्तिके रङ्गमें भरीहुई दिन रात श्रीगोविन्द श्रीगोविन्द यही ध्वनि लगी रहती थी सन्तों के चरणों में दृढ़ प्रीति रही ॥

निष्ठा चौथी ॥

माहात्म्य श्रवण जिसमें चार भक्तों की कथा ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमल की कमलरेखा को और कपिलदेव अवतार को दण्डवत् है कि जगत् के उद्धार के हेतु सांख्यशास्त्र का तत्त्व विचार करके फैलाया भगवच्चरित्रों का सुनना उद्धार व भगवत् पद प्राप्ति के हेतु और जबतक उन चरित्रों को न सुनेगा तो भगवत् में मन किस प्रकार लगेगा ध्यान व मन्त्र का जप और पूजा व मनन व व्रत व नेम आदि सब साधन का सम्बन्ध केवल श्रवण से है कि जब गुरु और शास्त्रों से सुना तब उसके अनुकूल साधन किया और अच्छे प्रकार विचार करके देखा जाता है तो सम्पूर्ण कार्य यह लोक व परलोक के श्रवण को पायकर प्रवर्तमान हुये व होते हैं ब्रह्माजी को भगवत् ने सृष्टि रचने की आज्ञा दी तो कुछ न होसका जब शब्द तप करने का सुना और उसके अनुकूल साधन किया तब इस संसार की रचना की कोई मतान्तर वाले नाद ब्रह्मका सुननाही मुक्ति मानते हैं कि भागवत में इसका वृत्तान्त लिखा है और यहां उसके वर्णन का प्रयोजन नहीं समझा क्योंकि यह पथ और है और वह इस पथ से अलग है अभिप्राय यह कि विना सुने कुछ नहीं होसक्ता और भगवत् के मिलने को तो सिवाय भगवच्चरित्र श्रवण के और कोई मार्ग सुखसाध्य नहीं महिमा सत्संग की जो ठौर ठौर शास्त्र व पुराणों में लिखी है उससे यही तात्पर्य है कि भगवच्चरित्र सुने और शीघ्र भगवत्पद को प्राप्त हो भगवत् महिमा श्रवणनिष्ठा कि आप निज श्रीमुखसे वर्णन किया व पुराणों में ठौर ठौर लिखा है हरिवंश में लिखा है कि जहां भगवत् कथा को सुनते हैं वहां वेद और

सब शास्त्र प्राप्त रहते हैं जिनको मुक्तिकी चाहना होवे भगवत् कथा सुनें भागवत का वचन है कि जो भगवत् कथारूपी अमृत को कर्णपुट करके पान करते हैं वे सब पापों को दूरकर भगवत्परमपद को जाते हैं फिर भागवत में लिखा है कि जो कोई भाग्यहीन भगवत्कथा को छोड़कर निन्दित सारहीन कथा श्रवण करते हैं वे लोग ऐसे हैं जिस प्रकार शूकर की विष्ठा में रुचि होती है और अच्छे प्रकार विचार करना चाहिये कि जो कोई भक्त हुये अथवा अब हैं व आगे होंगे वह सब प्रताप श्रवण का है यद्यपि सुनना भगवच्चरित्रों का सब प्रकार मङ्गलरूप है परन्तु जो विधिपूर्वक विश्वास करके सुने तो उसका क्या कहना है यह कि व्यासको भगवत्रूप जाने व हरिचरित्रों और उस शास्त्र में हृदय से प्रेम हो व सुनकर समझकर अच्छे प्रकार मनन करे और उसके अनुकूल बर्ते भागवतकथा से तृप्ति न होय ऐसी प्रीति होवे हरिचरित्रों को नित नवीन समझे यह नहीं कि एकबार जो सुना उसके सुनने का क्या प्रयोजन है पृथुमहाराज ने भगवच्चरित्रों के सुनने को दशहज़ार कान मांगे भागवत से नवधाभक्ति में जो प्रथम श्रवण लिखा है सो यही अभिप्राय है कि विना श्रवण भगवच्चरित्रों के भक्ति प्राप्ति नहीं होती यद्यपि आपस की वार्त्तालाप में भगवच्चरित्रों का सुनना व विष्णुपद आदि का श्रवण सब श्रवणनिष्ठाहीं में प्राप्त होते हैं पर दुष्टतर श्रवण वह है कि भगद्भक्तों के सत्संग में चरित्र सुने जावें किस हेतु कि उस श्रवण का साधन भी वहां प्राप्त होता है और जो कुछ संदेह व भ्रम होता है सो तुरन्त निवृत्त होजाता है अथवा पुराण आदि की कथा कराना यह भी अच्छी रीति श्रवण की है किस हेतु कि आपसे आप सत्संग लाभ होता है सो कथा कराने की रीति कहीं कहीं है पर जो लोग ऐश्वर्यवान् और सरदार और मुलाज़िम सरकार हैं उनकी कथा कराने का वृत्तान्त अद्भुत है थोड़ासा लिखता हूं प्रथम तो भगवच्चरित्रों में किसीकी प्रीति ही नहीं वरु कोई कोई मन्दभागियों का यह वचन है कि साहब कथा सुनने से क्या होता है? करणी प्रमाण है और उन दुष्टों असुरबुद्धियों को इस बात का विचार नहीं कि लिखना पढ़ना व व्यवहार के काम करने व चतुराई सम्पूर्ण कार्य लेन देन व कार्य सरकारी आदि सब श्रवण के अवलम्ब से उनके ज्ञान ध्यान में आये हैं तो जबतक भगवत् कथा न सुनेंगे तबतक भगवत्का रूप किस प्रकार से बुद्धि में आवेगा और किसी

के कुल में यह वृत्तान्त अपनी आंखों से नहीं देखा कि कभी उनके कुल में कथा नहीं हुई बरु अमङ्गल और कारण आजाने किसी उत्पात और मरजाने किसी प्रियबन्धु का समझते हैं सो ऐसी बुद्धि और बोलन उन की उनके सत्यानाश जानेके निमित्त है जो किसी ने गला दबाने से अथवा संकोच से किसीकी कथा कहलाई तो ऐसे आदमी से कि इकट्ठेका रहने वाला भड़कदार अथवा पुरोहित अथवा लड़काईं की जवानी का यार अथवा सदासेवी होवे किसी प्रेमी व भगवद्भक्त को ढूंढ़कर कहलाने की तो कुछ बातही नहीं भला, अब जब कथा प्रारम्भ हुई तो कोई सुननेको नहीं आता कोई सावकाश नहीं पानेकी बात कहता है कोई कार्य की भीड़का परिश्रम बतलाता है कोई कहता है कि क्या हमने पाप किया है जो कथा सुनें और कोई कहता है कि जिस दिन सम्पूर्ण होगी उस दिन आजावेंगे और कोई अपने आपको बड़ा आदमी अथवा बड़ा ओहदेवाला समझकर कङ्गाल अथवा छोटे ओहदेवाला जानकर उसकी कथामें नहीं जाता और देखिये तो उन साहबोंको सिवाय शतरञ्ज व गञ्जीफा खेलने व कुत्सित कथा कहने व खेलकूद नाच तमाशा देखने और ऐसेही ऐसे प्रकार के निष्फल आचरणों के सिवाय और कुछ काम नहीं और जो भाग्यवश कोई संयोग से चला भी गया तो तनक मन न लगा और जातेही निद्रा विलास में प्राप्त हुये और जब और किसीने पूछा तो कथा और पण्डित दोनों की निन्दा करने लगे बस वह कथा कहलानेवाला अकेला सुनता रहा जब समाप्त होनेका दिन आया और उन लोगों को बुलाया तो दशबीस बारके बुलाने से निज रुपया चढ़ाने के समय आये इसहेतु कि कोई अक्षर कान में न पड़जाय और जो कथा के पूर्ण होने में कुछ विलम्ब हुआ तो बुलाने वाले आदमी पर क्रोध किया कि इतना पहले क्यों बुला लाया और कोई पण्डितजी से कहता है कि महाराज शीघ्रता करो संध्या निकट आई और कोई गरदन उठाकर पत्रेकी पांती देखता है कि लालपांती अन्तकी आई कि नहीं और कोई उस घरके अधिष्ठातासे कहता है कि आरती आदिकी सामान सावधानी से तैयार कररक्खो कि विलम्ब न हो और कोई मनही मनमें कहता है कि किस उत्पात में आन फँसे और किसी ने मुद्राही भेज दिया और चरण को दुःख न दिया किसी प्रकार इस वृत्तान्त से कथा पूरी हुई पर इतना और भी अधिक है कि जो वश चला तो खोटा रुपया चढ़ा गये वाह क्या बड़ाई कीजिये कि जो नाच में जावें तो स्वप्न में भी नींद

न आवें और उसके प्रेम में भूख प्यास सब भूलजावें और सबसे पहले जाबैठें और भगवच्चरित्रों के सुननेका और कथा में जानेका यह वृत्तान्त कि मानो किसीने तोप के मुखपर खड़ा करदिया हो हाथ बांधकर यह बिनती है कि इस अवगुणी ने अपना वृत्तान्त लिखा है किसी को दुःख न होय यह वृत्तान्त मेरा करोड़ भागों में से एक भाग है हे श्रीकृष्णस्वामी ! हे दीनवत्सल ! हे प्रणतारतभञ्जन ! हे दीनबन्धु ! कोई दिन ऐसा भी आवेगा कि आपके चरित्र पवित्र तो चन्द्रमा के सदृश होंगे और मेरा मन चकोर की भांति और कौन वह घड़ी होगी कि आपके रूप अनूप का चिन्तन और ध्यान ऐश्वर्य व धन सदृश होगा और मेरा मन लालची पुरुष के शदृश है हे करुणाकर, महाराज ! जो अपनी भाग्यहीनता और अपराधों को विचार करता हूं तो करोड़ों जन्मतक कुछ ठिकाना नहीं दीखता और पतितपावन दीनवत्सल अधमउधारण करुणानिधान आदि नामों पर दृष्टि होती है तो कोई चिन्ता और भयका स्थान नहीं पर इसमें भी एक कटाक्ष यह है कि यह लिपि मेरी केवल नाममात्र को है कुछ मनसे नहीं जो अपनी इस लिपिपर दृढ़ होकर सन्तुष्ट रहा तौभी बेड़ा पार है कहांतक विनय करूं जो कर्म मेरे हैं उनमें ऐसा एक भी नहीं कि जिसके अवलम्ब से आपके अङ्गीकार योग्य हूं अब इतनीही विनय बहुत है कि जैसा हूं आपका हूं यह रससमाज आपके चरित्र का जो मेरे हृदय के नेत्रों में झलके तो मेरे बराबर भाग्य कौनका है कि वृषभानुनन्दिनी व्रजचन्दिनी जीको यह समाचार पहुँचा कि नन्दनन्दन व्रजचन्द्र महाराजसामान होली खेलने की लेकर बड़ी धूमधाम से सहस्रों लाखों अपने सखा और मित्रों के सहित समीप आन पहुँचे तो तुरन्त करोड़ों सखियों और रङ्ग गुलाल आदि सहित परमआनन्द में भरी हुई गाती बजाती चलीं जब मानसरोवर के निकट पहुँचीं तो नन्दनन्दन महाराज का यूथ आन पहुँचा और दोनों ओरसे वर्षा रङ्ग की कि जिसमें गुलाब व केवड़े व कस्तूरी व केशर व चन्दन आदिकी सुगन्ध से सुगन्धित था आरम्भ हुआ तिस पीछे कुमकुमे जोकि अबीर और गुलाल लाल श्वेत पीले हरे अब्बासी व गुलाबी से भरेहुये थे चलाये यह वृत्तान्त तो दूरसे बीता जब दोनों यूथ मिलगये तो इस धूम व घनघमण्ड से रङ्ग की वर्षा और गुलाल मलने और आपस पर डालने की भीड़ हुई कि धरती व आकाश रङ्गीन होकर आनन्दरूप होगया और सामान सब प्रकार की लाड़िलीजी के यूथ में बहुत थी

और सेना विजयरूप भी बहुत सजी हुई कि उनमें ललिता व विशाखा व श्यामला व श्रीमती व धन्या व पद्मा व भद्रा व चन्द्रावली हज़ारों लाखों सखी सहेलियों की यूथेश्वरियों सहित रहीं इस हेतु व्रजकिशोरीजी का यूथ प्रबल पड़ा और यद्यपि नटनागर महाराज की ओर भी श्रीदामा व मधु व मङ्गल व सुबल व सुबाहु व अर्जुन व भोज व मण्डल यूथेश्वर बहुत सखा और बालगोपालसहित था पर लाघवता व चटकई व हस्तक्रिया की तीक्ष्णता के कारण दूसरी ओर किये सब निबल पड़े और व्रजकिशोरीजी की ओर सहाय भी पहुँची कि ब्रह्माणी और पार्वती व इन्द्राणी आदि जो विमानों पर आरूढ़ होकर इस आनन्द के देखने के निमित्त आईथीं व्रजनागरीजी की प्रसन्नता के हेतु रङ्ग व गुलाल और कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा करनेलगीं यह वृत्तान्त हुआ कि एक एक नन्दनन्दनजी के सखाको दशदश व्रजनागरियों ने घेरलिया और रङ्ग डालने व गुलाल मलने से सबका हाथ बन्द करके अपनी लाघवता व हस्तक्रिया की तीक्ष्णता व अनूप सुन्दरता व मन्द मुसुक्यान व कटाक्ष तिरछी चितवन की फांस में सबको बांधलिया नन्दकिशोर महाराज को वृषभानुनन्दिनीजीने पकड़ा और गले में हाथ डालकर अपनी ओर खींच लिया और ललिता विशाखा व धन्याआदि जो समीप रहीं उनकी सहाय से व्रजचन्द्र छूटने न पाये सबने मिलकर रङ्ग व गुलाल से अच्छीभांति सेवा करी तब चन्द्रावली कि लाड़िलीजी से प्रतिकूल रही यह दशा देखकर आप आई और व्रजकिशोर महाराज से कहा कि सावधान हो हम तुम्हारी सहाय को सामासहित आनपहुँचीं सो चन्द्रावलीजी की कृपा से व्रजनागर महाराज नागरीजी को पकड़कर मनभाया अपना बदला लिया और ऐसे धूमधाम से रङ्गकी वर्षा व हँसी व ठट्ठा व वार्तालाप शोभा उस समाजकी हुई कि भक्तों के मन में वह समाशोभा समाय रहा है उस समय की छवि श्रीव्रजकिशोरीजी की कौनसे वर्णन होसक्ती है कि मानो शोभा स्वरूपवान् धरतीपर आकर करोड़ों चन्द्रमा की शोभा को लज्जित करती है गोरेमुख और तड़पदार मुखाकृतिपर अलकैं विथुरी हुई चन्द्रिका और शीशफूल शिरपर भालमें तिलक और केसर कस्तूरी का टीका जड़ाऊ झूमक और कर्णफूल कानों में शोभित नथ और बेसर नाक में महीन स्वर्णतारी का दुपट्टा हरित व अन्य पहिराव लहँगाआदि की अतिचमक दमक सहित व यथायोग्य आभूषण सब अङ्गनपर जमे हुये एक हाथ

व्रजकिशोर महाराज के गले में और दूसरे हाथ में गुलाल और इसी प्रकार नन्दनन्दन महाराज बड़े सज व धज के साथ श्यामसुन्दर के मुखारविन्दपर अलकों के वाल बिखरे हुये शीशपर मुकुट कानों में कुण्डल और झूमक के अन्य आभूषण सब अङ्ग अङ्गपर विराजमान सूक्ष्म दुपट्टे से कमर कसे हुये एक हाथ तो व्रजनागरीजी के गले में बाईं ओर दूसरे हाथ में गुलाल इस छवि से प्रिया प्रियतम को देखकर ब्रह्मा और शिव आदि देवताओं की तो क्या बात व बल है कि सावधानी की सुधि बुधि में रहसकें जहां आप प्रिया प्रियतम आपस के रूप को देखकर वेसुधि व मग्न होगये ॥

कथा नारदजी की ॥

नारदजी महाराज भगवद्भक्ति की सब निष्ठाओं में अग्रणीय हैं पर भागवतधर्मप्रचारक और कीर्त्तन में विशेषतर हैं पर उनको जो उत्तम पदवी मिली तो श्रवण के अवलम्ब से इसहेतु श्रवणनिष्ठा में लिखा नारदजी भगवत्के मन हैं और ब्रह्माजी के पुत्र हैं जगत् के उपकार में इतनी प्रीतिहै कि दो घड़ी से अधिक विलम्ब कहीं नहीं करते वाल्मीकि रामायण व श्रीमद्भागवत ये दो जहाज़ संसारसमुद्र से जीवों को पार लगाने को जो बने सो नारदजीही ने उपदेश किया है जिनपर कृपा किया वे भगवद्रूप होगये जैसे प्रह्लाद ध्रुव साठहज़ार दक्षप्रजापति के पुत्र व प्रचेता आदि लाखों जिनकी गिनती नहीं होसक्ती जिस पर क्रोध किया वह भी अन्त में भगवत् को प्राप्त हुआ चरित्र नारदजी के अपार हैं पर पूर्व का चरित्र जिस करके श्रवणनिष्ठा में लिखेगये सो लिखाजाता है भागवत् में लिखा है कि पहले कल्प में नारदजी दासीपुत्र रहे दुःख पड़ने से माता उनकी ऋषीश्वरों के यहां टहल करके अपनी व नारदजी की पालना करती थी जब काम को जाती तब ऋषीश्वरों के पास छोड़जाती तहां जो कथा का सत्संग हुआ करता उसको सुनते २ ज्ञान वैराग्य भक्ति को प्राप्त हुये जब माता उनकी मरगई तो वन में जाकर भगवत् का ध्यान करने लगे एकबार भगवत्के रूप अनूप का प्रकाश उनके हृदय में प्रकट होकर फिर अन्तर्द्धान होगया नारदजी उसीरूप अनूपके प्रेम में विकल होकर भगवद्भजन में प्रवृत्त हुये अन्त में फल यह निकला कि इस कल्प में ब्रह्माके पुत्र ऐसे हुये जिनकी महिमा ब्रह्माजी भी वर्णन नहीं करसक्के ॥

कथा गरुड़जी की॥

गरुड़जी भगवत्पार्षदों में हैं इसहेतु सेवानिष्ठा में लिखना उचित रहा पर एकसमय उनको मोह हुआ सो काकभुशुण्डि के यहां कथा सुनी तब ज्ञान हुआ इसहेतु श्रवणनिष्ठा में लिखा जब श्रीरामचन्द्र महाराज लङ्का के विजय को चढ़े और रावण का बेटा लड़ाई करने आया तो सम्पूर्ण सेना और दशरथराजकुमार महाराज को कि जिनकी माया के पाश में अगणित ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादिक देवता फँसेहुये हैं और जिनके एकबार नाम लेने से जीवकी जन्म मरण की फांसी कटजाती हैं नागपाश में बांध लिया नारदजी ने गरुड़ को भेजा तब उन्होंने सब साँपों को खाया इन्द्र-जीत की माया दूर हुई तो गरुड़ को मोह भ्रम हुआ ब्रह्माके पास गये तब शिवजी के पास आये उन्होंने काकभुशुण्डिके पास भेजा कि पक्षी की बोली पक्षी अच्छी समझेगा वहां गये तब समीप नीलाचलके जातेही मोह दूर हुआ फिर रामायण वहां सम्पूर्ण श्रवण किया नित्यज्ञान को प्राप्त हुये सत्य करके भगवच्चरित्र अज्ञानतम को सूर्य हैं और कामना के कल्पवृक्ष और कामधेनु॥

कथा राजा परीक्षित की॥

राजा परीक्षित अभिमन्यु के पुत्र अर्जुन के पौत्र श्रवणनिष्ठा में मुख्य अग्रणीय हुये उन्हीं से श्रीमद्भागवत की प्रवृत्ति संसार में हुई जिससे कोटों जीवों को परमपद प्राप्त हुआ और होता है व होगा जब पाण्डवों ने संसार त्याग किया परीक्षित को राज्य देदिया परीक्षित ने नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया दिग्विजय व धर्म के पालन को निकले कुरुक्षेत्र में कलियुग ने छल किया जिस करके राजा को ऋषिबालक का शाप हुआ तब राजा ने जनमेजय अपने बड़े पुत्र को राजगद्दी देकर तुरन्त गङ्गातट पर उत्तर मुख आनबैठे और अपने उद्धार के हेतु ऋषीश्वरों व ब्राह्मणों को बटोरा संयोगवश शुकदेवजी आये श्रीमद्भागवत श्रवण कराया जब विराम किया तब तुरन्त राजा अपने शरीर की सुधि भूलकर भगवत् के चरणों में लीन होकर मग्न व समाधि में होरहा उसी समय तक्षकनाग ने ऋषि का वचन पूर्ण करदिया राजा शरीर छोड़कर उस परमधाम को गया कि फिर नहीं फिरता सत्य करके जो ऐसा मन भगवच्चरित्रों में लगावे उसको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब इसी शरीर में प्राप्त हैं॥

कथा लालदासजी की ॥

लालदासजी ऐसे परमभक्त हुये कि हृदय उनका भगवच्चरित्रों का स्थान होगया जैसी भगवत् में प्रीति उसी भांति गुरुमें और लोभ निकट न आया जैसे कमलपत्र जल में रहता है तिस प्रकार संसार में रहे भगवच्चरित्रों में राजा परीक्षित की भांति थे और उसी प्रकार भगवद्धाम को गये अर्थात् बघेरा गांव में कथा श्रीमद्भागवत की होरही थी जब सम्पूर्ण हुई उसी समय भगवत्के ध्यान की समाधि लगाकर शरीर त्याग उसी परमपद को पहुँचे जहां राजा परीक्षित गये ॥

निष्ठा पांचवीं ॥

कीर्त्तन के वर्णन में पन्द्रह भक्तों की कथा हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों को और दिति अवतार को दण्डवत् है कि अत्रिऋषीश्वर के घर चित्रगिरि पहाड़पर वह अवतार धारण करके अलर्क और प्रह्लाद आदि को भगवत् का ज्ञान उपदेश किया यद्यपि कीर्त्तनशब्द का अर्थ यह है कि जो कहने में आवै पर शास्त्र व पुराण के अभिप्राय करके यह पद निज भगवच्चरित्रों के विषय होगया है दूसरे बोलचाल के हेतु नहीं रहा सो वह कीर्त्तन कई प्रकार का है आपस में भगवत् की चर्चा अथवा गाना अथवा भगवच्चरित्रों को काव्य में रचना करना अथवा कथा कहानी अथवा मन्त्र और नाम का मुख से उच्चारण करना अथवा स्तोत्र आदि का पाठ अथवा पढ़ाना इसहेतु कि जिस प्रकार भक्त कोई प्रकार से परायण होवे उनको इस निष्ठा में लिखा पर यह भी जान रक्खो कि सब भक्त जितने आगे हुये और अब हैं और आगे होंगे कीर्त्तन निष्ठामें सबको विश्वास दृढ़ हुआ और इसी निष्ठा के अवलम्ब से भक्त हुये सो सबका लिखना इस निष्ठा में हो नहीं सक्ता इसहेतु थोड़े भक्तों की कथा इस निष्ठा में लिखी गई और नामनिष्ठा अलग वर्णन हुई इस हेतु नाम उपासकों का वर्णन उस निष्ठा में होगा इस कीर्त्तननिष्ठा की महिमा और बड़ाई किससे वर्णन होसक्ती है तरण तारण पद जो संसार में विख्यात है सो इसी निष्ठा के उपासकों के निमित्त सत्य है निश्चय भक्ति और मुक्ति की सब इसी निष्ठा अर्थात् भगवच्चरित्रों के कीर्त्तनपर हैं जो कोई जिस पदवीको पहुँचा केवल कीर्त्तन के अवलम्ब से पहुँचा दूसरे प्रकार नहीं श्रवणनिष्ठा में जो यह वर्णन हुआ कि श्रवण के प्रभाव से भगवत् मिलता है तो तात्पर्य यह है कि जब भगवत्की महिमा और भगवच्चरित्रों का श्रवण करेगा तब

भगवच्चरित्रों का कीर्त्तन करेगा और किसीने भगवच्चरित्रों को केवल सुनिमात्र लिया और फिर कीर्त्तन नहीं किया तो कैसे भगवत् मिलेगा सिद्धान्त यह हुआ कि भगवत् कीर्त्तन के हेतु श्रवण एक साधन है और फल उसका कीर्त्तन और इसी हेतु श्रवण के पश्चात् कीर्त्तन शास्त्रों में लिखा है और यह बात देखने में भी आती है कि हज़ारों आदमी भगवत् कथा आदि सुनते हैं पर सुने पीछे जो भगवत्कीर्त्तन नहीं करते इसी हेतु कोई वाञ्छित फल को नहीं प्राप्त होते और बुद्धि से भी जाना जाता है कि जबतक देखे व सुने हुये सौन्दर्य अथवा दूसरी कोई वस्तु का वर्णन न होगा तो किस प्रकार मनमें रहेगा भगवत् का वचन है और पुराण में लिखा है कि मैं न वैकुण्ठ में रहता हूं और न योगियों के हृदय में केवल मैं वहां रहता हूं जहां मेरे भक्त मेरा कीर्त्तन करते हैं भागवत के एकादश में लिखा है कि सतयुग में ध्यान से और त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में भगवत् पूजा से मुक्ति होती रही और कलियुग में भगवत्कीर्त्तन प्रमाण है विष्णुधर्मोत्तर में लिखा है कि भगवत् का कीर्त्तन सब सुखों का देनेवाला और पापों का नाश करनेवाला और मनको विमलता देनेवाला और धर्म का बढ़ानेवाला और भुक्ति मुक्ति का देनेवाला और परमसार है वेद विरुद्ध मतवाले भी इस बात में युक्त हैं सिद्धान्त यह कि बिना भगवत्कीर्त्तन कोई उपाय जन्म मरण के फन्देसे छूटने को देख नहीं पड़ता पानी के मथनेसे घी और रेतमेंसे तेल प्राप्त होजाय तो होजाय पर बिना भगवद्भजन संसारसागर को उतर जावे यह कदापि होनी नहीं और भगवत्कीर्त्तन के विधान में यह लिखा है कि मन से उस कीर्त्तन में मग्न होकर देह की दशा भूलजाय यहां एक वार्त्ता स्मरण हो आई कि दो मनुष्यों ने निरन्तर में भगवत्कथा कही सुनी दोनों बेसुधि होकर वहीं मरगये लोगों ने दोनों को इकट्ठे जलादिया उनकी स्त्रियों ने आकर अपने२पति की हड्डियां अलग चुनलीं किसी ने पूछा कि तुम को अपने २ पति की हड्डियों की प्रतीति किसप्रकार हुई कीर्त्तन करनेवाले की स्त्री बोली कि मेरा पति भगवच्चरणों के रस में ऐसा मग्न होगया था कि हड्डीतक गलगई थीं इसीसे पहचानकर चुनलिया दूसरी ने कहा कि भगवच्चरित्रों के तीर जो कीर्त्तन करनेवाले के मुखरूपी चुटकी से छूटे तो मेरे पति के हृदय में ऐसे लगे थे कि हड्डियों में बेध होगये थे इससे पहचान लिया सो इस प्रकार कीर्त्तन और श्रवण में प्रीति होवे पर यह

वचन शास्त्रों में लिखा है कि कीर्त्तन भगवत् का अन्तःकरण से अथवा ऊपर से देखलाने के हेतु अथवा कोई फल के हेतु किसी प्रकार से होवे निश्चय करके भगवद्भक्ति प्राप्त होजायगी व मन भगवत् सन्मुख होजायगा इस बात का वर्णन कुछ नामनिष्ठा में होगा सब कीर्त्तन के प्रकार में एक प्रकार भगवत्कथा कीर्त्तन की जो विख्यात है तो इस समय उसका आश्चर्य वृत्तान्त है कि कीर्त्तन करनेवाले तो विना हेतु केवल भगद्भजनके निमित्त से कीर्त्तन नहीं करते व पढ़ना पुराणों का जीविका के प्राप्त के हेतु समझते हैं व श्रवण करनेवालों का वृत्तान्त थोड़ासा श्रवणनिष्ठा में लिखागया है बहुत करके ब्राह्मण जो भागवत कांख में दबाये कथा की आड़ करके फिरते हैं और उनकी कथा नहीं होती तो कारण यह है कि जिस दिन से उन्होंने उस कथा को पढ़ा तो फिर नहीं कबहूं उसको विचारा न देखा जो नित्य उसका कीर्त्तन करें तो विना घूमने फिरने के आपसे आप हज़ारों पुरुष कथा करने निमित्त उनको बुलाया करें इस कारण से कि भागवत व रामायण आदि पुराण सब भगवद्रूप हैं जो कोई भगवत्कीर्त्तन आराधन करेगा निश्चय करके उसकी कामना सिद्ध होगी अर्थात् सुननेवाले जो यह बात कहते हैं कि आज कल्ह कोई कथा कहनेवाला प्रेमी और भगवद्भक्त नहीं मिलता यह वचन उनका निपट झूठ है हज़ारों लाखों पण्डित प्रेमी मिलते हैं पर हम लोगों को उनका ढूंढ़ना नहीं और अपने अवगुण के कारण से उनके गुणों को अवगुण के समान करलेते हैं प्रेम और भक्तिपर दृष्टि नहीं जाती जिस प्रकार दो पुरुष एक सराय में रात को टिककर सारी रात अपने २ प्रेम में जागते रहे प्रभात को जो दोनों ने परस्पर देखा विषयी मद्यपान करनेवालों ने भगवद्भक्त को यह समझा कि इसने सारी रात हमसे भी अधिक आनन्द किये होंगे और जो पुरुष भगवद्भजन में जागता रहा उसने उस विषयी को अपने से अधिक भजन आनन्द में जाना इसके सिवाय जो हमलोग भगवद्भजन करनेवाले और प्रेमी होवें तो कथा करनेवाले अनायास मिल जावें व वे लोग आप हमको ढूंढ़लेवें जैसे शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को और सूतजी ने शौनक आदि को आप ढूंढ़लिया यह रीति सिद्ध है कि जैसेको तैसा आ मिलता है इसके ऊपर जो प्रेमी और भक्त नहीं मिलते हैं उन्हींपर विश्वास उचित है व योग्य है कि हमसे अधिक ज्ञाता हैं पहले तो शास्त्र को अच्छे प्रकार जानते हैं दूसरे ब्राह्मण हैं

ब्राह्मणों की महिमा वेद और शास्त्रों में लिखी हुई है कि भगवद्रूप हैं व भगवत् का वचन है कि ब्राह्मण विद्यायुक्त होवे अथवा विद्याहीन होय वह मेरा अङ्ग है कोई कोई दो चार फ़ारसी तर्जुमे की पोथियों को पढ़कर और अपने आपको ज्ञानवान् व सर्वज्ञ समझकर अथवा बड़े ओहदेपर होकर और धन ऐश्वर्य पाकर कहते हैं हम में और ब्राह्मणोंमें क्या भेद है? ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मको जाने जैसे वह मनुष्य है वैसेही हम हैं सो जान रक्खो ब्राह्मण मनुष्य नहीं देवता हैं भूसुर और भूदेव उनका नाम है और जो वे विश्वासियों को आदमी देखनेमें आवें तो दूसरे आदमियोंसे इतना भेद है जैसे तारों से सूर्य को और दूसरे पशुओं से गऊ को एक वृत्तान्त स्मरण होआया यह कि कोई पीपल के नीचे लघुशङ्का किया करता था ब्राह्मणों ने मना किया न माना फिर अधिकतर वर्जन किया तो क्रोध कर कहनेलगा कि सब वृक्ष बराबर हैं एक ब्राह्मणयुक्त बोलनेवाले ने कहा कि तुम्हारी जोरू और तुम्हारी मा में क्या भेद वह भी बराबर है तात्पर्य यह कि ब्राह्मणों को सब प्रकार से बड़ाई है सिवाय इसके सब विधिविधान दोनों लोक का ब्राह्मणों ने विस्तार किया है और पूर्वयुग में अथवा अब जिसको बड़ाई प्राप्त हुई और भगवद्भक्ति का प्रकाश हुआ तो सबको ब्राह्मणों ही के कार्य और सेवकाई से मिला और अब भी गुरु आचार्य ब्राह्मण हैं तो बड़ी भाग्य की खोट है कि उनमें निश्चय न होय जो किसी के आचरण व कर्म कलि के प्रभाव करके दुष्ट भी देखने में आवें तौभी वे विश्वासता अयोग्य है यद्यपि राख में अग्नि दबजाय तो भी तेज मिट नहीं जाता जितने महापुरुष व साधु आदि कहलाते हैं सब ब्राह्मणों के प्रभाव करके हुये कि उनको अथवा उनके गुरु अथवा परम गुरु को ब्राह्मणों से उच्चपदवी उपदेश हुई जिस किसी को ब्राह्मणों में विश्वास नहीं हो भगवत् के घरसे निकाले हुये हैं और दोनों लोक से भाग्यहीन हैं जिसने ब्राह्मणोंसे द्रोह किया सो सुगति को नहीं प्राप्त हुआ जिसने सेवा की सो इस संसार में यशी होकर भगवद्भक्तों में गिनागया सो कथा करने के हेतु जैसे ही ब्राह्मण मिलते हैं वैसे ही आचार्य और भगवद्रूप हैं विश्वास तत्त्व है अभिप्राय यह सब लिखने का इतना है कि भगवत्कीर्त्तन मुख्यों पर मुख्यतर है कि बिना परिश्रम लोक परलोक दोनों प्राप्त होते हैं हे नन्दनन्दन दीनबन्धु! हे करुणाकर! हाय कि यह मन पापी मतिमन्द ने आजतक कबहीं आपके कीर्त्तन और चरित्रों में

चित्त लगाने नहीं दिया लड़कपन तो खेलते खाते में खोया और जवानी भाँति भाँति के अपकर्म और संसार के स्वादु में अब वृद्धापन पहुँचा तो भी किसी प्रकार आपके चरणकमलों की ओर सावधानता नहीं करता यद्यपि भली प्रकार यह बात जानता हूँ कि विना आपके शरण हुये ब्रह्मा भी इस संसार से नहीं छुटासक्ता है पर माया के जाल में ऐसा फँस रहा हूँ कि अपनी हानि लाभपर तनक दृष्टि नहीं करता और सिवाय चरणारविन्द के और कुछ रक्षा का ठिकाना नहीं रखता इस हेतु दया व करुणा की आशा करके कुछ निवेदन करता हूँ कि यह समाज आपका मेरे हृदय के दुःख को दूर करके नित्यानन्द का देनेवाला होय यह कि सरयू के किनारे पर अखाड़ा परमशोभायमान कि दीवारें उसकी छोटी और उनपर चित्रविचित्र चित्राम और स्वर्ण जल से बेल बूटे बने हुये हैं सांझ सबेरे आप भाइयों और अपने छोटे वयक्रमियों के सहित वहां जाकर भांति २ की बाजी और खेलमें तत्पर होते हैं कबहीं तो सारिका और शुक और कबूतर और लाल और हंस और सारस व मयूर आदि पक्षियों के खेल और नाच और लड़ाने का मन विश्राम है और कबहीं पतङ्ग उड़ाने का और कबहीं घोड़ों के फेरने दौड़ाने और सवार होनेपर परिश्रम करने का प्रेम करते हैं और कबहीं गुरु जब ठाटा बनेठा व तीरंदाज़ी का और कबहीं चौगान का अपने मित्रों के साथ खेल है और कबहीं मल्लयुद्ध का और कबहीं तमाशा हाथी मेढ़ा आदिकी लड़ाई का देखते हैं और कबहीं उमङ्ग अपने वयक्रमियों के साथ हँसी और ठट्ठा दङ्गामुस्नी का कभी नावपर सवार हो कर अवलोकन सरयू का और कबहीं नाच राग इत्यादि देख सुनकर मनवाञ्छित द्रव्य और आभूषण प्रसन्न होकर देते हैं कबहीं गजशाला और घुड़शाला का अवलोकन है और कबहीं सत्रशाला और सामग्रीशालाकी निरीक्षण और कबहीं ब्राह्मणों और भक्तों के ऊपर दया और कृपा की दृष्टि है और कबहीं दास और घरजाये चेरोंपर पालनाकी चितवन ब्रह्मा व शिव व सनकादिक व नारदादि दर्शनों को नित्य आते हैं और मनको चरणारविन्दों पर निछावर करके वियोगके दुःखसे आंखें आंसू चुवाती और जलती हुई छातीसहित चलेजाते हैं व मुखारविन्दों पर कि करोड़ों कामदेव और चन्द्रमा वार जाते हैं अलकैं घुंघरवाली छूटी हुई कानों में कुण्डल और शिरपर जड़ाऊ किरीट मुकुट छोटा सा बुलाक नाक में बाजूबन्द कड़े पहुँची हाथों में की अगुलियों में अँगूठी और छल्ले पीताम्बरी वागा की

उसपर मुकेश आदि जगह २ टँका हुआ है शोभायमान और ज़री के दुपट्टे से कटि कसी हुई वनमाला के ऊपर मणि और मोतियोंकी माला पड़ी हुई है कलङ्गी पहिने हुये धोती पीताम्बर विराजमान चरणकमलों में घुंघरू और शोभित बैस बारहवर्ष की और ऐसे ही साज और शृङ्गार के सहित भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और दूसरे राजकुमार व सखा संग हैं छोटी २ कमान और तीर हाथों में मानो शोभा और शृङ्गार स्वरूपवान् होकर धरती पर आये हैं और शोभा और सजावट सब ब्रह्माण्डों की इकट्ठी होकर अयोध्यापुरी में देखनेवालों के वृत्ति को अपने बलात्कार से लूटती हैं॥

कथा बाल्मीकिजी की॥

बाल्मीकिजी ब्राह्मणवंश में जन्मे किसी संयोग से लड़काई में भील के हाथ आगये उसने पुत्र मानके पालना करी और भील की लड़की के साथ विवाह भी करदिया आदिसे उद्यम राह लूटने व ठगी व्याधकर्म करते रहे एकबार कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि सप्तऋषि उस ओर आगये बाल्मीकिजी ने उनके लूटने का मनोरथ किया ऋषीश्वरों ने पूछा कि किस कारण ऐसा दुष्टकर्म करता है उत्तर दिया कि बालबच्चों के पालन के निमित्त फिर पूछा कि वे सब तेरे पाप व दुःखमें साझी होंगे तब पूछने गया तब सबने साझा पाप में अङ्गीकार नहीं किया तब आयके वर्णन किया तब ऋषीश्वरों ने कहा कि वे तेरे पापमें साझी नहीं होते तो तू उनके हेतु अपना परलोक क्यों बिगाड़ता है इतने ही सत्संग और उनके दर्शन से बाल्मीकिजी को वैराग्य और भय उत्पन्न हुआ अपने कल्याण की राह हाथ जोड़कर पूछी नेत्रों में जल भर आया ऋषीश्वर दया करके रामनाम उपदेश करके चलेगये पर राम राम के स्थान मरामरा स्मरण रहा एकाग्रचित्त करके जपने लगा कुछ काल पीछे फिर सप्तऋषि जो उधर को आ निकले व बाल्मीकिजी की अन्वेषण करी तो यह लीला देखी कि एक बामी के समीप जो पशु पक्षी जाता है रामनाम कहने लगता है इस चिह्न से जाना तब निकाला और देखा कि सबप्रकार से शुद्ध और सिद्ध होगये और किसी वेद व शास्त्र व धर्म कर्म सिखाने का प्रयोजन नहीं रहा कि आपसे आप नाम के प्रताप से सब जानलिया है बिदा हुये और बाल्मीकिजी के शरीर पर मिट्टी जमकर बामी के स्वरूप होरही थी सर्पादि ने उसमें घर करलिया था इस हेतु बाल्मीकि नाम रक्खा बाल्मीकिजी सर्वज्ञ व त्रिकालदर्शी जब

होगये विचारा कि जिसके नामके प्रभाव से यह हुआ तिसका वर्णन करना चाहिये यह ध्यान करते ही भीलरूप से भगवत् ने आज्ञा दी व नारदजी ने आनकर उपदेश किया और भविष्य रामचरित्र ध्यान में बाल्मीकिजी के दिखला दिये उसी अनुकूल रामावतार से दशहज़ार वर्ष पहले सौकरोड़ श्लोक में रामचरित्र वात्सल्य उपासना अपनी भाषा में रचना किया अर्थात् राजपुत्र करके श्लोकों में कहा उस रामायण को शिवजी ने तीनोंलोक में फैलाया देखना चाहिये कि पहले वाल्मीकिजी तो ऐसे थे कि छायास्पर्श ऋषीश्वर नहीं करते और फिर रामनाम के प्रभाव और कीर्तन से सोई बाल्मीकि उस पदवी को पहुँचे कि जिनकी कथा व कथन संसारताप के दूर करनेको छत्रछाहँ होगया व बालचरित्र देखनेकी अभिलाषा बाल्मीकिजी को हुई तब जानकीजी उनके आश्रम में लवकुश सहित रहीं नाना प्रकार बालचरित्र किये अश्वमेध में घोड़ा बाँधलिया हनुमान् आदि सबको जीतके बन्दि में किया पीछे बाल्मीकि जी के साथ अयोध्याजी में गये यह रामाश्वमेध में कथा है सो रामनाम की महिमा जहांतक कोई वर्णन करे वह सब थोड़ी है ॥

कथा शुकदेवजी की ॥

ऐसा जगत् में कौन है जो शुकदेवजी की महिमा वर्णन करसके जिनके मुखसे श्रीमद्भागवतरूप अमृत की नदी निकली वह सब पान करनेवालों को अमर करदेती है एक समय देवस्त्रियों ने स्नान करते शुकदेवजी से लज्जा न की और व्यासजी को देख लज्जित होकर वस्त्र लिया व्यासजी ने पूछा तब उत्तर दिया कि शुकदेवजी सिवाय भगवद्रूप के जगत् को दूसरा नहीं देखते और आपको नाना प्रकार का ज्ञान है इस हेतु तुमसे लज्जा है शुकदेवजी माताके गर्भही से भगवद्भक्त और ज्ञानवान् हुये कारण यह है कि पार्वतीजी ने शिवजी से तत्त्वज्ञान पूछा तब शिवजी अपने आश्रम के सब जीवों को अलग करके उपदेश करनेलगे पार्वतीको नींद आगई भगवत् इच्छा करके एक शुक का बच्चा उस आश्रम में रह गया सोई पार्वतीजी की जगह हूं हूं करता रहा वह ज्ञान सुनकर अमर होगया पीछे शिवजीने जाना तब क्रोधकर मारने के हेतु उद्यत हुये तब वह भागा व्यासजीकी पत्नी के उदर में बारह वर्ष रहा पीछे देवता और ऋषीश्वरोंकी प्रार्थनासे शुकदेव महाराजने जन्म लिया और तुरन्त वन को गमन किया व्यासजी पीछे पीछे हे पुत्र! हे पुत्र! करते मोहके वश चले

तब सब ओरके वृक्षोंसे जङ्गलमें ध्वनि हुई कि मैं और तू दुःख और सुख यह सब भ्रम है इस संसार में न जानें तुम कै बेर मेरे पिता हुये और हम तुम्हारे और जो देखने में आता है सो सब भगवद्रूप है विद्या का जानना भगवत् के जानने के हेतु है जो द्वैतपन न छूटा तो विद्या सब निष्फल है व्यासजी यह उत्तर पाकर फिर आये पर इसी विचार व उपाय में रहे कि शुकदेवजी फिर आयरहें इस हेतु कितने लड़कों को श्रीमद्भागवत के श्लोक सिखाकर जिस वनमें शुकदेवजी रहा करते थे वहां भेजदिया एक दिन शुकदेवजीने किसी लड़के के मुखसे यह श्लोक सुना आश्चर्य किया यह पापात्मा पूतना स्तन में विष लगाकर मारने के लिये गई पर उसको वह गति प्राप्त हुई कि दूसरे को न मिलसके सो ऐसा दयालु तो और कौन है कि जिसके शरण जावें शुकदेवजी सुनकर स्नेहबद्ध होगये और लड़कों से आनकर पूछा उन्होंने व्यासजी से सीखने का वृत्तान्त कहा शुकदेवजी आये अत्यन्त प्रेम से श्रीमद्भागवत को पढ़ा पीछे यह इच्छा हुई कि किसी प्रेमी को सुनानी चाहिये पर कोई अधिकारी देखने में न आया नितान्त राजा परीक्षित को योग्य समझा और गङ्गा के किनारे पर राजा को सुनाकर सात दिन में भगवत्परायण और मुक्त करदिया और जिस जिस ने उस सभा में सुनी सब भगवत्परायण हुये और अबभी जो कोई सुनता है परमपद का अधिकारी होता है ॥

कथा जयदेवजी की ॥

सब कवि मण्डलीक राजों के सदृश हैं उनके राजा चक्रवर्त्ती स्वामी जयदेवजी हुये गीतगोविन्द तीनों लोकमें ऐसा प्रकाशित किया कि कोक और काव्य और नवरस और शृङ्गार का समुद्र है जिसकी अष्टपदी को जो कोई पढ़ता है निश्चय बुद्धिमान् और ज्ञाता शास्त्रों का होजाताहै और जहां जो कोई कीर्तन करताहै अरु सुननेके निमित्त निश्चय करके भगवत् प्रसन्न होकर आते हैं और भगवद्भक्त जो कमलसदृश हैं उनके फूलने और आनन्दके हेतु सूर्य के सदृश हैं और भगवत् का आनन्द देनेवाला भी वैसाही है और यह जान रक्खो कि कोक और शृङ्गारपद से विषयी लोगों के मन व बुद्धि में जो कोक व शृङ्गार वर्तिरहाहै उसका निश्चय न होवे शृङ्गारपद से भक्तमाल आदि की रचना करनेवाले का यह तात्पर्य है कि वह शृङ्गार जिसका वर्णन केवल भगवत् शोभा व भगवत् में होवे कुछ २ इस ग्रन्थ के आदि में लिखा और तेईसवीं निष्ठा में लिखा जायगा

और रसराज जिसका नाम है और जिसके वर्णन में वेद की यह श्रुतिहै कि जिसको प्राप्त करके निश्चय भगवत् का आनन्द मिलता है सो रस जयदेवजी ने इस गीतगोविन्द में वर्णन किया है और कोक उसकी एक शाखा है स्वामी जयदेवजी कुड़बिल्व में कविराज हुये रसराज जो शृङ्गार तिसके मूर्ति थे पर उस रसका स्वादु अपनेही मन में लेते रहे कारण यह कि वैराग्य इतना था कि किसी रात एक पेड़ के नीचे नहीं रहते रहे और सिवाय एक गुदरी व कमण्डलु के कुछ अपने पास नहीं रखते थे मसिहानी लेखनी व पत्रिका तो कौन बात है भगवत् को उस रसराज की प्रवृत्ति अङ्गीकार हुई इस हेतु यह उपाय किया कि एक ब्राह्मण को प्रतिज्ञा रही कि अपनी लड़की जगन्नाथजी को भेंट करूँगा जब लड़की लाया तब स्वामी की आज्ञा हुई कि जयदेव मेरा स्वरूप है यह लड़की उसीको देव तब जयदेवजी के पास लड़की सहित जाकर प्रभुकी आज्ञा का वृत्तान्त निवेदन किया उन्होंने कहा कि लड़की योग्य धनवान् को देना उचित है विरक्त फक्कड़ों को नहीं ब्राह्मण बोला भगवत् आज्ञा में मेरा क्या वश जयदेवजी बोले वे प्रभु हैं हजारों लाखों स्त्री उनकी शोभित हैं हमको एक पहाड़ के समान है नितान्त समझाते २ ब्राह्मण न हारा तब लड़की छोड़ कर चलागया व धर्म लड़की को दृढ़ाय गया जयदेवजी लड़की को भी समझा थके तब भगवत् आज्ञा से बेवश होकर एक छोटी कुटी बनाकर भगवत् सेवा पधराकर भगवत् सेवा में रहने लगे और गीतगोविन्द की रचना के प्रारम्भ में एक अष्टपदी में प्रियाजी के मानके वर्णनमें यह भाव ध्यान में लाये कि श्रीकृष्णस्वामी मनावने के समय इस दीनता सहित प्रियाजी से बिनती करते हैं कि कामदेव का विष दूर करनेवाला जो आपका पवित्र चरणकमल उसको मेरे मस्तकपर शोभायमान करो पर ढिठाई सोचकर न लिखसके दूसरे भाव को चिन्तन करते स्नान करने चलेगये भगवत् आप जयदेवजी के रूप से आकर जो भाव जयदेवजी ने पहले अपने मन में विचारा था उसीको रचिके लिखगये कि भाव उसका ऊपर लिखागया जब जयदेवजी स्नान करके आये और अपने विचारित भाव को सुन्दर पदन से रचिके लिखा देखा तब पद्मावती अपनी स्त्री से पूछा तब उत्तर दिया कि आपही अबहीं आयके लिखगये फेर पूछतेहो जयदेवजी ने भगवच्चारित्र जाना व गीतगोविन्द को परम पवित्र समझा इस गीतगोविन्द की ख्यात थोड़े दिन में जहां तहां हो-

गई और सबको अङ्गीकृत हुआ जगन्नाथपुरी का राजा पण्डित रहा उसने भी एक गीतगोविन्द रचना किया जयदेवजी का गीत व राजा का दोनों जगन्नाथ के मन्दिर में रख दिये गये जगन्नाथरायजी ने जयदेव जी के गीतगोविन्द को छाती से लगालिया राजा लज्जित होकर समुद्र में डूबने चला प्रभु ने आज्ञा की कि यह कर्म उचित नहीं न्याय उचित है जयदेवजी की भक्ति और कविताई को तुम्हारी नहीं पहुँचती अच्छा जयदेवजी के गीतगोविन्द में प्रतिसर्ग में एक श्लोक तुम्हारा भी रहेगा पर नाम जयदेवजी का ख्यात होगा बारह सर्ग गीतगोविन्द है एक माली की लड़की यह अष्टपदी पांचवें सर्ग गीतगोविन्द की गातीहुई बैंगन तोड़ती फिरती थी जगन्नाथस्वामी उसके पीछे जिस ओर वह जाती थी सुनते हुये फिरने लगे काँटे से भँगा फटगया राजा दर्शन के समय भँगा देखकर चकितरहा पण्डों से पूछा नितान्त जगन्नाथ स्वामी ने राजा के हृदय में वृत्तान्त प्रकाश करदिया राजा ने निश्चय करके डौंड़ी फेरवादी कि जो कोई गीतगोविन्द पढ़े तो पवित्र स्थान व शुद्ध में पढ़े कि आप भगवत् सुनने को जाया करते हैं एक मुग़ल बड़े प्रेम से इस पोथी को पढ़ा करता था एकदिन घोड़ेपर सवार और प्रेमभाव से मग्न होकर अष्टपदी को गाता था उसको दर्शन हुये कि सुनने को साथ हैं इस गीतगोविन्द की महिमा और प्रताप कौन वर्णन करसक्ता है स्वर्गलोक में देवकन्या गान करती हैं एक समय जयदेवजी को राह में ठग लगे तब यह सोचा कि पापका मूल धनहै और रोग का मूल अत्यन्त भोजन है व दुःख का मूल स्नेह है सो इन तीनों का त्याग उचित है यह सोचकर जो कुछ पास रहा सो ठगों को देदिया ठगोंने जाना कि यह धोखेबाज़ है कुछ उत्पात पीछे करेगा अनेक बातें विचारने लगे निदान हाथ पांव काटकर एक कुयें में जयदेवजी को डालदिया एक राजा भगवत् इच्छा से आय गया निकाला हाथ पाँव नहीं देखकर पूछा जयदेवजी ने कहा कि माता के गर्भ से ऐसेही जन्म मेरा हुआ वार्त्तालाप होने से राजा जानगया कि कोई प्रतापी भगवद्भक्त है भाग्य से मुझे दर्शन हुआ अपनी राजधानी को लेगया हाथ जोड़के कुछ सेवा के निमित्त बिनती किया जयदेवजी ने साधुसेवा की आज्ञा दी राजा अङ्गीकार करके साधुसेवा करने लगा जब ख्यात हुआ ठगभी साधु का रूप बनाकर पहुँचे जयदेवजीने राजा से कहा कि यह लोग हमारे बड़े भाई व बड़े महापुरुष हैं अच्छे प्रकार सेवा करो

राजा ने वैसाही किया पर ठगोंने भी जयदेवजी को पहिंचान लिया इस हेतु त्रासयुक्त बिदा होनेकी बिनती नित्य करते थे निदान एकदिन बहुत रुपया दिला दिया व बिदा करादिया कुछ सिपाही घरतक पहुँचाने को पठये सिपाहियों ने पूछा कि स्वामीजी से कैसी प्रीति व सम्बन्ध है जो ऐसी मर्याद से बिदाई हुई ठग बोले कहने योग्य बात नहीं सिपाहियों ने वचन दिया कि किसीसे न कहेंगे वे ठग बोले कि एक राजा के यहां हम लोग और तुम्हारे स्वामी चाकर थे किसी अपराध करने के कारण वध करने की आज्ञा दी सो हम लोगों ने हाथ पांव काट लिये जान छोड़दी इसी हेतु यह सेवा हमलोगों की कराई यह अपवाद भक्तका प्रभु न सहिसके धरती तुरन्त फटगई व ठग सब पाताल में चलेगये सिपाहियों ने सब वृत्तान्त जयदेवजी से आकर कहा वे दया से कम्पमान होकर हाथ पांव मलने लगे तो हाथ पांव निकल आये जैसे पूर्वही रहे वैसेही होगये यह दोनों वृत्तान्त सिपाहियों ने राजा से कहे राजा ने आयके स्वामीजी से पूछा कुछ न बोले जब बहुत पूछा तब सब वृत्तान्त कह सुनाया राजा अतिविश्वासयुक्त सेवा करने लगा सच करके भगवद्भक्तों की रीति है कि जो कोई उनके साथ दुष्टता करे वे अपनी साधुता से चूकते नहीं जैसे दुष्ट अपनी दुष्टता से नहीं चूकता जयदेवजी ने अपने देश के जानेका विचार किया तब राजा ने बहुत प्रार्थना करके न जाने दिया आप जाकर पद्मावतीजी स्वामीजी की पत्नी को लेआकर राजमन्दिर में निवास कराकर रानी को सेवा में पद्मावतीजी के बहुत दृढ़ किया उस रानी का भाई मर गया था उसकी स्त्री साथ सती होगई थी रानीने एक दिन पद्मावतीजी के आगे एक आश्चर्य सहित अपने भाई भावज की बात कही पद्मावती जी सुनकर हँसीं रानीने कारण हँसने का पूछा तो उत्तर दिया कि शरीर का जलादेना पति के साथ इसमें प्रीतिकी रीति की हानि है मुख्य प्रीति व स्नेह वह है कि तुरन्त अपने पति की मृत्यु सुनतेही उसी क्षण अपना प्राण निछावर करे रानी बोली इस समय में तो ऐसी सती आपही हैं और पद्मावतीजी की परीक्षा लेनेको पीछे पड़ी राजा से जा कहा कि स्वामीजी को एकदिन फुलवाड़ी में ले जाव और नगर में विख्यात करदेव कि स्वामीजी मरगये राजा ने उस रानीको समझाया कि ऐसी बात जिस में मेरा शीश कटे न करनी चाहिये नितान्त न मानी राजा ने वैसेही सब किया तब आंखों में आंसू भरे रानी पद्मावतीजी के पास जाबैठी उन्होंने

कारण दुःखित होने का पूछा रानी रोनेलगी पद्मावतीजी ने कहा स्वामी जी आनन्द से हैं तब रानी लज्जित हुई दश बीस दिन पीछे फिर वैसीही बात उठाई पद्मावतीजी ने समझा रानी परीक्षा के हेतु पीछे पड़ी है रानी के मुखसे वह बात सुनतेही प्राणको छोड़ दिया यह दशा देखतेही रानी व राजा का रङ्ग सफ़ेद होगया और इतने शोकान्वित हुये कि जीना विष होगया व अपने जलनेके निमित्त चिताको रचाया स्वामी जी यह समाचार सुनतेही तुरन्त आये राजा को मृतकप्राय देखा व शोक से जलने को तैयार है बहुत समझाया न माना स्वामीजी ने विचारा कि बिना जिये पद्मावती के राजा का जीना कदापि नहीं होगा अष्टपदी गीतगोविन्दकी गाई कि पद्मावतीजी उठ बैठीं और साथ गानेलगीं तौभी राजा सावधान न हुआ स्वामीजी ने बोध करके अपघात से बचाया कुछ दिन पीछे अपने स्थानपर गये कुड़बिल्व गांव में घर था वहां पहुँचे गङ्गाजी अठारह कोसपर रहीं नित्यस्नान को जाते वृद्धता देखि गङ्गाजी की एक धारा जिसका नाम जयदेई गङ्गा है स्वामीजी की कुटी के नीचे बहने लगीं अद्यापि बहती हैं जयदेई गङ्गानाम विख्यात है ॥

कथा तुलसीदासजी की ॥

गोसाईं तुलसीदासजी को भक्तमाल के कर्त्ता ने बाल्मीकिजी का अवतार लिखा है सो इसमें कुछ संदेह नहीं कि उनकी वाणी में प्रभाव दिखाई पड़ता है कि हृदय में चुभिजाती है और रामचरित्ररूपी अमृत की धारा को इस कलियुगमें प्रवाहवती किया है व सबको सुलभ है और चौदह रामायण अर्थात् चौपाई बन्द जो विख्यात हैं व विनयपत्रिका व गीतावली व कवितावली व दोहावली व रामशलाका व हनुमान्बाहुक व जानकीमङ्गल व पार्वतीमङ्गल व कड़काछन्द व बरवाछन्द व रोलाछन्द व झूलनाछन्द एक दूसरा कि प्रेमियों को व उपासकों को सब जगह मिलसक्तेहैं और भक्तों के मुख से निश्चय होचुका है कि जो कोई नियम करके नित्य किसी रामायण का पाठ करताहै निश्चय श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणों में प्रीति होजाती है व कामना करके काण्डका पाठ करे तो सिद्ध होजाता है व रामशलाका में जो प्रश्न करे तो ऐसे दोहे निकलें कि जो होनेवाली बात हो सो ज्ञात होजाय और तुलसीकृत रामायण को काशीजी के सब पण्डितों ने सभा करके सम्पूर्ण पढ़ा आदि अन्त सब वेद शास्त्र पुराण गीताजी के अनुकूल देखकर सबने अङ्गीकार लिख

दिया कोई कोई ने द्वेष करके बाद ठाना तो विश्वेश्वरनाथजी के अङ्गीकार करने से सबको अङ्गीकृत हुआ गोसाईं तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहे अपनी स्त्रीसे स्नेह विशेष रखते थे एकदिन स्त्री अपने मैके में मा बाप से मिलने को गई गोसाईंजी को इतना वियोग हुआ कि सहन न होसका अपनी ससुरारि में पहुँचे स्त्रीको लज्जा आई क्रोध करके गोसाईं जी से बोली कि यह शरीर अस्थि मांस का अनित्य है रघुनन्दनस्वामी नित्य निर्विकार पूर्णब्रह्म हैं तिनसों क्यों नहीं स्नेह करते कि दोनों लोक में लाभ हो इतने कहने से गोसाईंजी पण्डित और ज्ञानवान् थे पूर्वपुण्य के पुञ्ज उदय हुये ज्ञान वैराग्य की आंखैं खुलगईं काशीजी में आकर श्रीरघुनन्दनस्वामी के भजन कीर्तन में लगे गोसाईंजी दिशा फिरने वन में जाया करते तो शौचशेष पानी को एक जगह नित्य डाल दिया करते थे वहां एक भूत रहता था उस पानी से उसकी तृषा मिटती थी एकदिन प्रसन्न होकर बोला कि तुमको कामना हो सो कहो गोसाईंजी ने कहा रघुनन्दनस्वामी का दर्शन करादे भूतने कहा कि यह सामर्थ्य मेरे में नहीं पर हनुमान्‌जी का पता यह बतलाताहूं कि अमुकस्थान में कथा रामायण होती है और हनुमान्‌जी सबसे पहले ऐसे कुरूप से कि जिसको देखते डरलगे और घृणा होय आते हैं सबसे पीछे जाते हैं इस पहिंचान से गोसाईंजी हनुमान्‌जी के पीछे चलेगये वन में चरण पकड़लिया न छोड़ा हनुमान्‌जी ने दर्शन दिया कहा जो चाहना हो कहो विनय किया रघुनन्दनस्वामी का दर्शन चाहताहूं आज्ञा दी कि चित्रकूटमें दर्शन होगा गोसाईंजी अति अभिलाष से चित्रकूट में आये एकदिन इस स्वरूप से दर्शन हुआ कि रघुनन्दनस्वामी श्यामसुन्दर राजकुमार के स्वरूप से वसन भूषण बहुमूल्य के पहिने धनुष बाण लिये घोड़ेपर सवार और लक्ष्मणजी गौरमूर्ति वैसेही सजावट के सहित साथ एक हरिण के पीछे घोड़ा डालेहुये जाते हैं यद्यपि स्वामी की मूर्ति मन और आंखों में समाय गई पर यह न जाना कि ये स्वामी हैं पीछे हनुमान्‌जी आये गोसाईंजी से पूछा कि दर्शन किये गोसाईंजी ने विनय किया कि दो राजकुमार देखे हैं हनुमान्‌जी बोले कि वही राम लक्ष्मण थे गोसाईंजी उसीरूप का ध्यान करतेहुये मुख्य मनोरथ को प्राप्त हुये एक हत्यारा पहले राम का नाम टेरकर कहा करता कि हत्यारे को भिक्षादेव गोसाईंजी को आश्चर्य हुआ कि यह कैसा पुरुष है कि पहले रामनाम लेता है फिर अपने आपको

हत्यारा कहता है व ठहराता है बुलाया और प्रेम शुद्ध जानकर उसको अपने साथ भगवत्प्रसाद जिमाया काशी के पण्डितों ने सभा करी और गोसाईंजीको बुलाकर पूछा कि प्रायश्चित्त विना किसतरह इसका पाप दूर हुआ गोसाईंजी ने कहा एकबार रामनाम लेनेका क्या माहात्म्य है शास्त्र में देखो इसने तो सैकड़ों बेर नाम उच्चारण किया तो शास्त्रके वचन पर जो विश्वास नहीं तो अज्ञान का अन्धकार दूर नहीं होसक्ता पण्डितों ने यद्यपि शास्त्र को माना तथापि बेविश्वास से यह ठहराया कि विश्वेश्वरनाथ का नाँदिया इसके हाथसे भोजन करे तो सत्य मानें सो नाँदिया ने उसके हाथसे धराया हुआ प्रसाद को भोग लगाया सब पण्डितों ने लज्जित होकर नाम की महिमा व गोसाईंजी की भक्तिपर निश्चय किया एकदिन गोसाईंजी के स्थान पर रातको चोर चोरी करने को आये तो श्री रघुनन्दनस्वामी धनुषबाण लेकर चोरों को डरवाते फिरे चोरी करने न पाये गोसाईंजीसे प्रभात को आके पूछा कि महाराज वह श्यामसुन्दर किशोर मूर्ति परम मनोहर कौन है ? जो रातको चौकी देताहै गोसाईंजी सब वृत्तान्त सुनकर प्रेम में डूब गये फिर विचारा इस सामग्री के हेतु परिश्रम व रातको जागरण स्वामी का अच्छा नहीं बहुत रोने लगे उसी घड़ी सब धन सामग्री दान करदिया चोर यह वृत्तान्त देखकर घरबार छोड़कर भगवत् शरण होगये और एक ब्राह्मण मरगया उसकी स्त्री विमान के साथ सती होने जातीथी गोसाईंजी को दण्डवत् किया गोसाईंजी के मुख से निकल गया सौभाग्यवती उसने कहा मेरा पति मरगया यह दासी सती होने जाती है सौभाग्य कहां है गोसाईंजी ने उसके कुलमें भगवद्भक्ति करने की प्रतिज्ञा करायके पतिको जिलादिया जब यह बात विख्यात हुई तो बादशाह ने बड़े आदरसे बुलाकर उच्च आसनपर बैठालकर सिद्धाई दिखलाने को विनय किया गोसाईंजी बोले सिवाय रघुनन्दनस्वामी के दूसरी सिद्धाई कुछ नहीं जानताहूं और न इस झूठे खेलसे काम रखताहूं बादशाहने कहा कि अपने स्वामीही के दर्शन करादेव यह कहकर बन्दि में किया गोसाईंजीने हनुमान्जी का स्मरण किया उसी घड़ी वानरों की अगणित सेनाने बादशाही क़िले में ऐसा उत्पात किया कि प्रलयकाल दिखलाई पड़ा बादशाह जब पलँगपरसे उलटागया तब ज्ञानशुद्धसे गोसाईंजी की शरण में आया चरणपर गिरा तब सब वानरीसेना अन्तर्द्धान होगई तब तुलसीदासजी ने आज्ञादी कि तुम दूसरा क़िला रहनेको देखलेव यह स्थान रघुनाथजी

का हुआ बादशाहने तुरन्त छोड़ दिया तुलसीदासजी काशी को चले आये एक कोई भक्तों के वैरीने गोसाईंजी के मारने को अनुष्ठान जप का किया गोसाईंजी ने एकपद महादेवजी का बनाया कुछ न हुआ वह आप लज्जित होरहा फिर गोसाईंजी वृन्दावन आये नाभाजी से मिले उनकी रचना भक्तमाल की देख सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और यह बात जो फैली है कि गोसाईंजी ने मदनगोपालजी के दर्शन के समय यह बात कही थी कि धनुषबाण धारण करोगे तब दण्डवत् करूंगा सो यह बात निपट झूठ और विना शिर पैर की है काहे कि कृष्णावली में कृष्णयश गोसाईंजी ने गायाहै सो प्रसिद्ध है सिवाय इसके सब जगत्को दण्डवत् किया है- "सियाराममय सब जग जानी । करों प्रणाम सप्रेम सुबानी ॥" यह चौपाई जिसकी कही है भला सो कब भगवत् के साम्हने ऐसी हठवानी कहसक्ता है इस बात के फैलने की बात यहहै कि उपासक जिस देवता के मन्दिरमें जाताहै अपने इष्टका रूप ध्यान करता है यह रीति शास्त्र के सम्मत के अनुकूल गृहीत है सो गोसाईंजी दर्शनको गये व परममनोहर मूर्ति को देखा तोश्रीरघुनन्दन धनुर्बाणधारी का ध्यान करके दण्डवत् किया सो गोसाईंजी भक्त सांचे व सिद्ध थे इसहेतु मदनगोपालजी ने भी उनके ध्यान के अनुकूल रूप दिखादिया जो कोई उस समय दर्शन करनेवाले थे उनको भी धनुर्बाणधारी दृष्टि में आये इस हेतु वह बात फैली और किसी ने एक दोहरा भी बनालिया वृन्दावन में किसी ने गोसाईंजी से प्रश्न किया कि श्रीकृष्ण महाराज पूर्णब्रह्म और अवतारी हैं और नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र आदि उस अवतारी के अंशकला से अवतार हैं तुम श्रीकृष्ण महाराज की उपासना क्यों नहीं करते यद्यपि शास्त्रप्रमाण से गोसाईंजी उत्तर देनेको समर्थ थे पर माधुर्यभाव में प्रेमभक्ति को दृढ़ करते हुये ऐसा उत्तर दिया कि वह चुप होरहा और सिद्धान्त बनारहा सो वह यह है कि श्रीरामचन्द्र दशरथनन्दन को बहुत सुन्दर सुकुमारअङ्ग मनोहरमूर्ति परमशोभायमान देखकर हमारा मन लगगया है कि नहीं छूटता अब जो तुम्हारे वचन से उनमें कुछ ईश्वरता भी है तो और अधिक व मन भाई भई ॥

कथा सूरदासजी की ॥

सूरदासजी की रचना सुनकर ऐसा कौन है जिसका मन प्रेम से न उमँगे और शिर न हिलजाय जिसमें अर्थभाव और स्वाद और ललित

अक्षरों की बैठक और अनुप्रास और भगवत्प्रेम का निबाह व सलिल अर्थ व तुलेहुये व विकलित बहुत हैं और भगवत् ने जो चरित्र किये ऐसा विस्तारसहित वर्णन किया कि मानो देखते थे ऐसा विमलहृदय जिसका है अथवा भगवत् ने आप उन चरित्रों का प्रकाश उनके हृदय में झलकाय दिया भगवत् के जन्म और कर्म और गुण और रूप ऐसे प्रकट किये कि जो उनको पढ़ता है अथवा सुनता है निश्चय बुद्धि निर्मल व मन पवित्र होकर भगवत्परायण होजाता है उद्धवजी जो श्रीकृष्ण महाराज के सखा व मित्र थे उनके अवतार हैं यद्यपि विष्णुस्वामी संप्रदाय में रहे व बालचरित्रों में चित्त की चाह बहुत थी पर शृङ्गारनिष्ठा और सखाभाव का प्रेमभी अत्यन्त था कि सूरसागर से प्रकट है महिमा सूरदास जी की और सूरसागर की किससे वर्णन होसक्ती है कि जिनकी कृपा से सहस्रों अपराधी सिद्ध और शुद्ध भगवद्भक्त होगये उनका संकल्प यह रहा कि सवालाख विष्णुपद में भगवच्चरित्रों का कीर्तन करें पर जब पचहत्तर हजार रचना करचुके तब परधाम को चलेगये पचास हजार आप श्रीकृष्ण महाराज ने रचना करके अपने भक्त का संकल्प पूरा कर दिया और सूरश्याम के नाम से भोग रखदिया खानखाना वजीर बादशाह अकबर का विद्या संस्कृत व भाषा में पण्डित रहा कवि भी था उसने सूरदासजी के पद जहां तहां से ढूंढ़ ढूंढ़कर इकट्ठे किये और एक पद एकमोहर का ठहरगया बहुतलोग मोहर के लोभ से नये पद बना बनाकर सूरदासजी के भोग में नाम डालकर लेगये जब भीड़ हुई तो यह विचार किया कि एकपद सूरदासजी का तौल का बटखरा रखलिया नये पद जो आवें उसी से तौलना आरम्भ किया जो पद नया होता सो कागज मोटाभी हो व पद भी बड़ा हो तौभी बराबर न तुलता व सूरदास जी का बनाया पद छोटा पदभी हो व कागजमहीन तौ भी बराबर होजाता इसी परीक्षा से सूरसागर को रूपमान ग्रन्थ किया किसीकी यह कहावत है कि अकबर बादशाह ने सूरसागर इकट्ठा किया और दो लाख विष्णुपद का संयोग पहुँचा तब अग्नि में डालदिया सूरदासजी का न जला औरों का बनाया जलगया तो दो कहावतों में जो सच हो पर बड़ाई व प्रभाव से व्यतिरिक्त सूरसागर नहीं और यह कहावत न विख्यात होती तो क्या सूर्य छिपा रहता है सूरसागर को भगवत् ने वह प्रताप व प्रभाव कृपा किया है कि एक एक अक्षर मन्त्र के सदृश हैं ॥

कथा नन्ददासजी की ॥

नन्ददासजी पुत्र चन्द्रहास जाति ब्राह्मण रहनेवाले रामपुर के भगवद्भक्त प्रेमी व नामी विख्यात हैं कि अनुक्षण सिवाय भगवत्कीर्तन के दूसरा काम नहीं था रचना उनकी जैसे पञ्चाध्यायी व रुक्मिणीमङ्गल व दशमस्कन्ध व नाममाला व अनेकार्थ व दानलीला व मानलीला आदि हज़ारों विष्णुपद उनकी भक्ति के सदृश सारे संसार में विख्यात हैं उनके काव्य की श्लाघा में कविलोगों को यह कहा है कि और सब घड़िया, व नन्ददास जड़िया, अष्टछाप के भक्तों में इनकी भी गिनती है जानरक्खो आठभक्त जिन्हों ने श्रीकृष्णस्वामी के चरित्र कीर्तन किये और उनके विष्णुपद ब्रज में भगवत् के सम्मुख कीर्तन कियेजाते हैं उनकी गिनती अष्टछापमें है और नाम मङ्गलरूप उनके यह हैं १ सूरदास २ कृष्णदास ३ छीतस्वामी ४ नन्ददास ५ परमानन्द ६ चतुर्भुज ७ व्यासजी ८ हरिदास॥

कथा चतुर्भुजजी की ॥

चतुर्भुजजी भगवद्भक्त परमरसिक हुये नित्य श्रीवृन्दावन में विहारीजी के मन्दिर में अत्यन्त प्रेम व भाव से नृत्य करते थे एकादिन नृत्य करते में लँगोटी खुलगई दोनों हाथों से झांझ बजारहे थे ताल व समके भंग होने के भय से लँगोटी न सम्हाली व लोगों के ठट्टा करने की चिन्ता भी हुई तबतक परमरिझवार विहारी ने दोभुजा और उत्पन्न करदीं और अपने भक्त की लज्जा रखली ॥

कथा मथुरादासजी की ॥

मथुरादासजी जो चेले वृद्धमानजी के ऐसे भगवद्भक्त धर्म में सावधान हुये कि नन्दनन्दन महाराज का दृढ़ विश्वास और बल रखते थे प्रीति ऐसी की कि अपने शिरपर कलश जल का रखकर लेआते और ऐसे प्रेम व भक्ति से रासचरित्र का शृङ्गार किया करते कि मानो उनका हाथ भगवच्चरित्र और माधुर्य के दर्शाने को सूर्य के सदृश था एक समय कोई साधुवेष से वृन्दावन में आया चेटक यह करता कि शालग्राम सिंहासन पर डोलते रहते सो मथुरादासजी भी चेलों के कहने से गये जानेसे चेटक बन्द होगया तब उसने मूठमन्त्र मारा सो भी उलटकर उसीपर पड़ा मरने के योग्य हुआ तब मथुरादासजी ने जिलाया ॥

कथा सुखानन्दजी की ॥

सुखानन्दजी संसार के आवागमन के भय के दूर करने को एकही

हुये काव्यरचना उनकी गुरुमन्त्र व तन्त्रशास्त्र के तुल्य विख्यात है भोग में जहां अपना नाम लिखा तहां भगवत् का नाम सुखसागर लिखा जैसे जैसे चन्द्रसखी ने बालकृष्णनाम व मीराजी ने गिरिधरनागर नाम लिखा है भगवद्गुण चरित्र कीर्तन भजन अतिप्रेम से करते व भक्ति कमल के सेवा करने में मानो सरोवर थे ॥

कथा श्रीभट्टजी की ॥

श्रीभट्टजी ने आनन्दकन्द व्रजचन्द महाराज और वृषभानुकिशोरी के भजन स्मरण का ऐसा सामान दृढ़ इस संसार में करदिया कि संसार समुद्र के उतरने को नौका के सदृश है अर्थात् माधुर्य उपासना के जो शोभायमान चरित्र प्रिया प्रीतम के हैं सो अपने युगलशत आदि ग्रन्थ में रचना इस मिठाई व मधुवानी व सुन्दरता के सहित वर्णन की कि निश्चय करके मन द्रवीभूत होकर नवलकिशोर और नवलकिशोरी महारानी के चरित्र और प्रेम में मग्न होता है और अज्ञानरूपी अन्धकार के दूर करने को जिनका सुयश चन्द्रमा है ॥

कथा वर्द्धमान गङ्गल की ॥

वर्द्धमान व गङ्गल दोनों भाई बेटे भीष्मभट्ट परमभक्त के थे दोनों भक्ति के दृढ़ करनेवाले हुये भगवच्चरित्र और श्रीमद्भागवत् के कीर्तन की नदी बहाई और इस संसार को पापों से पवित्र और निर्मल करदिया व भक्तों से ऐसी प्रीति रही कि सर्वकाल भीड़ रहती थी और यशोदानन्दन महाराज के स्मरण भजनसे प्रेम था व दीनजनों पर कृपा अत्यन्त थी ॥

कथा कृष्णदासजी की ॥

कृष्णदासजी विख्यात चालककी रचना चर्चरी छन्द व विष्णुपद आदिकी ऐसी विख्यात हुई कि समुद्रपर्यन्त पहुँची अलग अलग ग्रन्थ सब चरित्र जैसे गुरुधनचरित्र व पञ्चाध्यायी व रुक्मिणीमङ्गल भगवद्भोजन विधि इत्यादि की रचना की सुख देनेवाले घटा के सदृश हुये भगवत् सन्मुख करने के हेतु उनका अवतार हुआ ॥

कथा नारायणमिश्र की ॥

नारायणमिश्र नवलावंश में परमभक्त हुये भागवत के कीर्तन में तो मानो वेही एक जन्मे थे क्योंकि जिनको बद्रिकाश्रम की ओर शुकदेवजी ने आप भागवत पढ़ाई जिनके पास भक्तों की समाज नित्य रहा करती थी नवधाभक्ति को जिसने भली प्रकार साधा सब शास्त्रों को अच्छे समझ

कर तत्त्व चुनलिया जो बृहस्पति और शुकदेव और सनकादिक व व्यास और नारदादिकों को अङ्गीकार व हृदयस्थ है सुधाबोध थे गङ्गा तुल्य जिनका दर्शन था ॥

कथा कमलाकर की ॥

कमलाकरभट्ट परमभक्त और पण्डित सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हुये उपासना शास्त्र के तो ध्वजाही रहे कि भक्तिविरोधियों को शास्त्रार्थ में जीतकर भगवद्भक्ति पर स्थिर किया माध्वसंप्रदाय में मानो माधवाचार्य के अवतार हैं माधवाचार्य ने जो दिग्विजयटीका भागवत की रचना करी है उसी के अनुकूल भागवत का कीर्त्तन और वर्णन किया करते थे स्मृति व पुराण के अनुकूल भगवत् के शङ्ख चक्र की महिमा वर्णन करके आप चिह्न उनके धारण करे व सब अवतारों को पूर्ण समझा किसी में कुछ भेद नहीं किया ॥

कथा परमानन्दजी की ॥

परमानन्दजी गोपियों के सदृश श्रीकृष्णजी के स्नेह व प्रेम में बेसुध व मग्न रहते थे व्रजकिशोर स्वामी के चरित्र बारहवर्ष की अवस्था के ऐसे कीर्तन किये कि विख्यात हैं और जो उन्होंने शोभा व सुन्दरता और माधुरीरूप और लीला नटनागर महाराज की अतिप्रेमयुक्त वर्णन करी तो कुछ आश्चर्य नहीं कि वह शोभा व चरित्र उनके बाहर भीतर का आंखों के आगे था प्रेम का जल आंखों से बहता और रोमाञ्च अनुक्षण रहता था व स्वरभङ्ग शोभाधाम महाराज की शोभा में पगेहुये व उस रङ्ग में रँगे हुये थे और अपने काव्य में सारङ्गनाम भगवत् का विशेष करके लिखते व रचना उनकी भगवत्प्रेम की बढ़ानेवाली ऐसी है कि भगवत् के ध्यान व प्रेम में मनको लगा देती है ॥

निष्ठा छठवीं ॥

वेष वर्णन जिसमें कथा आठ भक्तों की हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की ध्वजारेखा को दण्डवत् करके यज्ञ अवतार को प्रणाम करता हूं जिससे वैवस्वत आदि राजालोग यज्ञ और धर्म का उपदेश पायकर संसारसमुद्र से पार हुये जानरक्खो कि भगवत् के मिलनेके निमित्त दोप्रकार का वेष है एक तो आन्तरीय अर्थात् अन्तरका विचार दूसरे सोचना और समझना सार और असार काम

वैराग्य अर्थात् त्याग करना ब्रह्मलोक पर्यन्त सुख का ३ शम अर्थात् मन का निग्रह करना ४ दम अर्थात् संयम और नेम अवलम्ब से इन्द्रियों को अपने वश में करना उपरति अर्थात् मनको फिर उन स्वादों की ओर नजानेदेना ५ तितिक्षा अर्थात् दुःख सुख भलाई बुराई का सहना श्रद्धा अर्थात् गुरु का उपदेश ६ और भगवत् में विश्वास समाधान ७ अर्थात् भगवत् के ध्यान की समाधि दूसरा वेष बाह्य अर्थात् बाहर ८ जो देखने में आवें कि जिनको पांच संस्कार कहते हैं। प्रथम ऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् तिलक २ दूसरा मुद्रा अर्थात् शंख चक्र भगवच्छस्त्रों के चिह्न शरीर पर लगाना ३ तीसरा माला ४ चौथा मन्त्र ५ पांचवां नाम और कोई नाम की जगह विचारभी कहते हैं॥ और यह पांचों संस्कार गृहस्थाश्रम में होके त्यागीही को सब उचित हैं कि पद्मपुराण और हारीतस्मृति और पराशरस्मृति आदिपुराणों व स्मृति का वचन इसके विधान में युक्त है और वेद श्रुति की निज आज्ञा मिलती है भेद इतनाहै कि जो गृहस्थ हैं उनका नाम प्रकट वही रहता है जो गृह में धरागया था और गृहस्थाश्रम को त्याग किया विरक्त होगये उनका नाम वही विख्यात होता है जो संस्कार भये के समय गुरुने कृपा करके दिया वेष की महिमा व बड़ाई क्या लिखूं कि भगवत् के मिलने के हेतु सबसे दृढ़ अवलम्ब मुख्य यह है पद्मपुराण में लिखा है कि जिनके गले में तुलसी लगी हुई अर्थात् कण्ठीकी माला और कमल के फूलों की माला पहिने हुये भगवच्छस्त्रों का चिह्न बाहुपर तिलक मस्तक पर है ऐसे वैष्णव शीघ्र संसार को पवित्र करदेते हैं आगमसार तन्त्र का वचन है कि जो केवल मालाधारी वैष्णव है वह ब्रह्माआदि करके भी पूज्य है मनुष्यों की कौन बात है फिर मन्त्रशास्त्र का वचन है कि माला और तिलक और भगवच्छस्त्रों का चिह्न जिस किसीके शरीर पर है जो वह चाण्डाल भी है तो भी पूजन के योग्य है महाभारत के भीष्मपर्व में लिखा है कि ब्राह्मण है अथवा क्षत्रिय अथवा वैश्य कि शूद्र जिसने वेष वैष्णव धारण कियाहै वह पूज्यहै और दण्डवत् करने के योग्य और वहही कर्मों में युक्त है जो शूद्रभी है तो भी ऐसा है कि ब्राह्मणों की धरती पर मिलना क्लिष्ट है ऐसे सैकरों हजारों श्लोक हैं और क्यों नहीं ऐसी महिमा और बड़ाई इस वेष की होवे कि विना इसके कोई मार्ग उद्धार के निमित्त देखने में नहीं आता भला किसी ने संप्रदाय के भजन कीर्तन की इच्छा की तो वह भजन कीर्तन की पद्धति और पथ से

करेगा कै तो यह बात होगी कि नहीं मिलने कोई राह और पद्धति के कारण से भजन कीर्तन की इच्छा छोड़ देगा और जो इच्छा दृढ़ होगी तो हारि झखमारकर किसी न किसी संप्रदाय को अङ्गीकार करेगा काहेसे कि जिस रीति व पद्धति को लेकर भजन आरम्भ करेगा वह निश्चय करके किसी न किसी संप्रदाय के अनुकूल होगा और जब कि किसी संप्रदाय के मत के अनुसार हुआ तो निश्चय पद्धति उस संप्रदायकी अङ्गीकार करनी पड़ेगी और जब कि पद्धति को अङ्गीकार किया तो सबसे मुख्य रीति संस्कार की है और सब वैष्णव और शैव व स्मार्त व शाक्त आदि इस बात में एकमत हैं सो जितने ऋषीश्वर और भक्त ब्रह्मा तक जो हुये हैं सबको पहले संस्कार और गुरुमन्त्र उपदेश हुआ है विना मन्त्रादि किसी का उद्धार आजतक न हुआ न होगा और शास्त्र की आज्ञा प्रसिद्ध सब ठौर पर है कि ब्राह्मण बालक का संस्कार आठ वर्ष की अवस्था में और क्षत्रिय का ग्यारह बारह वर्षके और वैश्य का सोलह वर्षके वयक्रम में न होजावे तो वह अपने वर्णसे पतित होजाता है तो सब प्रकार से संस्कारों का होना सिद्धान्त व मुख्य करके कर्तव्य है जो किसी को यह कथन होय कि ऊपर का वेष बनाने से क्या लाभ होगा मन का वेप सँवारना चाहिये तो जानरक्खो कि पहले तो इस सिद्धान्तमें बोलचाल व प्रश्न व संदेहकी समवायी व पहुँचही नहीं है क्योंकि शास्त्र की आज्ञा में किसको पराक्रम वाद करनेका है कान लटकाकर उस आज्ञा के अनुकूल साधना करना उचित है नहीं तो विचार लेना चाहिये कि किसी को आजतक जन्म के दिनसे संसार में एकही बेर विना ऊपर के वेप व भजन को अन्तःकरण की उज्ज्वलता प्राप्त भई है जब ऊपर भजन, व्रत, नेम, जप, तपआदि करते हैं तब सैकड़ों जन्मों में भीतर की पदवी मिलती है सिवाय इसके प्रकट है कि पारसपाषाण लोहेको सोना करदेता है सो यह वेष ऊपर का पारसमणि के सदृश है निस्संदेह अन्तःकरण के अवगुणों को दूरकरदेगा फिर तुलसी और भगवत् के शङ्ख चक्र आदि का सत्संगहै और सत्संग का माहात्म्य पहले लिखचुके हैं फिर तीर्थ के सदृश है कि हृदय को पवित्र करदेना तीर्थों का स्वभाव है व सिपाही तब कहलाता है कि जब तरवार बाँधता है विना ध्वजा अलग २ के ठाकुरद्वारे व शिवालयकी समझ नहीं होती है बैलपर त्रिशूल का अङ्क लगादेते हैं शिवजी का नाँदिया विख्यात होजाता है कालूकहार जो कहारों का गुरु है उसकी वार्त्ता

है कि किसी राजा धर्मात्मा के राजमें मछली पकड़ता रहा राजाको आवते देखकर जाल पोखरे में छोड़ दिया अपने प्राण की भय से तालाब की मिट्टीको तिलक लगा व जालके दानोंकी माला लेकर साधुओं के रूप से बैठगया राजा ने उसको साधु जाना दण्डवत्कर और कुछ भेंटधर चला गया व कालू उसी घड़ी भगवत् शरण हुआ और यह दोहरा पढ़ा॥

दो० ॥ बाना बड़ो दयाल को, तिलक छाप अरु माल। यम डरपे कालू कहै, भय मानो भूपाल ॥ इस हेतु बहुत उचित व करनी यह चाहिये कि वेष सद्गुरुसे ले सो पांचों संस्कारमें पहले ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलकहै उसके निमित्त अथर्वणवेद के उपनिषद् में यह आज्ञा है कि भगवच्चरण के चिह्न अर्थात् तिलक जीव के कल्याण के हेतु जो कोई धारण करता है और वह तिलक मध्य में छिद्र होवे और खड़ा हो वह मनुष्य भगवत् को प्यारा है और धर्मात्मा व मुक्तिवाला है दूसरे पुराणों का वचन लिखदेने से वेद श्रुति के प्रमाण लिखनेपर प्रयोजन न समझा सो वेद व पुराणों की आज्ञा के अनुकूल चारों संप्रदाय में प्रणाली तिलक की है पर तिलक के स्वरूप बनाने में आपुस में कुछ भेद है श्रीसंप्रदाय में दोनों ओर बीच में ललाट के भगवच्चरणों के चिह्न बनाकर दोनों भौंह के बीच में सिंहासन लगाते हैं और बीच में रोली की पीली के लाल लकीर दीपकज्योति के आकार खींचते हैं कि उसका नाम श्री है और कारण अधिक करने श्रीके निमित्त के दो विचार इसमें हैं कि यह चिह्न उन चरणकमलों का है जिनका सेवन श्री अर्थात् लक्ष्मी अनुक्षण करती हैं माध्वसंप्रदाय में दोलकीर महीन ऊंची लगाकर दोनों भौंह के नीचे सिंहासन लगाते हैं और सिंहासन के नीचे एकचिह्न कटार के फल के आकार नाकतक देते हैं निम्बार्कसंप्रदायमें दोलकीर महीन के बीच में एक बिन्दी छोटी श्यामबन्दिनी अथवा श्वेत लगाने की रीति है उसको कमल कहते हैं और सिंहासन महीन लकीर का जैसा तिलक का और विष्णुस्वामी संप्रदाय में दो लकीर महीन और नीचे उसके सिंहासन लगाकर बीच में शून्य छोड़देते हैं व्यासजी ने जो नई परिपाटी अपनी संप्रदाय की की तो निम्बार्कसंप्रदाय से उनके तिलक में थोड़ा भेद है यह कि निम्बार्कसंप्रदाय में तिलक का सिंहासन दोनों भौंह के नीचे लगाया जाता है और व्यासजी की संप्रदाय में सिंहासन नासिका के अग्रभाग से तिलक आरम्भ करते हैं हितहरिवंशजी की संप्रदाय का तिलक निम्बार्कसंप्रदाय के आकार है और रामानन्दजी की

संप्रदाय का श्रीसंप्रदाय के अनुसार है चारों संप्रदायों में द्वादश अङ्गपर तिलक करना लिखा है और सब तिलकों के मन्त्र अलग २ हैं निम्बार्क संप्रदाय में दोनों लकीर के बीच में बिन्दी का लगाना और माध्व व विष्णुस्वामी के संप्रदाय में रिक्त का और श्रीसंप्रदाय में गोपीचन्दन छोड़कर और तीर्थों के जैसे चित्रकूट व तोताद्रि आदि की मृत्तिका का तिलक लगाना विधि है व तैसेही रामानन्दसंप्रदाय में और तीनों संप्रदाय में गोपीचन्दन का व बेवश के समय दूसरे तीर्थों की मृत्तिका का पर विष्णुस्वामी संप्रदाय में केशर आदिका भी लगाते हैं ॥ तिलक निम्बार्क संप्रदाय का ॥ तिलक माध्वसंप्रदाय का ॥

दूसरा संस्कार मुद्रा है और अथर्वणवेद की श्रुति की आज्ञा है कि जो कोई पुरुष भगवत् के शङ्ख चक्र आयुध की तप्तमुद्रा दोनों भुजापर धारण करताहै सो विष्णुमहाराजके परमपद को जाता है और इसी प्रकार दूसरी श्रुति थोड़े अक्षरों के न्यूनविशेष की है व पद्मपुराण में भी ऐसीही आज्ञा है यद्यपि चारों संप्रदायवाले इस आज्ञा के अङ्गीकार में एकमत हैं पर श्रीसंप्रदाय में तो यह रीति है कि दीक्षा देने के समय तुरन्त तप्तमुद्रा धारण करादेते हैं गृहस्थ होय अथवा त्यागी होय और तीन संप्रदाय में एक पुराण के श्लोक के प्रमाण में शीतल मुद्रा की रीति है और यद्यपि अगिले आचार्यों ने पुराण के प्रमाण से तप्तमुद्रा धारण करना एकस्थान द्वारका में लिखा है पर गृहस्थों में यह चलन नहीं गृह त्याग के पश्चात् उचित व अवश्य करनी यह है तीसरा संस्कार माला है तुलसी की अथवा कमल के फलकी विहितहै तुलसीजी का माहात्म्य बहुत जगह पुराणों में लिखा है इसहेतु विस्तार करके तर्जुमा लिखना प्रयोजन नहीं समझा सारांश यह है कि तुलसी के धारण करनेवाले को निश्चय भगवत् की प्राप्ति होती है और मरण के समय तुलसी की माला कै तुलसीदल

अथवा कण्ठी जिसके शरीर पर होय तो यमराज का भय नहीं होता सद्गति को जाता है पद्मपुराण में जो कदम्बआदि वृक्षों के काष्ठ की माला वृन्दावनकी बनी हुई का माहात्म्य तुलसी के माला के सदृश देखने में आया चौथा संस्कार मन्त्र है सो उसकी महिमा सब कोई जानते हैं कि सब संप्रदायों की जड़ और सब वेदशास्त्रों का सारांश और शीघ्र भगवत् को मिला देनेवाला और भुक्ति मुक्ति की कामना पूर्ण करनेवाला है भगवत् में और मन्त्र में वाल वरावर भी भेद नहीं है भगवत् मन्त्र के आधीन हैं सब वेद व पुराण उस मन्त्र की महिमा को वर्णन करते हैं इस हेतु किसी श्रुति का तर्जुमा करना प्रयोजन न समझा सो मन्त्र चारों संप्रदाय का अलग २ है जो यह वाद हो कि एक स्वर का मन्त्र अलग २ किस हेतु है तो यह दृष्टान्त अच्छे प्रकार उस वाद को बिरवार देता है नाम व रीति से पुकारते हैं और वह मनुष्य सब नाम व रीति से सावधान व सम्मुख होता है इसी प्रकार वह भगवत् जिस नाम और मन्त्र से स्मरण किया जावे सम्मुख होता है पांचवां संस्कार १ नाम २ दूसरा करने का है उसके निमित्त कुछ प्रमाण व वाद का प्रयोजन नहीं जिस वर्ग में जो कोई होता है उसीभांति का नाम रक्खाजाता है पलटन में भरती हो तो सिपाही कहते हैं और सवारों में हो तो सवार चारों संप्रदाय के जो संन्यासी होते हैं त्रिदण्डी कहलाते हैं एक दण्ड लकड़ी पलाश का दूसरा शिखा तीसरा सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत विशेष करके नाम गिरिपुरी तीर्थ मुनि संन्यास धारण के समय रक्खेजाते हैं व कपड़ा श्वेत अथवा गेरू के रङ्ग का के शिंगरफ़ी रङ्ग का पहिरते हैं और संन्यास लेनेके पहले सब संप्रदाय में सब रङ्ग की पहिरन सिवाय नील आदि जो शास्त्र में निषेध है पहिनते हैं स्मार्तसंप्रदाय जो चारों संप्रदायों से अलग है और उसके आचार्य शङ्करस्वामी हुये उसके तिलक की रीति त्रिपुण्ड्र अथवा वटाकार अर्थात् चिह्न बरगद के पत्रके सदृश चन्दन अथवा भस्म के गोपीचन्दन या तीर्थ की मृत्तिका से है ॥

वटाकार

त्रिपुण्ड्रतिलक

और माला तुलसी व कमलाक्ष व रुद्राक्ष व जयापूता आदिकी व गायत्री आदि सबप्रकार के मन्त्र हैं मुद्रा लगाने की रीति नहीं त्याज्य

जानते हैं नाम वही रहता है जो जन्म होनेपर धरागया और यज्ञोपवीत के समय जो संस्कार हुआ उसीको सब प्रयोजन के अर्थ बहुतकर समझते हैं फिर गुरु नहीं करते हैं संन्यास की इस संप्रदाय में यह रीति है कि शिखासूत्र दूर करदेते हैं केवल एक दण्ड लकड़ी का रखते और नाम भी उसीसमय दूसरा धराजाता है और इसकी संप्रदाय में संन्यासियों के दश नाम हैं जो कि शङ्करस्वामी की कथा में लिखेगये हैं गेरू या शिंगरफ़के रङ्गका कपड़ा पहिनना व तिलक त्रिपुण्ड्र भस्म का ब्राह्मण के सिवाय और किसी के हाथ का भोजन न करना कर्मों का करना न करना बराबर समझना और दूसरे धर्म सब संन्यासियोंके बराबर हैं मुख्य संन्यासी वे हैं जो दण्डधारण रखते हैं और सब संप्रदाय में दण्डीस्वामी बोले जाते हैं विशेषकर जो काशीजी व मथुरा आदि में आते हैं हे श्री कृष्णस्वामी ! हे दीनवत्सल ! हे दीनदयालु ! हे करुणाकर ! कबहीं कृपा करके इस अपने घरजाये चेरे की ओर भी कृपादृष्टि करोगे हे नाथ ! भलाहूँ कि बुरा जैसाहूं आपका हूं जिस प्रकार लाखों करोड़ों जन्मतक इस मेरे मन ने मुझको अपने वश में रक्खा है इसी प्रकार कभी मुझको भी तो ऐसा करदेव कि मैं मन को अपने वशमें करलूँ और सच करके जो सदा का अपराधों से भरा हूं पर मेरी ओर देखना क्या प्रयोजन है आप अपने विरद पतितपावनता की ओर देखें कि कोटानकोटि महापापी और पातकी एक नाम के अवलम्ब से शुद्ध और पवित्र हुये और होते हैं और यह निवेदन मेरी ऐसी नहीं कि जिसका पूरा करना कुछ क्लिष्ट हो थोड़ीसी बात यह चाहता हूं कि वह समाज आपका जो आरम्भ ग्रन्थ में लिख आयाहूं सदा मेरे मन में बसा रहे स्वर्ग में कै नरक में कहींरहूं ॥ कवित्त ॥
बसीरहै शशिछवि ज्यों मन चकोरन के, अलिमति मालतीसुमन में बसीरहै।
बसीरहै गजमन रेवाकी रुचिररेणु, मोरन की रुचि घनाघन में बसीरहै ॥
बसीरहै श्रीपतिसदन कमलाजू जैसे, मदनक्षुधा ज्यों युवायोनि में बसीरहै।
बसीरहै त्योंहीं तेरे छविकी लगन कृष्ण, मूरति तिहारी मेरे मनमें बसीरहै ॥

कथा रसखान की ॥

रसखान जो परमभक्त भगवत् के हुये पहले मुसलमान थे अपने पीर के साथ राह चलते श्रीवृन्दावन में आपहुँचे तो अनेक जन्मों के पुण्य उदय हुयें अर्थात् श्रीव्रजचन्द महाराज के दर्शन हुये दर्शन होते ही कुछ और ही दशा होगई उसरूप अनूप में छककर बे सुध होकर गिरपड़े उन

का पीर उस पीर को न समझा मूर्च्छा समझकर औषध करनेलगा और पुकारा आंखैं खोलीं रसखान की उसी क्षण सब विद्या व काव्य सब गुण की खानि होगये उस मनोहरमूर्ति की छवि एक कवित्त में वर्णन की अन्त में कहा कि आंखैं क्या खोलूं वह मूरति मन में बसगई है पीर ने कहा काबेको चलो तब बोले कि जो है सो सब यहांहीं प्राप्त है मैं ब्रज का होचुका अब कहां जाताहूं और एक कवित्त में कहाहै कि पत्थर हूं तो गिरिराज का जो पशु हूं तो नन्दराय की धेनु में चरूं जो मनुष्य शरीर मिले तो ब्रज के ग्वालवाल में रहूंगा जो पक्षी हूं तो ब्रज के वृक्षों का उनके पीरने चाहा कि बलसे रथ में डालकर लेजावें वृन्दावन के वनों में भागकर जा छिपे वृन्दावन वास करके हजारों कवित्त वृन्दावनकी शोभा के वर्णन और प्रिया प्रियतम की शोभा विहार की रचना करी वैष्णव वेष रखते थे माला बहुत पहिनते थे किसीने पूछा कि एक दो माला बहुत हैं इतनी माला का क्या प्रयोजन है ? उत्तर दिया कि माला संसारसमुद्र से पार उतार देती है सो जो छोटे पत्थर हैं उनको एकही दो माला बहुत हैं और मैं कि बड़े पत्थर के सदृश हूं मुझको बहुत माला रखना चाहिये ॥

कथा भगवानदासजी की ॥

भगवान्दासजी रहनेवाले मथुरा भगवद्भजन भाव में दृढ़ व बड़े गुणवान् भगवत् के प्रेमी श्रोता और रहस्य व रस के ज्ञाता भगवद्भक्तों में विश्वास और ऐसे सुन्दर कि जिनके देखने सें मन को सुख हो और भगवत् के जो धाम हैं उनके टहल करनेवाले सब भाव करके श्लाघ्य हुये एक वेर बादशाह ने परीक्षा के हेतु डौंड़ी को फेरवाय दिया कि जो कोई माला तिलक धारण करेगा गरदन माराजायगा इस बातपर बहुतों ने छोड़दिया पर भगवान्दासजी न डरे अपने अनुगामियों समेत और दिनसे अधिक प्रकाशित तिलक दोहरीमाला धारण कर बादशाह के सामने जानके आये बादशाह ने बुरा मानकर आज्ञा न माननेका कारण पूछा भगवान्दासजी ने अशङ्क उत्तर दिया कि हमारे दीन में माला तिलक सहित प्राण जाय तो उद्धार होती है अब इस समय कि हमको अपनी मृत्यु ज्ञात होगई तो तिलक और माला अच्छे प्रकार धारण किये कि विना परिश्रम उद्धार हो बादशाह यह विश्वास दृढ़ देखकर अति प्रसन्न हुआ कहा कि जो चाहना हो सो मांगो भगवान्दासजी बोले मथुराजी से बाहर जाना नहीं चाहता बादशाह ने लिख दिया कि

मथुरा की आमिली जबतक मनचाहे तबतक करे सो बहुतकाल मथुरा की आमिली भगवान्दासजी ने करी हरदेवजी का मन्दिर और मानसीगङ्गा पोखरा गोबर्द्धनजी में उनका बनवाया है ॥

कथा चतुर्भुजजी की ॥

चतुर्भुजजी राजा करौली ऐसे भगवद्भक्त साधुसेवी हुये कि उनके दृष्टान्त को कोई राजा नहीं मिलता है भक्तों के आनेका वृत्तान्त सुनकर इसप्रकार लेनेको आगे जाते थे कि जैसे सेवक व चाकर अपने स्वामी की सेवा में जाता है घर लाकर राजा व रानी अपने हाथों से चरण धोते पूजा करते नगर के चारों ओर चार-चार कोसपर चौकी थी कि जो कोई मालाधारी आवे उसका समाचार पहुँचावें एक दूसरा कोई राजा यह वृत्तान्त वेषसेवा का सुनकर कहनेलगा कि योग्य अयोग्य की समझ नहीं तो भक्ति की बड़ाई क्या है उसके पण्डित ने उत्तर दिया कि मनमें समझ लेते होंगे राजा ने भाट विमुख को परीक्षा के हेतु भेजा व समझा दिया कि माला तिलक धारणकर स्वामी हरिदासजी बनकर राजाके पास जाना वह भाट आया अपने स्वामी का कहना भूलगया भाटोंकी रीति फैलाई जब प्रवेश राजा तक दुरूह देखा तब अपने राजा की शिक्षा स्मरण हुई व उसी भांति से गया द्वारपाल ने कुछ रोक टोक न किया जब सामने गया तो राजा ने अपने स्वभाव के अनुकूल आगत स्वागत सब किया भगवत्प्रसाद जिमाया भगवच्चर्चा आरम्भ किया वह भाट हूं हां करता रहा राजा ने जान लिया किसी ने परीक्षा को भेजा है बिदाई दिया और एक डिबिया में एक फूटी कौड़ी धरके ऊपर से कीनखाप व मुशज्जर से लपेटकर ऊपर मुहर छाप लगा उसको देदिया भाट जब अपने राजाके पास आया तो सब वृत्तान्त भक्तिभाव का राजा चतुर्भुज का वर्णन किया व सब बिदाई समेत डिबिया राजाके आगे धरदी डिबिया खोलकर देखा भेद न पाया तब उसी पण्डित ने समझाया कि खुली बात है कि ऊपर वेष ऐसा और भीतर भाट है भक्ति नहीं राजा चतुर्भुज यही कहता है वह राजा लज्जित हुआ उस पण्डित को भेजा पण्डित सत्संगको धन्य मानिगया राजा चतुर्भुज सुनकर आदर से दण्डवत् कर लेगया बहुत दिनतक सत्संग का सुख लिया निश्चय जब चलने की इच्छा करी राजा ने भण्डार खोलकर कहा जो इच्छा हो सो लेजाइये पण्डित ने कुछ न लिया एक मैना पक्षी राजा को प्यारा था राजा साधुसेवी ने देदिया मैना लेकर राजा के समीप पहुँचा मैना

सभा को भगवद्विमुख देखकर कहने लगी कि कृष्ण कृष्ण कहो जो तुम्हारा उद्धार हो यह संसार असार व आगमापायी है विना कृष्णभजन किसी प्रकार उद्धार नहीं होगा राजा ने सव वृत्तान्त पूछा पण्डित ने कहा कि एक मैना से सब समझलेव और हम करोड़ों मुख से भक्तिभाव राजा चतुर्भुज का वर्णन नहीं करसक्ते हैं राजाको बड़ा विश्वास हुआ भगवद्भक्ति साधुसेवा अङ्गीकार की पीछे जब भावभक्ति राजा को होगई तब मैना विदा होकर राजा चतुर्भुज के पास पहुँची राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥

कथा एक राजा की ॥

एक राजा भगवद्भक्त ऐसा हुआ कि संसार के सुख और ऐश्वर्य को अनित्य समझ कर सदा भगवत् के स्मरण भजन में रहता था जिसको कण्ठी तिलक धारण किये देखता भगवद्रूप जानके दण्डवत् करता व धन भगवत् उत्साह व भक्तों के हेतु लगाता भांड़ आदि जो भगवद्विमुख हैं इनको कुछ न मिलता भांड़ मन्त्रणा कर साधुओं का वेष बनाकर आये राजाने अपने भावके अनुसार पूजन व सत्कार किया भांड़ साज सम्हाल राग नाच व हँसने का रूप बनाने लगे राजा प्रसन्न होकर बोला धन्य है भगवद्भक्तों को कि अपने सेवकों को ढोल बजाकर नाच गायकर कृतार्थ करते हैं वड़े आदरपूर्वक प्रसाद जिमाया एक थाल में मुहर भरकर विदा के समय आगे धरदिया भांड़ों ने विश्वास राजा का देखकर और सत्संग जो हुआ तो सब भगवत् शरण होगये ॥

कथा गिरिधरग्वाल की ॥

गिरिधर ग्वालजी भगवत् में सखाभाव रखते थे और अनुक्षण भगवत् के समीप और हँसी खेल में मिले रहते थे अपने अन्तर के प्रेम को बहुत छिपाये रहते पर भगवच्चरित्रों को कीर्तन करते गद्गदवाणी होजाती प्रीति कहां छिपसक्ती है तब वनमें जाकर कीर्तन व नृत्य करने लगे एक वेर मौजे मल्लिपुरा में भगवत् का रामचरित्र कराया व प्रेम में विवश होकर सब धन व वस्तु भगवत्भेंट करदी भक्तों में ऐसी प्रीति रही कि जिसको साधुवेष देखते भगवद्रूप जानते एकवेर कोई साधु मरा देखा उसका भी चरणामृत लिया दूसरे ब्राह्मणों ने यह स्वभाव अयोग्य विचार कर मना किया पर न माना उत्तर दिया कि भगवद्भक्त को कबहूं मृत्यु नहीं यह तुम्हारा वे विश्वास है जो मृतक कहते हो और ग्वालपट्ट इस कारण से विख्यात हुआ कि सखा रहे ॥

कथा लालाचार्य की ॥

लालाचार्य रामानुजस्वामी के जमात में ऐसे भगवद्भक्त हुये कि जिनकी कथा सुनकर निश्चय भगवच्चरणों में प्रीति होती है गुरु ने आज्ञा दी कि भगवद्भक्तों में जितनी प्रीति व विश्वास हो सो अच्छा पर बड़े भाई से कम उनको न जानना सो उस आज्ञा के अनुकूल वर्तते रहे एक समय कोई माला तिलकधारी को नदी में बहते जाते से निकालकर अपने घर लाये और विमान बनाकर भगवत्कीर्तन करते नदीपर लेजाकर दाहक्रिया करके फिर महोत्सव में ब्राह्मणों सगोत्रों को नेवता दिया ब्राह्मणों ने अङ्गीकार न किया कहने लगे कि इनका कोई न था जाने कौन जातिका मृतक रहा लालाचार्य सुनकर चिन्ता करने लगे और अपने गुरु के पास गये वे स्वामी रामानुज के पास लेगये दण्डवत् कर सब वृत्तान्त निवेदन किया व स्वामी ने कहा कि वे लोग भगवत्प्रसाद की महिमा नहीं जानते हैं तुम चिन्ता मत करो भोजन की सामग्री बनाओ भगवत् पार्षद वैकुण्ठ से आकर भोजन करेंगे सो उस दिन पर भगवत् पार्षदों का झुण्ड ऐसे स्वरूप और वस्त्र अलंकार से कि किसीने स्वप्न में भी न देखा हो आकर जो प्रसाद बना हुआ था अतिप्रेमसे भोग लगाया ब्राह्मणों को पहले तो आश्चर्य हुआ कि ऐसे ब्राह्मण कहां से आये हैं फेर द्वेषबुद्धि करके यह मन्त्र ठहराया कि जब भोजन करके आवें तो ऐसी हँसी करो कि लज्जितहों भगवत्पार्षद उनके कुमन्त्रको जान गये भोजन करके आकाशमार्ग होकर चलेगये ब्राह्मणों ने जो यह चरित्र और प्रताप देखा तो बहुत लज्जित हुये और अहंकार को छोड़कर आये और लज्जा करके लालाचार्य के सामने आंखें बराबर न करसके और पनवाड़े भोजन किये हुये पार्षदों के पड़े थे उनमें सें सीथ प्रसाद लेकर खाने लगे फिर लालाचार्यके चरणों में दण्डवत् करके प्रार्थना की कि अब हमको अपना सेवक करो और कृपा करो लालाचार्यने कहा कि तुम्हारे ऊपर तो भगवत् की कृपा हुई कि भगवत्पार्षदोंके दर्शन तुमको हुए इससे अधिक क्या कृपा चाहतेहो ब्राह्मणों ने विनय किया अब हमको लज्जित करना क्या प्रयोजन अनुग्रह करना प्रयोजन है सो सब भगवत् शरण हुये और भगवद्भक्ति और वेषनिष्ठा का प्रताप सब संसार में प्रकाशित और प्रकट हुआ ॥

कथा मधुकरसाह की ॥

राजा ओड़छे भगवद्भक्ति में भी राजा हुये साधुवेष में अत्यन्त प्रेम व विश्वास था सच करके जैसा मधुकरनाम था वैसीही रीति भी रही अर्थात् भ्रमर सारग्राही होता है वैसे ही सारग्राही थे उनकी रीति थी कि जो कोई कण्ठी तिलक मालाधारी हो उसका चरणामृत लेते और परिक्रमा करते राजा के भाई बन्धुओं को यह बात अच्छी न लगे एक गदहे को बहुतसी माला पहनाकर तिलक करके महल में भेज दिया राजा उठा उसका चरण धोकर परिक्रमा करके कहा कि आज निहाल करदिया पीछे प्रसाद जिमाकर विदा करदिया दुष्टों को लज्जा हुई और विश्वास हुआ राजा ने जो वचन निहाल करनेका कहा तो अभिप्राय यह है कि मेरे बड़े भाग्य हैं जो मेरे राज्य में गदहे भी माला तिलक धारण करते हैं जो कोई माला तिलक धारण नहीं करता निस्संदेह वेदुम का गदहा है वरु गदहे से भी बदतर ॥

कथा हंसप्रसंग की ॥

एक राजा को कुष्ट था औषध बहुतेरी हुई रोग न छूटा किसी वैद्यके कहने के अनुसार राजा ने व्याधों को हंस पकड़नेको मानसरोवर में जहां रहते हैं भेजा जब हंस इन व्याधों के हाथ न आवें तब सब साधुका रूप बनाकर गये हंस व्याधों का कपट जानगये पर वेष को न मानना भगवद्धर्म से बुरा जानकर जानिके पकड़ायेगये व्याध उनको बन्धमें करके राजा के पास लाये तबतक भक्तवत्सल महाराज वैद्य बनकर आये नगर के बाज़ार में अपनी वैदाई की दूकान अच्छी लगाई फिर राजाके पास पहुँचे राजा ने अपने दुःख का वृत्तान्त और हंस पकड़वा मँगाने का सब वर्णन किया वैद्य महाराज ने उनको आश्वासनकर कहा कि तुम्हारा बहुत शीघ्र दुःख दूर हो जायगा इन पखेरुओं को बन्धन से छोड़ो बन्दी में डाल रखना कुछ प्रयोजन नहीं कुछ औषध को शरीर पर लगवा दिया तुरन्त शरीर निर्मल होगया राजा ने तुरन्त आनन्द होकर हंसोंको छोड़ दिया राजा ने वैद्य के आगे हाथ जोड़कर विनय किया कि यह राज्य व सम्पत्ति सब आप का है वैद्य ने कहा सच करके सब हमारा है अब तुम भगवद्भक्ति और साधुसेवा अङ्गीकार करके मनुष्य शरीर जोकि बड़े क्लेश से मिला है उस को सुफल करो फिर तो राजा ऐसा भक्त हुआ कि सब राज्य में भक्ति की प्रवृत्ति हुई यह हंसप्रसंग समझने योग्य है कि जानवरों को तो ऐसी भक्ति हो और मनुष्य जो कि ज्ञान करके युक्त है सो विमुख होवे तो

वह मनुष्य जानवर है कि नहीं और वह नरकगामी होगा कि नहीं ॥

निष्ठा सातवीं ॥

गुरुकी महिमा वर्णन जिसमें ग्यारह भक्तों की कथा ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की गोपद रेखा को दण्डवत् करके पृथु अवतार को दण्डवत् करता हूँ कि अयोध्याजी में प्रकट होकर सब धर्म की मर्याद फेर से नवीन बांधी और धरती को बराबर करके सब औषधी निकालीं शास्त्र का वचन है कि गुरु तीन हैं प्रथम गुरु पिता दूसरा संस्कारकर्त्ता कि जिसने यज्ञोपवीत आदि दिया हो तीसरा भगवत् मन्त्र और भगवद्धर्म का उपदेश करनेवाला और एकवचन से स्त्री का गुरु उसका पति है सो यद्यपि मर्याद और महिमा में बराबर है पर इस निष्ठा में उस गुरुका वर्णन होताहै कि जो गुरु भगवत् के मिलने के हेतु किया जावे सो जाने रहो वेद व सब शास्त्र इस बातपर युक्त हैं कि गुरु और भगवत् में कुछ भिन्नता नहीं भागवत के एकादश में भगवत् का वचन है कि गुरुको मेरा रूप जान भक्तमाल के कर्ता का वचन पहले ही लिखागया कि भक्त और भक्ति और गुरु और भगवत् कहनेमात्र को चार हैं पर सत्य करके एक स्वरूप हैं गुरु कैसाही कामी क्रोधी लोभी मोही बुद्धिहीन कुरूप होवे उसको भगवद्रूप जानना चाहिये किसी पुराण में वर्णन है कि जो गुरु कामी है तो श्रीकृष्णस्वरूप है जो क्रोधी है तो नृसिंह जो लोभी है तो वामनस्वरूप और जो धर्मात्मा है तो रामरूप भागवत में लिखा है कि जो कोई मनुष्य भगवत् के ज्ञान देनेवाले गुरुको अन्य मनुष्य के सदृश जानता है उसकी बुद्धि हाथी के सदृश है कि अन्हाय के फिर धूल मस्तकपर डालता है आजतक न किसी को देखा न सुना कि विना गुरु ईश्वर को प्राप्त हुआ हो और विचार करनेकी ठौर है कि प्रकट विद्या सब विना गुरुके प्राप्त नहीं होती तो भगवत् विना गुरु कैसे मिलेगा महाभारत में लिखा है कि जबतक गुरु नहीं करते तब तक कुछ प्राप्त नहीं होता इसहेतु गुरु करना निश्चय प्रयोजन है और आज्ञा है कि वेद, पुराण, शास्त्र, जप, तप आदि विना गुरु निष्फल हैं और वेद की आज्ञा है कि विना गुरु उपदेश के जो पूजा इत्यादि करते हैं सब व्यर्थ है तो उचित है कि जो भगवत् और भक्ति के प्राप्त की चाहना हो तो गुरुके शरण हो कोई जातों में परम्परा है कि संस्कार होने पीछे गुरु नहीं करते और कोई जात में यह रीति है कि संस्कार भये पीछे भगवत्

प्राप्ति के अर्थ गुरु अलग करते हैं सो ज्ञात होजाने प्रयोजन व नहीं प्रयोजन दूसरे गुरु करनेका व लाभ हानिके निमित्त एक दृष्टान्त स्मरण होआया है कि अँधेरी कोठरी में एक सुई सूक्ष्म है उसको एक तो इस भांति जानता है कि निश्चय सुई इस कोठरी में है और दूसरे यह कि वह सुई ठीक २ जिस जगह दीवार में गड़ी हुई है ज्ञात है दोनों के चेले उस सुई के ढूँढ़ने को गये पहलेका चेला तो ढूँढ़ता फिरनेलगा मिलगई तो मिलगई नहीं तो हारकर चलाआया जो ढूँढ़ता रहगया तो जाने मिले कै न मिले और मिले तो जाने कबतक और दूसरे का चेला अपने गुरु का पता बतलाये हुये के अनुसार सीधा चला आया और विना परिश्रम वह सुई मिलगई और यह नहीं होसक्ता कि न मिले अभिप्राय इस लिखने से यह है कि संस्कार होजाने पीछे जब कुछ समझ हो तो भगवत् के जाननेवाले को गुरु निश्चय करके करे विना गुरु कुछ नहीं होसक्ता और जो उस गुरु से भी कुछ सन्देह रहजाय अपने लाभ व इच्छा की पूर्णता को प्राप्त न हो तो दूसरा गुरु करते हैं कुछ हानि नहीं शास्त्र की आज्ञा है जैसे देखो दत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये यद्यपि धर्म गुरु और चेले के शास्त्रों में बहुत लिखे हैं पर गुरु के चार धर्म आवश्यक निश्चय हैं एक तो शास्त्र को जाननेवाला हो दूसरे भगवद्भक्त तीसरे समदर्शी चौथे वेद की आज्ञा के अनुकूल वर्तनेवाला इसके ऊपर एक धर्म सब जगह लिखा है कि गुरु अज्ञान के दूर करने के निमित्त है तो जिस प्रकार होसके चेले को भगवत् सम्मुख कर देवे और इस आज्ञा को आप गुरुशब्द का अर्थ निश्चय करता है गुरु जो अज्ञान व अन्धकार को दूर करे वह गुरु है इसी प्रकार चेले के निमित्त चार धर्म दृढ़ हैं प्रथम सेवा गुरुकी तन मन से करे, दूसरे सेवा के समय सुख स्वादु का त्याग, तीसरे गर्व का त्याग, चौथे गुरु में दृढ़ विश्वास सो वेद की श्रुती कहती हैं कि जिसकी भक्ति भगवत् और गुरु में बराबर है तो उस महात्मा को सब मनोरथ आपसे आप प्राप्त होजाते हैं सो वह विश्वास ऐसा हो जैसे भगवद्भक्तों को भगवत् में होता है और सेवा ऐसी हो कि जिस प्रकार अज्ञानी अपने शरीर की करते हैं महाभारत के आदिपर्व में लिखा है कि धूम्र ऋषीश्वरके चार चेलेथे चारों दृढ़ विश्वास व गुरुकी सेवा करके केवल गुरु के आशीर्वाद से सब विद्या के ज्ञाता और दोनों लोक के फल को प्राप्त होगये जो यह प्रतिवाद हो कि विना परिश्रम केवल विश्वास से

कैसे सब विद्या इत्यादि लाभ हुईं तो जानरक्खो कि गुरु में जो विश्वास किया तो भगवद्रूप जानकर किया सो भगवत् ने गुरुद्वारे से उनके मनोरथ सिद्ध करदिये व सिवाय इसके कई जगह वर्णन होता है कि अमुक ऋषि ऐसे प्रतापवान् थे कि उनके स्थान में बकरी व व्याघ्र एक जगह पानी पीतेथे सो व्याघ्र का ऐसा स्वभाव होजाना यह प्रभाव उस स्थान का है जो व्याघ्र को व्यापिगया इसी प्रकार गुरुका भी अपने प्रताप के प्रभाव करके एकक्षणमें वाञ्छितपदको पहुँचादेता है वहुत ऐसा हुआ और कुछ अयुक्त नहीं कि निर्मल जल कपड़े के मैल को दूरकर विमल कर देता है भले का आशीर्वाद व शाप शीघ्र व्यापि जाता है इस सिद्धान्तसे यह सिद्ध हुआ कि गुरु महात्मा योग्य चाहिये और ऐसे गुरु इस समय में नहीं मिलते पर ऐसे हैं कि उनको केवल द्रव्य आकर्षण में प्रयोजन है चेला चाहे नरक में जाय कै स्वर्ग में छमाही अथवा साल में पधारे और उसपर दुकानदारी फैलाई जो हाथ आगया सो लेगये और जो किसी चेलेने कोई बात अपने संदेह निवृत्ति के हेतु पूछी तो उसके उत्तर का तो कुछ ठिकाना नहीं और उसको वे विश्वास व नास्तिक व कथनी कथनेवाला ठहराया व सबसे उसकी निन्दा कहते फिरने लगे और चेलों का यह वृत्तान्त है कि गुरुजी की शिक्षा ग्रहण करना और मन्त्रको जपना तो कुछ बातही नहीं जो वर्ष दो वर्षपर गुरुजी रामभक्त करते पधारे तो मानो यमदूत दिखाई पड़े इसहेतु कि पांच चार दिन रहेंगे भोजन अच्छे लेंगे और बिदाई भी देनी पड़ेगी भला जब इस समय के गुरु चेलों की यह गति हो तो कहां गुरु व कहां चेला और यह भी जानो कि गुरु बहुत मिलते हैं पर चेलों की आंखें बन्द हैं कि उनको देखें जो थोड़ासा भी परलोक का भय करके भगवत् और गुरुको ढूंढ़ें तो ऐसा नहीं कि न मिलें लोकोक्ति है कि "जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां" और जब कि घरसे पांव बाहर नहीं निकलता और परलोक का भय नहीं और न भगवत् की चाह है तो कहां से गुरु मिले कि किसीको छप्पर फाड़कर धन नहीं मिलता अब इस लिखने से कोई ऐसा न समझ लेवे कि जब गुरु योग्य मिलेंगे तबहीं गुरु करेंगे यह समय का वृत्तान्त है निज अभिप्राय इस लिखने का यह है कि गुरु निश्चय करना चाहिये जैसा मिले केवल इतना देखलेना बहुत है कि उपासना का जाननेवाला हो और उसको मन्त्र गुरुदीक्षा से मिला हो यह नहीं कि पोथी देखकर मन्त्र देदिया चेला

बनालिया और गुरु के उपदेश वचन पर दृढ़ विश्वास हो बस वह गुरु है तिसको हाथों हाथ संसारसमुद्र में उतार देगा धर्म कर्म उस गुरु के बुरे हों कै भले इस पुरुष को सब धर्मरूप हैं काहे से इसको विश्वास दृढ़ है व गुरुरूप भगवत् आप हैं वही राह दिखाकर दोनों लोक के अर्थ को सिद्ध करदेगा जो विश्वास न होगा तौ कैसाही महात्मा गुरु हो मिले कुछ लाभ न होगा और विचार लेना चाहिये कि जो मनुष्य भगवत् से विमुख हो उसको तो गुरु के अवलम्ब से ईश्वर मिलसक्ता है और जो गुरु न किया अथवा उसके वचनपर विश्वास न किया तो फिर कहां ठिकाना है बहुधा ऐसा हुआ है कि चेलों के विश्वास से गुरु भी तरगये हैं कि गुरु-भक्ति कोई कोई की इस निष्ठा में लिखी जावेगी उनसे सिवाय एक और वार्ता है किसी खत्री के लड़के ने अपने गुरु से सुना कि श्रीनन्दनन्दन महाराज व्रज में नित्य रहते हैं जो मन लगाकर ढूंढ़े तो मिलजाते हैं यह लड़का अत्यन्त दर्शन का आकांक्षी होकर व्रज में गया और ढूंढ़ा कुछ पता न लगा लोगों से पूछा किसीने कहा गोलोक में हैं और किसीने वैकुण्ठ को बतलाया और किसीने कहा कि जो व्रज में हैं तो देखने में नहीं आते और किसी ने कहा परमधाम को गये इस लड़के को किसी के वचन पर विश्वास न हुआ और कहने लगा कि मेरे गुरु का वचन कभी झूँठ नहीं पर मेरे ढूँढ़नेका आलस है तब खाना सोना सब छोड़-कर बेचैन होकर ढूँढ़नेलगा जब कुछ दिन बीता न खाया न सोया न बैठा जहां तहां फिरताही रहा तो करुणाकर दीनवत्सल प्रकट हुये और कहा कि जिसको तू ढूँढ़ता फिरता है वह मैंहूं यह लड़का रूप माधुरी और छवि अनूप देखकर चरणों में गिरपड़ा और विनय किया कि कुछ संदेह नहीं आप वही हैं कि जिनको मैं ढूँढ़ता था पर मैंने सुना है कि आप चोर और छलिया भी हैं जबतक मेरे गुरु तुमको पहिंचान कर निश्चय न करदेंगे तबतक हमको विश्वास नहीं भक्तवत्सल महाराज उसके प्रेम व विश्वास के वश होकर कुछ न कहसके साथ होलिये और उस लड़के ने छल व कपट के डरसे हाथ पकड़ लिया बस तुरन्त जहां उनके गुरु रहे आनपहुँचे आधीरात थी गुरुजी अटापै शयन में थे इस लड़के ने पुकारा कि महाराज ! व्रजसुन्दर मनमोहन महाराज को लाया हूं आप पहिंचान करलें दो चारबेर के पुकारने में गुरुजी को सुनपड़ा उसके व-चन को मिथ्या समझा पर उजेरा मुख झलक व आभूषण शोभाधाम की

जो विलक्षण चांदनी सी छिटकरही थी झरोखों की राह से देखा तो घबराकर उठे और दरीबे से झांका तो क्या देखते हैं कि सच है कि नट- नागर ब्रजचन्द्र छविसमुद्र हैं कि मुखारविन्दके झलक की चांदनी चारों ओर खिलरही है और घूंघरवाली अलकें छूटीहुई अरसीली आंखों में काजल की रेख मोरमुकुट जड़ाऊ जवाहिरात का शिरपर है कानों में कुण्डल कि उसके मोतियों की झलक कपोलों पर और कपोलों की झलक मोतियों पर पड़तीहै नाक में छोटासा बुलाक कि उसमें सव्जा पड़ाहुआ है कण्ठा पचरङ्गीमाला जवाहिरात और मोतियों और सुगन्धवारे फूलों के गले में हार और सुकुमार शरीर में बागा सुनहरी तार की उसपर मु- क्केश में मोती गूंथकर गोपियों ने झालर की भांति लगादिये हैं उसके ऊपर हैकल जड़ाऊ झलकती है धानीरङ्ग दुपट्टा जरी का उसको कटि में कसेहुये हाथों में कङ्कन पहुँची और बाजूबन्द जड़ाऊ अंगुलियों में अँ- गूठी घुटन्ना गुलेनारी गुलबदन का कि गोटे और पट्टेकी गुलकारी उसपर होरही है शोभायमान चरणों में महाउर लगा हुआ उस पर घुंघुरू और कड़े हैं और किसी गोपिका के साथ जो कुछ छेड़लाड़ करी थी और उसने केसरके छींटे देदिये थे वह मुखारविन्द पर झलक रहे हैं और उस गो- पिका के छेड़ने की और उससे उत्तर पाने की हँसी अबतक नहीं गई फूल जहां तहां गुथे हुये हैं और मुरली फेंट में बस यह देखकर गुरुजी विवश होकर पुकारे कि अरे ! तू किस ढिठाई से हाथ पकड़ रहा है यह नन्दनन्दन महाराज पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं और मैं भी आताहूं यह कहकर गुरुजी तो आतेही रहे कि आप नटनागर महाराज उस लड़के सहित अन्तर्धान होगये गुरुजी जो आये तो कुछ नहीं देखा कभी अपने चेले के विश्वास पर दृष्टि करके अपने ऊपर धिक्कार और कभी दर्शन पाने से अपने भाग्य को धन्य कहकर त्यागी होगये व अपने चेलेके निश्चय के प्रभाव करके भगवत् को प्राप्त हुये सो गुरुमें विश्वास करनाही उद्धार का कारण है रे मन, मूरख ! कभी तो उस स्वरूप की ओर तू सम्मुख हो जो ऊपर लिख आया और विचारकर कि भगवच्चरणकमलों के विना किसीको भी कुछ प्राप्त हुआ है ब्रह्मादिक देवता तो जिसके चरणकमलों की रज को अपने धन्यभाग्य समझते हैं और तू ऐसा असावधान कि कभी उस ओर न लगे तो तेरी अभाग्य दशा यह है दूसरी बात नहीं सो तू अब भी समझ और कृपा करके उस रूप अनूप का

चिन्तन कियाकर कि सबसे पहले तेरी नाव उस किनारे पर पहुँचै ॥

कथा पादपद्माचार्य की ॥

पादपद्माचार्यजी परमभगवद्भक्त गुरुनिष्ठ गङ्गाजी के तटपर गुरु सेवा में रहा करते एक समय गुरु तीर्थ को जानेलगे तब पादपद्माचार्य को अपने वियोग से विकल देखकर आज्ञा की कि गङ्गाजी को हमाराही रूप ध्यान करना पद्माचार्यजी गङ्गाजी का पूजन करते व चरण गङ्गा में नहीं रखते कूपजल से स्नानादि क्रिया करते दूसरे साधु वहां थे वे लोग इस बात में प्रसन्न न थे जब गुरु आये तब सबने निन्दा करी गुरु पद्मा-चार्य के हृदय की जानगये कि मर्याद के भय से चरण गङ्गा में नहीं देते पर सबका मोह दूर करने को एक दिन गुरु ने गङ्गा में स्नान करते में पद्माचार्य से अँगौछा मांगा पद्माचार्य को इधर गुरुरूप गङ्गा में चरण देना ढिठाई उधर गुरु आज्ञा साधना इसी चिन्ता में सोचतेही थे कि कमलके फूल गङ्गा में प्रकट होआये उसी पर चरण देते जाकर अँगौछा दिया व फिर तटपर लौट आये गुरु ने यह विश्वास व प्रभाव देख छाती से लगाया व चरण भी पकड़ लिये पादपद्माचार्य नाम धरा ॥

कथा विष्णुपुरी की ॥

विष्णुपुरी ऐसे भगवद्भक्त हुये कि भागवत धर्म के आगे और सब धर्म असार समझते थे श्रीमद्भागवत जो समुद्र है तिसमें से श्लोक-रूपी अमूल्य रत्नों को निकाला और कलि के जीव इस धन के दरिद्र हैं तिनको निहाल करदिया यह विष्णुपुरी जो माध्वसंप्रदाय में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चेले हुये जगन्नाथपुरी में बात चले पर दूसरे साधुओं ने प्रतिवाद किया कि मुक्ति होने के हेतु काशीपुरी में टिके हैं श्रीकृष्ण महाप्रभुजी ने उत्तर दिया कि उनको न मुक्ति से प्रयोजन है न किसी देवतासे न काशी से सिवाय श्रीकृष्णचरणकमलों के किसी ओर भूलकर भी उनके चित्त की वृत्ति नहीं जाती केवल सत्संग के अर्थ काशी में टिके हैं पर लोगों ने न माना तब महाप्रभु ने विष्णुपुरी से रत्न की माला के भेजने के हेतु चिट्ठी भेजी विष्णुपुरीजी ने हृदय की समझकर भागवत समुद्र से पांच सौ श्लोकरूपी रत्न चुनकर और भक्तिरत्नावली नाम रख-कर अपने गुरु को भेजा साधुओं ने जो देखा पढ़ा भक्तिरस में मग्न होगये विश्वास हुआ कि विष्णुपुरीजी परम अनन्य भक्त हैं तैसेही गुरुनिष्ठा

में हैं जाने रहो भक्तरत्नावली के तेरहें अध्याय में अलग २ क्रम से नवधा भक्ति व ज्ञान वैराग्य का वर्णन है ॥

कथा पृथ्वीराज की ॥

पृथ्वीराज कछवाहे आमेर के राजा ऐसे भक्त व गुरुनिष्ट हुये कि घर बैठे द्वारकानाथ महाराज के दर्शन पाये और शङ्ख चक्र का छाप शरीर पर प्रकट हुआ और कृष्णदासजी की कृपा से सब धर्म व उपासना के ज्ञाता होगये भीष्मपितामह के सदृश निष्पाप व युधिष्ठिर के सदृश धर्मात्मा व पूजा करनेवाले प्रह्लाद के सदृश हुये जैसे चेले कृष्णदासजी के हुये सो कृष्णदासजी की कथा में कहा है पृथ्वीराज ने जब कृष्णदासजी के साथ द्वारका जानेकी इच्छा व सजाव सब किये तब राजमन्त्रियों ने कृष्णदासजी से विनय किया कि राजा के जाने से इस देश में भक्ति का प्रकाश बढ़ताजाता है सो घटती होने लगेगी कृष्णदासजी ने अपने राज्य पर रहने की आज्ञा दी राजा ने विनय किया वा उदास होकर बोले कि एक तो आपके चरण का संग दूसरे द्वारकानाथ का दर्शन गोमती का स्नान व भगवत् शस्त्रों का चिह्न प्राप्त होने का लाभ था सो अब मैं उन लाभों से विमुख होताहूं कृष्णदासजी ने आज्ञा की कि शोच करना कुछ प्रयोजन नहीं वह सब तुमको इसी जगह प्राप्त होजायगा यह कह कर चलेगये राजा साथ के वियोग से धार धार रोनेलगा तीनदिन बीते थे अर्द्धरात्रि के समय राजा ने कृष्णदासजी का पुकारना सुना दौड़कर गया देखा आप द्वारकानाथजी महाराज हैं प्रेम में विवश हुये दण्डवत् परिक्रमा करी फिर आज्ञा पाकर गोमती में स्नान किया शरीर पर शङ्ख चक्र के चिह्न अङ्कित होगये रानी भी राजा की आज्ञा से गोमती में स्नान करके कृतार्थ होगई प्रभात को यह वृत्तान्त सारे संसार व देश देश में फैला नगर के लोग व जहां तहां के सन्त महन्त दर्शनों के लिये भेंट नाना प्रकार की आगे धरे गुरुभक्ति व भागवतभाव का विश्वास दृढ़ हुआ पीछे राजा ने मन्दिर बनवाया मूर्ति विराजमान करके दिन रात सेवा पूजा में रहने लगा एक अन्धा ब्राह्मण बैजनाथजी के द्वारपर सूझने के लिये पड़ा रहा बहुत दिन बीते तब शिवजी ने दया करके कहा कि पृथ्वीराज का अँगौछा आँखों पर मलदे खुलजायँगी ब्राह्मण आया राजा ने नवीन अँगौछा अपने शरीरपर लगाकर दिया कि तुरन्त आँखें खुलगईं ॥

कथा तत्त्वा जीवा की ॥

तत्त्वा जीवा दोनों भाई ब्राह्मण पद्मनाभदेश जो कमल के सदृश है तिसको प्रफुल्लित अर्थात् भक्त करने को सूर्य के सदृश हुये अथवा भगवद्भक्ति जो अमृत का समुद्र है तिसके दोनों तट हुये जिनके प्रभाव करके लाखों को भगवद्भक्ति प्राप्त हुई रघुकुलवालों के सदृश भये एक लकड़ी सूखी द्वारपर गाड़े थे व प्रण था कि जिसके चरणामृत से यह लकड़ी हरी होजावे उसको गुरु करेंगे सो कबीरजी के चरणामृत से हरी होगई कबीरजी के चेला हुये कबीरजी चलते समय कह गये जब प्रयोजन पड़े तब हमको स्मरण करना तिसके पीछे ब्राह्मण व उनके सगोत्रियों ने जुलाहे के चेला होने से उनको जाति से निकाल दिया और उनकी लड़की का ब्याह लेना अङ्गीकार न किया चिन्ता में होकर संदेशा गुरु के पास कहला भेजा कबीरजी ने उत्तर भेज दिया कि ये लोग भगवत् से विमुख हैं तुम्हारे सम्बन्ध योग्य नहीं तुम लोग दोनों भाई आपस में अपने लड़कों का सम्बन्ध करलेव उस आज्ञा के अनुसार इच्छा को किया सब घबराये और सब ने इकट्ठे होकर दोनों भाइयों से कहा कि ऐसी रीति उचित नहीं है उत्तर दिया कि हमको सिवाय गुरु की आज्ञा के अपने दूसरा कुछ करना अङ्गीकार नहीं है वे सब लोग इस विश्वास के वश होगये फिर इस बात के बन्द करने को विनय किया तब दोनों भाइयों ने कबीरजी से जाकर कहा तब कबीरजी ने आज्ञा की कि जो वे लोग भक्ति अङ्गीकार करें तो करो चिन्ता नहीं सो उन लोगों ने भगवद्भक्ति स्वीकार करी तब नातेदारी होने लगी जब सब ने भक्तों का समाज व प्रभाव भक्ति का देखा तब सब भगवत् शरण होकर कृतार्थ होगये ॥

कथा खोजी की ॥

खोजी परमभगवद्भक्त और गुरुनिष्ठ रहे उनके गुरु ने एक घण्टा स्थान में लटका दिया था और चेलों को समझा दिया रहे कि हम जब परम धामको जावेंगे तब यह घण्टा बजेगा जब गुरुने देह त्यागा तो घण्टा न बजा चेलोंको चिन्ता हुई खोजी वहां उस समय न थे जब आये तो सुना तब जिस जगह गुरु ने देह त्याग किया लेटकर देखा तो एक आंब पक्का लगा है उसको तोड़कर टुकड़ा किया तो देखा कि एक कृमि उसमें है और उसी क्षण वह कीड़ा मरगया और घण्टा बजा सबको निश्चय हुआ सो इसमें गुरु ने चेलों को एक उपदेश करदिया कि अन्तकाल में जहां मन

लगेगा सोई होगा गीताजी में भगवद्वचन है तिसको निश्चय कराया ॥

कथा गुरुनिष्ठ की ॥

एक गुरुनिष्ठ भगवद्भक्त ऐसे हुये कि गुरु के सिवाय दूसरे साधु सन्त की सेवा नहीं जानता गुरु की इच्छा यह रही कि साधुओं की भी सेवा करे तो अच्छी बात है पर विना परीक्षा इस बात के कि आज्ञा करें कै न करें कह नहीं सके यह परीक्षा विचारी कि जब वह तीर्थ को जाने लगा तब उससे कहा कि जब तुम आवोगे तब एक बात कहकर शिक्षा करेंगे तीर्थ करके जिस दिन वह पहुँचने को था तब गुरु ने प्राण छोड़ दिये लोग जलानेको लेगये तबतक गुरुनिष्ठ पहुँचा सुनकर रोता दौड़ा लोथको रोंका कि हमारे गुरु का वचन है जब तीर्थ कर आवेगा तब कुछ शिक्षा कहूंगा सो वचन मेरे गुरुका मिथ्या नहीं नितान्त किसी प्रकार गुरु के शरीर को फेरलाकर सिंहासनपर धरायके विनय किया कि अपने वचन को पालन करिये मेरी आशा लगी है गुरुजी उसके विश्वास पर अतिप्रसन्न होकर जीकर उठबैठे साधुसेवा के निमित्त शिक्षा करी गुरुनिष्ठ ने विनय किया कि आप तो परमधाम को जाते हैं मेरी साधुसेवा कौन देखेगा गुरु इस वचन और चतुराई से प्रसन्न होकर एक वर्ष और जीते रहे ॥

कथा घाटम की ॥

घाटम जाति के मीना रहनेवाले गांव घोड़ी राज जयपुर के गुरुभक्ति व वचन के निश्चय से उत्तमपद को पहुँचे और कृतार्थ होगये ठगी का रोजगार करते थे कुछ मन में विवेक आया किसी हरिभक्त के पास गये उसने शिक्षा किया चोरी ठगी छोड़देव घाटम ने कहा मेरी जीविका यही है हरिभक्त ने कहा उसके बदले चार बात अङ्गीकार करो १ एक सत्य बोलना २ दूसरी साधु सेवा ३ तीसरी भगवत् अर्पण किये पीछे कुछ चीज खाना ४ चौथी भगवत् आरती में जा मिलना सुनते ही चारों बातों को अङ्गीकार किया तब हरिभक्त ने घाटम को भगवन्मन्त्र उपदेश करके चेला किया घाटम गुरु की चारों बातों पर अभ्यास रखते रहे एकदिन घर में कुछ न था साधु आगये खलिहान से किसी के गेहूँ चुरा लाकर साधु सेवा को किया पर सेवा करते में कुछ डर मन में होजाता था कि पता लगाकर गेहूंवाला आकर पकड़ न ले नहीं तो साधुओं की सेवामें विघ्न होगा सो आंधी पानी ऐसी आई कि पता पांव का सब मिटगया सुचित्त

होकर सेवा किया एक समय गुरुनें भगवत् उत्साह में घाटम को बुलाया उस समय साधुसेवा के करने से कुछ पास न था चिन्ता में हुये राजा के मकान पर आये डेवढ़ीदारों ने पूछा तब उत्तर दिया चोरहूं घाटम मेरा नाम है वे लोग पहिराव उत्तम उनका देखकर जानगये कि हँसी की राह अपने को चोर कहता है कुछ न बोले घोड़सार के भीतर जाकर एक उत्तम घोड़ा मुश्की रङ्ग चुन करके सवार होकर चले द्वारपर द्वारपालों ने रोंका फिर उसी प्रकार सांच सांच कहकर चले आये गुरु की ओर चले सन्ध्या के समय एक नगर में किसी ठाकुरद्वारे में आरती होती थी वहां गये भजन करने लगे राजा के यहां उस घोड़े की ढूंढ़ पड़ी कोतवाल बहुत सिपाहियों सहित घोड़े के पांव का पता लगाता हुआ उसी मन्दिर के द्वारपर जहां घाटम आरती में थे पहुँचा भगवद्भक्तवत्सल महाराज को चिन्ता हुई कि यह कोतवाल घोड़े को पहिचान कर मेरे भक्तको दुःख देगा इस हेतु घोड़े को नुकरारङ्ग करदिया औ घाटम जब सवार होकर निकले तब कोतवाल देखकर लज्जित व शोच में भर गया कि घोड़ा वही पर रङ्ग दूसरा अब राजा जाने हमें कैसा दण्ड करेगा घाटमजी उनसे वृत्तान्त सब सुनकर दया करके बोले कि वह चोर मैं हूं और यह घोड़ा भी वही है भगवत् इच्छा से यह रङ्ग होगया मेरी रक्षा के हेतु सो चिन्ता न करो घोड़े समेत तुम्हारे राजा के पास मैं चलता हूं यह कहकर राजा के पास आये राजा सब वृत्तान्त सुनकर चरण पर पड़ा और रुपया मोहर सब देनेलगा घाटमजी ने कहा घोड़े से प्रयोजन है और कुछ न चाहिये राजा ने और कुछ सहित घोड़ा घाटमजी को भेंट किया घाटमजी ने वह सब लेजाकर गुरुजी को भेंट करदिया कुछ संदेह नहीं किया भगवद्भक्ति का ऐसाही प्रताप है सो आप गीताजी में भगवत् ने कहा है कि किसी के आचार दुष्ट भी हैं पर मेरा भजन ऐसा करता है कि दूसरे को कदापि नहीं जानता उसको निस्संदेह साधु जानना चाहिये काहे से कि जो निज तात्पर्य और सारांश शास्त्रों का है उसको वह पहुँचगया है व निश्चय करके बुरे आचरण भी उसके शीघ्र छूटजावेंगे और मुझको प्राप्त होगा और अर्जुन सच जान मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता ॥

कथा नरवाहन की ॥

नरवाहनजी राधावल्लभी रहनेवाले भौगांव के हितहरिवंशजी के

चेले भगवद्भक्त साधुसेवी परमगुरुनिष्ठ हुये एक साहूकार की नाव को लूटलिया और उसको और धनको लेने के हेतु बन्धन में डारा नरवाहन जीकी लौंड़ी दयावती थी उस वणिक् को खाना पहुँचाया करती उसने उसको यह उपाय बतलाया कि आधीरात के समय राधावल्लभ हित-हरिवंश राधावल्लभ हितहरिवंश पुकार पुकार कहना जिस में नरवाहन के श्रवण में पहुँचे और जब कुछ पूछे तो हितहरिवंशजी का चेला अ-पने को कहना उसने वैसाही किया नरवाहनजी सुनतेही नाम राधाव-ल्लभ और हितहरिवंशजी के बेसुधि दौड़े साहूकार को दण्डवत् करके वृत्तान्त पूछा उसने कहा कि हितहरिवंशजी का चेलाहूं और राधाव-ल्लभजी का विना मोल का चेराहूं नरवाहनजी लज्जित और ग्लानि युक्त हुये और सब धन उसका फेरदिया और अपने अपराध को क्षमा कराया व चरणों में पड़कर विनय किया कि तुम बड़े भाईहो मुझको अपना दास जानकर इतनी मेरी पालना करो कि यह वृत्तान्त स्वामीजी तक न पहुँचे वह साहूकार यह दशा नरवाहनजी की देखकर उसी घड़ी भगवत् के शरण हुआ और हितहरिवंशजी के पास आया और चेला होकर भगवद्भक्त होगया गोसाईंजी भी नरवाहनजी के निश्चय पर बहुत प्रसन्न हुये अब यहां एक प्रतिवाद यह खड़ा हुआ कि एक कथा तो घा-टमकी लिखि आये कि वह चोरी किया करता था यह नरवाहनजी की लिखी कि ठग थे तो क्या भगवद्भक्त चोरी और ठगी को पाप नहीं समझते उत्तर यहहै कि भगवद्भक्त निश्चय करके चोरी और ठगीको पाप कर्म समझते हैं और ऐसे कर्मों के निकट नहीं जाते भगवद्भक्तों के बरा-बर संयमी कोई नहीं और यह चरित्र जो घाटमजी से और नरवाहनजी से हुआ तो चोरी में नहीं गिनाजाता चोरी वह है जो अपने शरीरके हेतु होय और उससे लड़के बालों का खाना कपड़ा चलता हो अब और शङ्का उत्पन्न हुई कि इस लिखने से चोरी करना अच्छा कर्म ठहरा कि लोगों का धन भले लूटा करे और शंख झांझ बजें साधुसेवा किया करें उत्तर यह है कि कदाचित् चोरी करके साधुसेवा करनी उचित नहीं सुकृत के धन से साधु सेवा करनी उचित है और अभिप्राय मेरा यह नहीं था कि जो कुछ समझकर शङ्का करादिया तात्पर्य यह था कि जब अन्तःकरणकी निर्मलता प्राप्त होती है और यह संसार अनित्य दिखाई देनेलगा और द्वैतताका आवरण उठगया उस समय जो कर्म भक्तों से होते हैं वह सब

अच्छे हैं जो चोरी व ठगी करें तो उस दोष में वह भक्त दण्ड के योग्य नहीं होता निश्चय इसका गीताजी के अध्याय पांचवें व श्लोक सातवें से अच्छेप्रकार होता है और घाटम की कथा भी निश्चय करानेवाली है कि भगवत्‌ने पांवके चिह्न दूर करने के निमित्त आंधी और मेह वर्षादिया और घोड़े का रङ्ग मुश्की से सफ़ेद करदिया और अपने भक्त के कर्म धर्म व पुण्यरूप समझकर उसके पक्षपर हुये सिवाय इसके सब धर्म कर्म भगवद्भक्ति की प्राप्ति के अर्थ हैं जिस काम से भगवद्भक्ति हो वह चोरी में गिनती नहीं वरु जैसे अन्य साधन सब हैं तैसे है सो घाटम व नरवाहन दोनोंसे प्रसन्नता भगवत् और गुरु की हुई जो वे लोग चोर और ठग होते तो भगवत् कब प्रसन्न होते सिवाय इसके समर्थ को कुछ दोष नहीं होता जिस प्रकार गङ्गाजी में सब प्रकार जल मिलकर गङ्गाजल और प्रज्वलित अग्नि में सब वस्तु अग्नि होजाते हैं तो जान रखना कि साधुसेवा वह परमधर्म है कि उसके निमित्त भगवद्भक्तों ने निज भगवत् का आभूषण उतारकर बेंच डाला है दूसरे कर्म की कौन बात है बरु आप भगवत् साहूकार बनकर अपने भक्तों के हाथ से ठगी कराते हैं और उस चरित्र से प्रसन्न और संतुष्ट होते हैं कि निश्चय इसका हरिपाल निष्कञ्चन की कथा से होता है प्रीति सांची और विश्वास दृढ़ उचित है घाटम के विश्वास को देखना चाहिये कि कैसे गुरुके वचनपर स्थिर और सच्चे थे कि प्राण का भी लोभ न किया और नरवाहनजी के विश्वास को देखना चाहिये कि अपने गुरु व इष्ट का नाम सुनकर तीन लाख व तीस हजार का धन फेर दिया और अपने आपको भक्तके दुःख देने व सताने का अपराधी समझा नितान्त अर्थ यह कि भगवद्भक्ति में विश्वास होना सब सुकर्म से शिरोमणि है सिवाय इसके एक यह है कि जिस अपराध से बालि और रावण भगवत् के घरसे निकाले गये और वध को प्राप्त हुये सोई अपराध सुग्रीव और विभीषण से हुआ पर वे भक्ति के प्रताप से महाभागवत् और भगवत् सखाओं में गिनेगये तो भगवद्भक्ति का यह प्रताप है कि सब अपराध उलट के पुण्य होजाता है॥

कथा गजपति की॥

गजपति राजा पुरुषोत्तमपुरी के भगवद्भक्त हुये गोसाईं श्रीकृष्ण चैतन्य अपने गुरु में ऐसा विश्वास दृढ़ रखते थे कि जब दर्शन करलेते तब राज्य काज किया करते एकदिन गुरु गोसाईंजी ने उनको दर्शन करनेको

आना वर्जित किया राजा संन्यासीरूप होकर दर्शन के हेतु इधर उधर फिरनेलगा पर दर्शन न पाया एक दिन रथयात्रा के समय देखा कि रथ के आगे गोसाईंजी नृत्य कररहे हैं दौड़ के चरणों में पड़ा गोसाईंजी ने राजा का प्रेम व विश्वास देखकर छाती से लगा लिया व प्रेम आनन्द में मग्न कर दिया ॥

कथा चतुरदासजी की ॥

स्वामी चतुरदास परम भक्त व वैराग्यवान् हुये भगवद्भजन के आनन्द में मग्न रहकर सदा भगवत् के रङ्ग में रँगे रहते थे मथुरा और ब्रजमण्डल में फिरते हुये ठौर ठौर सत्संग के सुख को लेते रहे गुरुभक्ति में ऐसे हुये कि कोई न होगा उनके गुरु सदा घर पर आया करते भगवत्रूप जानकर सेवा पूजा किया करते स्त्री स्वामीजी की नवयौवना व रूपवती थी उसको गुरुकी सेवा में तत्पर कर दिया कि जो आज्ञा हो सो सम्हारना और आप अपने धर्म पर ऐसे दृढ़ रहे कि कभी विश्वास में तनक भेद न आया नितान्त सब सामग्री और धन व स्त्री गुरु की भेंट करके दण्डवत् करके आज्ञा से ब्रजमण्डल में आये प्रभात की मङ्गल आरती के दर्शन गोविन्ददेवजी के किया करते और शृङ्गार आरती केशवदेवजी की और राजभोग नन्दगांव का देखकर गोवर्द्धन जी में राधाकुण्ड पर होते हुये वृन्दावन में आते एक वेर नन्दगांव में मानसरोवर पर बे अन्न जल रहे सो नन्दगांव के स्वामी नन्दबाबा हैं सत्कार पथिक लोगों का कि जो उनके स्थानपर आवें उन्हींपर उचित है इसहेतु नन्दजी के कुमार सुकुमार भक्तवत्सल महाराज अपने मेहमान को बिन अन्न जल न देख सके बारह वर्ष के लड़के के स्वरूप से दूध लेकर कटोरे में स्वामी चतुरदास को दिया स्वामी चतुरदास ने उस रूप के फिर देखने के लालच जल मांगा जब बहुत देरतक वह निडर चञ्चल लड़का पानी न लाया तब बहुत बेचैन व विकल हुये भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा की कि पानी का कुछ प्रयोजन नहीं तुमको दूध सब ब्रजवासियों से मिलता रहेगा स्वामी ने विनय किया कि दूध ब्रजवासियों को बड़ा प्यारा है कि यशोदाजी ने दूध के हेतु आपको छोड़ दिया था फिर वे लोग दूध किसप्रकार देंगे भगवत् ने आज्ञा की कि निश्चयकर मिलेगा सो स्वामी चतुरदासको दूध सब कोई देनेलगे और अबतक स्वामीके वंश में चेले जहां वहँ व्रज में तहां दूध लेतेहैं सत्य है गुरु सेवा से कौन पदार्थ नहीं मिलताहै ॥

कथा राघवदास की ॥

राघवदासजी परमभक्त भगवत् के हुये अपनी रचना में अभोग दुबरिया रखते थे इसहेतु लोग दुबला कहते थे पर भक्तिभाव में मोटे व महन्त थे शास्त्रोक्त जो भगवद्धर्म है सो साधना अच्छेप्रकार से की और गुरु चेले का धर्म ऐसा निबाहा जो किसी से न होसके अर्थात् वायुपुराण में लिखा है कि जो मन्त्र है वहही गुरु है और जो गुरु है वही भगवत् है जब गुरु प्रसन्न होगा तो भगवत् आप से आप प्रसन्न व वशीभूत होजावेगा सो राघवदासजी ने अपने गुरु की ऐसी सेवा करी कि गुरु और भगवत् को संतुष्ट करलिया और जिसको अपना चेला किया उसको आवागमन से छुड़ाकर भगवत् में मिलादिया और अन्तर बाहर ऐसे विमल हुये कि कलियुग की काई समीप न आई दिन रात सिवाय भगवत् चरित्र कीर्तन के दूसरा कार्य न था कठोरवचन कभी मुख से न निकला नाभाजी ने जो दृष्टान्त उनके निमित्त हीरा का लिखा सो अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार हीरा को अहरनपर रखकर घन मारते हैं और वह टूटता नहीं उस अहरन में धसि जाताहै जब दूसरा हीरा उसका सजातीय सम्मुख करते हैं तो अहरन से निकल आता है इसी प्रकार राघवदासजी थे कि पवन शरदी व गरमी दुःख व सुख संसार का उनके हृदय को चलायमान न कर सका और सत्संग को देख इस प्रकार आमिलते थे कि जिस प्रकार हीरा अपने सजातीय को देखकर आमिलता है ॥

निष्ठा आठवीं ॥

प्रतिमा व अर्चा के वर्णन में पन्द्रह भक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की शंखरेखा को दण्डवत् करके फिर हंसअवतार को दण्डवत् करता हूँ कि ब्रह्मपुरी में प्रकट होकर ब्रह्मा का उपदेश किया शास्त्रों का सिद्धान्त है कि भगवत् की प्राप्ति के हेतु भगवत्ही की पूजा अर्चा जप मन्त्र आदि साधन हैं और पूजा अर्चा विना उसके कि जिसका पूजन करना चाहिये नहीं होसक्ती और विना पूजा अर्चा भगवत् की प्राप्ति दुरूह है इस हेतु करुणाकर दीनवत्सल महाराजको यह शोच हुआ कि मेरी प्राप्ति जो मेरी पूजा के ऊपर सिद्धांत ठहरा तो विना प्राप्ति के पूजा नहीं होसक्ती तो उद्धार जीवों का किस प्रकार होगा ? तब आप भगवत् ने जिस प्रकार भक्तों के हेतु अवतार धारण किये थे और करता है उसी प्रकार प्रतिमारूप होकर इस संसार

में प्रकट हुआ सो बारह प्रतिमा जैसे बदरीनारायण व रङ्गनाथस्वामी व गोविन्ददेवजी आदि स्वयं व्यक्ति हैं व जगन्नाथरायजी व वरदराज आदि कई प्रतिमा ब्रह्मा व शिवादिक देवताओं की स्थापित की हुई हैं और कोई मुनीश्वर व ऋषीश्वरों की स्थापित हैं जब इन मूर्तियों से भी भगवत्ने सब किसी को प्राप्त न देखा तब शालग्रामरूप होकर प्रकट हुये कि अधिक करके सब को प्राप्त हो पीछे जब यह देखा कि यह भी सब किसीको प्राप्त नहीं है तब आज्ञा की कि सोने चांदी और पाषाण आदिकी प्रतिमा बनाकर और वेदमन्त्रों के अनुकूल प्रतिष्ठा करके पूजन करें और सब प्रतिमाओं के पूजन और दर्शन में चमत्कार दिखाया कि जिसने अनन्य होकर आराधन किया सिद्धपद को पहुँच गया और यहाँतक करुणा और दयालुता को विस्तार किया कि जो कोई चित्र लिखवाकर औ भगवत् जानकर पूजन करता है भगवत् को प्राप्त होता है सो इस भगवद्विग्रह पूजन दर्शन को भक्तों ने कई प्रकार पर माना है कि कोई तो उस प्रतिमा को निज स्वयं भगवत् की प्रतिमूर्ति जानकर इस प्रकार पर पूजन करते हैं कि पहिले मानसीपूजन और फिर उस मूर्तिका और किसी का यह विश्वास है कि उस प्रतिमा को पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन मानते हैं मानसीपूजन आदि का कुछ प्रयोजन नहीं और तीसरे यूथ का यह वचन है कि वास्तव मूर्ति उस सच्चिदानन्द घन की लोगों के ध्यान में शीघ्र नहीं आसक्ती इस हेतु मुख्य भगवत् स्वरूप में इस मन के जमजाने के निमित्त इस मूर्ति का दर्शन और पूजन करते हैं और सब कोई अपने विश्वास व निश्चय के अनुसार मनोरथ को पहुँचते हैं सो जब कि यह बात प्रकट होगई कि आप भगवत् ने जगत् के उद्धार के निमित्त अपना रूप प्रतिमा स्वरूप से प्रकट किया है तो अत्यन्त उचित हुआ कि भगवद्विग्रह को ईश्वर जानकर दृढ़विश्वास से दर्शन और पूजन किया करें हजारों और करोड़ों का उद्धार प्रतिमाओं के विश्वास के प्रभाव से हुआ और होता है भागवत का वचन है कि मुकुन्द भगवान् की मूर्ति का दर्शन और उस मूर्ति के दर्शन करनेवाले का मिलना अथवा मूर्ति के चढ़े हुये फूलों का सूंघना और तुलसीदल का खाना और भगवन्मन्दिर में जाना और दण्डवत् करना ये सब भगवत् लोक को प्राप्त करते हैं नारदपञ्चरात्र में लिखाहै कि शालग्रामजी का स्नान जिस बर्तन में कराया जाता है

उसका सातवीं बेर का धोवन गङ्गाजल के बराबर का माहात्म्य रखता है सोमाहात्म्य दर्शन आदि का इसी से विचारलेना चाहिये कि कितना होगा पर यह पूजन आराधन भगवन्मूर्ति का कुछ ऐसी सहज बात नहीं है कि राह चलते उत्तमपद को पहुँचाय देवे अर्थात् बहुत कठिन है— क्या बात है कि शास्त्रों के अनुसार भगवत् एक व्यापक और ब्रह्मस्वरूप हैं जबतक अन्य विश्वास को और भांति भांति के शङ्का संदेह और मन की कचाई को हृदय से दूर करके निज उस मूर्ति में मन न लगेगा तब तक किस प्रकार मिलना भगवत् का होसक्ता है और वह मन ऐसा लगे कि दूसरी ओर न जाय और न दूसरे की शरण का भरोसा होवे एक वार्त्ता है कि एक कोई अर्थार्थी को भगवत् पूजन से धन न मिला तो किसी के उपदेश से भगवन्मूर्ति को ताख में रखकर दुर्गामूर्ति का पूजन करनेलगा एक दिन यह विचारा कि धूप जो दुर्गा को देताहूं पहले भगवत् को पहुँचती होगी इस हेतु भगवत् प्रतिमा की नाक में रुई भरने लगा उस क्षण भगवत् प्रसन्न हुये और बोले कि जो चाहना हो सो कहो उसने विनय किया कि पूजा से कवहीं प्रसन्न न हुये और इस ढिठाई से बहुत कृपायुक्त हुये इसका क्या कारण है बोले कि जब तू पूजन करता रहा तब पत्थर की मूर्ति जाना करता था और इस समय सब ओर से मन को खींचकर भगवन्मूर्ति को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जाना इस हेतु प्रसन्न हुये एक बाई की कथा है कि गुजरात में भगवन्मूर्ति की आराधना वात्सल्यभाव से करती थी जहां रहती रही उस गांव में भेड़ियों की प्रबलता हुई और कई लड़कों को भेड़िये उठा लेगये यह सुनकर इस बाई की सुधिगई और मूसल हाथ में लेकर सारीरात जागने लगी बहुत दिन यह दशा रही कि दिनको भोग व रसोई व शृङ्गार में भगवत् के रहती व रात को रखवारी में भेड़िये की भगवत् को बड़ी करुणा हुई और साक्षात् प्राप्त हुये बाईने जो ध्वनि झमझमाहट व घुँघुरू आदि आभूषण की सुनी तो मूसल उठाकर दौड़ी देखा कि कोई लड़का श्याम-सुन्दर मोहनरूप है पूछा कि तू कौन है उत्तर दिया कि मैं वही ईश्वर परमात्मा हूं कि जिसकी मूर्तिको तू बालक जानकर आराधन करती है सो जो तुमको चाहना हो मांगो बाई प्रसन्न होकर बोली कि तू ईश्वर है तो यह वर मांगती हूं कि इस मेरे लड़के को भेड़िया न लेजाय वाह २ बाई यशोदा के कौशल्यारूप तात्पर्य यह कि निश्चय दृढ़ भगवन्मूर्ति में

इस प्रकार का हो कि जो आप भगवत् प्रकट होकर आवें तब भी अपना इष्ट उस मूर्तिकोही समझता रहे और जो दूसरी ओर मन गया तो प्रेम कहां और स्त्री को जिस प्रकार दूसरे पुरुष की शोभा वर्णन करना वर्जित है इसी प्रकार अपनी सेवा मूर्तिकी बराबर और किसी की शोभा मन में न लावे कि मूर्तिकी पूजाप्रकार में यह बात लिखी है और जिस प्रकार कोई सेवक अपने स्वामी को प्राण से अधिक जानता है और सब प्रकार की सामग्री बनाकर बारबार उसके आगे धरता है इसी प्रकार अपनी सेवा मूर्तिकी सेवा उचित है जैसे ग्रीष्मऋतु है तो टट्टी या खसखस और पंखा औ सुगन्ध और पानी का छिड़काव और मन्दिर हवादार औ फूल और वस्तु अलंकार उत्तम चमक दमकवाले बना करके एक दिन में कई बार भगवत् का शृंगार करे और इसी प्रकार वर्षाऋतु और जाड़े की ऋतु में सामग्री सब उस ऋतु के अनुकूल किया करे अर्थात् जो कुछ अपने प्राण और सुख और अपनी शोभा के हेतु जो सजाव औ बनावट सामग्री औ शृङ्गार की वस्तु हरप्रकार की और खाने पीने के पदार्थ इत्यादि की वार्त्ता है उसमें दशगुणित भगवत् के निमित्त करे और जिस दिन कोई त्यवहार जैसे होली, दीवाली, दशहरा और वसन्त-पञ्चमी आदि अथवा सांझी का समय या सावन के महीने में हिं-डोरा झुलाने के चरित्र और भगवज्जन्म उत्साह जैसे रामनवमी, जन्मा-ष्टमी, नरसिंहचतुर्दशी और वामनद्वादशी इत्यादि अथवा तीर्थ और व्रत का दिन होय ऐसी धूमधाम के साथ उत्साह और शोभा की सजा-वट इत्यादि किया करे कि जिस प्रकार अपने लड़के के विवाह में अथवा पुत्र के जन्म होनेके दिन किया करते हैं कहांतक वर्णन किया जाय कि यह बात अपने हृदय की प्रीति से सम्बन्ध रखती है और भगवत् कृपा भाग्य के उदय से होती है यह उत्सव और देश में स्वप्नप्राय व आश्चर्य है दक्षिण में अथवा मथुरा, वृन्दावन व अयोध्याजी आदि में है एक कोई गोसाईं वृन्दावनी ने एक कोई कामवाले के स्थान पर देश पंजाब में वसन्तपञ्चमी के दिन फूलडोल बनाया वेश्या सब्ज कारदारके घरपर उस त्यवहार के इनामके लिये आईं तो उसने गोसाईं जीके संकोचवश राग न सुना और विदा करदिया गोसाईंजी ने कहा कि भगवत् के सामने राग क्यों नहीं होता कारदार ने पूछा कि क्या भगवत् के सामने भी वेश्या का नाच राग होता है गोसाईंजीने कहा कि

जो भगवत् नाच और राग के प्रेमी न होते तो संसार में यह फैलने क्यों पावता जो कुछ सुख आनन्द का साज व समाज गुप्त व प्रकट की आँखों को जहांतक देखने में आता है सब भगवत् के हेतु है कि मूल सब कार्यों का भगवत् से है सोलह उपचार जो पूजन के विख्यात हैं सो भगवन्मूर्ति और मानसीपूजन के निमित्त बराबर हैं भेद इतना है कि मूर्तिपूजन के निमित्त तो सामग्री प्रकट करनी पड़ती है और मानसीपूजन के निमित्त मन में सब सोलह प्रकार में पहले आवाहन सो आवाहन उस देवता का करना पड़ता है कि जिसकी कभी कोई दिन पूजा करनी हो और भगवत्पूजन का आवाहन इतनाही मानते हैं कि प्रभात अपने स्वामी को जगाना और दण्डवत् करना और श्लोक व पद जगाने का पढ़ना गान करना दूसरा आसन सिंहासन पर बिछावना सुन्दर बिछावना और मन्दिर की झाड़ू बहारी करनी तीसरा पाद्य भगवत् का चरण अँगौछे से पोंछना अर्घ हाथ मुँह धोलाना पांचवां आचमन दँतवन कुल्ली करानी छठवां स्नान कराना अँगौछे से शरीर पोंछना धोती कराना सातवां वस्त्र अलंकार से भूषित कराना आठवां यज्ञोपवीत स्वर्ण का अथवा पाट का कै सूत्र का पीला रङ्गकर पहिनाना नववां गन्ध अर्थात् सुगन्ध जैसे चन्दन और केशर, कस्तूरी व इत्र इत्यादि लगाना दशवां पुष्प अर्थात् फूल भगवत् के मुकुट और झूमक आदि में गूंथना और माला फूलों की बनानी ग्यारहवां धूप अगुरु आदि की धूमकी देना बारहवां दीप गोघृत कर्पूरादि से प्रकाशित करना तेरहवां नैवेद्य अर्थात् सबप्रकार के पवित्र मधुर भोजन कराना व आचमन कराना जल पिलाना कुल्ला कराना हाथ धुलाना अँगौछे से हाथ मुँह पोंछना बीड़ी बनाकर देनी चौदहवां दक्षिणा अर्थात् भेंट आगे धरना पन्द्रहवां नीराजन अर्थात् आरती करनी प्रदक्षिणा करनी अर्थात् अपनपौ को वारि जाना और पुष्पाञ्जलि देनी अर्थात् फूल ऊपर बखेरना सोलहवां विसर्जन और यहां अभिप्राय विसर्जन से यह है कि पलँग, तोशक, बिछौना, तकिया, चादर व दुलाई आदि सजना इत्र, पान व कुछ भोजन के पदार्थ व पीने के पलँग के समीप रखदेना और शयन के समय भगवत् का चरण पलोटना जाने रहो कि इस सोलह प्रकार का आराधन जैसे जगन्नाथरायजी, बदरीनारायणजी, अयोध्या, रङ्गनाथ व वृन्दावन में नित्य सातबेर होता है और कोई जगह पांचबेर

और बहुत जगह तीनबेर अर्थात् एक प्रभातकाल मङ्गल आरती द्वितीय मध्याह्नकाल राजभोग तृतीय सायंकाल नियत आरती सो पूजन और दर्शन करनेवाले को सातबेर आराधन अति प्रयोजन है नहीं तो तीन बेर से कम न हो और जाने रहो कि तन्त्रशास्त्र व पुराणों के वचन के अनुसार जो मूर्ति स्वयंव्यक्त जैसे बदरीनारायण, रङ्गनाथस्वामी व गोविन्ददेव इत्यादि शालग्राममूर्ति, पुष्कर व नीमखार आदि तीर्थ हैं वे बारह २ कोसतक शुद्ध व पवित्र करते हैं और जो मूर्ति कि देवताओं ने स्थापित किया वे चार चार कोसतक और जिन्हें ऋषीश्वर और सिद्ध लोगों ने विराजमान किया वे दो २ कोसतक और जो मूर्ति दूसरे लोगों से शास्त्रविहित मन्त्रों के अनुसार स्थित हुई वह एक २ कोसतक और जो मूर्ति केवल घरमें विराजमान करलेते हैं वह उसी घर को पवित्र और शुद्ध करती है भगवत् ने कृपा करके सब सामग्री को इस जीव के उद्धार के हेतु बनाय दिया कि किसी प्रकार मन चरणारविन्द में लगे पर कोई ऐसा कर्म कठोर और न करे आगे आये रहे हैं कि ऐसे सुगम मार्ग पर भी मन नहीं लगता कोई नगर और ग्राम नहीं कि वहां भगवन्मन्दिर और ठाकुरद्वारा न हो परन्तु पुजारी के सिवाय क्या बात है कि कोई दर्शनों के निमित्त जावे विशेष करके धनवान् और उनमें भी नौकरी करनेवाले घूमने और देखने शोभा चकले के हेतु जहांतक कोई लेजावे हजारमन और चरणों से चले जायँ और जो कोई ठाकुरद्वारे के चलने को कहे तो मानो दम निकल गया है और घूमते फिरते जो राह में कोई मन्दिर आजाय तो यह कहें कि अजी संध्या होगई सावकाश नहीं फिर किसी समय दर्शन करेंगे और जो घुणाक्षर न्याय कभी जाने का संयोग होभी गया तो सारे संसार के झगड़े और बकवाद डिगरी डिसमिस आदि की बातें वहां स्मरण हो आई जब तक बैठे रहें यही बात रही कौन बात है कि एकबेर भगवन्नाम मुख से निकले बरु जो दूसरा कोई भजन करता होय तो उसको भी अपनी ओर सावधान युक्त करलें यह वृत्तान्त कुछ सुनाही नहीं है आँखों की देखी है कहांतक लिखूं कि ग्रन्थ के विस्तारभय से और अप्रसन्न होने उनलोगों के कि जो मेरे लिखे को अपने ऊपर समझ लेवें व्यापवान् हैं उनमें पहले गणना इस मतिमन्द की है सो क्या वर्णन करूं कि कर्म तो ऐसे सुन्दर और कामना वह कि निश्चय परमधाम को जावेंगे क्यों न

सद्गति होगी अरे मन, पापी! अब भी लजावो ध्यान करके देख कि मनुष्य शरीर बार २ नहीं मिलता न जाने कौन पुण्य से यह शरीर मिला है इस देह को पायके श्रीनन्दनन्दन स्वामी के चरणकमलों में न लगा तो तुझसे अधिक और कौन भाग्यहीन है बहुत रुपया उत्पन्न करना झूठ सच बोलकर लोगों को वशी करलेना तुलसीदासजी ने कहा है कि यह ढंग वेश्याओं को भी अच्छेप्रकार आताहै और जो यह शरीर संसार से विषय भोग ही के निमित्त समझ रक्खा है तो शूकर और कूकर व गर्दभ आदि को भी सब सुख विषय भोग के प्राप्त हैं मनुष्यशरीर और उन शरीरों में इतना भेद है कि इस शरीर के प्रभाव से भगवत् की प्राप्ति होती है जो भगवच्चरणों में मन न लगा तो शूकर और कूकर आदिसे भी अधिक अधर्मी व पापी है क्योंकि उन शरीरों में आगे के निमित्त पाप नहीं लगता केवल अगिले पापों को भोगते हैं और मनुष्य को तो नहीं करने भगवद्भजन के हज़ारों पाप मुण्डपर चढ़ते हैं तो इससे अब तुझको उस रूप अनूप का चिन्तन करना उचित है ॥

सवैया ॥

मोरपखा शिरऊपर राजत केशरखौर दिये रचि भालहि ।
अञ्जनसे दोउ रञ्जित कीन्हे जु खञ्जन कञ्जसे नैन विशालहि ॥
गोल कपोलनपै कलकुण्डल रूप अनूप प्रताप रसालहि ।
रेमनमन्द अनन्दको कन्द तू क्यों न भजै नँदनंदगोपालहि ॥ १ ॥

कथा राजा चन्द्रहास की ॥

राजा चन्द्रहास बालपने से ऐसे भगवद्भक्त हुये कि महाभागवतों में गिने गये और अबतक उनका यश चांदनी की भांति शास्त्रों में लिखा है च्यवन अश्वमेध में लिखा है कि मेधावी नाम राजा केरलदेश के घर जब चन्द्रहास का जन्म हुआ तो एक पांव में छः अँगुली थीं कि सामुद्रिक में अपलक्षण लिखे हैं जन्म से थोड़ेही दिन बीते पर कोई शत्रु चढ़आया और मेधावी उस लड़ाई में मारागया चन्द्रहास की माता सती होगई और धाय उनको लेकर कुन्तलपुर में चलीआई कुन्तलपुर के राजा के वज़ीर का नाम धृष्टबुद्धि था उसके घर रहने लगे फिर वहां धाय भी मरगई और चन्द्रहासजी अनाथ पांच वर्ष के नगर में फिरने लगे जो कोई कुछ देता उसीसे उदर पालन करलेते एक दिन नारदजी आये एक शालग्रामजी की प्रतिमा देकर आज्ञा की जो कुछ भोजन आदि करो

सो इस प्रतिमा को दिखला लेना चन्द्रहासजी उस मूर्ति को मुख में रखते और नारदजीकी आज्ञा के अनुकूल वर्तते रहे थोड़े दिन में भगवत् की प्रीति होगई एक दिन उस वज़ीर के घर में ब्रह्मभोज में ब्राह्मण आये थे उसने ब्राह्मणों से पूछा कि मेरी लड़की को वर कौन और कैसा मिलेगा उन्होंने चन्द्रहासजी को बतलाया कि यह लड़का इसका पति होगा वज़ीर को बड़ी ग्लानि आई कि हाय मेरी लड़की दासीपुत्र की भार्या होगी वध करनेवालों को बुलाकर कहा कि इस लड़के को जङ्गल में लेजाकर मारडालो वे सब जङ्गल में लेगये और वज़ीर की आज्ञा सुनाकर कहा कि अब तुम्हारा रक्षक कौन है ? चन्द्रहासजी को तनक शोच व चिन्ता अपने वध की न हुई और कहा कि एक घड़ी मेरे वध में धीर धरो पीछे शालग्रामजी का पूजन किया और वधिकों को संज्ञा वध करनेकी करके भगवद्ध्यान की समाधि को लगाय लिया भगवत् भक्तरक्षक महाराज ने उन वधिक निर्दयियों के हृदय में ऐसी दया डालदी कि एक अँगुली अधिक जो रही वज़ीर के दिखलाने को काट लेगये और चन्द्रहासजी को उसी जङ्गल में छोड़गये चन्द्रहासजी तीन दिनतक भगवद्ध्यान में मग्न और आनन्दित फिरते रहे जिस समय धूप लगती तो पक्षी अपने परों से छाया करते और रात्रि के समय व्याघ्रादिक उनकी रक्षा के निमित्त चौकी देनेको आते संयोगवश कलिन्दनाम राजा चन्दनावती नगरी का शिकार खेलता उस वन में आया चन्द्रहासजी को अपने घर लेगया उसके कोई लड़का नहीं था इन्हीं को अपना बेटा जानकर सब विद्या पढ़ाकर युक्त किया और पीछे राज्यतिलक देकर सम्पूर्ण राज्यभार सौंप दिया और आप भगवद्भजन करने लगा यह राजा कलिन्द कर देनेवाला राज्य कुन्तलपुर का था जब समय पर कर न पहुँचा तो धृष्टबुद्धि वज़ीर सेना सजिके आया राजा कलिन्द सुनकर मिलने के निमित्त गया बड़ी रीति मर्याद से नगर में लाया चन्द्रहासजी से भेंट कराई और राज्य देनेका वृत्तान्त सब कहा वह धृष्टबुद्धि चन्द्रहासजी को पहिंचान कर बड़े शोच में होकर मारने के उपाय में हुआ और यह उपाय सूझा कि चन्द्रहासजी को कुन्तलपुर में भेजकर वहां मरवा डालना चाहिये इस हेतु राजा कलिन्द को डरपाया कि तुझ को उचित नहीं था विना हमारे राजाकी आज्ञा चन्द्रहास को राजतिलक कर देना अब चन्द्रहास को अपने मदननामा पुत्र के नाम के पत्र सहित कुन्तलपुर

भेजताहूं कि वह राज्यतिलक अङ्गीकार करा देगा सो चन्द्रहासजी पत्री समेत चले और कुन्तलपुर के निकट उसी वज़ीर के बाग़ में ठहरे स्नान पूजा करि भगवत्प्रसाद भोजन करके पथिश्रम से सोगये संयोगवश उसी वज़ीर की लड़की विषयानामा बाग़ की शोभा देखने को आई स-खियों से अलग होकर जहां चन्द्रहासजी सोते थे तहां पहुँची चन्द्रहास जीकी शोभा देखतेही तुरन्त आसक्त होगई और भगवत् से प्रार्थना की कि यह पुरुष मेरा पति होय फिर जो निगाह उसकी चन्द्रहासजी की कमर की ओर गई तो एक पत्री कमर में देखकर निकाललली और पढ़ा अर्थ उसका यह था कि हे मदन! चिट्ठी लेजानेवाले को तुरन्त विष देदेना जो विलम्ब होगा तो हमारे क्रोध का हेतु होगा वज़ीर की लड़की ने पढ़कर शोच किया कि हाय यह महबूब मनोहर वृथा बिन अपराध मारा जायगा और फिर यह विचार किया कि मेरा बाप बहुत दिनों से सुन्दर पुरुष के ढूंढ़ने में मेरे निमित्त था और चलतीबेर बहुत शीघ्र विवाह करदेने का मुझसे वचन देगयाथा सो इस पुरुष को मेरे निमित्त भेजा है और जल्दी में लिखाहै इस हेतु अक्षर (या) जो विष के पीछे लिखना था सो भूल गया सो अक्षर बनादेना चाहिये सो अपनी आंखों के काजल की स्याही से बनाकर पत्री चन्द्रहासजी की कमर में रखकर चली आई चन्द्रहास जी मदन के पास पहुँचे और पत्री दी वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसी घड़ी चन्द्रहास का विवाह अपनी बहिन के साथ करदिया जब वज़ीर ने अपने बेटेके पत्र से यह वृत्तान्त सब जाना तो अत्यन्त खिन्नमन व क्रोध युक्त हुआ और दुःख से दुःखी हो उसी क्षण चलके अपने घर आया अ-पने लड़के को धिक्कार आदि कहनेलगा मदन उसके लड़केने उसकी पत्री आगे धरदी और अपना कुछ अपराध नहीं जो लिखा सो किया वज़ीर ने अपने मन में यह निश्चय किया कि लड़की विधवा रहे तो रहे पर चन्द्र-हास का वध करना उचित है इस हेतु वध करनेवालों को बुलाकर आज्ञा दी कि प्रभातसमय जो कोई दुर्गाभवन में आवे उसको मारडालना और चन्द्रहासजी से कहा कि हमारे कुल में विवाह के पीछे दुर्गापूजन उचित है तुम प्रभात दुर्गापूजन कर आओ वज़ीर दुर्बुद्धि ने तो यह उपाय रचा और भगवत् की यह इच्छा भई कि कुन्तलपुर का राज्य भी चन्द्रहासजी को मिल जावे इस हेतु कुन्तलपुर के राजा के मन में ज्ञान दिया कि राज्य और शरीर दोनों नाशवान् हैं और भगवद्भजन से अधिक दूसरा कोई

काम नहीं आता सो यह राज्य तो वज़ीर का लड़का चन्द्रहास जो कि ला-
यक़ और योग्य है देना चाहिये और जो कुछ वयक्रम शेष है सो भगवद्भ-
जन में लगाना उचित है प्रभात को जिस प्रकार से चन्द्रहास दुर्गापूजन
को चले तो राजा ने मदन जो वज़ीर का लड़का था उससे बुलाकर कहा
कि हम राजतिलक चन्द्रहास को देते हैं उसको शीघ्र लाओ वह इस आ-
नन्द से कि राज्य अपने घरमें आता है शरीर में न समाया और चन्द्रहास
जीके पास आकर उनको तो राजाके पास भेजदिया और दुर्गाभवन में
पूजा करने को गया राजा ने चन्द्रहासजी को तुरन्त राजतिलक करदिया
मदननाम वज़ीर का बेटा जब दुर्गाभवन में पहुँचा तो मारा गया और
वज़ीर मदन का मारा जाना सुनकर शिरपर धूल डालता हुआ उसके
शरीर के पास पहुँचकर पत्थर से शिर मार कर मररहा यह वृत्तान्त चन्द्र-
हासजी ने सुना औ दुर्गाभवन में आकर दया और करुणा से विह्वल
होगये पीछे उन सबके जीने के हेतु दुर्गाजी की स्तुति की जब कुछ उत्तर
न पाया तो तरवार निकालकर अपने को घात करने को उद्यत हुये दुर्गा
महारानी प्रकट हुईं हाथ पकड़ लिया और कहा कि धृष्टबुद्धि शठ दुष्ट
सदा तुम्हारे मारने के उपाय में रहता था कि उस कर्म के फल से पुत्र
सहित मारागया अब जिला देना उचित नहीं चन्द्रहासजी ने विनय
किया कि सत्य है पर आपको यहभी तो सामर्थ्य है कि उनके मन को
निर्मल करके भगवद्भक्त करदेवें कि फिर किसी के साथ दुष्टता न करें
दुर्गा महारानी प्रसन्न हुईं दोनों को जिला दिया वज़ीरने जो प्रताप
भगवद्भक्ति और भक्तों का देखा तो विश्वासयुक्त हुआ और चन्द्रहासजी
के चरणों में बड़ी प्रीति से गिरकर भगवच्छरण होगया चन्द्रहासजी ने
तीनसौ वर्ष राज्य किया भगवद्भक्ति का प्रचार चलाया कि सब देश भक्त
होगया जब राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया और घोड़े को चन्द्र-
हासजी ने पकड़लिया तो भगवत् श्रीकृष्ण महाराज ने समझा कि भक्त
को कोई जीत न सकेगा तब अर्जुन से मेल कराके घोड़ा छुड़ा दिया
पीछे चन्द्रहासजी अपने बड़े पुत्र को राजतिलक देकर आप राजा
युधिष्ठिर के यज्ञ में आनिमिले अब विचार करना चाहिये कि कैसी शिक्षा
भक्तों के निमित्त है पहले तो प्रतिमानिष्ठा का फल दूसरे यह कि भग-
वद्भक्त मृत्यु से भी नहीं डरते तीसरे यह कि कोई कठिन आपत्ति के आने
परभी भगवद्भजन नहीं छोड़ते चौथे यह कि कोई उनके साथ दुष्टता

करता है उसको भी सुखही देते हैं सिवाय इसके यह बात तो विख्यात है कि भगवत् अपनी प्रसन्नता से अधिक मानते हैं सो चन्द्रहासजी से आप यज्ञ के घोड़े को छुड़ाया जाय के मेल कराया बलको कुछ न चलने दिया नहीं तो एक क्षण में करोड़ों ब्रह्माण्ड की सृष्टि और लय करसके हैं॥

कथा नामदेव की ॥

नामदेवजी चेले ज्ञानदेवजी के विष्णुस्वामी संप्रदायवाले संसार में भक्ति के प्रकाश करनेको सूर्य के सदृश हुये बालपन में अपने भक्तिभाव से भगवत् को वश करलिया भगवत् अंश से उनका जन्म है उसका वृत्तान्त यह है कि पाण्डरपुर में वामदेव नामे जाति का छीपी भगवद्भक्त था उसकी लड़की बालविधवा होगई जब बारह वर्ष की हुई तो वामदेव ने भगवत् सेवा पूजन की शिक्षा करके कहा कि जो हृदय की प्रीति होगी तो तेरा सब मनोरथ व चाहना भगवत् पूर्ण करदेगा उस लड़की ने उसी दिन से अतिभक्ति व विश्वास से ऐसी पूजा अङ्गीकार करी कि थोड़ेही दिनों में भगवत् प्रसन्न होगये यहांतक कि जवानी के आने से जो उसको चाहना काम की हुई तो वह भी भगवत् ने पूर्ण करी और उस लड़की के गर्भ रह गया सारे संसार व जाति भाई में यह बात विख्यात हुई और लड़की से पूछा कि यह क्या अभाग्यता तेरी है उसने कहा कि तुमने कहा था कि सब चाहना तेरी भगवत् से प्राप्त होगी सो जो कुछ हुआ वह भगवत् से हुआ वामदेव इस सुखसमाचार से ऐसे आनन्दित हुये कि शरीर में न समाये और जब लड़का उत्पन्न हुआ तो सब धन सम्पत्ति को उसके जन्म उत्सव में लुटा दिया नामदेव नाम रक्खा और प्राण से अधिक प्यारा जाना वे विश्वासी व और अयोग्यों की शंका व संदेह दूर करने के हेतु पुराणों की कथा आदि से अलग भगवत् का वचन स्मरण हो आया भागवत के दूसरे स्कन्ध में लिखा है कि निष्काम अथवा कामना अथवा मुक्ति के हेतु मुझको दृढ़भाव से जो सेवन करते हैं तो आप मैं सब कामना पूर्ण करता हूँ एकादश में लिखा है कि अपने भक्तों को मुक्ति पर्यन्त सब देता हूँ संसारी कामना की तो कितनी बात है और इसको अलग रहने देव जब कि भगवत् अपने भक्तों के हेतु अपना निजधाम छोड़ करके चले आते हैं और ऐसे शरीर बना लेते हैं कि जो बुद्धि व विचार में न आसके तो गो किसी अपने भक्त कामसुख की चाहना करनेवाले की कामना पूर्ण करी तो क्या आश्चर्य है जो भगवत् के अवतार व गोपिका वो कुब्जा

आदि के चरित्रों पर विश्वास है तो नामदेव का जन्म होना निज भगवत् से सर्वथा सच और युक्त है कथा संक्षेप जन्म ही से नामदेवजी को भगवत् का प्रेम हुआ जब दो चार वर्ष के हुये तो खेल भगवत् आराधन के खेलते अर्थात् भगवत् मूर्ति बनाकर आभूषण वस्त्र पहिनाकर जिस प्रकार उन का नाना सेवा आरती किया करता था तब यह कहता था कि यह भगवत्-मूर्ति मुझको देदेवे और वह बालक जानकर बहाना कर दिया करता एक दिन कहा कि मैं किसी गांव जाता हूँ चार दिन में आऊँगा तुम सेवा पूजा कीजियो जो भगवत् ने तुम्हारा भोग लगाना अङ्गीकार कर लिया तो सेवा तुमको सौंप देंगे नामदेवजी बहुत प्रसन्न हुये और दिन गिनने लगे नाना से नित्य जाने का दिन पूछा करते और बहुत अपने मन में आनन्द हुआ करते जब वह दिन आया उनका नाना सब रीति भगवत् सेवा की समझाकर चला गया नामदेवजी को सन्ध्या ही से प्रेम हुआ और जब गऊ के आने में विलम्ब हुआ तो आप वन में जाकर लाये फिर माता ने अनुशासन किया कि दूध पिलाने का समय आ-गया इस हेतु दूध बहुत शीघ्रता से उष्ण किया और सुगन्ध व मिश्री मिलाकर बड़े प्रेम और उत्साह से कटोरा भगवत् के आगे ले गये पर यह डर मन में रहा कि मुझसे कुछ अपराध न होगया हो भगवत् के सामने हाथ जोड़कर बड़ी दीनता से विनय किया महाराज दूध है मुझ को अपना दास जानकर पान कीजिये और अपने दासको परम आनन्द दीजिये दूध न पिया नामदेवजी लड़के थे यह बात जानते थे कि भगवत् भी जैसे सब लड़के दूध पिया करते हैं पीते हैं इस हेतु भगवत् के चुप रहने से बहुत उदास हुये और सामने से अलग होकर बहुत शोच करने लगे जब निराश हुये तो रोने लगे और कहा कि महाराज अच्छे प्रकार गरम किया है मिश्री बहुत डाली है जब न पिये तो रोते २ बिना भोजन किये भूखे प्यासे पड़े रहे इसी प्रकार दो दिन बीते तीसरे दिन कि उसके भोर उनका नाना आनेवाला था यह विकलता हुई कि दूध न पियें तो सेवा मुझको न मिलेगी इस हेतु दूध बनाकर सामने लेगये कई बार विनय किया नहीं माने तब छूरी निकालकर अपना गला काटने पर तत्पर हुये भगवत् ने जो यह दृढ़ विश्वास देखा तो एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से कटोरा दूध का उठा कर पीने लगे जब कटोरे में दूध थोड़ा रहा तब नामदेवजी ने कहा

नित्य भर भर कटोरा पीते हौ मैं तीन दिन का भूखा हूँ कुछ भी तो छोड़ो भगवत् हँसे अपना अधरामृतयुक्त महाप्रसाद दिया निश्चय स्कन्दपुराण का वचन है कि भगवत् न काष्ठ की मूर्ति में हैं न पाषाण की न दूसरी जगह केवल इस पुरुष के विश्वास में विराजमान हैं इस हेतु विश्वास दृढ़ चाहिये भोर को नामदेवजी का नाना जब आया तब सब वृत्तान्त सुना तो परम आनन्द में मग्न होगया और कहा कि हम को भी तो दिखलाओ नामदेवजी उसी प्रकार कटोरा दूध का सँवार कर लेगये कुछ विलम्ब हुआ तो वह चाकू दिखलाया कहा कि मेरे पास है भगवत् ने तुरन्त पान किया वाह वाह भगवद्भक्तसलता और प्रेम की रिझवारता कि जिसको वेद नेति नेति कहते हैं और शिवादिक जिस हेतु भांति भांति की समाधि लगाते हैं वह अपने भक्तों की भक्ति और प्रीति के ऐसा वश में है कि उनके मनोरथ के अनुकूल सब कुछ करता है इस बात की ख्याति होगई बादशाह ने बुलाकर कहा कि तुम को ईश्वर मिला है सो हमको भी दिखाओ अथवा अपनी सिद्धाई दिखादेव नामदेवजी ने कहा हमारे में सिद्धाई होती तो छीपी की आजीविका क्यों करते और दिन भरते जो कोई साधु सन्त आजाता है आधसेर आटा बांट खाते हैं कि उसके प्रभाव करके आपने बुलालिया है बादशाह बोला कि तेरे कपट की बातें कुछ नहीं सुनते गऊ मरी है इस को जिलादेव नहीं तो तुमको क़तल करदेंगे नामदेवजी ने एक विष्णुपद बनाया पहला तुक यह है ॥ बिनती सुनु जगदीश हमारी ॥ तुरन्त सुनते ही उस विष्णुपद के गऊ जी उठी और बादशाह चरणों में पड़ा कहा कि द्रव्य व गांव परगना जो आज्ञा हो नामदेवजी बोले कि हमको कुछ प्रयोजन नहीं विदामात्र का प्रयोजन है बादशाह ने एक पलँग सोने का जड़ाऊ भेंट किया उसको मूँड़पर रखकर चले और बादशाह के भृत्यलोग जो साथ आये थे सबको विदा करदिया राह में एक नदी थी उसमें पलँग को डालदिया बादशाह ने सुनकर उसी पलँग को मांग भेजा इस बहाने कि उस नमूने का बनवाया जायगा नामदेवजीने उस पलँग से उत्तम उत्तम पलँग अगणित नदी से निकालकर डालदिये और आदमियों से कहा कि अपना पहिंचानकर लेजाव तब तो बादशाह की बुद्धि गई आकर चरणों में पड़ा नामदेवजी ने कहा कि फिर किसी साधु को क्लेश न देना और न कभी हमको बुलाना एक दिन पण्डरपुर के ठाकुरद्वारे

में दर्शन को गये बड़ी भीड़ लोगों की देखकर दर्शन में दुचिताई रहे यह विचार करके जूती कमर में बांध कर मन्दिर में गये संयोगवश किनारा जूती का किसी ने देखलिया मारते मन्दिर से बाहर करदिया नामदेवजी मन्दिर के पीछे बैठेरहे और भगवत् से विनय करी कि दण्ड किया तो उचित किया पर मुझको आपके सिवाय कुछ ठिकाना नहीं और न कुछ चाहना है जो दर्शन और लोगों को है तो कान मेरे कीर्तन की ओर हैं यह विनय करके कीर्तन करने लगे और विष्णुपद व्यङ्ग लिये और अपनी हिनाई को भी गावा पहली तुक यह है ॥ हीन है जाति मेरी यादवराय ॥ भगवत् सुनतेही करुणा से विह्वल होकर मन्दिर को जड़ से फेरिके द्वार उसका नामदेवजी की ओर करदिया यह चरित्र देखकर सब चकित होरहे और महन्त आदि ने चरणों में पड़कर अपराध क्षमा कराया अबतक द्वार उस मन्दिर का दक्षिण मुँह है एक दिन अचानक नामदेवजी के घर आग लगगई तो जो वस्तु घर से अलग थी आग में डालने लगे और विनय किया कि सबको अङ्गीकार करिये भगवत् बहुत हँसे और कहा कि क्या आगमें भी मुझको जानता है कहा कि यह घर आपका है दूसरा कौन स्पर्श कर सक्ता है भगवत् ने प्रसन्न होकर आप नवीन छप्पर ऐसा सुन्दर छादिया कि किसी ने न देखा था जब लोगों ने देखा तब पूछा कि किसने यह छाया है और मजूरी क्या लेता है नामदेवजी ने कहा मजूरी बड़ी कड़ी है अर्थात् तन मन चाहता है और पहले यह मजूरी लेलेता है तब दिखाई देता है पण्डरपुर में एक साहूकार ने तुलादान किया सारे नगर में सोना बहुत बांटा किसी के कहने से नामदेवजी को भी बुलाया नामदेव जी ने दो बार कहला भेजा हमको द्रव्य का प्रयोजन नहीं तीसरी बार गये साहूकार ने कहा कि कुछ थोड़ा आप भी अङ्गीकार करें कि मेरा भला होय नामदेवजी ने मन में सोचा कि इसका गर्व धन का दूर होगा तब भला होगा इस हेतु एक तुलसीदल पर (रा) अक्षर कि भगवत् का नाम है लिखकर उसके बराबर सोना मांगा पहले साहूकार ने जैसे बलि वामन जी से कहा उसी प्रकार बोला पीछे घर का व औरों से मांग मांग कर धरा बराबर न तुला तब लज्जित हुआ नामदेवजी ने विचारा कि धन का गर्व तो दूर हुआ पर पुण्य इसने किया है तिसका गर्व दूर किया चाहिये बोले कि जो तू ने अपनी अवस्था भर पुण्य किया है सो भी संकल्प करदे क्या जानें बराबर होजाय साहूकार ने वह भी संकल्प करदिया जब तराजू

में बराबर न तुला तो संकुचित होकर कहने लगा कि जो है सोई लेजाव नामदेवजी बोले अरे अज्ञानी ! यह धन हमारे कौन काम का है एक भगवद्भक्ति धन चाहिये कि जिसके आधीन सब देवता और सब ऐश्वर्य दोनों लोक के हैं साहूकार लज्जित होकर विश्वासयुक्त भगवद्भक्त होगया इसके पश्चात् भगवत् ने एकादशी व्रत की परीक्षा के हेतु एक अतिदुर्बल ब्राह्मण के रूपसे आय नामदेवजी से भोजन मांगा उन्होंने एकादशी व्रत जानकर न दिया ब्राह्मण बोला भोजन विना अब मेरा प्राण निकला चाहताहै शीघ्र भोजन देव नामदेवजी कहें कि आज एकादशी को न देंगे इसी हठा हठी में दोनों झगड़पड़े शोरगुल हुआ लोग बटुर आये सबने कहा रसोई बनवाय के खिलादेव नामदेवजी ने न माना संध्या के स थ ब्राह्मण मर गया लोगों ने कहा नामदेवजी को हत्या हुई नामदेवजी को कुछ भय न था चिता में ब्राह्मण की लोथ समेत बैठकर लोगों से कहा आग लगा देव इतने में भगवत् हँसपड़े विश्वास पर नामदेवजी के प्रसन्न हुये लोग यह चरित्र देखकर नामदेवजी के चरणों में पड़े नामदेवजी के घर पर एकादशी को जागने में हरिभक्तों को जलतृषा हुई बावली में एक बड़ा प्रेत रहता था उस डरसे कोई न जासक्ता नामदेवजी कलश लेकर आधीरात को वहां गये वह प्रेत बिकराल व भयंकररूप आया नामदेवजी ने यह पद ताल लेकर किया तुक उसका यह है ॥ये आये मेरे लम्बकनाथ ॥ धरती पांव स्वर्ग लौं माथो योजन भर भर हाथ ॥ भगवत् उसी भूत में प्रकट हुये और वह भूतभी नामदेवजी की कृपा से भगवद्धाम को पहुँचा नामदेवजी एकादशी के जागरण में ऐसे दृढ़प्रेमी शिरोमणि हुये कि अबतक रीतिहै कि जहां जागरण एकादशी का होता है पहले नामदेवजी का पद मङ्गलाचरण में गाते हैं ॥

कथा अल्हजी की ॥

अल्हजी परमभगवद्भक्त हुये तीर्थयात्रा में कहीं एक राजा के बाग़ में उतरे सेवा पूजा को किया आमके नीचे बाग़वान से आम मांग भगवत् को भोग लगाने को उसने कहा जो आम खाये विना नहीं रहाजाता है तो तुम तोड़लेव बस तुरन्त आम की डाली सब ऐसी झुक गई कि आम सिंहासनपर व भूमिपर आगये आम ठाकुरजी को भोग लगाया उस बाग़वान ने जाकर राजा से यह चरित्र कहा राजा दौड़ा आया चरणों में पड़कर विनय किया आपके चरणों के प्रभाव से मैं और यह

बाग़ व सब देश पवित्र हुआ अब कुछ कृपा विशेष करना चाहिये अलह जीने दया करके उसको भगवच्छरण व भक्त करदिया जानेरहो भगवद्भक्ति और भक्तों का यह प्रताप है कि शिव ब्रह्मादिक जिनके चरणों में अपना मस्तक झुकाते हैं जो एक वृक्ष झुका तो क्या आश्चर्य है ॥

कथा पृथ्वीराज की

पृथ्वीराज राजा बीकानेर बेटाकल्याणसिंह के भगवद्भक्त हुये कवित्त दोहा भाषा में श्लोक संस्कृत में रचना करके अतिप्रेम से कीर्तन किया करते थे पिङ्गल इत्यादि के बड़े ज्ञाता व काव्य बड़ी ललित उनकी थी भगवत् सेवा में बड़े निष्ठथे और त्यागी इन्द्रिय सुखके ऐसेथे कि अवस्था भर स्त्री की ओर नहीं देखतेथे कहीं परदेश में संयोगवश गयेथे तो मन्दिर में सेवा मूर्ति का ध्यान मानसी करते थे दो दिन ध्यान में वह स्वरूप न देखा तीसरे दिन दर्शन मानस में हुआ पर वृत्तान्त बूझनेके हेतु सांड़िनी दौड़ाई तो राजमन्त्रियों ने पत्री लिखी कि मन्दिर की मरम्मत होने से दोदिन श्रीनाथजी दूसरे स्थानमें थे मन्दिर में नहीं गये राजा का तब सन्देह दूर हुआ और बड़े आनन्द हुये राजाने अपने मनमें मथुराजी में देह त्यागने का प्रण किया था इस वृत्तान्त को बादशाह ने सुनकर द्वेष करके उनको काबुल की लड़ाई पर तैनात करदिया राजा को इस यात्रा से एक एक दिन कल्प के समान बीतते थे क्योंकि अवस्था जीने की थोड़ी आय रही थी जब दिन उनके प्रण का निकट आया तो भगवत्ने उसदिन राजा को जनाय दिया तुरन्त सांड़िनी पै बैठकर मथुराजी में आये और प्रण पूर्ण हुआ शरीर त्याग करके परमधामको पहुँचे जय जय की ध्वनि सारे संसार में पहुँची और निर्मलयश भगवद्भक्ति और भक्तों का संसार में विख्यात हुआ एक वृत्तान्त राजा का और भी तीसरे तर्जुमा करनेवाले ने लिखाहै कि एकबेर विदेशयात्रा में संयोगवश जङ्गल में वास हुआ और वहां लश्कर को कुछ सामां खानेपीने की न मिली भगवत् ने भक्तवत्सलता करके एक नगर बड़ाभारी प्रकट करदिया कि सब प्रकार से सुख सारे लश्कर को हुआ ॥

कथा धनाभक्त की ॥

धना जाति के जाट परमभक्त हुये उनके भक्त होनेका वृत्तान्त यह है कि जब लड़के थे तब उनके घर एक ब्राह्मण भगवद्भक्त आया भगवत् की सेवा पूजा करताथा धनाभक्त ने उससे कहा कि मूर्ति हमको भी देव कि

जैसी तुम सेवा पूजा करते हौ हम भी करें पहले बहाना किया जब हठ देखा तो एक छोटासा पत्थर काला देदिया धनाजी ने बड़ी प्रीति से शिर व नेत्रों से लगाया सेवा प्रारम्भ की पहले आप स्नान किया और फिर भगवत् को स्नान कराकर तालाव की मिट्टी का तिलक लगाया और तुलसीदल के स्थान पर हरीपत्ती चढ़ाई और बड़ी प्रीति और हर्ष से साष्टाङ्ग दण्डवत् की जब उनकी माता रोटी लाई तो भगवत् के आगे रखकर और आंखें बन्द करके बैठ गये बड़ी देर तक बाट जोहते रहे कि भगवत् भोग लगावैं पर जब न खाई तब उदास व दुःखित होकर बारबार हाथ जोड़े तब फिर लड़कई हठ करके बहुत प्रार्थना किया तौ भी न भोजन किया तो रोटी को तालाव में डाल दिया और आप भी बे अन्न जल रह गये कई दिन इसी प्रकार बीते और भूख प्यास से विह्वल होकर मरने के निकट पहुँचे भगवत् को द्रव हुआ प्रकट होकर रोटी खाना प्रारम्भ किया जब आधा भोजन किया तब धनाजी बोले क्या सब तूही खाय जायगा कुछ मुझको भी देगा कि नहीं भगवत् ने हँसकर बची रोटी धनाको दी इसी प्रकार नित्य की व्यवस्था होगई धनाजी ने जो परम मनोहररूप भगवत् का देखा तो ऐसी प्रीति होगई कि एक क्षण उस रूप को ध्यान में अथवा प्रकट में न देखें तो बेचैन होजाते भगवत् ने देखा कि जिसकी रोटी बेपरिश्रम खाते हैं उसकी टहल भी कुछ किया चाहिये कि विना परिश्रम किसी का खाना अच्छी बात नहीं सो धनाभक्त से पूछकर गऊ चुगाय लाया करते एक बार वही ब्राह्मण आया सेवा पूजा धना को करते कुछ न देखा कारण पूछा धनाजी ने कहा कि महाराज भली पूजा देगये थे कि कितने दिनों मुझको भूखों मारा अब बड़ी कठिन से ऐसा सीधा हुआ है कि गाय तक चुगायलाता है ब्राह्मण को आश्चर्य हुआ कहा कि हमको भी दिखला धनाजी ने ब्राह्मण को भी दर्शन कराया वह ब्राह्मण भी कृतार्थ होगया और धनाभक्तजी भगवत् की आज्ञा से काशीजीमें रामानन्दजी से मन्त्र उपदेश लेकर गुरु की आज्ञा के अनुसार घर में आयकै साधुसेवा में लीन रहे एक दिन खेत बोने को गेहूँ लिये जाते रहे साधु आयगये वह गेहूँ साधु सेवा में लगा दिये माता पिता की भय से खेत को जैसा बोने पर बनाके छोड़ देते हैं वैसाही करके छोड़ दिया भगवत् ने विचार के सबसे अच्छा उस खेत को जमाया कि सब लोग बड़ाई करने लगे धनाजी ने लोगों की बड़ाई करना खेत के जमने की हँसी ठट्ठा समझा एक दिन जो खेत की ओर गये तो कहना सबका सत्य देखा

भगवत् की कृपा से बारबार जाके प्रेम व आनन्द में डूब गये और अधिक भगवत् और भक्तों की सेवा में लौलीन हुये और राजा इन्द्र तू कैसा ज्ञानवान् व बुद्धिमान् है कि वज्र के बनाने के हेतु दधीचिऋषीश्वर को दुःख दिया मेरे इस मन अभागे को क्यों न उठाकर लगाया कि कठोर वज्र से भी कठोर है जो यह कथा धनाभक्त की कहकर और करुणा और भक्तवत्सलता और रिझवारता परमदयालु की सुनकर तनक भी नरम नहीं होता ॥

कथा देवा की ॥

उदयपुर के निकट एक मन्दिर रूपचतुर्भुज स्वामी का है वहांका पुजारी देवानाम ब्राह्मण वृद्ध हुआ एक दिन जब राना उदयपुर का गद्दी का मालिक आय गया और देवा रात को शयन के समय भगवत् को शयन कराके माला फूलों की उतारी तो अपने शिरपर लपेटकर कपाट मन्दिर के बन्द कर चुके थे देवाने वह माला उतार कर जब राना मन्दिर में पहुँच गया राना के गले में डालदी संयोगवश एक केश सफ़ेद उस माला में राना को देख पड़ा देवा पुजारी से पूछा क्या भगवत् के केश श्वेत होगये देवाने कहा हां महाराज सफ़ेद होगये राना ने कहा हम भी प्रभात देखेंगे यह कहकर चला गया देवाजी के मुख से जो यह बात निकल गई तो भययुक्त होकर सिवाय भगवत् के और दूसरा रक्षक न देखा बहुत दुःखी होकर कहने लगे कि हे हृषीकेश ! हे स्वामिन् ! आपकी भक्ति मेरे में है न सेवा पूजा में विश्वास पर आपके चरणकमलों के सिवाय कोई शरण व रक्षा का स्थान भी नहीं कि वहां जाऊँ अब मेरी लज्जा आपही को है चाहो सो करो भगवत् यह विनती अपने भक्त की सुनकर करुणायुक्त होकर उसी क्षण अपने श्रीअङ्गपर श्वेतकेश धारण कर लिये प्रभात को देवाने मन्दिर के कपाट खोले और श्वेतकेश श्रीअंग पर देखते ही भगवत् के करुणा व दयालुता के प्रेम में ऐसे बेसुधि होगये कि कुछ सुधि बुधि शरीर की न रही पीछे सुधि भई भगवत् के करुणा दीनवत्सलता आदि गुणों को और अपनी विमुखता को शोचते भक्ति और भाव में छके हुए भगवत् की महिमा अपने मन में वर्णन कर रहे थे कि राना आया और भगवत् के शरीर पर केश सफ़ेद देखकर ध्यान में आया कि इस ब्राह्मण ने किसी के बाल लगा दिये हैं परीक्षा के हेतु एक केश खींचा भगवत् को क्लेश पहुँचा और नासिका को चढ़ाई फिर वह केश टूट गया और रुधिर की धार इस वेग से निकली कि राना के कपड़ों तक पहुँची राना यह वृत्तान्त देख

मूर्च्छा खाकर गिरपड़ा एक पहरतक अचेत पड़ारहा फिर उठकर देवाके चरणों में पड़ा और क्षमा करने अपराध के निमित्त विनय व प्रार्थना की तब आज्ञा हुई कि अबसे राना के वंश में जबतक कुँवर रहे तबतक दर्शन को मन्दिर में आवे और जब से राजतिलक होय तबसे मन्दिर में न आवे जावे सो अब तक यह रीति वर्त्तमान है ॥

कथा दो लड़कियों की ॥

एक लड़की किसी ज़मींदार की और दूसरी राजा की भगवत्कृपा के प्रभाव करके उस पदवी और भक्ति को पहुँचीं कि जिनकी कथा अब तक भक्तों के मुखसे होती है । वृत्तान्त यह है कि एकबेर राजा के गुरु आये थे दोनों लड़कियों ने भगवत्मूर्त्ति मांगी उन्होंने बालापन देखकर एक टुकड़ा पत्थरका देकर नाम शिलपली बतलादिया और इतना उपदेश कर दिया कि मन लगाकर सेवा पूजा करती रहो संसारसमुद्र से पार होजाओगी । वे दोनों बड़भागिनी अत्यन्त विश्वास और प्रेम से सेवा पूजा करनेलगीं यहांतक कि भगवत् का रूप उन्हों के हृदय में प्रकाशित हुआ । इतनी कथा दोनों की इकट्ठी वर्णन हुई अब अलग २ लिखी जाती है । ज़मींदार की लड़की का चचा अपने भाई से अर्थात् उस लड़की के बाप से शत्रुता रखता था वह उसपर चढ़आया गांव को लूट लेगया उस लूटने में उस लड़की की सेवा की मूर्त्तिभी गई वह लड़की अत्यन्त विकल भई व सारा संसार उसको अँधियाला होगया और जी में प्राणपीड़ा हो गई जब सोना, खाना, पीना सब छूटगया तब सब के कहने से अपने चचा के पास जहां वह अपने चौवारे में बैठा था और गांव के सब आदमी भी थे वह लड़की गई और मूर्त्ति मांगी वह बोला पहिंचान कर लेजा । किसी ने कहा तू टेरदे जो ठाकुर को तेरे साथ प्रीति होगी तो आप चले आवेंगे । वह लड़की कि रोते रोते आँखें सूज आई थीं व गला पड़गया था बड़े कष्ट से दीन होकर पुकारी हे शिलपली महाराज ! अपनी दासी को क्यों छोड़ आये कहांहो ? भगवत् सुनतेही शब्द के तुरन्त आकर उस बड़भागिनी की छाती से लिपटगये और उसको प्राणदान देकर जिवाय लिया और दोनों गाँववालों को निश्चय अपनी भक्ति का किया और राजा की लड़की भगवत् प्रेम में ऐसी रँगिगई कि रङ्गीन होगई परन्तु एक आदमी भगवद्विमुख के साथ उसका विवाह होगया था वह लेजाने को आया उसको बड़ी चिन्ता भगवत् सेवा की हुई नितान्त जब माता ने

बिदा करदिया अपने प्राणप्रीतम को डोलामें बैठालिया और कोई लौंडी बांदी को साथ न लिया । राहमें वह विमुख पास आया और बोलने बोलाने को चाहसे बोलाया वह कुछ न बोली तव उसने कहा तुम क्यों नहीं बोलती हो और तुमको कौन दर्द है कि उसका उपाय किया जाय । उस लड़की ने उत्तर दिया कि तुमको चाहना हमसे बोलने की है तो भगव-द्भक्ति अङ्गीकार करो नहीं तो हमको स्पर्श न करो । उसको क्रोध आया और पिटारी भगवत् सेवा की नदी में डाल दी । यह लड़की अतिव्या-कुल व स्वामी के वियोग से दुःखित हुई और अन्न जल विष होगया । उस विमुख ने उसको प्रसन्न करने को अनेक उपाय रचे पर कुछ काम न आया अपने घर में आया तव राह का यह वृत्तान्त सव जनादिया । स्त्रियों ने बहुत भांति समझाया और सासु अपने हाथसे भोजन कराने लगी परन्तु उस बड़भागिनी का मन भगवच्चरणों में दृढ़ लग रहा था किसी की कुछ न सुनी और न कुछ खाया पिया जव सव उपाय करके सासु इत्यादि हारीं तब सब उसी नदीपर आये जहां पिटारी को पानी में डाल दिया था और वह बड़भागिनी करुणा से भरीहुई रुदन करतीहुई पुकारी कि हे स्वामी, शिलपली महाराज ! कहांहो, आप दासीसे किसहेतु रूठगये हो, जो बहुत पानी में नहाना आपको था तो मैं गङ्गाजी में स्नान कराती अब कृपा करो दर्शन देव । भगवत् अपने भक्त के पराधीन ऐसे हैं जैसे कामीपुरुष सुन्दरी नायिका के आधीन व वशीभूत होता है वह शब्द करुणा से भराहुआ सुनकर तुरन्त अपनी वियोगिनी विरहिनी को दर्शन देकर प्राणको रखलिया सबको भक्ति का विश्वास हुआ और भगवद्भक्ति व साधुसेवा सब कोई करके कृतार्थ होगये ॥

कथा सन्तदासजी की ॥

सन्तदासजी निवाई गांव में विमलानन्द के प्रबोधनवंश में परमभक्त हुये । जिस प्रकार राजा पृथुने अपनी स्त्री समेत भगवत् सेवा करी उसी प्रकार सन्तदासजी ने करी । अपनी वाणी की रचना में भगवत् और भक्ति और भक्तों का प्रताप बराबर लिखा और काव्य उनका सूरदासजी के बराबर था । भगवत् के जन्म, कर्म, लीला व चरित्रों को ऐसी मधुर व ललित वाणी में बनाया कि निश्चय मन नरम होकर भगव-च्चरणों में लगजाता है । एकबेर उनके मन में यह आया कि भगवत् को छप्पन प्रकार का भोग लगाना चाहिये सो ध्यान में भोग लगाया ।

जगन्नाथरायजी ने अपने सच्चे भक्त का मानसी भोग अङ्गीकार किया और पुजारियों का धरा थाल भोग न लगाया और राजा को स्वप्नमें आज्ञा की कि सन्तदास के घर हमारा नेवता था उसने ऐसा भोजन कराया कि स्वादिष्ठ व मधुरता से बहुत खागये कि भूख नहीं है। राजा ने सन्तदास जी की भक्ति व प्रताप का विश्वास किया और भक्तों को भगवद्भक्ति और भावकी वृद्धि हुई ॥

कथा साखीगोपाल की ॥

दो ब्राह्मण गौड़देशके रहनेवाले उसमें एक बूढ़ा व कुलीन और दूसरा जवान और सामान्य कुल का तीर्थयात्रा में एक साथ रह जहां तहां दर्शन करके जब वृन्दावन में आये तो बूढ़ा ब्राह्मण बीमार होगया। जवान ब्राह्मण ने उसकी सेवा को अच्छे प्रकार से किया जब आराम हुआ तो उसने प्रसन्न होकर ब्याह करदेने अपनी लड़की का वचन दिया और जवान ब्राह्मण ने बहुत कहते सुनते अङ्गीकार किया। साक्षी चाहा तो वृद्धब्राह्मण ने श्रीगोपालजी को साक्षी दिया। जब दोनों अपने घर आये तब उस युवा ब्राह्मण ने कहा कि वचन पूरा करो तो स्त्री व पुत्र ने बूढ़े ब्राह्मण को अपनी कुलीनता व प्रतिष्ठा के कारण से न माना तब पञ्चाइत बटुरी पञ्चों ने साक्षी मांगा। उसने उत्तर दिया कि जहां गोपालजी साक्षी हैं तो और साक्षी का क्या प्रयोजन है? पञ्चों ने कहा कि जो गोपालजी आयकर गवाही देवैं तो निस्संदेह विवाह होजावे और इस बात का लिखना भी होगया। वह ब्राह्मण वृन्दावन में आया श्रीगोपालजी के मन्दिर में जाकर चलने के निमित्त निवेदन किया कितने दिनतक इसी आशा में फिरता रहा जब भगवत् ने अच्छे प्रकार विश्वास मन का देख लिया तब बोले कि प्रतिमा भी कहीं चलती है? तब ब्राह्मण ने विनय किया कि जो चलती नहीं तो बोलती कैसी है योगेश्वर भगवान् निरुत्तर हुये और साथ होलिये पर उस ब्राह्मण से कहने लगे कि जब तू पीछे फिरकर देखेगा उसी जगह खड़ा हो जाऊंगा उसने कहा कि जो ऐसा ठग हो कि हज़ारहों उपाय और परिश्रम से भी महादेव इत्यादि के मन में से भागजाता है और जिसने गोपियों का माखन और दही चुराकर अच्छे प्रकार से खाया और उन्हों ने पकड़ने का मन किया फिर भागगया उसका कैसे विश्वास होवे कि पीछे पीछे आता है या नहीं इस हेतु साथ साथ चलना चाहिये। भगवत्

ने हँसकर कहा कि हमारे नूपुर की ध्वनि तेरे कान में पड़ती रहेगी उसने मान लिया। जब घरके समीप पहुँचा तो ब्राह्मण को कामना हुई कि अब तो रूप अनूप को आँखभर देखलेना चाहिये सो इस चाहना में प्रबन्ध की बातको भूल गया और पीछे फिरकर देखा तो भगवत् वहीं खड़े होगये और ब्राह्मण आज्ञा पाकर गांव में गया। वृत्तान्त आवने आप श्रीगोपालजी महाराज का कह करके पञ्चों को लेआया और भगवत् ने दोनों ब्राह्मणों में जो प्रबन्ध था सो कह दिया। सबको भगवत् और भक्ति और भक्तों का विश्वास हुआ और उस ब्राह्मण का विवाह बड़े हर्ष से हुआ। अबतक श्रीगोपालजी महाराज घुड़दान गाँव में श्रीजगन्नाथराय जी के मन्दिर में पांचकोस पर विराजमान हैं और नाम साखीगोपाल विख्यात हैं जो कोई जाता है दर्शन पाता है॥

कथा सींवां की॥

सींवां बेटा सांगन राजा अपनी कावा जाति के द्वारकादेश में परम भक्त हुये। यद्यपि कामध्वजजी बड़े त्यागी विख्यात हैं परन्तु यह राज्य काज करते हुये और सब पदार्थ ऐश्वर्य पायके कामध्वज से अधिक त्यागी मन से थे। वीर, उदार व पराक्रमी ऐसे थे कि भगवत् की सहाय करी। वृत्तान्त यह है कि अज़ीज़खां नामी बादशाही नौकर बड़ा कटक लेकर द्वारका पर चढ़गया। रनछोरजी के मन्दिर और पुरी में आग को लगा दिया और लोगों पर नाना प्रकार का उत्पात प्रारम्भ किया। भगवत् ने सींवां से सहायता चही सींवां ने कुछ सवारों समेत द्वारका में पहुँच कर सबों का वध किया बड़ा युद्ध करा अज़ीज़खां को यमलोक में पहुँचाय के आप भगवत्लोक में वास किया॥

कथा सदनजी की॥

सदनजी जाति के कसाई परमवैराग्यवान् भक्तहुये जिस प्रकार सोना कसौटी से अवगुणरहित होजाता है इसी प्रकार सदनजी ने पिछले जन्मों के पाप दूर करदिये मांस औरों से मोल लेकर बेंचा करतेथे हिंसा नहीं करतेथे। शालग्राम की मूर्ति पास थी उसी से सेर अथवा मन जो चाहताथा तौल देतेथे एक वैष्णव ने देखकर मनमें कहा कि यह मूर्ति ऐसी वृत्तिवाले के पास कहां उचित है इस हेतु सदनजी से मांगी उन्होंने तुरन्त देदी। साधु को स्वप्न में कहा कि जहां से लाया तहांही पहुँचादे। साधु ने कहा कि महाराज कसाई के यहां आप का निवास अयोग्य है तब

आज्ञा हुई कि हमको उससे बड़ी प्रीति है हमको पलरेपर रखता है तो हम भूला भूलते हैं व मोल की जो जो बात चीत करता है सो हम कीर्तन मानते हैं। साधु ने जाकर सदनजी से सब वृत्तान्त कहकर शालग्राम की मूर्तिको देदिया। सदनजी घरबार त्यागकर उस मूर्ति को शिरपर रखके जगन्नाथरायजी को चले, राह में कहीं एक स्त्री सदनजी को सुन्दर व युवा देखकर आसक्त होगई, अपने यहां टिकाया, अच्छा भोजन कराया, रात को कहा कि हमको अपने साथ ले चलो। उन्होंने कहा कि मेरी गर्दन काटडालो तब भी यह नहीं होगा। उसने कुछ औरही समझकर तुरन्त घरमें जाकर अपने पति का शिर काटकर फिर आकर वृत्तान्त कहा कि अब बेखटके तुम साथ ले चलो। सदनजी ने कहा कि ऐ मतिहीन! यह हमसे कदापि न होगी। उसने शोर किया कि इस आदमी को साधु जानकर टिकाया सो मेरे पति का शिर काटकर हमको साथ लेजाने को कहता है। सदनजी पकड़कर हाकिम के यहां गये पूछा गया तब सदन जी ने कहा हां हमसे अपराध हुआ। हाकिम ने हाथ सदन का कटवादिया। ऐसे कष्ट में भी सदन अपने पूर्व पाप का फल समझकर भगवत् के ध्यान स्मरण से आनन्द रहे व जगन्नाथजीको चले। जगन्नाथराय महाराज प्रसन्न होकर निज सवारी की पालकी सदनजी के निमित्त भेजी पर सदनजी मर्यादको देखकर न चढ़े। जब सब ने बहुत कहा तब आज्ञा भगवत् की उल्लंघ करना उचित न जानकर सवार होके श्रीदरबार में पहुँचे और भगवत् के दर्शन को पाकर कृतार्थ अपने आपको जानकर दण्डवत् किया उसीक्षण हाथ जैसे थे वैसे होगये और सब दुःख जन्मान्तर के दूर होगये निश्चय करके भगवद्भक्ति का ऐसाही प्रताप है सो महाभारत में भगवत् का वचन है कि जिसको मेरी भक्ति नहीं और चारों वेद पढ़ा हो वह हमको प्यारा नहीं और जो कोई और मेरा भक्त है और यद्यपि वह चाण्डाल भी है पर हमको अत्यन्त प्यारा है और वही पूजा योग्य है और एकादशस्कन्ध में भगवत् ने उद्धव से इसको श्लोक की भांति कहा है॥

कथा कर्मानन्दजी की॥

कर्मानन्दजी जाति चारण रजवाड़े में भगवद्भक्त और वैराग्यवान् हुये। काव्य उनका ऐसा प्रभावयुक्त है कि कैसाही कठोरचित्त हो पद सुनकर द्रवीभूत होजाता है। उन्होंने संसार को असार व अनित्य जानकर त्याग किया और तीर्थयात्रा को चले। भगवत्सिंहासन शिरपर और हाथ में

एक छड़ी लेली जहां कहीं टिकते वह छड़ी धरतीपर गाड़देते और बटुवा शालग्रामजी का उसीकी शाखापर झूले के भांति विराजमान करदेते। एकबेर वह छड़ी भूल गये चित्त भगवच्चरणों में था इसकारण राह में भी सुधि न हुई। टिकान्तपर पहुँचे जब प्रयोजन भगवत् के विराजमान करने का हुआ तब स्मरण हुआ और अत्यन्त प्रेम से कहने लगे कि झाडू देनेवाला, पानी भरनेवाला, रसोई व सेवा करनेवाला व सवारी देनेवाला निश्चय करके यह दास है क्या जो कार्य कि आपको अधिकार है वह भी इस सेवक को सौंपा गया अर्थात् अन्तःकरण के प्रेरक तो आप हैं छड़ी भूलगई न स्मरण हुआ तो विचार करलें कि इसमें दोष किसका है भगवत् ने जो बोलन प्रेमयुक्ति की सुनी तो प्रसन्न हुये व तुरन्त छड़ी को मँगादिया॥

कथा कूल्ह अल्ह की॥

कूल्ह व अल्ह दोनों भाई रजवाड़े में हुये। कूल्ह भाई बड़े आदि से भगवद्भक्त, वैराग्यवान्, त्यागी व भगवत्रूप माधुरी के ध्यान में मग्न और भगवच्चरित्र और गुणों के कीर्तन करनेवाले हुये व अल्हजी छोटे भाई मद्यमांस के पीने खाने में रहकर बहुत से राजाओं के यश के कवित्त बनाया करते और कभी घुणाक्षरन्याय भगवच्चरित्र का भी कीर्तन करते पर बड़े भाई की आज्ञा में रहते थे। एक दिन बड़े भाई ने कहा कि यह मनुष्य जन्म दुर्लभ वृथा जाता है और यह संसार अनित्य है उचित है कि द्वारकाजी में भगवत् के दर्शन कर आवें सो दोनों भाई द्वारकामें आये। कूल्ह बड़े भाई ने अपने बनाये कवित्त और छन्द भगवत् रनछोरजी की भेंट किये और अल्ह छोटे भाई ने अतिलज्जा से शिर नीचे करके आंखों में आंसू भर लिये और अपने अपकर्मों को शोच के विकलचित्त होकर दो चार कवित्त पढ़े। भगवत् ने जो अत्यन्तप्रीति हृदय की देखी और अपने पाप कर्मों की लज्जा से लज्जित देखा तो प्रसन्न होकर अल्हजी के कीर्तन पर सावधान हुये और हुँकारी भरनेलगे। अभिप्राय यह कि हम सुनते हैं कुछ और कहो और पुजारीको निजमाला देनेके निमित्त आज्ञाको किया। अल्हजी ने विनय किया कि कूल्हजी बड़े भाई इस कृपायोग्य हैं मैं अपराधी इस योग्य नहीं। पुजारी ने उत्तर दिया इस दरबार में बड़ाई छुटाई हृदय की प्रीतिकी देखी जाती है और हमको केवल आज्ञा पालन उचित है यह कहकर माला को अल्हजी के गले में डाल दिया। कूल्हजी को अति

दुस्सह हुआ और अपनी बेमर्यादी समझकर बड़े दुःख व ईर्षा से डूबने का मनोरथ करके समुद्र में कूदपड़े, मुख्यद्वारका में जा पहुँचे, भगवत् का दर्शन पाकर कृतार्थ होगये। जब भोजन करने गये तब भगवत् ने आज्ञा की कि दो पनवाड़ों में पारस करो। कूल्हजी ने पूछा दूसरा पारस किसके निमित्त है। भगवत् ने कहा तुम्हारे छोटे भाई के हेतु। सुनतेही बड़ा दुःख फिर हुआ और विषके समान होगया। भगवत्ने कहा दुःखकी कुछ बात नहीं है तुम्हारा छोटा भाई मेरा परमभक्त है और वृत्तान्त उसका यह है कि अगिले जन्म में राजा था और राज्य छोड़कर जङ्गल में हमारे स्मरण भजन में रहाकरता था संयोगवश एक राजा वहां आयके टिका और उसकी सजावट भोग विलास व रागरङ्ग इत्यादि को देखकर उस सुख की चाहना को किया इस हेतु यह शरीर पाया अब वह तुम्हारे विश्लेष से खाना, पीना, सोना सब छोड़कर मृतकप्राय है शीघ्र जाकर सुधिलेव। कूल्हजी प्रसाद लेकर अपने डेरे पर जहां टिके थे एक क्षण में पहुँचे और अल्हजी को वहां न पाया घरजाने की सुधि पायकर गृह को चले। अल्हजी अपने भाई के वियोग से महादुःखित रोया करते थे कूल्हजी को कुशल-पूर्वक पत्थर के साथ आते सुनकर अतिहर्षित होकर आगे जाकर लिया दण्डवत् करके दोनों भाई प्रेम से भरेहुये मिले। कूल्हजी ने सब वृत्तान्त कहा दोनों भाई ऐसे प्रेम में पूर्ण हुये कि घरबार त्याग करके वन में चले गये भगवत्सेवा भजन में शरीर समाप्त किया॥

कथा जगन्नाथजी की॥

जगन्नाथजी रहनेवाले थानेसर परमभक्त और श्रीकृष्ण चैतन्य महा-प्रभु के सेवक पार्षद के सदृश हुये। सेवक होनेका यह वृत्तान्त है कि तीन दिनतक महाप्रभु को अपने घरपर विराजमान देखा और उनके प्रताप का प्रभाव घर में प्रकट पायके आधीन व विश्वासयुक्त हुये और सेवक होकर कृष्णदासनाम पाया पर लोग कृष्णनाम कहा करते थे। बहुत काल मानसी पूजा और ध्यान करते रहे। एकदिन यह अभिलाष हुआ कि जो चर्चा मूर्ति भगवत्की मिले तो स्थापन करके सर्वकाल सेवा पूजा में रहा करूं। भगवत् ने कृपा करके अपना स्वरूप एक कुएँ में बतलाया उसको लाकर स्थापन किया और ऐसी सेवा पूजा में लवलीन रहाकरते थे कि रात्रि दिन भगवत् के शृङ्गार, राग भोग, उत्साह और लाड़ लड़ाने के सिवाय दूसरा कुछ काम न था। उनके पुत्र का नाम रघुनाथजी था

वह लड़काई से ऐसा भक्त और प्रेमी हुआ कि भगवत् ने स्वप्न में एक श्लोक अपने प्रेम और भक्ति का शिक्षा किया ॥

कथा रामदासजी की ॥

रामदासजी रहनेवाले डाकौर द्वारका के निकट बड़े प्रेमी भक्त हुये। एकादशी व्रत बड़ी प्रीति से रहकर जागरण के हेतु रनछोरजी के मन्दिर में द्वारका जाया करते जब वृद्ध हुये तब रनछोरजी ने आज्ञा की कि अब तुम घरही में स्मरण भजन किया करो। रामदासजी ने यद्यपि वचन अङ्गीकार किया पर जब तरङ्ग प्रेम की उठे तो बेवश होकर चलेजाते। भगवत् से राह का परिश्रम व क्लेश आने जाने का अपने भक्तका सहा नहीं गया और आज्ञा की कि तुम एक गाड़ी लेआवो हम तुम्हारे घर चलेंगे। रामदासजी अगिली एकादशी को गाड़ी लिये आपहुँचे और लोगों ने जाना कि बुढ़ाई के कारण से गाड़ीपर आया है। द्वादशी के दिन बतलाये हुये भगवत् मन्दिर में गये और गाड़ी पर सवार कराकर चले पर गहने सब भगवत् के मन्दिर में छोड़दिये। प्रभात को पुजारीलोगों ने मन्दिर खोला व भगवत् को न देखा तो जानगये कि रामदास लेगये सब पीछे पड़े और रामदासजी को उनके आने से चिन्ता हुई भगवत् ने कहा कि समीपही एक बावड़ी है उसीमें हमको छिपादेव रामदासजी ने वैसाही किया वे लोग जो आये तो पहले रामदासजी को मारा पीटा घायल किया जब गाड़ी में न देखा तो लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे पीछे किसी के बतलाने से बावड़ी को देखा कि रुधिर से भरी है चकित हुये। भगवत् ने कहा कि रामदास हमारी आज्ञा से हमको लाया है तुमने जो उसको घाव दिया सो हमने अपने शरीर पर रोंका है इस हेतु बावड़ी रुधिर से भरी है अब तुम फिर जावो तुम्हारे साथ न जायँगे। पुजारियों ने बड़ी प्रार्थना व करुणा से विनय किया कि महाराज जो आप न चलें तो हमारी क्या गति होगी। भगवत् ने कुछ न सुना बहुत कहने सुनते यह ठहरा कि भगवत् मूर्ति बराबर सोना तौलदे सो पुजारीलोग इस बातपर मानिगये। रामदास जी ने कहा कि महाराज! मेरे घर सोना कहां है भगवत् ने कहा कि तुम्हारी स्त्री के कान में बाली सोनेकी है हमारे तौलकी बराबर वही बहुत है जब उस सोनेकी बाली के साथ भगवत्मूर्ति को तौलने लगे तो बालीवाला पलरा धरतीपर होगया व भगवत्मूर्तिवाला पलरा स्वल्पता से ऊपर उठगया। पुजारी सब लज्जित होकर अपने घर को चले गये। रामदास

जी ने भगवत् को अपने घरपर लाकर विराजमान किया और सेवा भजन करनेलगे इस चरित्र से प्रकट है कि राजा बलि के यहां तो उसके बांधलेने के पीछे उसके यहां टिके और यहां तो रामदासजी के घायल होनेके पीछे टिके और सदा भगवत् के यहां रहनेका यह चिह्न है कि अब भी भगवत्मूर्त्ति किसी और आदमी से नहीं उठती जब कोई रामदास जी के वंश में का उठाता है तो तुरन्त उठ आती है। मन्दिर की मरम्मत के समय इस बात की परीक्षा होचुकी है ॥

निष्ठा नवीं ॥

जिसमें महिमा लीलानुकरण अर्थात् रामलीला व रासलीला इत्यादि सब भक्तों की कथा हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों के चक्ररेखा की दण्डवत् करके कमठ अवतार को दण्डवत् करताहूँ कि समुद्र मथने के समय वह अवतार समुद्र में प्रकट करके मन्दराचल पहाड़ को अपनी पीठपर धारण किया और देवताओं के दुःख दूर किये । रासलीला, रामलीला व नृसिंहलीला बनाकर जो भगवत् का आराधन पूजन करते हैं उसका नाम लीलानुकरण है यह निष्ठा परमपुनीत ऐसी है कि सैकड़ों हजारों महापापी जिस के प्रभाव करके भगवत्परायण हुये और भागवत् से प्रसिद्ध है कि जब रासलीला के प्रारम्भ में भगवत् गोपियों से अन्तर्द्धान होगये तो वे मतवारी विरह व बावरीरूप अनूप की होकर वन और कुञ्जन में सब द्रुम और लता गुल्म से पूछतीहुई ढूँढ़ने लगीं और रोना, आँसू बहाना, विनय प्रार्थना, गिड़गिड़ाना व स्तुति जो कुछ उपाय सूझपड़ा सब करीं पर भगवत् प्रकट न हुये नितान्त सब गोपियां भगवत् के किये भये चरित्रों को करने लगीं अर्थात् कोई गोपी तो श्रीकृष्णरूप बनी और कोई बालक और कोई गऊ और कोई बछड़ा और जिस प्रकार जन्मोत्सव से लेकर जो जो लीला भगवत् ने करी थीं सब करीं भगवत् प्रसन्न होकर प्रकट हुये तो सिद्धान्त यह बात होगई कि भगवत् अपने लीलानुकरण से ऐसे रीझते हैं कि आप प्रकट होआते हैं किन्तु रासलीला भगवत् ने आप आज्ञा देकर संसार में प्रकट करी कि यह वृत्तान्त नारायणभट्टजीकी कथा में लिखागया इससेभी निश्चय होताहै कि भगवत् को अपनी लीलानुकरण अपने निज चरित्रों के सदृश प्यारा है और प्रसिद्ध है कि शास्त्रों में मूर्ति की उपासना व पूजन के निमित्त आज्ञा है

और वह मूर्ति पाषाण, दारु व धातु इत्यादि की होती है और आदमी आप उनको बना लेते हैं और बहुत भाँति इत्यादि पर चिह्न खींचकर अथवा वेदी व पीठ बनाकर पूजा इत्यादि करते हैं और उसी के प्रभाव से अपने विश्वास के अनुरूप अपने वाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं अब विचार करना चाहिये कि यह लीलानुकरण मूर्ति पहले तो ब्राह्मण बालक होते हैं कि भगवत् व वेद के वचन से जन्मसेही भगवत्रूप हैं फिर उन्होंने अपना शृङ्गार भी भगवत् के सदृश बनाया तो जो कोई विश्वास करके उनका पूजन करेगा तो क्यों न अपने मनोरथ को पहुँचेगा वरु दूसरी मूर्ति से तो विलम्ब करके मनोरथ सिद्ध होता है और इन लीला मूर्तियों से तो शीघ्र हृदय की निर्मलता व भगवत् की प्राप्ति होजाती है इसहेतु कि अर्चा मूर्ति आदि से भगवत् की प्राप्ति तव होती है कि पहले तो उस मूर्ति में अच्छे प्रकार मन लगे कि दूसरी ओर न जाय दूसरे भगवच्चरित्रों का श्रवण कीर्तन व सत्संग होय सो दूसरे मूर्ति शिलाआदि में ऐसा मन बड़ी प्रीति से कम लगता है कि जिसको दृढ़ स्नेह कहते हैं सो घुणाक्षरन्याय और श्रवण व कीर्तन व सत्संग यह खोजने से मिलता है और लीलानुकरण मूर्तिपूजन सेवन से वह सव बात एक जगह एकसमय प्राप्त होजाती हैं क्या अर्थ कि प्रत्यक्ष सुन्दरताई और वस्त्रालंकार चमक दमक के कारण से प्रीति तो तुरन्त उत्पन्न होती है और भगवच्चरित्रों का कीर्तन, श्रवण और भगवद्भक्तों का सत्संग विना खोजे प्राप्त रहता है सिवाय इसके पूजन भगवत्मूर्ति का इस हेतु है कि उसके सहारे से मुख्य भगवत्मूर्ति के ध्यान में मन दृढ़ होजाय सो जब कि लीलानुकरण मूर्ति के अवलम्ब से मुख्य भगवत् की प्राप्ति होना बहुत शीघ्र निश्चय होय तो इस लीलानुकरण निष्ठा से और कौनसी मूर्ति व निष्ठा उत्तमतर है इस हेतु बहुत उचित और अतिप्रयोजन होनेवाली बात है कि भगवत् लीलानुकरण मूर्ति को निजमूर्ति भगवत् की जान करके मन विश्वासयुक्त करके पूजा करे विना संदेह अपने वाञ्छित अर्थ को पहुँच जायगा कलियुग के महापापात्मालोगों के उद्धार के हेतु भगवत् ने सब कुछ उपाय सहज से सहज बनाया कि तुरन्त बेड़ा पार होजावे पर हमारे लोगों की अभाग्यता को हज़ार धन्य है कि उन मूर्तियों को भगवत्रूप जानना और चरित्रों में चित्त लगाना तो एक ओर रहा ढिठाई व बेविश्वासी इसप्रकार अधिक है कि जिसका

वर्णन विस्तार का कारण है बरु वे कहें अच्छा विना संदेह ऐसे महापापी विश्वासहीन व ढीठ नरक में जापड़ेंगे और किसीप्रकार पापों से न छूटेंगे और जाने रहो कि मनुष्य को विश्वासही मुख्य साधन है जो अच्छा वि-श्वास हुआ तो उत्तम पद को गया जो अनिष्ट हुआ तो पाताल को पहुँच गया क्योंकि वेद शास्त्रों ने भगवत् को अच्छे व बुरे कर्मों के फल देने में कल्पवृक्ष के सदृश लिखा है इसहेतु एक दृष्टान्त कल्पवृक्ष का लिखना उचित हुआ कल्पवृक्ष का स्वभाव है कि वाञ्छित फल देता है एक पथिक संयोगवश कल्पवृक्ष के नीचे पहुँचा और मनोरथ किया कि ठंढी पवन चलती तो अच्छा था सो पवन ठंढी चलने लगी फिर शीतलजल से पूर्ण एक तड़ाग व एक हरे बाग़ की चाहना करी वह भी प्राप्त हो गया फिर दिव्यवस्त्र, आभूषण, सामग्री भोगविलास, रागरंग व सुन्दरी नायिकाओं की चाहना हुई वह भी सब प्राप्त हुये जब उन नायिकाओं के साथ सुख व विलास में लीन हुआ तो यह चिन्तना हुई कि ऐसा न हो कि इनका मालिक दण्ड देने लगे सो तुरन्त जूती पड़ने लगीं और शिर पिलपिला होगया इसीप्रकार भगवत् विश्वास के अनुसार सब फल देता है और गीताजी में भगवत् का वचन है कि निश्चय मनही मनुष्यों को बन्ध और मोक्ष का कारण है भगवत् का वचन है कि जो कोई जिस विश्वास से मन लगाता है वैसाही फल उसको मिलता है विश्वास ही मूल है यद्यपि कथा उन भक्तों की कि जो लीलानुकरण के प्रभाव करके परमपद को गये विस्तार करके लिखी जायँगी पर दो एक बात यहां भी लिखता हूँ मीरमाधवजी जो भगवद्भक्त विख्यात हैं उनकी भक्ति का आरम्भ व कारण लीलानुकरण से हुआ वृत्तान्त यह है कि अ-मीर कवीर थे व मज़हब महम्मदी रखतेथे राह चलते मथुरा वृन्दावन में पहुँचे अपने मुन्शी से कि भगवत् उपासक था बड़ाई रासलीला की सुनकर देखने की चाहहुई मुन्शी ने उनकी बड़ी प्रीति देखकर पूजा करना व मर्याद से बैठालना व बैठना यह सब ठहराकर रास करनेवालों को बुलाया और अमीर ने प्रेम व मर्याद से सब भगवच्चरित्रों को देखा मन और प्राण से चाह करनेवाले वास्तव स्वरूप श्रीनन्दनन्दन महा-राज के होगये और माल व रुपया सब भगवत् के आगे भेंट करादिया पीछे गृहबार संसार व्यवहार त्याग करके पीछे कपड़े पोशाक सबको त्याग करदिया श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण कहते श्रीवृन्दावन की कुञ्जन में निज

अपने प्राणप्यारे को ढूंढ़ते फिरने लगे अनुक्षण नाम जो भगवत् का मुख से निकलता था इस हेतु लोगों ने मीरमाधव नाम रखदिया और भगवद्भक्तों में गिना काव्यरचना उनकी में बालचरित्र भगवत् के बहुत हैं उसमें से एक कसीदे की पहली तुक फ़ारसी में है सो यह है ॥ ताके जे ख़ुदरानी सख़ुन श्रीकृष्णगो श्रीकृष्णगो । बुगज़ारकब्र व मावो मन श्रीकृष्णगो श्रीकृष्णगो ॥ अर्थ इसका यह है कि जबतक वचन बोलना तेरे आधीन है श्रीकृष्ण कहु श्रीकृष्ण कहु अभिमान व हम व हमारा यह सब छोड़ श्रीकृष्ण कहु श्रीकृष्ण कहु ॥ थोड़े दिनों में भगवत् का रूप उनके हृदय में प्रकट हुआ और सिद्ध होगये उस रूप अनूप के रस में मत्त रहनेलगे और श्रीमद्भागवत सुनने की इच्छा हुई पर किसी ने मन्दिर में जाने न दिया । भगवत् ने एक अपने भक्त गोसाईं को सुनाने की आज्ञा दी । उन्होंने बड़े आदर से कथा सुनाना आरम्भ किया एक बेर कथा कहते बहुत रात बीतगई और मीरमाधव मन्दिर में सो रहे । आधी रात को भूख लगी भगवत् ने विचार किया कि आज मीरमाधव हमारे पाहुन हैं बड़े शोचकी बात है कि भूखे रहें इस हेतु अपने निज भोगके थाल में लड्डू व जलेबी और लोटे में जल दश बारहवर्ष के लड़के के स्वरूप से लेकर आये और कहा कि गोसाईंजी ने भेजा है । मीरमाधवजी ने लेकर खालिया और सो रहे प्रभात को थाल सोने का व लोटा न पाया तो पुजारी खोजनेलगे मीरमाधवजी के पास पड़ा हुआ देखकर पुजारियों ने अज्ञान से अच्छा मारा फिर जो भगवत् मन्दिर में गये तो सब वस्त्र भगवत् के टुकड़े टुकड़े पाये और भगवत्मूर्तिकी भी चेष्टा अतिउदास व क्रोधयुक्त देखी तुरन्त गोसाईंजीके पास गये सब वृत्तान्त कहा । गोसाईंजी नङ्गेपायँ दौड़ आये और मीरमाधवजी के चरणों में शिर रख कर बहुत विनय व प्रार्थनाको किया जब मीरमाधवजी ने पुजारियों का अपराध क्षमा किया तब भगवत् भी प्रसन्न हुये शिक्षा हुई कि मेरे भक्त को मुझ से कम न समझा करें कथा के श्रोतालोगों को गोसाईंजी पर संदेह हुआ कि मुसलमान को अपने पास बैठाकर कथा सुनाते हैं । एक दिन गोसाईंजी ने परीक्षा के हेतु श्रोताओं से पूछा कि कल्ह कथा कहांतक हुई थी किसी ने कुछ न बतलाया मीरमाधवजी ने कथा के आरम्भ से अन्ततक सब श्लोक और अर्थ और जो अक्षर गोसाईंजी के मुख से निकले थे सुनादिये सब संदेह करनेवाले लज्जित हुये । एक बेर

किसी राजा ने अतर श्रीविहारीजी को भेजा। मीरमाधवजी ने हरकारे से लेकर धरतीपर डाल दिया सब मन्दिर के भीतर सुगन्ध. छायगई व विहारीजी का श्रीअङ्ग व वस्त्र अतर से तर होगया जैसे हरिदासजी का वृत्तान्त लिखा है वैसीही बात हुई दूसरी एक बात चन्दानामे डाकूकी यह है कि वह ठगी व डाकामारी किया करता था एक बड़े आदमी के यहां रास चरित्र होनेका समाचार पाया और यह भी सुना कि लाख रुपये का जेवर व असबाब रास होनेके समय इकट्ठा होगा पीठाठोंक पांचसौ आदमी हथियारबन्द के समेत आय पहुँचा और उसके आतेही राह में हलचल व शोर पड़ा देखनेवाले अपना अपना जीव लेकर भाग गये भगवन् स्वरूप जो रास में थे उन्हों ने उस बड़े आदमी से पूछा कि क्या शोर गुल है उसने वृत्तान्त डाकू के आनेका कहा भगवत्मूर्ति ने कहा कि क्या डर है आनेदेव इसी कहने सुनने में थे कि डाकू सीधा बेडर निर्भय सिंहासन के समीप आपहुँचा और चाहा था कि गहने व असबाब पर हाथ डाले आप भगवतूमूर्ति ने सिंहासन पर से उठकर और हाथ चन्दा का पकड़कर एक मुष्टिक मुँहपर मारी और कहा कि इतनी ढिठाई सो वयक्रम भगवतूस्वरूप का दश बारह वर्ष से अधिक न था पर वह पहलवान डाकू मुष्टिक की चोट से ऐसा लोटगया कि लँगोट की भी सुधि न रही और उसके साथी ज्ञान हाथ से खोकर पांव से माथेतक चित्र की पुतली होगये पीछे जब उस डाकू की मूर्च्छा जगी तो अपने हथियारों को भगवत् के आगे रखकर चरणकमल इस प्रीति व प्यार से पकड़ लिया कि फिर हृदय से न छोड़ा और सब त्यागकर भगवद्भक्त व परायण होगया। तीसरा और एक वृत्तान्त कि किसी बड़े आदमी ने यमुनाजी के किनारेपर रासलीला कराई। कालीकेनाथनेका जो चरित्र आरम्भ हुआ तो उसने लोगोंसे पूछा कि क्या भगवतूस्वरूप यमुना में कूदेंगे जो कमर कसते हैं यह बात भगवतूस्वरूप के भी कान में पड़ी और आप बोले कि हां और यह कहकर यमुनाजी में कूदपड़े और एक सांप ऐसे भारी को जो दश बीस आदमी से न उठसके पकड़लाये उस घड़ी उस बड़े आदमी ने भगवतूरूपी का प्रकाश व झलक ऐसा देखा कि आंखें चकाचौंध के औंधगईं और बेसुध होकर गिरपड़ा पीछे जब शरीर का ज्ञान हुआ तो कृष्णचरण का ध्यान हृदय में धरके सब त्याग दिया भगवत् परायण होगया। काशीजी में पाठकजी परमभक्त रघुनन्दन महाराज के

हुये भगवत् से साक्षात् दर्शनों की वाञ्छा की शिक्षा हुई कि रामलीलामें दशहरे के दिन भरतमिलापमें दर्शन होंगे और परीक्षा इसकी तव जानना कि जब कोई वस्तु हम आप तुमसे मांगें तो जिसदिन भरतमिलाप का दिन आया पाठकजी भी देखने गये थे मिलाप होने पीछे जिससमय भरतजी आंखों से आनन्द व प्रेम का जल बरसाते हुये श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणारविन्द पकड़रहे थे उससमय उस राममूर्तिने पाठकजी को बुलाया लोगों के ढूँढ़ने से आये भगवत्स्वरूपने आज्ञा की कि कुछ मिठाई प्रसाद के निमित्त और थोड़ा जल लावो। पाठकजीने तुरन्त प्राप्त किया भगवत् ने थोड़ा भोग लगाकर और जल पीकर पाठकजी को वह महाप्रसाद दिया और ऐसी झलक उस मनोहरमूर्ति की कि जैसी शास्त्रों में लिखी है पाठकजी ने देखी कि बेसुध होगये इसी प्रकार की कितनी कथा हैं कि विस्तार के भयसे नहीं लिखते और दो चारवेर रामलीला में कितने मनुष्य ऐसे देखने में आये कि अत्यन्त प्रेम करके अचेत व वेसुध होजाते थे और कितने मनुष्य ऐसे देखने में आये कि प्रेम से रासलीला में अत्यन्त बेसुध बुध होजाते थे और कितने ऐसे देखने में आये कि पहले केवल देखने के निमित्त सांझी बनाने रामलीला के हुये पीछे उसी प्रभाव से निन्दित पथ छोड़कर कुछ भगवत् की ओर सम्मुख होगये क्या अच्छी बात हो कि यह मेरा मन पापी अपने चञ्चल स्वभाव को छोड़कर इसी लीलानुकरण के अवलम्ब से भगवत् के सम्मुख हो और बड़ा आश्चर्य यह है कि संसार के सहस्रों प्रकार के दुःख प्रतिदिन देखता है पर कबहीं उनका भय करके भगवच्चरणों में नहीं लगता जो सुख और धन इत्यादिक आपसे आप प्राप्त होनेवाले हैं उनके हेतु सहस्रों प्रकार के उपाय और अधर्म व मिथ्या बोलना इत्यादि करता है और जो भगवत् कि करोड़ों जन्मोंतक नहीं मिलता उससे ऐसा असावधान व विमुख कि निर्मूल उसका चिन्तन भी नहीं करता। वाहरे मन तेरी बुद्धि व चतुराई अरे अभागे! अबभी चेत और उस समाज और शोभा को कि जो ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में कह आये हैं सदा चिन्तन किया करता कि यह जन्म मरण की अपार नदी सूखजाती और दुःख सुख संसार का छूटकर परम आनन्दरूप होजाता ॥

दो० नील सरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम ।
लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि कोटि शत काम ॥

कथा अलीभगवान् की ॥

अलीभगवान् पहले रघुनन्दनस्वामी में निष्ठा रखते थे पर वृन्दावन में आकर उनकी कुछ औरही गति होगई अर्थात् जब रास चरित्र में भगवत् का मनमोहनी स्वरूप देखा तो वह छविमाधुरी के प्रेम से अपनी इष्ट उपासना सब भूलगये और श्रीप्रिया प्रीतम के रूप अनूप में मग्न होके उसी ओर के होरहे विहारीजी का चरित्र और रासलीला के चिन्तन और पूजा में मन लग गया और वही स्वरूप हृदय में बसिगया उनके गुरु ने जो यह वृत्तान्त सुना तो वृन्दावन में आये अलीभगवान् किसी वन में चले गये और वहां गुरु के दर्शन हुये । दण्डवत् करके विनय किया कि महाराज ! मेरे गुरु और स्वामी आप हैं पर बरबस ब्रजनागरजी ने मेरे मन को अपनी ओर लगालिया है गुरुने जो दृढ़ प्रीति देखी तो प्रसन्न हुये और श्रीकृष्णस्वामी के चरित्रों और प्रेम का उपदेश करके चले आये । जाने रहो कि गुरु के आने का अभिप्राय यह था कि अलीभगवान् पहले तो श्रीरामउपासक था अब रासलीला को देखकर कृष्णउपासक होगया कल्ह को किसी और मत मतान्तरवाले के पास बैठेगा तो उसी ओर होजायगा इसमें किसी ओर का भी न होगा और दोनों लोक से जाता रहेगा काहेसे कि स्वरूप भक्ति का शास्त्रों में यह लिखा है कि मन की वृत्ति अचल एक ओर लगीरहे सो जब अलीभगवान् के मन को दृढ़ देखा तो प्रसन्न हुये ॥

कथा विपुलविट्ठल की ॥

विपुलविट्ठलजी स्वामी हरिदासजी के चेले निधिवन में भगवद्भक्त माधुर्य उपासक हुये जब स्वामी हरिदासजी भगवत् के परमपद को गये तो उनके चरणकमलों के वियोग से अत्यन्त शोकयुक्त रहा करते। एकबेर रासलीला में हरिभक्तों ने उनको भी बुलाया हरिभक्तों की आज्ञा उल्लङ्घन न करसके जब वहां गये और प्रिया प्रियतम के स्वरूप को देखा तो भगवत् का नृत्य और कीर्त्तन और भाव मन में समायगया और निज भगवत् स्वरूप में मग्न और तद्रूप होगये । स्वामी हरिदास जी के दर्शन उसी दशा में हुये और परम आनन्द द्विगुण हुआ फिर तो भगवत् के छविसमुद्र में ऐसी डुबकियां लगाईं कि फिर न निकल सके उसी रूप और भाव में मिलकर भगवत् के नित्य विहार में जामिले ॥

कथा रामराय की॥

रामराय राठौर बेटा राजा खेम्हाल के परमभक्त हुये। भगवद्भक्ति और भाव को ऐसा देश में प्रवृत्त किया सबको भक्ति सहज होगई जिस प्रकार शिवजी महाराज ने इस परमधर्म को संसार में फैलाया और आप आचरण किया इसी प्रकार रामरायजी हुये जो लोग भगवद्भक्ति से विमुख थे, उनका त्याग किया और जिनको योग्य उपदेश के जाना उनको उपदेश कराकर बड़ी पदवीपर किया। प्रताप राजा भरत के सदृश था कि जिनका बेटा लड़काई में व्याघ्र का कान पकड़ कर जङ्गल से लेआया था अर्थात् उस समय में और कोई राजा उनके दृष्टान्त के योग्य न था और किस प्रकार उनके भाव की बराबरी किसीसे होसके कि अपनी लड़की को गन्धर्वविवाहकी रीति से भगवत्मूर्ति के अर्पण कर दिया। वृत्तान्त यह है कि शरदपूनों अर्थात् जिस रात व्रजचन्द्र महाराज ने रासचरित्र किया था राजा ने समाज रासलीला का कराया भगवत् के स्वरूप, चरित्र, राग-रङ्ग और नृत्य को देखकर प्रेम में विह्वल होगये। एक ब्राह्मण जो मन्त्री था उससे पूछा कि भगवत्को क्या वस्तु भेंट करनी चाहिये? ब्राह्मण ने कहा जो वस्तु आपको प्यारी हो राजा चुप होगया विचार करके बोला म्हांको म्हांकी डावरी प्यारी छे अर्थात् हमको अपनी लड़की प्यारी है यह कहकर महलमें गये और लड़की को शृङ्गार आभूषण आदि से शृङ्गार करके लेआये और गान्धर्वी रीतिसे भेंट किया। पीछे धन व असबाब इतना दिया कि जीवन पर्यन्त सैकड़ों वर्ष वह लड़की को दुःख न होय नेवछावर करके भक्तिभाव का अन्त इस संसार में सूर्य के सदृश प्रकाशित करदिया॥

कथा खड्गसेन की॥

खड्गसेनजी जाति कायस्थ रहनेवाले ग्वालियर भगवद्भक्त रासनिष्ठ और प्रेमी हुये। पदरचना बहुत ललित करते थे व्रजगोपिका व व्रजग्वालों के मा बाप का नाम ग्रन्थ से ढूंढ़ ढूंढ़कर एक ग्रन्थ बनाया और दानलीला और दीपमालिका का चरित्र ऐसा ललित बनाया कि जिसके पढ़ने सुनने से भगवत् में निश्चय करके प्रीति होजाती। सम्पूर्ण अवस्था को श्रीव्रजचन्द्र महाराज के और उनके सखा सखियों के चरित्रों में व्यतीत किया और श्रीनन्दनन्दन स्वामी के चरणकमलों में ऐसी प्रीति और लगन थी कि सिवाय उनके चरित्रों के और कोई बात नहीं रुचती थी

और रासलीला और दूसरे चरित्रों का समाज उत्साह सदा रहा करता था पर शरदपूनों को यह प्रण दृढ़ था कि बहुत द्रव्य लगा करके रास-लीला कराया करते थे। एकवेर प्रिया प्रियतम के रासविलास की दशा में हँसी और खेल व राग नृत्य और परस्पर देखना व मुसक्याना व सकुचाना और श्रीलाड़िलीजी का मान और आप श्रीलालजी का मनाना देखकर ऐसे वेसुध व तदाकार होगये कि देह को उस रासलीलाके प्रिया प्रियतम के नेवछावर करके प्राण मुख्य रसरास और नित्यविहार में प्राप्त किये और प्रेमकी दशा और रासनिष्ठाकी महिमा कि उसके प्रभाव करके नित्य रासविलास और भगवत्स्वरूप प्राप्त होता है लोक में प्रकट करके भगवद्भक्ति और भाव को शिक्षा किया॥

कथा वल्लभ की॥

वल्लभजी चेले नारायणभट्टजी के ऐसे भक्त और प्रेमी हुये कि जिन्होंने उस व्रजवल्लभ महाराज परमानन्दघन को जो आनन्द का भी आनन्द और सुखका भी सुख है रासचरित्र में नृत्य और कीर्तन से और अपनी आँखों के हावभाव और मन्द मुसक्यान से आनन्द और सुख दिया अर्थात् रासचरित्र में कवहीं ललिता और कवहीं विशाखा का रूप वना करते और ऐसे प्रेम और प्रीति से भगवत् को रिझाया करते कि तद्रूप ललिता व विशाखा के होजाते वृन्दावन वास करके अपने भक्तिभाव और उदारता व प्रभाव से लोगों का उद्धार किया और भगवत् के महो-त्साह करके लोगों को परमआनन्द दिया॥

कथा नाथभट्ट की॥

नाथभट्टजी फणी अर्थात् शेषजीके वंशमें परमभक्त हुये। फणीवंशका यह अर्थ है कि वलदेवजी महाराज शेष का अवतार हुये और वलदेवजी का अवतार नित्यानन्दजी सो नित्यानन्दजी के वंश में जो होय उसको फणीवंश अर्थात् शेषजी का वंश कहना योग्यहै सो नित्यानन्दजीके चेले सनातनजी और सनातनजी के कृष्णदास, कृष्णदासजी के नारायणभट्ट और नारायणभट्टके चेले व पुत्र गोपालभट्ट और गोपालभट्ट के पुत्र नाथभट्ट जो हुये ऊंचे गावँ में रहते थे। तन्त्रशास्त्र व वेद पुराण और सव शास्त्रों को विचारकर उनका जो सार व अभिप्राय भगवद्भक्ति और प्रेम है उसको अपने मनमें दृढ़ स्थित किया। रूप और सनातन व जीवगोसाईं व नारायणभट्ट ने जो कुछ अपनी काव्यरचना में भगवत्

का माधुर्य व शृङ्गाररस वर्णन किया है उसको अपना सर्वस्व जानकर उसके अनुसार आचरण किया और शृङ्गार व माधुर्य भाव के स्वरूप हुये। रसिकविहारी महाराज की रासलीला आनन्द व विश्वास से बनाते और रासनिष्ठा में परम प्रेम और निश्चय था विमल हृदय व प्रिय वचन बोलने में एकही थे व रास उपासना के भक्तों में मुख्य अर्थात् राजा हुये और जानेरहो कि रासनिष्ठा नाथजी के घराने में प्राचीन इस काल पर्यन्त संग्रहीत बनी है॥

दशवीं निष्ठा॥

दया व अहिंसा के वर्णन में कथा छः भक्तों की है॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमल के स्वस्तिक अर्थात् साथिये की रेखा को दण्डवत् करके धन्वन्तरि अवतार को दण्डवत् करता हूं कि जगत् के उद्धार के हेतु समुद्र में अवतार धारण करके फिर इस संसार में प्रकट हुये दया भगवत् का स्वरूप है। महाभारत में लिखा है कि सब धर्मों में दया परमधर्म है जबतक दया नहीं तबतक कोई धर्म नहीं गिनेजाते हैं। भागवत व स्कन्दपुराण में दया के गुण वर्णन करके अन्त में कहा है कि जिसको दया है उसने सब धर्म करलिये नारदजी से भगवत् ने सब धर्म वैष्णवों के वर्णन करके कहा है कि दया व भजन व साधुसेवा सब धर्मों में मुख्यतर है और उनमें भी दया का स्वरूप यह है कि दूसरे किसी जीव के दुःख देखकर हृदय द्रवीभूत और दुःखित होना और वह दुःख व द्रव्य विना कारण व सम्बन्धके हो और जबतक उसका दुःख दूर न होलेवै तब तक द्विगुण दुःख उस दयावान्को रहे उस दया के दो प्रकारहैं एक संसारी दुःख देखकर किसीका अपनेको दुःख व दया होना और उसके दूर करने का उपाय मन, कर्म व वचनसे करना और क्रोधको न आना व मधुरवचन बोलना और किसी को दुःख न देना और उदारता व दातव्य और किसी का न्यून शोचना, धरती को देखते चलना इसीप्रकार और दूसरे कार्य सब कि जिससे किसी को दुःख न होय अथवा किसी का दुःख दूर होता होय यह सब अङ्ग दया के हैं। दूसरा पारमार्थिक दया अर्थात् पारलौकिक दुःख देखकर दया होना और वह यह है कि अनादिकाल से जो जीव जन्म मृत्यु नरकादि अनेक भांति के दुःख व यातना में फँसा है उन दुःखों को देखकर दया होना और जिसप्रकार से होसके भगवत् के सम्मुख उस जीव को करके जन्म मरण के दुःखों से छुड़ाकर कृतार्थ

करदेना सोई दोनों प्रकार में पहिला प्रकार तो साधक को होता है और सिद्ध और भगवद्भक्तों और विरक्तों को दोनों प्रकार का शास्त्रों में महिमा दान व कृपा आदि एक अंग दया के इसभाँति लिखे हैं कि उनमें से किसी एक पर दृढ़ होजाय तो उसके सहारे से भगवत् मिल जाता है। जो कोई दया पर दृढ़ है उसकी महिमा किससे वर्णन होसक्ती है एक साहूकार कालके फेर करके दरिद्री होगया चार यज्ञ उसने किये थे किसी ऋषीश्वर के उपदेश से एक यज्ञ के फल लेने को धर्मराज के पास चला एक काल के भोजन की सामग्री पासथी उसकी रसोई बनाकर जब खाने को बैठा तब एक कुतिया उसी घड़ी की जनीहुई भूख से बिकल आई साहूकार को दया उत्पन्न हुई चौथाई भोजन उसको देदिया पर भूख न गई तब दूसरी चौथाई दी फिर भी वही दशा रही फिर चार बेरमें सब भोजन देदिया और पानी पिला दिया संतुष्ट होकर चली गई और साहूकार भूखा प्यासा धर्मराज के पास पहुँचा । हिसाब के समय धर्मराज ने कहा कि पांचयज्ञ में एक यज्ञ अक्षय है जिसका कबहीं नाश न हो तू किस का फल चाहता है साहूकार ने चकित होकर विनय किया कि महाराज! मैंने चार यज्ञ किये हैं पांचवां यज्ञ कौनसा है? धर्मराज ने कहा कि पांचवां यज्ञ अक्षय वह है कि तूने कुतिया पर दया करके अपना सब भोजन देदिया अभिप्राय यह है कि थोड़ीसी दया यज्ञ के फल को देती है कोई का सिद्धान्त यह है कि जो दया होगी तो जीवघात करने से आपसे आप किनारा करेगा और कोई यह कहते हैं कि दया अहिंसा का एक अङ्ग है और गीताजी में भगवत् ने अहिंसाधर्म अलग गिना और दया अलग सो इनके विरोध का निर्णय व वाद लिखना सब व्यर्थ है शास्त्र में जो दया व अहिंसा के अङ्ग सब सुनने में आये तो बराबर हैं इसहेतु दोनों को वट व वटबीज न्याय समझलेना चाहिये सो यह अहिंसा धर्म वह है कि जिसके वर्णन में शास्त्रों ने यह कहा है कि अहिंसा सब धर्मोंका नायक है सोरह अध्याय भगवद्गीता में भगवत् ने सब धर्मों से प्रथम अहिंसा को वर्णन किया और इसी प्रकार दशवें अध्याय में पतञ्जलि महाराज ऋषीश्वर ने जहां आठसिद्धि वर्णन कीं तहां सबसे प्रथम अहिंसा सिद्धि लिखी है इस कारण से कि जो अहिंसासिद्धि सिद्ध होजावे तो अन्य सिद्धि आप से आप प्राप्त होजावें किस कारण से कि जब अहिंसासिद्धि की ओर मन दृढ़ हुआ तो सब जीव भगवत्रूप विचार में आवेंगे और जब

भगवत्को सब जगह प्राप्त देखा तो भगवत् मिलगया और जब भगवत् मिला तो सब कुछ मिलगया जानेरहो कि अहिंसा आदि आठ सिद्धि पतञ्जलि में भगवत् की प्राप्ति होने के हेतु हैं और अणिमादिक आठ सिद्धि संसार के अर्थ उन से अलग ठग व डाकू भगवत्प्राप्ति की राह के हैं अरे मन ! विचार करकि यह समय फिर हाथ नहीं आवेगा सो अब भी श्रीकृष्णस्वामी के चरण में न लगा तो फिर कहीं ठिकाना नहीं और विचारकर कि हिरण्यकशिपु व रावण व सहस्रबाहु आदिक सेकड़ों ऐसे २ होगये कि जिन्होंने यमराज कोभी अपने वश में करलिया था जब कि वे सब मृत्यु से न बचे तो तेरी क्या गिनती है जिनके साथ तू प्रीति करके अपना जानता है वे केवल इस शरीर और अपने सुख के साथी हैं संसारसमुद्र के उतारने में कोई तेरा सहाय करनेवाला नहीं फिर तू उनके हेतु क्यों अपने परलोक का नाश करता है अब अपनी हानि लाभ को समझ और इस समाजके चिन्तनमें रहाकर कि दोनों लोक तेरे बनें । जिस समय जनकपुरवासियोंके करोड़ों जन्मोंके जप, तप, पुण्य के फल उदय भये और राजा जनक के ज्ञान वैराग्य के वृक्ष फले अर्थात् श्रीरघुनन्दन स्वामी शोभाधाम ने उन लाखों राजों की सभा में कि जो सुमेरु व कैलासको राई के दाने के सदृश उठासक्ते थे और उस राजमण्डप में कि जिसके द्वार व दीवार सब स्वर्णमय भाँति २ के जवाहिरातसे जड़े थे और चँदोवा जरीका कि जिसमें झालरें मोतियों की लगीथीं छाईथीं शिवजी का धन्वा तृण के सदृश तोड़ कर डालदिया और धरती आकाश से फूलों की वर्षा व जयजयकार व नेवछावर व बधाव बजना आरम्भ हुआ उस समय जनकनन्दिनी अखिल ब्रह्माण्डेश्वरी जयमाला पहिराने को चलीं शोभा जगज्जननी की यह मतिमन्द तो क्या लिखसक्ता है इस ध्यान में शारदा गूंगी और शेषजी विना जीभ हैं सखियों के समाज में कि वह सब शोभा व छविकी मूर्तिथीं धीरे धीरे बड़े उत्साह और उमँग से मन परमानन्द से भराहुआ गुरुजनलोगों की लज्जासे लजाती हुईं शोभाधाम महाराज के सम्मुख पहुँचीं और कहने से सखी सहेलियों के दोनों हस्तकमल उठाकर जयमाला दशरथनन्दन महाराज के गले में पहिराई जिस समय दोनों का मुख चन्द्रमा एक से एक बराबर हुआ सब ओर से मन एकाग्र होकर परस्पर रूप अनूप देखने में नयन एक से एक का मिलकर रहगये उस समय का समाज और सामां देखकर देवता आदि तो अपने २ स्थान

पर भीत के चित्र से होगये औ जनक आदि को महाआनन्द व प्रेम से बे-सुधिता होगई दशरथनन्दन के श्यामसुन्दर कपोलोंपर कुण्डल के मो-तियों की झलक ऐसी छवि देती थी कि बरबस मन हाथ से जाताथा और ऐसाही भाल पर केशर व गोरोचन का तिलक विराजमान शिरपर जवा-हिरात जड़ा किरीटमुकुट आँखें अरसीली व रसीली की चञ्चल चित-वन गले में कण्ठी व फूलों की माला बागा धानी जरी का शोभायमान कमर कसेहुये हैकल जड़ाऊ दोनों ओर पड़ेहुये एक ओर तरकस शोभित है और दूसरी ओर कमान व जनकदुलारी के दोनों हाथ माला लिये कांधे पर आये हुये और मन्द मुसक्यान दोनों सम्मुख परस्पर विराजमान ॥

कथा शिविकी ॥

राजाशिवि की कथा पुराणों में और विशेष करके महाभारत में लिखी है कि दया, दान व शरण देनेवाले और धर्मात्मा हुये अश्वमेधादिक बहुत यज्ञ करके ब्राह्मणों को हरएक प्रकार के दान दिये । भगवत् प्रेरणा करके राजाइन्द्र को दया व शरणागतवत्सलता की परीक्षा की चाहना हुई । अग्नि देवता को कबूतर बनाकर आप बाजका रूप धरके आया । कबूतर ने बाज की भयसे कांपता राजा के दामन में शरण ली व बाज से व राजा से बड़ा वाद हुआ बाज कहे कि हमारा आहार छीनते हो राजा कहे कि शरणमें आये को न रक्षा करना अधर्म है नितान्त अपने शरीर के मांस देनेपर बाज मान रहा जब मांस पलरेपर काटके धरा तो कबूतर का पलरा धरती न छोड़े मांस काटकाट धरते धरते नहीं बराबर हुआ तब राजा शिर काटकर धरने लगा तब दोनों देवता प्रकट हुये वरदान देकर स्तुति की व शरीर जैसा था वैसा करके चले गये । भगवद्भक्त भी भगवत्रूपहैं जो कुछ करें आश्चर्य नहीं ॥

कथा राजा मयूरध्वज की ॥

राजा मयूरध्वज और उनकी धर्मपत्नी और ताम्रध्वज उनका पुत्र ऐसे परमभक्त दयावान् हुये कि भगवत् ने घर बैठे दर्शन दिया और परीक्षा से दृढ़ देखा । वृत्तान्त यह है कि जब राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया और अर्जुन को रक्षाके निमित्त साथ करके घोड़ा यज्ञ का छोड़ा तो उसी समय राजा मयूरध्वजने भी यज्ञ आरम्भ कियाथा व ताम्रध्वज घोड़े के साथ था राहमें दोनों का भटभेरा हुआ । ताम्रध्वज ने उस अर्जुन को कि जिसने महाभारत में विजय को पाया था और उन श्रीकृष्ण महाराज को कि शुद्ध सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म हैं और जिनके नाम की कृपा से जय

का नाम भी जय है जीत के घोड़ेको बल से छीनलिया। भक्तानुकूल महाराज ने देखा कि यहां दोनों भक्त हैं एक को जय दीजाय तो दूसरे की अभिलाषा भङ्ग होगी इसहेतु परीक्षा के निमित्त आप वृद्ध ब्राह्मण बनि और अर्जुन को लड़के का रूप बनाकर राजा मयूरध्वज के द्वारपर गये। राजा यज्ञशाला में था दण्डवत् करके आदर व विनयपूर्वक पूछा कि आगमन का हेतु क्या है? ब्राह्मण ने कहा कि जङ्गल में एक व्याघ्र है उसने इस बालक के खाने की इच्छा की बहुत मैंने कहा कि इसके बदले हमको खाले पर उसने न माना कहा कि तू बूढ़ा है तेरा मांस मेरे काम का नहीं नितान्त बड़ी प्रार्थना व रोदन करने से यह ठहरा कि जो राजा का आधा शरीर ला दे तो इस बालक को छोड़देवेंगे इस हेतु तुम्हारे पास आयाहूं जो बनसके तो इस बालक की रक्षा करो। राजा को बड़ी दया आई और कहा कि निश्चय यह शरीर एकदिन जानेवाला है ऐसे काम में आवे तो इससे अच्छा क्या है। ब्राह्मण ने कहा कि एक वचन व्याघ्र का यह भी है कि जिस आरेसे राजा का शरीर चीरा जाय वह आरा एक ओर राजा के बड़े बेटेके हाथ में होय और दूसरी ओर राजा की स्त्री के हाथ में होय और किसी प्रकार का किसी को शोक व दुःख न हो। राजाने इस बात को भी अङ्गीकार किया। ताम्रध्वज ने ब्राह्मण से कहा कि शास्त्र के मत से बेटाभी बाप का रूप है जो मेरा आधा शरीर लियाजाय तो अच्छी बात है। ब्राह्मण ने कहा कि तू राजा नहीं फिर राजा की स्त्री ने कहा कि मैं भी राजा की अर्द्धाङ्गी हूं जो राजा के आधे शरीरके बदले मुझको लेजावे तो व्याघ्र की और अधिक सन्तुष्टता होय। ब्राह्मण ने कहा कि तू स्त्री है राजा नहीं फिर तो ब्राह्मण ने ताम्रध्वज को राजा के साम्हने इस कारण कि परस्पर देखकर मोह उत्पन्न होजाय व पीठ पीछे स्त्री को खड़ा किया और दोनों आरा राजा के शिरपर रखकर खींचने लगे जब आरा राजा की नाकतक पहुँचा तो बामनेत्र से राजा के पानी निकला। ब्राह्मण ने कहा बस यह शरीर मेरे कार्य के योग्य नहीं कि राजा दुःखित होकर देता है राजा ने विनय किया कि महाराज! कृपा करो क्रोध न करिये जिस ओर की आंख से पानी निकला है उस ओर के शरीर को यह दुःख है कि मैं बड़ापापी हूं कि किसी काम में न आया दाहिना अङ्ग बड़ा बड़भागी है कि ब्राह्मण के काम आया। भगवत् करुणासिन्धु इस वचन के सुनते ही भक्ति और विश्वास से अत्यन्त प्रसन्न हुये कि प्रेम में विह्वल हो गये और

राजा को ओरेके नीचे से उठाकर छाती से लगालिया और निज रूप से राजा को दर्शन दिया । भगवत् के स्पर्श होतेही राजा के शिर का घाव अच्छा होगया और भगवत् ने कहा कि तुम्हारी धर्मनिष्ठा से बहुत प्रसन्न हूं जो चाहना हो सो कहो पूर्ण करूंगा । राजा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि हे करुणासिन्धु, महाराज ! आपने अनुग्रह किया तो और कौन पदार्थ अब रहगया जो मांगूं केवल. चरणकमलों की प्रीति चाहताहूं और एक प्रार्थना यह है कि कलिकाल आगे पर आनेवाला है सो अब ऐसी परीक्षाओं से भक्त बचे रहें । भगवत् ने अङ्गीकार किया और फिर अर्जुन और राजा का भेंट मिलाप कराकर मेल करादिया राजा ने बहुत हर्ष से घोड़ा फेरादिया । इस चरित्र से भगवत् को कुछ अर्जुन का गर्व दूर करना प्रयोजन था सो भी होगया ॥

कथा भवन की ॥

भवन राजपूत चौहान के रानासरकार में दोलाख रुपया के उत्तम पदवीवाले राजसेवक और भगवद्भक्त दयावान् और साधुसेवी हुये । एक बेर राना के साथ शिकार में एक हरिणी के पीछे घोड़ा डाला और उसको तलवार से मारा वह गर्भ से थी बच्चे सहित दो टुकड़े होगई भवन को बड़ी दया और लज्जा हुई मनसे कहने लगे कि प्रकट में तो मैं ऐसा कि भगवद्भक्तों में गिना जाताहूं और आचरण यह कि जो भगवद्विमुख भी न करे उसी समय प्रण किया कि लोहे की तलवार रखनी प्रयोजन नहीं सो एक तलवार काठकी और मूठ उसकी लोहे की बनवाली । जब कबहीं राना के दरबार में जाते उसी तलवार को साथ लेजाते । एक पट्टीदार भाई को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ राना से कहदिया । राना को विश्वास न आया उसने सौगन्द खाकर कहा तब भी राना ने इसके निर्णय करने में एक वर्ष बिताया जब उस चुगुलीखोर ने यह हठ किया कि जो झूठ ठहरे तो मुझको वधका दण्ड दियाजाय तब एक जगह सभा की और सब उत्तम राजसेवक इकट्ठे हुये । पहिले राना ने अपनी तलवार निकाल कर लोगों को दिखलाया फिर बारी के साथ सबकी तलवार देखी जब बारी भवन महाराज की पहुँची तब तलवार निकालकर यह कहा चाहते थे कि जो चाहो सो करो तलवार मेरी दारु अर्थात् काठकी है पर भगवत् इच्छा से यह वचन मुखसे निकला कि सार अर्थात् पोलाद की है यह कहकर तलवार को मियान से खींचा और ऐसी निकली कि मानों हजार

बिजली एक बेर बादलसे निकली उजेरी व तड़प से सबकी आंखें बन्द होगईं । राना ने कहा कि मारो चुगुल अभागे के शिरपर और यह कह कर उसके वध की इच्छा की भवन ने विनय किया कि इसने कुछ मिथ्या नहीं कहाहै भगवत् की इच्छासे यह तलवार पोलाद की होगई है नहीं तो वास्तव करके लकड़ी की थी । राना को भक्ति का विश्वास हुआ और चाकरी के परिश्रम से छुट्टी करके पट्टा जागीर का सदाकाल का लिख दिया और बिनती की कि जो दर्शन देनेको आया करो तो मेरा निस्तारहै जाने रहो कुछ आश्चर्य नहीं जो काठकी तलवार को भगवत् ने पोलादी करदी किस हेतु कि भगवद्भक्तों की इच्छा व वचन तलवार से अधिक है कि पापियों के पापकी सेना को वध करके दृढ़ राजभक्ति देश को कृपा करके देदेते हैं जो उनके मुखसे एक लकड़ी के निमित्त वचन पोलाद निकलगया और उसी प्रकार वह होगया तो क्या आश्चर्य है ॥

कथा रांका की ॥

ये रांका परमभक्त भगवत् के जाति के कुम्हार हुये जो कुछ अपनी जातिवृत्ति से उत्पन्न करते सो सब हरिभक्तों की सेवा में लगादेते । एकबेर कच्चे बर्तनोंका आँवां बनाकर तैयार किया और किसी कारण से दिन में आग न डाली रात के समय एक बिलाई ने बच्चे दिये और एक कच्चे बर्तन में रखकर चलीगई । रांकाजी को यह बात मालूम न हुई प्रभात को आग लगादी जब आग ने अच्छा प्रकाश व बल किया तब यह बात जानी विकल होकर बच्चोंके निकालनेके उपाय में लगे पर कुछ न होसका अधिक दुःख व शोक हुआ । उस रोदन करने के समय सिवाय एक भगवत् के और कोई रक्षा करनेवाला न सूझा । जाने रहो कि जो रांकाजी का सब घर जल जाता अथवा उनके प्राणों को संकट कोई आता तो भगवत् से कबहीं न कुछ कहते किसहेतु कि जब भगवद्भक्त अपने स्वामी से मुक्तितक की याचना नहीं करते दूसरी बातें तुच्छकी कब चाहना करते हैं और बिना मांगे जांचे उनकी इच्छा सब पूर्ण होजाती है । भगवत् से मांगने का प्रयोजन नहीं । इस लिखने का प्रयोजन यह है कि भगवद्भक्तों की दया और करुणा पर दृष्टि करना चाहिये कि एक तुच्छ जीव का दुःख नहीं सहसक्के और विकलताई की अवस्था में जो काम कबहीं न किया सो भी कर बैठते हैं जब भगवत् ने विकलदशा अपने भक्त की देखी तो यह चरित्र किया कि सब आँवां पकगया पर वह बर्तन जिसमें बच्चे थे कच्चा रखदिया । अग्नि

की उष्णताभी न पहुँची । रांकाजी उन बच्चों को कुशल देखकर तनुमें न समाये और भगवत् को अतिप्रेम से दण्डवत् प्रणाम किया तब से कुम्हारों में यह रीति है कि जब आँवां तैयार हो उसी दिन आग लगा देते हैं ॥

कथा केवलराम की ॥

केवलरामजी ऐसे परमभक्त और भागवतधर्म के प्रवृत्त करनेवाले हुये कि जिन लोगों ने कहीं भक्ति और भगवत् और गुरु और भक्तों के नाम को भी नहीं जाना था ऐसे लोगों को पवित्र करके भगवत् में लगा दिया । दुःख, सुख, मित्र, शत्रु से अलग और तिलकमाला, नवधाभक्ति के वशीभूत बड़े दृढ़थे भगवत् के चरणों में प्रीति और भक्ति निष्काम हुई और लोगों पर दया और कृपा विना कारण सबके घरपर जाकर किया करतेथे कि श्रीकृष्णस्वामी की सेवा और नाम में मन लगाओ यह दान हमको देव और भागवतधर्म उनको समझाया करते जहां कहीं दश बीस साधु देखते उनको शालग्रामजी और भगवन्मूर्ति अपने पास से देकर पूजा और सेवाकी रीति उपदेश किया करते । एकबेर बनजारे ने अपने बैलपर कोड़ा मारा स्वामीजी बेसुध व विकल होकर धरती पर गिरपड़े लोगों ने दौड़कर उठाया जो शरीर पर निगाह किया तो साठ कोड़े की मार का उपड़ा हुआ साफ़ दिखाई पड़ा सबको आश्चर्य हुआ कि यह रीति दया की जाने किसी ने सुनी होगी ॥

कथा हरिव्यास की ।

हरिव्यासजी ऐसे भगवद्भक्त हुये कि देवताओंको अपना चेला करके भगवत् का भक्त करदिया भगवद्भक्तों से ऐसी प्रीति थी कि कबहीं उनसे अलग नहीं होते और जिस प्रकार राजा जनक ऋषीश्वरों के सत्संग और जमावड़ी में रहा करते थे इसी प्रकार हरिव्यासजी रहा करते साधुओं की सेवा करनेवाले ऐसे हुये कि संसार में कदाचित् कोई हुआ हो सिवाय भगवत् और भक्तों के चरित्र से दूसरी ओर मन नहीं देते । एकबेर चरथावलग्राम में हरा बाग़ देखके टिके और इच्छा थी कि भगवत् की सेवा पूजा करके भगवत्प्रसाद बनावेंगे । उसी बाग़ में एक दुर्गा का मन्दिर था किसी ने वहां बकरा मारा । हरिव्यासजी को दयालुता करके कि स्वभाव हरिभक्तों का है बहुत करुणा आई और मनको व्यथा हुई । भूखे प्यासे भजन करते रहे दुर्गा महारानी भगवद्भक्तों के दुःख को न सहसकीं साक्षात् होकर हरिव्यासजी से कहा कि भगवत्प्रसाद करें

हरिव्यासजी ने उत्तर दिया कि जहां ऐसा अन्याय होता है तहां रसोई किस प्रकार होसक्ती है । दुर्गा ने कहा कि मेरे ऊपर कृपा करके अपराध क्षमा करो और भगवन्मन्त्र उपदेश करके इस नगर को पवित्र करदेव । हरिव्यासजी ने देखा कि दुर्गा के चेले होने से सबलोग दुरुस्त होते हैं इसहेतु भगवन्मन्त्र का उपदेश किया । जब दुर्गा वैष्णव हुई तब नगरको वैष्णव करना उचित जाना जो सरदार था उसको रात के समय पलँग में डाल दिया और कहा कि जो अपना भला चाहता है तो हरिव्यासजी का सेवक होकर भगवद्भक्ति अङ्गीकार कर नहीं तो सब नगर को नाश करदेऊंगी । तुरन्त सबलोग आये चेले होकर भगवद्भक्त होगये और जो अपराध किये थे सबसे छुट्टी पाई । हरिव्यासजी कुछ दिन वहां रहे ऐसा उपदेश किया कि भङ्गीतक हरिभक्त होगये ॥

ग्यारहवीं निष्ठा ॥

व्रत व उपवास के वर्णन में जिसमें कथा दो भक्तों की है ॥

अमृत कुलिशरेखा श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों को दण्डवत् करके नृसिंह अवतार को प्रणाम करताहूं कि अपने परमभक्त प्रह्लाद के निमित्त मुल्ताननगर में नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु को परमधाम दिया उपासक भगवत्प्राप्ति के निमित्त उपाय दृढ़ है कि सब कोई विना अन्य परिश्रम भगवत् को पहुँच सक्ताहै दिखाना श्लोक श्रुति व पुराणोंका कुछ प्रयोजन नहीं कि एकादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी आदि के माहात्म्य की पोथियां और अन्य व्रतों की विख्याति व सब कोई जानते हैं निश्चय निर्णय व्रत एकादशी का दशमी के ऊपर है इस कारण से कि दशमीविद्धा व्रत सब स्मृति व पुराणों में वर्जित लिखा है और कारण वर्जने का यह है कि दशमी के दिन दैत्योंने जन्म लिया जो दशमीविद्धा व्रत हो तो दैत्य और राक्षसों की वृद्धि होकर धर्म का नाश होजाय और एकादशी के दिन देवता उत्पन्न हुये इसहेतु एकादशी व्रत से देवता प्रसन्न होते हैं और भगवत् प्रसन्न होकर व्रत करनेवाले के हृदय में प्रकाशित होते हैं । वेध मेल को कहते हैं अर्थात् पहले दिन आरम्भ में दशमी हो फिर एकादशी सो वेध के निर्णय में कई विरोध हुये स्कन्दपुराण में चालीस घड़ी का वेध लिखा है अर्थात् जिसके आरम्भ में चालीस घड़ी दशमी होय तो उसके प्रभात व्रत करना चाहिये जो चालीस घड़ी से अधिक दशमी होय तो दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी को

व्रत होगा सो इस वचन पर निश्चय कालीकण्ठीवाले रखते हैं। जाने रहो कि कालीकण्ठीवाले बहूजी के चेले कहलाते हैं मत उनका वैष्णवी है दुआबे यमुना व गङ्गा के सिवाय दूसरे देश में इस पन्थवाले नहीं हैं मौजे रनदेवा सहारनपूर के इलाक़े में उनका गुरुद्वारा है आचार्य इस पन्थ का योग्य व सिद्ध था रीति उपासना की उचित व अङ्गीकार योग्य है व शास्त्राज्ञा के अनुसार है पर इस समय इस पन्थ में कोई पण्डित योग्य व सिद्ध और जाननेवाला भेद उस उपासना का नहीं इस कारण से प्रकाश कम है बरु बहुत घराने से न जानने के कारण वह उपासना त्याज्य होगई है अब स्कन्दपुराण में बीसप्रकार का निर्णय इस व्रत में आधा अर्थात् जो किसी ने इकतालीस घड़ी दशमी को उचित जाना तो वह एक प्रकार ठहरी और इसी भाँति जिसने पैंतालीस घड़ी को सिद्धान्त किया तो यह दूसरी प्रकार हुई इसी क्रम से साठघड़ी तक बीसप्रकार की होगई और नाम हरएकके व्याली व महाव्याली व भया व महाभया इत्यादि लिखे हैं सो सिवाय कालीकण्ठीवालों के और कोई उस पन्थका प्रवर्त्तक नहीं इसहेतु विस्तार व वर्णन करना प्रयोजन नहीं समझा और चारों संप्रदायके वेध का निर्णय यह है कि निम्बार्क संप्रदायवालों ने श्रुति व स्मृति की आज्ञा के अनुसार पैंतालीस घड़ी के वेध को अङ्गीकार किया अर्थात् प्रारम्भ अगिले दिन का पिछली अर्द्ध रात्रि से है जो आधीरात के उपरान्त दशमी होय तो अगिले दिन व्रत करना न चाहिये क्योंकि दशमी का वेध होगया और इस रीति को कापालिक वेध कहते हैं विशेष करके सिद्धान्त जाननेवालों को उपासना का यह निश्चय है कि ग्रीष्मऋतु में सैंतालीस घड़ी पर आधीरात होती है और हेमन्तऋतु में तेंतालीस घड़ीपर सो जिस तिथि में जितनी रात गत होनेपर आधीरात हो उसको मुख्य जानना चाहिये पैंतालीस घड़ी के प्रवन्ध का प्रयोजन नहीं पर सामान्य विख्यात पैंतालीस घड़ी के वेध की है और रामानुज संप्रदाय में स्मृति व पुराणकी आज्ञा के अनुसार पचपन घड़ी तिथि आजके बीतनेपर अगिले दिन को ग्रहण किया है अर्थात् ब्राह्मीमुहूर्त का आठवां भाग रात का है जब से प्रारम्भ हो तब से तिथि का आरम्भ है व प्रमाण रात का भरतखण्ड में चालीस घड़ी तक है इस हेतु आठवां भाग रात का पांच घड़ी हुआ सो इस संप्रदाय के अनुगामी पचपन घड़ी से अधिक होय तो अगिले दिन व्रत नहीं

करते जो कम होय तो करलेते हैं और रहीं दो संप्रदाय एक विष्णुस्वामी व दूसरी माध्वी सो उनका निश्चय भी ऊपरकी लिपिके अनुसार है पर कोई कोई ने अठवांभाग रात का चारघड़ी भी अङ्गीकार किया है इस हेतु छप्पन घड़ी दशमी का वेध मानते हैं व स्मृति लोगोंमें न होने एक निश्चय व निष्ठा के कारणसे कई मत हैं अर्थात् कोई तो पैंतालीस घड़ी और कोई पचपन घड़ी कोई छप्पन घड़ी मानते हैं और कोई अरुणोदय वेध मानते हैं अर्थात् अट्ठावन घड़ी से अधिक दशमी होय तो अगिले दिन व्रत नहीं करते और कोई तिथि का प्रारम्भ सूर्योदय से मानते हैं उस समय दशमी हो तो व्रत नहीं करते नहीं तो साठ घड़ी दशमी तक वेध मानने का प्रयोजन नहीं और कोई ग्यारह का अङ्क मुख्य जानते हैं यह कि पत्रे में जिस दिन ग्यारहका अङ्क हो उसी दिन व्रत करते हैं और जो पन्द्रह दिन में एकादशी घटजाय और पत्रे में ग्यारह का अङ्क न हो तो व्रत नहीं करते काश्मीर इत्यादि देशों में पश्चिम पांच घड़ी दिन चढ़ेतक जो दशमी हो तो उसी दिन व्रत करते हैं पश्चिम देशमें दशमीविद्धा व्रत करने का कारण यह है कि शुक्राचार्य दैत्य अरु राक्षसों के गुरु थे उनको अपने शिष्यों की वृद्धि करनी थी इस हेतु उस व्रत की प्रवृत्ति चलादी पर विष्णुनारायण ने दशमीविद्धा व्रत को त्याज्य किया और इसका निषेध आप वैकुण्ठ से आय कर ऋषीश्वरों से कहा कि यह वृत्तान्त पद्मपुराण इत्यादि में विस्तार करके लिखा है सो उन शुक्राचार्य के मत को मूर्खों ने अब तक अङ्गीकार कर रक्खाहै कोईका यह मतहै कि एकादशी को नाज खाना वर्जित है सो जिस घड़ी एकादशी प्रारम्भ हो अन्न जल छोड़ देना चाहिये और जब द्वादशी प्रारम्भ हो पारण करना उचित है इसके आचरण करनेवाले दक्षिण देशमें सुनेजाते हैं सो हरएक देशकी रीति व उपासना का विरुद्ध जो है सो लिखा गया पर शास्त्र के जाननेवालों से विशेष करके तीन प्रकार के वेध की रीति है एक पैंतालीसघड़ी, दूसरी पचपनघड़ी, तीसरी छप्पनघड़ी और यहभी जानेरहो कि शास्त्रों में जो तृस्पर्शक व्रतका पुण्य बड़ा लिखा है उस तृस्पर्शक का है कि जो प्रारम्भातिथि में घड़ी दो घड़ी एकादशी हो और फिर द्वादशी आरम्भ होकर तिथि के बीतनेके पहले त्रयोदशी आरम्भ होजाये और उस तृस्पर्शक का पुण्य नहीं लिखाहै कि जिसके आरम्भ में दशमी हो पीछे एकादशी उसी तिथि में भोग करके फिर द्वादशी प्रारम्भ

करजाय वरु दशमी के वेध के कारण से यह तृस्पर्शक त्याज्य और निषेध है॥ जन्माष्टमी व्रत में श्रीसंप्रदायवाले सिंह के सूर्य में जो अष्टमी हो उसको जन्माष्टमी मानते हैं और उस अष्टमी में कृत्तिका नक्षत्र अथवा सप्तमी का वेध एकादशी के वेध की रीति से मानना योग्य है जाने रहो कि जन्मोत्सव व सालगिरह इत्यादि में जन्म के नक्षत्रपर दृष्टि होती है सो भगवत् का आविर्भाव रोहिणीनक्षत्र में हुआ इसहेतु कृत्तिका का वेध मानना योग्य है और जो सिंह का सूर्य भादोंमहीनेमें पांच दिन पीछेतक अष्टमी से न हो तो आश्विन में व्रत करते हैं और दूसरे संप्रदायवाले तीनों भादोंवदी अष्टमी को मुख्य मानते हैं पर सप्तमी के वेधपर निश्चय करके दृष्टि जाती है जो एकपल भी सप्तमी और सारा दिन और रातको अष्टमी हो तो उस दिन व्रत न होगा अगिले दिन होगा कृत्तिका के वेध पर निगाह नहीं विष्णुस्वामी संप्रदायमें वल्लभकुलवालों के भाव की बात निराली है कि नियमपर प्रेम प्रबल है स्मार्तमतवाले चन्द्रोदय के समय अष्टमी का होना सिद्धान्त समझते हैं सप्तमी के वेधपर कुछ दृष्टि नहीं रघुनन्दन महाराज का अवतार चैत्रसुदी नवमी को और श्रीवामनजीका अवतार भादों सुदी द्वादशी को हुआ और नृसिंहजी का प्रादुर्भाव वैशाख सुदी चतुर्दशीको हुआ उनव्रतोंमेंभी वेध अष्टमी व एकादशी व त्रयोदशी का मानना चाहिये और इसीप्रकार चैत्रसुदी द्वीजको सीता महारानी का और भादोंसुदी अष्टमीको राधिका महारानी का जन्मोत्सव होताहै उनके जन्मोत्सव व अनन्तचौदस आदि व्रतों में वेध की रीति है पर जाने रहो कि कोई तो भगवत् अवतार और महारानीजी के जन्म के दिनको व्रत मानते हैं और एकादशी की भांति निर्जल उपवास करते हैं और भगवत् उपासक उत्सव समझकर उत्साह जैसे भगवज्जन्म और साल-गिरह को करते हैं और जन्मसमय के पीछे पञ्चामृत लेकर सब प्रकारके व्यञ्जन पक्वान्न अपनी सामर्थ्य के योग्य भगवत् को अर्पण करके भोजन करते हैं और जे लोग जन्माष्टमी के दिन यह वाद करते हैं कि अर्द्धरात्र पीछे भोजन करना निषेध है उनको यह उत्तर देते हैं कि वह रात नहीं करोड़ों दिनसे अधिक प्रकाशितहै और यह भाव उनका सत्य व सिद्धान्त है जन्मोत्सव की उमंग जिस प्रकार भक्त और उपासकलोग करते हैं कोई लिख नहीं सक्ता अपने २ भाव और भक्ति के आधीन है। कितने लोगों का ऐसा भाव देखने में आया कि पुत्र अथवा पौत्र के जन्म अथवा

विवाह में जो एक रुपया खर्च किया तो भगवज्जन्मोत्सव में उससे दश-गुण उत्सवकिया और वह धूमधाम व आनन्द किया कि अनायास निश्चय करके भगवच्चरित्रों में मन लगजाय। जे लोग एकादशी नियम के साथ करते हैं उनकी यह रीति है कि नवमी के दिन एकभक्त हविष्यान्न जैसे चावल, मूंग, यव, गेहूं, तिल व घी खाते हैं और दशमी के दिन एकभक्त फलाहार और एकादशी को निर्जल व्रत करते हैं व्रत के दिनको प्रभात से भगवद्भजनमें व्यतीत करना उचित है दूसरी ओर चित्त न जाय गवाही और मुन्सफ़ी, राहचलना, शतरंज गंजीफ़ा यह सब खेलना, दिनका सोना, स्त्री व मित्र का देखना और दूसरी निषेध सब जैसे पान व अञ्जन इत्यादि जो कि विस्तार करके एकादशीमाहात्म्य में लिखाहै यहां विस्तार करके लिखना व्यर्थ समझा। क्रोध व मिथ्या बोलना इत्यादि का तो लिखने का प्रयोजन नहीं कि वे सर्वथा वर्जितहैं। रात्रि को जागरण करना उचित है और जो किसी कारण से समाज भगवत्कीर्तन और भगवद्भक्तों का प्राप्त न होसके तो आप अकेला भगवद्भजन में जागता रहे द्वादशी के दिन भजनपूजन किये पीछे ब्राह्मणों को यथाशक्ति श्रद्धा भगवत्प्रसाद भोजन कराकर और रुपया व वर्तन व अन्न व वस्त्र यथाश्रद्धा दान देकर और फल उस व्रत आदि का भगवत् अर्पण करके तब आप भोजन करे पारण द्वादशी में उचितहै और जिसदिन कि वेधके विचारसे व्रत द्वादशी को होगा तो पारण त्रयोदशी में आपसे आप उचित होगा और जाने रहो कि द्वादशी शुक्लपक्ष आषाढ़ व भादों व कार्त्तिक में बीस २ घड़ी अनुराधा व श्रवण व रेवती नक्षत्रों की पारण के निमित्त त्याज्य हैं जो उन बीस घड़ी में पारण करे तो बारह एकादशी के व्रत का फल जाता रहता है बीस २ घड़ी तीनों नक्षत्रों के निषेध का निर्णय कई प्रकार पर लिखा है पर बहुत लोगों का सम्मत शास्त्र के प्रमाण से निश्चय इस बात पर है कि अनुराधानक्षत्र की बीसघड़ी नक्षत्रके प्रारम्भसे पहलीमें व श्रवण नक्षत्र की बीसघड़ी बीचली में व रेवती की बीसघड़ी अन्तवालीमें पारण निषेध है उन बीसघड़ी के आगे पीछे किसी समय करलेवे और यह भी जाने रहो कि जो निर्जल व्रत न होसके व निर्बलता से भगवद्भजन में बाधा देखपड़े तो ऐसीदशा में इतना फलाहार और दूध अथवा जलका लेना उचित है कि सामर्थ्य जागरण और भगवद्भजन की बनी रहे और जो एका-दशी व्रतके दिन शरीर ज्वरादिक करके क्लेशित होजाय तो मूंग और गेहूंका

भोजन करना वर्जित नहीं है ऐसी रीति और भगवत्प्रीति से जो कोई व्रत करते हैं उनके मुक्त व सद्गति में क्या संदेह है और एकादशीव्रत का जन्म व फल और व्रतों से सद्गति होनेका हेतु व सब वृत्तान्त एकादशी माहात्म्य इत्यादि में लिखा है इस कारण यहां नहीं लिखा और जितनी बातें प्रयोजन की हैं उनको लिखदिया अब हमारे व्रतका वृत्तान्त सुनिये कि प्रीति तो ऐसी कि कबहीं याद नहीं रहती जो याद पड़गया तो दशमी से चिन्ता उपजी अर्थात् रात्रि के समय अच्छे प्रकार पेट भरके खाया और फिर विचार हुआ कि प्रभात को क्या क्या फलाहार होगा? जब प्रभात हुआ तो बनाना फलाहार का प्रारम्भ हुआ और दोपहर के पहले खाने को बैठगये और इतना खाया कि दशमीके दिन भी कबहीं न खाया होगा तिसके पीछे आतेही पलँगपर आराम किया और जो दही, कूटू, सिंघाड़ा, तरकारी अथवा पेड़ा, हलुआ भोजन उष्ण, गरिष्ठ व तीक्ष्ण खाया था इस हेतु कईबेर पानी पिया कि पेट फूलगया और चारपाई पर लोटते रहे व अबहीं भोजन पचा नहीं तबतक और उस ऋतु के मेवे तथा दवायें उसी समय मँगाकर खाये पीछे रात हुई दूध और पेड़ा खाये और ऐसी शीघ्रता से चारपाईपर गिरे कि एकक्षण न बैठसके सारी रात गदहे की भांति लोटते रहे अगिले दिन चारघड़ी दिन चढ़े सुधि भई और भजन इत्यादि की बात क्या है यह भी न बना कि एकबार भी भगवत् का नाम मुखसे निकला होवे वाह वाह यह तो व्रत और भजन तिसपर चाहना सद्गति और भगवद्धाम की हजार धिक्कार ऐसे जन्म और समझ और बे विश्वासी पर अरे मन पापी अबभी समझ और तनक विचार कर कि भगवच्चरणों से विमुख किसी ने भी सुख पाया है जो तू इस समाज में दृढ़ होजाय तो तेरे उद्धार में क्या संदेह है कि मौसम बरसात में जो सावन का महीना आया तो प्रिया प्रियतम को उमंग झूला झूलने की हुई तो सब सखियों के सम्मत से बरसाने का पहाड़ इस समाज के निमित्त ठहरा जिसके चारों ओर वन की हरियाली और कल्पवृक्ष, तमाल, कदम्ब, पाढ़ल, मौलसिरी व चम्पाआदि वृक्षोंपर बेलि छाई हुई सुगन्धवाले फूल मौसमी व बे मौसमी भगवत् सेवा के निमित्त फूलि रहे हैं और जहांतहां झरने झररहे हैं घटा उमड़ी हुई बादलों की मन्द मन्द गर्जन में कभी कभी बिजली की चमक मयूर, सारस, कोकिला व चकोर इत्यादि पक्षियों का शब्द मनोहर शीतल मन्द सुगन्ध पवन

अर्थात् किशोर किशोरी के आनन्द व प्रसन्नता के निमित्त वह पहाड़ ऐसा शोभायमान व आनन्द बढ़ानेवाला हुआ कि वरवस स्नेह, शृङ्गार, प्रेम व प्रीति सब जगह से उत्पन्न होतीथी वहां एक कल्पवृक्ष के पेड़ में सखियों ने स्वर्णसूत्र आदि की डोर का झूला डाला और उसमें सिंहासन रत्नजटित डालकर ज़री व मखमल व कीमखाब का बिछौना मोतियों की झालर लगाहुआ बिछायके सँवारा उसमें प्रिया प्रियतम विराजमान हुये और एकओर चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, श्यामला व श्रीमती और दूसरी ओर धन्या, रंगदेवी, पद्मा, भद्रा और अन्य सखी सब पखावज, वीणा, बांसुरी, सारंगी, सितार, तम्बूरा व झांझ इत्यादि साज व सामान राग का दुरुस्त करके झुलाने और गाने के निमित्त खड़ी हुईं रागमलार आरम्भ करके प्रिया प्रियतम को झुलाने लगीं और वह सभा व समाज दर्शा कि ब्रह्माणी वा पार्वती व इन्द्राणी आदि सब भीत की चित्र होगईं और सब राग व रागिनी वेसुधि बुधि हो रहीं उस समयकी शोभा, शृङ्गार, सामान, बहार, हँसी ठट्ठा व आनन्द का किससे वर्णन होसक्ता है सारा वन व पहाड़ परमआनन्द व मङ्गल का देनेवाला होरहा था और हरएक सखी मोहिलेने के निमित्त उस मनमोहनके कि जिसकी मायाके कटाक्ष में करोड़ों ब्रह्माण्ड नाचते हैं मोहिनीरूप सबके गोरे मुख चन्द्रमापर अलकों की लटैं छुटी हुईं माथेपर टीका व बेंदी उसके ऊपर चन्द्रिका कानों में कर्णफूल और झुमका, पँचलड़ी, चम्पकली व हैकल आदि गले में हाथों में बाजूबन्द, चूड़ी, कंगन जड़ाऊ व अंगुलियों में अँगूठी, छल्ले, आरसी और डुपट्टे लहँगे सुरुख, सब्ज़, गुलेनारी, धानी, बैंगनी व नारङ्गी आदि रङ्गों को अपने २ अङ्गों व रूपरङ्ग के जरी गोटे पट्टे से भरे पहिने हुये पांवों में पायजेब, झांझें, विछुये सजिके पगफूल उन सब सखियों के समाज में नटनागर व्रजचन्द्र महाराज की कैसी शोभा है कि जिसप्रकार करोड़ों छवि मूर्तिमानों में शृङ्गार विराजमान हो शोभा, सजावट, दमक, झमक, वस्त्र, अलंकार ऐसा मनोहर व चित्त को हरे है कि सब सखियां मुख चन्द्रमा की चकोर होरही हैं एक हाथ किशोरीजी के गले में और दूसरे हाथसे अलकें जो पवन के झोंके से उरझ गई थीं सुलझाते हैं कबहीं चन्द्रावली व ललिता आदिसे ठट्ठा व छेड़छाड़ है और कबहीं तिरछे नयनों से नयन मिलाकर सुन्दरता व विलास देखते हैं और कबहीं राग गाने व सुनने पर चित्त

है और कबहीं वृषभानुनन्दनी से हँसी, खेल व अङ्कमेल है इसके आगे इस रसका अन्त नहीं जो इतिश्री लिखूं ॥

कथा अम्बरीष की ॥

राजा अम्बरीष चक्रवर्ती परमभक्त हुये जिनके गुण, दान व यज्ञका यश पुराणों में प्रसिद्ध है और सर्वसुख जो इन्द्रादिक को कठिनसे मिले सो सब प्राप्त था पर कबहीं उनमें मन न लगाया भगवत्सेवा में ऐसी प्रीति व निश्चय था कि सब कैंकर्यता भगवत् की अपने हाथ से करते थे किसी सेवक को नहीं करनेदेते और एकादशी व्रतकी जो आज्ञा शास्त्र की है तिसको राजा ने अत्यन्त पालन किया नवमी व दशमी के नेम व संयम के पश्चात् एकादशी व्रत करके जागरण किया करते थे और द्वादशी के दिन सब प्रकार द्रव्य व वस्त्रादि व कई करोड़ गऊदान करके और ब्राह्मणों को सबप्रकार के भोजन प्रसाद जिमा करके तब आप पारण करते । एकबेर दुर्वासा ऋषीश्वर आये राजा ने सत्कार व दण्डवत् करके भोजन के निमित्त विनय किया । दुर्वासा ने कहा कि स्नान कर आवें सो स्नान करने गये । संयोगवश उस दिन द्वादशी दो दण्ड रही राजा को पारण की चिन्ता पड़ी व ब्राह्मणों के सम्मत व आज्ञा से नारायण का चरणामृत पान करलिया जब दुर्वासाजी आये और यह वृत्तान्त सुना तो क्रोधाग्नि से ज्वलित होकर राजा के मारनेको उद्यत हुये और अपनी जटा से कालकृत्या नामी अग्नि की ज्वाला ऐसी उत्पन्न करी कि वह राजा के भस्म करने को दौड़ी । भगवत् जो कि सर्वकाल अपने भक्तोंकी रक्षा की चिन्ता में रहते हैं दुर्वासा के गर्व को न सहसके चक्र सुदर्शन को आज्ञा दी उसने पहले तो कालकृत्याकी ऐसी सुधि ली कि भस्म करदिया फिर दुर्वासा ऋषीश्वर की सेवा की सुधि लेने को चले । दुर्वासाजी अपने प्राण के भय से भाग निकले और चक्र सुदर्शनजी ने रगेद लिया सारे संसार व ब्रह्मलोक और कैलास आदि में सब लोकपाल व देवता आदि की विनय व प्रार्थना करते फिरे पर कोई उनकी रक्षा करने को समर्थ न हुये और निश्चय यह बात है कि ऐसा कौन है कि भगवद्भक्त के द्रोही को रखसके जब कहीं शरण न पाई तब वैकुण्ठनिवासी विष्णु भगवान् के पास गये और वहां से यह उत्तर पाया कि यद्यपि मैं तुम्हारी रक्षा करसक्ता हूं पर विचार करना चाहिये कि जो मेरे भक्त सब सुख छोड़कर मेरे शरण आये हैं और मुझसे सिवाय और कुछ आश्रय उनको नहीं तो किस प्रकार

उनका अपमान हमसे सहाजाय कि तुम्हारी रक्षा करूं सो तुमको उचित यही है कि तुम राजा अम्बरीष की शरण जाकर अपना अपराध क्षमा कराओ यह सुनकर दुर्वासा निराश हुये फिर राजाकी शरणमें आये दण्ड-वत् करके त्राहि २ पुकारे राजाने स्तुति व प्रार्थना से सुदर्शनचक्र को शीतल करके दुर्वासाजी का मान सन्मान ऐसा किया कि सब दुःख भूल गये और यह जानिये कि दुर्वासाजी एक वर्षतक व्याकुल भ्रमते रहे पर राजा ज्यों का त्यों दयाकरके युक्त एक स्थानपर खड़ा रहा और दुर्वासा के क्लेश का शोच करता रहा सत्य है कि भगवद्भक्तों को किसीके साथ वैर नहीं होता क्योंकि उनकी दृष्टि में यह जगत् भगवद्रूप है अथवा भगवद्भक्तरूप है पीछे राजा ने दुर्वासाजी को भोजन कराया आप भोजन किया यह दयालुता भक्तों की देख यश गातेहुये अपने आश्रम को गये इस कथा में एक संदेह उत्पन्न हुआ कि भगवत् का प्रण है कि कैसाही पापी शरण आवे अभय करदेता हूं अब दुर्वासा शरण गये न रक्षा की तो प्रण में विरुद्धपड़ा सो जाने रहो कि पहले तो भगवत् ने आप दुर्वासा को उत्तर देनेके समय संदेह यह दूर कर दिया सो ऊपर लिखआये के सिवाय इस के भगवत् का वचन है कि सब पाप क्षमा करता हूं पर दो पाप नहीं एक यह कि मेरे भक्तों का जो अपराध करे जैसा दुर्वासा ने किया और दूसरा जो मेरे नाम का अपराध करे अर्थात् इस नियत से पाप करे कि पाप करने पीछे नाम अथवा मन्त्र जपकर शुद्ध व पवित्र होजायँगे तो जब भगवत् का ऐसा वाचा प्रबन्ध है तो प्रण में विरुद्ध कहां है जो यह कोई न माने तौभी अच्छेप्रकार विचार कर देखा जाता है तो शरणागत में भी कुछ विरुद्ध भगवत् के प्रण में नहीं हुआ क्योंकि दुर्वासा अपने प्राण की रक्षा के हेतु भगवत्शरण हुये सो उपाय भगवत् ने बतलाया व दुर्वासा का प्राण बचा तो संदेह को ठौर नहीं है और यह भी जाने रहो कि दुर्वासाजी पर राजा अम्बरीष का कुछ क्रोध नहीं आया था वरु भगवत् का क्रोध हुआथा कि चक्र सुदर्शन को आज्ञा दण्ड की दी थी यह प्रताप शरणागत का हुआ कि दुर्वासा का प्राण बचा नहीं तो कहां उस प्रभु का क्रोध व कहां दुर्वासा बिचारा और मुख्यकारण इस चरित्र का यह है कि भगवत् अपने भक्तों के सब अपराधों पर तनक अवलोकन नहीं करते पर एक अहंकार पर तुरन्त दृष्टि होती है किसहेतु कि गर्व व अहंकार से भजन व सेवा में बड़ा विघ्न होताहै इसहेतु से अपने भक्त के गर्व को दूर करदेते

हैं कि गरुड़ मार्कण्डेय व नारदआदि की कथा साक्षी इस बात की है सो दुर्वासाजीको गर्व अपनी सिद्धता व बड़ाईका हुआ था कि राजाकी परीक्षा के हेतु गये थे इस कारण भगवत् ने राजाही के शरण भेजकर दुर्वासाजी का गर्व दूर करादिया इस चरित्र से एक उपदेश भगवत् का और भी है और वह यह है कि जब भगवत् ने दुर्वासाजी को शरण से निराश कर दिया तो दुर्वासाजीको क्रोध आया भगवत् को शाप दिया और उसके कारण से दशबार भगवत् को अवतार धारण करना पड़ा उपदेश इसमें यह हुआ कि जब हमारे ईश्वर को भी शरण नहीं देने से दश देह अङ्गीकार करनीपड़ीं तो दूसरे मनुष्य जो शरण आयेकी रक्षा न करेंगे तो न जाने उनकी क्या गति होगी? जब राजाकी भक्ति और भाव विश्व में विख्यात हुई तब एक कोई राजाकी लड़की ने कि भगवद्भक्त थी राजा अम्बरीष से अपने विवाह की बात चलाई राजा ने उत्तर दिया कि हमको भगवत् सेवा से छुट्टी नहीं व न स्त्री की चाहनाहै वह लड़की अधिक प्रेम युक्त होगई बारम्बार हठ किया राजा उसके प्रेम के वश होकर आप तो न गये पर अपनी तरवार भेजदी उसी से विवाह का नेगचार सब हुआ जब वह रानी आई तब एक महल अलग बना उसमें रहने लगी एकदिन वह रानी पूजा का मन्दिर राजा का देखने को गई राजा जगे नहीं थे रानी मन्दिर बहार लीपकर जलशुद्ध रखकर सब साज पूजा का तैयार करके चली आई राजा जब पूजा करने आये तब सामग्री सजी देखी बड़े आश्चर्य में हुये जब कितने दिन ऐसेही वृत्तान्त देखा तो एकरात राजा जागते रहे और जब रानी आई तो पूछा कि तू कौन है जो मेरी सेवा में चोरी करती है उसने उत्तर दिया कि नई दासीहूँ राजा ने उसकी भक्ति देखकर आज्ञा की कि अलग सेवा किया करो सो उसने ऐसे प्रेम से सेवा पूजा को किया कि भगवत् व राजा दोनों प्रसन्न होगये विस्तार करके कथा इस रानी की प्रेमनिष्ठा में लिखी जायगी दूसरी रानियों ने भी राजा की प्रसन्नता देखकर सबने भगवत्सेवा पधराई सब कोई के प्रेम को देखकर राजा सबके महलों में जानेलगे पुरवासियों ने भी ऐसेही प्रेम सेवा उठाई वहाँ भी राजा जाते सब नगर भगवत्परायण होगया अर्थात् जब राजा भगवद्धाम को जानेलगे तो सम्पूर्ण अयोध्यावासियों को अपने साथ लेतेगये और सब उस पद को पहुँचे कि योगीजन अनेक जन्मतक परिश्रम व क्लेश करके नहीं पहुँचते हैं ॥

कथा रुक्माङ्गद की ॥

राजा रुक्माङ्गद की कथा एकादशीमाहात्म्य व पुराणों में प्रसिद्ध है उनकी एक फुलवारी ऐसी सुगन्धित व शोभायमान थी कि देवताओं की स्त्रियां वहां के सुख लेने को उतरती थीं एकदिन उनमें से किसीके बेर का कांटा लगगया उसकी अशुद्धतासे उड़ न सकी माली की लड़की से कहा कि कोई एकादशी व्रत जो किया हो तौ उसका पुण्य मुझको दिला देव कि स्वर्ग जाऊँ यह बातें सुनकर राजा आया देवांगना से कहा यहां व्रत कोई जानता नहीं उसने बतलाया तब राजाने एक साहूकार की लौंड़ी जो मारने से भूंखी प्यासी सारा दिन व रात जागती रही बुलवाकर पुण्य दिलादिया कि देवाङ्गना स्वर्ग गई व राजाने सारे देश व नगर में डौंड़ी एकादशी की फेरवायदी हाथी घोड़ेतक उपास करते थे अन्त में सब समेत राजा वैकुण्ठ गया राजा की लड़की भी एकादशी व्रत की निष्ठायुक्त ऐसी थी कि एकादशी के दिन उसका पति आया देखादेखी व्रत रहा पीछे भूंख से विकल होकर भोजन चाहा उसने माहात्म्य से प्रवीण थी न दिया दो चार घड़ी पीछे वह मरगया भगवद्धाम को गया उसकी स्त्री ने बड़ा उत्साह माना स्तुति करते करते वह भी भगवद्धाम को चलीगई ऐसी ऐसी कथा एकादशीमाहात्म्य में बहुत हैं जिसकी इच्छा हो सो देखले ॥

बारहवीं निष्ठा ॥

महिमा महाप्रसाद जिसमें चार भक्तों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों के जम्बूफल रेखा को दण्डवत् करके हयग्रीव अवतार को दण्डवत् करताहूँ कि कामरूदेश में देवताओं की सहायता व दुष्टों के नाश के हेतु अवतार धारण किया। गीताजी में भगवत् की आज्ञा है कि जो कुछ करे, जो भोजन करे, जो यज्ञ करे, जो देवे, जो तप करे सब मेरे अर्पण करके शुभ अशुभ कर्मों के बन्धन से छूट जावेगा इस हेतु उचित है कि जो कुछ खाना, पीना व सामां नवीन तैयार हो सो सब पहले भगवत् अर्पण करे तब अपने अर्थ लगावे कि भगवत् वह अर्पण किया हुआ भक्त का अङ्गीकार करते हैं सो गीताजी में भगवत् ने कहा है कि पत्र, पुष्प, फल, जल जो वस्तु भक्ति से हमको निवेदन करते हैं प्रसन्न होकर खाताहूँ भगवत्प्रसाद के भोजन से व शास्त्रोक्त कर्मों के करने से कितना गुण भारी है कि बहुत शीघ्र अन्तःकरण निर्मल होकर भगवच्चरणों में प्रीति होजाती है और पुराणों में लिखाहै कि हजार एकादशी

और सौ द्वादशी का फल भगवत्प्रसाद के एक कण के सोलहवें अंश के माहात्म्य को नहीं पहुँचता है गरुड़पुराण में भगवत् की आज्ञा है कि जो भगवत्प्रसाद करके भोजन करते हैं उनके मन के सब रोगों का नाश होजाता है और पवित्र होते हैं फिर लिखा है कि जो कोई सामग्री खाने पीने की मेरा प्रसाद करके खाते पीते हैं वे मेरे समीप पहुँचते हैं भगवत् की आज्ञा है कि जो कोई विना भगवत् को भोग लगाये खाते पीते हैं तो भक्ष्य उनका शूकर के भक्ष्य सदृश व पानी रुधिर के सदृश है और ऐसाही वचन विष्णुपुराण का है सो देखो भगवत् अर्पण करने से कुछ उस वस्तु में से घटती वहानि भी नहीं होती हैं केवल इतनीही बात है कि जब रसोई खानेको बैठे तो भगवत् का ध्यान करके भगवत् अर्पण करदिया और इतना और भी ध्यान करलिया कि भगवत् ने इस भोज्यवस्तु व पानी को भोग लगाया पीछे भोजन करलिया इसीप्रकार सम्पूर्ण सामा व वस्तु जब बनके व सजके आधे भगवद्भेंट किया करें जो भगवन्मूर्ति न होय तो ध्यान में भगवत् अर्पण करके तब अपने अर्थ व काम में लगावें और जो ऐसा संयोग पड़े कि रसोई की सामग्री को पहले कुछ किसीने खालिया हो तो ऐसा विचार करलेना कि पहले भगवत् अर्पण होगयाहै उसमें का शेष यह है पर भगवद्ध्यान करके कुछ भोग लगानेका चिन्त-वन करलेना निश्चय चाहिये क्योंकि विना भोग लगाये भगवत्प्रसाद नहीं होसक्ता अर्थात् सर्वथा कोई वस्तु विना भगवत् अर्पण किये त्याज्य व महाहलाहल विष है महाहलाहल इससे है कि विष खाने से एकबेर मरता है व इस विष से चौरासीलाख बेर मरना पड़ता है एक किसीको संदेह हुआ कि सैकड़ों हजारों लोग भगवत्प्रसाद व चरणामृत ठाकुर-द्वारों में खाते पीते हैं और बहुत लोग शालग्राममूर्ति अपने पास रखते हैं और विना भोग लगाये कुछ नहीं खाते परन्तु हृदय की निर्मलता और भगवत् की प्राप्ति किसी किसी को होती है इसका कारण क्या है? सो जाने रहो कि इसमें विश्वास कारण है जैसे २ विश्वास की वृद्धि होगी तैसे २ हृदय भी निर्मल होता जायगा अन्त को निर्मलता व भगवत्प्राप्ति हो जायगी जैसे पारसमणि अर्थात् पारस व लोहे के बीचमें एक महीन वस्त्र का भी अन्तर जबतक रहेगा तो लोहा सोना नहीं होगा परन्तु लोहा व पारस मणि एकत्र रहेंगे तो वह वस्त्र थोड़ेही कालमें रगड़े खाकर उड़ जायगा व लोहा सोना निश्चय करके होगा और यहभी जाने रहो कि

भगवत्प्रसाद व चरणामृत खाने पीनेवाला यद्यपि दृढ़ विश्वासयुक्त नहीं है तथापि यमयातना व नरकों का दुःख नहीं पावेगा भगवच्चरणामृत व महाप्रसाद की महिमा तो कौन वर्णन करसक्ता है भगवद्भक्तों का चरणामृत व जूंठन का यह प्रताप है कि जिसके प्रभाव करके हजारों परमपातकी व अधम शुद्ध हो भगवत्निकटनिवासी होगये कथा नारदजी व नाभा जिसने भक्तमाल की रचना किया इसके निश्चय व साक्षी के निमित्त प्रत्यक्ष हैं सिवाय इसके भगवत् अपने महाप्रसाद व चरणामृत की महिमा द्रौपदी व अम्बरीष आदि की कथा से प्रकट दिखाते हैं अर्थात् दुर्वासाजीने चरणामृत के लेनेके अपराध से अम्बरीष को दुःख दिया था उनकी क्या गति हुई ? और द्रौपदी की कथा में लिखा जावेगा कि वनवास के समय राजा युधिष्ठिर को सूर्य ने एक टोकनी दी गुण उसमें यह था कि नित्य जबतक द्रौपदी भोजन न करती वाञ्छित भोजन अपार उसमें से निकलता जाता। एक दिन द्रौपदी के भोजन करलेने पीछे दुर्वासाजी दशहज़ार शिष्यों सहित आये। राजा चिन्ता में पड़े श्रीकृष्ण महाराज पधारे एक पत्ता शाक का टोकनी में से ढूंढ़के खागये उसका यह प्रभाव हुआ कि दुर्वासाजी दशोंहज़ार अपने चेलों के समेत ऐसे अघाय गये कि बाहर भाग खड़े हुये। विचार करना चाहिये कि क्या भगवत् विना शाक के खाये दुर्वासाजी को नहीं अघवा सके थे अक्षय अघवा सके पर हठ करके शाक खानेका अभिप्राय केवल यह था कि भगवत् अपने महाप्रसाद का प्रताप दिखाते हैं कि जो कुछ मेरे अर्पण होता है वह ऐसा अनन्त होजाताहै कि जैसा मैं हूँ और करोड़ों को अघवा सक्ता है द्रौपदी ने पहले जन्म में थोड़ा सा कपड़ा एक ऋषीश्वर को भगवत् की राहपर दिया था वह ऐसा अनन्त हुआ कि दुःशासन खींचते खींचते हारगया एक बुन्द जो सिंधु में डाले तो वुन्दभी सिंधु होजाता है इसी प्रकार जो पदार्थ अनन्त को अर्पण कियाजाय अनन्त होजाता है और जब ऐसा अनन्त हुआ तो उसके खाने पीनेसे हृदय निर्मल क्यों न होगा होवेहीगा विस्तार करके लिखाजाता है अर्थात् रीति है कि जो पवित्र वस्तु है सो अशुद्ध अपवित्र को शुद्ध व पवित्र करदेती है यह बात अग्नि व जल व पवन के दृष्टान्त से अच्छे प्रकार निश्चय होती है इसी प्रकार वह भोजन व जल जिस समय भगवत् परमशुद्ध व परमपावन को पहुँचा तो उसी समय शुद्ध व परमपावन होगया उस शुद्ध और पावन

भोजन व जल को जब भक्त ने सेवन किया तो उस भक्त को भी शुद्ध व विमल व अनन्त करदिया विश्वास मूल है देखो प्रसिद्ध है कि महात्मा सिद्ध राह चलते बहुत आदमी पापी व अपावन को अपना जूंठन खिला कर अथवा शरीर से शरीर मिलाकर एक क्षण में अपने ऐसा निर्मल व पापों से मुक्त करदिया तो कारण इसका यही है कि वह महात्मा सिद्ध पावन व निर्मल था अपनी विमलता से दूसरे के हृदय का मल क्षणमात्र में दूर करदिया तात्पर्य कहनेका यह है कि कोई वस्तु विना भगवत् अर्पण किये कदापि अपने अर्थ न लगावे और यह भी लिखागया कि कुछ बड़े क्लेश की बात नहीं एकबात की बात है और केवल मन में ध्यान कर लेना है पर यह दुर्भाग्यता हम लोगों की और कलियुग का प्रताप है कि थोड़ीसी बात नहीं होसक्ती हाय अफ़सोस! कि मन भाग्यहीन ने मुझको बहुत भ्रमाया और इसी दुष्ट के करने से इस दशा को पहुँचाहूं कि जाने कबसे करोड़ों जन्म भांति २ के लेकर अनेक प्रकार की पीड़ा में फँसा हूं पर अब मेरा भी अच्छा दांव लगा है कि श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की छांह मिलगई है देखूंगा कि इस मन दुष्ट का बल चलता है कि मेरे स्वामी पतितपावन दीनवत्सल के विरद की। रे मन! तेरे बुरे चलनपर जो दृष्टि करूं तो तू कदापि इस योग्य नहीं कि तेरी भलाई के निमित्त परिश्रम किया जावे परन्तु सदा मेरे पास रहता है इस हेतु शिक्षा करता हूं कि इस रूप अनूप का चिन्तन किया करे कि तेरे दोनों लोक सुधर जावें। दशरथ महाराजाधिराज का परमसुन्दर मन्दिर है और दर, दीवार, क्षिति व छत्र आदि सुवर्ण व रूपमयी तिसमें हीरा लाल पन्ना आदि रत्नों से जड़ाऊ शोभायमान उसमें चारोंभाई मानों चारोंमुक्ति अथवा चारों फल अथवा चारोंव्यूह अथवा चारों उपासना अर्थात् नाम १ धाम २ लीला ३ रूप ४ स्वरूपवान् अपने खेल व बालचरित्रों से सब माता व दशरथ महाराज को परमआनन्द से पूर्ण करते हैं कबहीं तो माता के साथ कोई खिलौना मांगने की हठ है कबहीं दशरथ महाराज के साथ घोड़ेपर चढ़ाने व तीर व कमान मँगा देने की हठ, कबहीं दीवारों में चित्र व रङ्ग रङ्गके जड़ाव व बेल बूटा सुनहरे देखकर प्रसन्न होते हैं और माता से पूछते हैं यह क्या है और कबहीं रत्नों में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर बूझते हैं कि यह किसके लड़के हैं कबहीं खाते खेलते फिरते हैं और पक्षियों को बटोर करके खिलाते हैं कबहीं उनके पकड़ने

को दौड़ते हैं और उड़जाने पर माता से हठ है कि तू पकड़कर ला दे और कबहीं चारों भाई परस्पर हाथ पकड़कर नाचते हैं कबहीं रातके समय चन्द्रमा को देखकर माता से कहते हैं कि हमको भी ऐसाही मँगा दे अर्थात् वह लीला व चरित्र परममनोहर हैं कि ब्रह्मा शिवादिक देखकर कबहीं तो परम आनन्द में मग्न होते हैं और कबहीं माया के जाल में फँसजाते हैं। चारों भाइयों के मुख की शोभा ऐसी है जिसको देखकर आनन्द को भी आनन्द होता है व सम्पूर्ण शोभा, शृङ्गार व दृष्टान्त भालके श्रीपर निछावर होकर दर्शन में बेसुध होजाते हैं जरदोजीकाम व गोटेपट्टे व जवाहिरात से भरीहुई टोपी शिरपर, घूंघरवाली जुल्फें छुटी हुईं, भालपर गोरोचनका तिलक, कानों में छोटे छोटे कुण्डल और झुमका बुलाक जिसमें सब्ज़ा पड़ाहुआ है पहिने हुये झलकदार कपोलों पर डिठौना लगा हुआ गले में कण्ठी, कठुला जड़ाऊ, बघनखा व जुगनू शोभित हाथों में बाजूबन्द, पहुँची, कड़े व चरण कमलों में घुंघुरू, झांझें व नाजुक अतिसुकुमार शरीरों में जर्द, सबुज, धानी, सुरुख़ कुरते महीन कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि माता बालचरित्रों को देखती हुईं आनन्द में मग्न व बेसुधि अपने भाग्य की बड़ाई करती हुईं चारों ओर विराजमान हैं ॥

कथा अङ्गद की ॥

अङ्गदजी चचा राजे सिलहदीरायसेन किले में जाति राजपूत परमभक्त भगवत् के हुये। प्रथम का वृत्तान्त यह है कि भगवत् से विमुख थे स्त्री उनकी परमभक्त साधुसेविनी थी एकसमय उस स्त्री के गुरु आये महल में भगवत् उपदेश व कथा कर रहेथे अङ्गदजी आयगये बुरा माना गुरु चले गये स्त्री भगवत् कथा व गुरु के दर्शन बन्द होनेपर खाना, पीना, कहना, सुनना त्यागकर दुःखित रहनेलगी। अङ्गदजी उसके रूप में आसक्त थे विकल हुये बहुत उपाय किया यहांतक कि शिर अपना उसके चरणोंपर धरदिया परन्तु प्रसन्न न हुई जब अङ्गदजीने भी खाना पीना त्याग किया व वचन प्रबन्ध किया कि जो तू कहेगी सोई करूंगा तब राजी हुई और कहा कि भगवद्भक्ति अङ्गीकार करो और गुरुजीके चेले होकर उनकी सेवा किया करो अङ्गदजी जाकर उस गुरु के चेले हुये माला तिलक धारण किया फिर उनको अपने घरपर लेआये और भगवद्भजन व साधुसेवा ऐसी प्रारम्भ की कि थोड़े दिनों में हृदय विमल व भगवत्

की सच्ची प्रीति होगई। एकबेर राजा किसी शत्रु से युद्ध करने को चढ़ा व विजय पाई शहर लूटने के समय अङ्गदजी को एक ताज अर्थात् बादशाही टोपी ऐसी मिली कि उसमें एकसौ एक हीरे लगे थे सौ हीरे तो बेच के साधुसेवा व भगवत् उत्साह में लगाये और एक हीरे को बहुत मूल्य व उसके सदृश मिलने योग्य दूसरा नहीं तिसको पगड़ी में अपने यत्न से बांध लिया श्रीजगन्नाथराय की भेंटके निमित्त रक्खा इस हीरे की ख्याति हुई राजा ने सब लूटको माफ़ किया उस हीरेको मांगा अङ्गदजीने लोगों के समझाने पर भी न माना व उत्तर दिया कि यह हीरा श्रीजगन्नाथरायजी को भेंट होचुका है अब किसीको नहीं मिलसक्ता अङ्गदजी की बहिन थी उसके हाथकी रसोई भगवत् को भोग धरा करते थे और उसकी एक छोटी लड़की भोजन के समय साथ खाती थी राजा के लालचके फन्द में आयके उस स्त्री ने रसोई में विष डाला अङ्गदजी भगवत् को अर्पण करके प्रसाद भोजन करने बैठे तब उस लड़कीको बुलाया उसको उसकी माने छिपा रक्खा जब वह न आई तब अङ्गदजी ने भी भोजन न किया तब उस लड़कीकी मा धिक्कार अपने को मानकर रोने लगी व अङ्गदजी से सब वृत्तान्त विष मिलाने व लड़की को छिपा रखने का कहकर मिलकर रोई। अङ्गदजी अपनेको विष देनेपर कुछ मनमें न लाये पर भगवत् को अर्पण होनेका क्रोध हुआ उसको निकाल दिया और आप उस प्रसाद को अमृत जानकर भोजन करगये। प्रेम व आनन्द में मग्न होकर भगवद्भजन में लगे। राजा को यह सब समाचार पहुँचे इस अभिलाष में रहा कि अब अङ्गदजी के मरने की खबर आती है और अङ्गदजी को महाप्रसाद में अमृत का दृढ़ भाव रहा इस हेतु उसने अमृत का फल दिया और क्षण २ शोभा मुख की और हृदय को आनन्द अधिक होतागया और विषदेने दिलानेवाले अभागों को लज्जा व शोक प्राप्त हुआ। पीछे अङ्गदजी उस हीरे को जगन्नाथरायजी की भेंट करने के निमित्त लेकर चले। राह में राजा के चाकरों ने घेरलिया कहा कि हीरा देव नहीं तो लड़ो हमारे साथ। अङ्गदजी ने कहा कि एक क्षणमात्र विलम्ब करो यह कहकर तालाब के किनारे पर गये और भगवत् से विनय किया कि महाराज! यह आपकी अमानत मेरे पासथी सो आप सम्हाल लें यह कहकर और सबको दिखाकर उस हीरा को तालाब में डाल दिया। भगवत् अपने भक्त की बिनती सुनकर सात सौ

कोस आनकर पानीतक पहुँचने न दिया लेगये और अपनी भक्ति और भक्तों का प्रताप प्रकट किया सो अबतक भुजा में शोभित है दर्शन होते हैं और राजाके चाकरलोग व आप राजाने उस तालावका पानी उलचवाय के तलाश् किया कराया पर हाथ न लगा लज्जित घर गये और अङ्गदजी अपने घर चले आये राजा अङ्गदजी को विश्वास करके मानने लगा और पुजारियों ने जगन्नाथरायजी की आज्ञा पाकर उस हीरे के पहुँचने का समाचार अङ्गदजी के पास भेज दिया। अङ्गदजी अतिहर्षित होकर जगन्नाथपुरी को गये उस हीरेसहित दर्शन करके आनन्द में मग्न होगये। राजा अङ्गदजी के जानेसे अतिविकल हुआ ब्राह्मणों को वास्ते ले आने अङ्गदजीके भेजा अङ्गदजी ने न माना तब सब अन्नजल छोड़कर धरना बैठे तब अङ्गदजी आये व राजा ने आगमन सुनकर आगे जाकर लिया व देखकर चरणों से लिपटगया अङ्गदजीने उठाकर छाती से लगा लिया। राजाको भगवद्भक्ति व साधुसेवा का उपदेश किया राजाने धन सम्पत्ति अङ्गदजीपर निछावर किया और भगवत्शरण होकर कृतार्थ होगया॥

कथा पुरषोत्तमपुरी के राजा की॥

पुरषोत्तमपुरी के राजा परमभगवद्भक्त हुये और महाप्रसाद में ऐसी निष्ठा थी कि थोड़ी अवज्ञा से अपना हाथ कटवाडाला। वृत्तान्त यह है कि एकबेर चौसर खेलते थे पुजारी जगन्नाथरायजी का महाप्रसाद लेकर आया राजा ने दहिने हाथ में पांसा रहने से बायां हाथ फैलाया। पुजारी महाप्रसाद की अवज्ञा समझकर क्रोधयुक्त होकर महाप्रसाद फेर लेगया। राजा इस अपराध से लज्जित होकर दौड़े पुजारी से विनय प्रार्थना करके महाप्रसाद लिया शिरपर धारण किया चूक के पश्चात्ताप में बहुत चिन्तायुक्त विना खाये पिये त्राहि त्राहि करते घरमें जाकर पड़ रहे इस उपाय में हुये कि किसी प्रकार से दाहिने हाथ को दूर करना चाहिये कि भगवत् प्रसाद से विमुख हुआ फिर चिन्ता करें कि मेरे हाथ को कोई कब काट सक्ता है इस शोच में मनमलिन चिन्तायुक्त रहतेथे। एकदिन कारण इस मानसी व्यथा का मन्त्रीने राजा से पूछा। राजा ने कहा कि रात के समय एक भूत आता है झरोखे की राह हाथ डालकर शोर गुल किया करता है सो तुम रात को मेरे मकान में रहो जब वह प्रेत अपना हाथ झरोखे में डाले तब काटडालो कि उसीरात मन्त्री चौकी पर रहा। राजा ने झरोखे में हाथ डालकर शोर किया मन्त्री ने ऐसी तरवार मारी कि हाथ

साफ़ अलग जापड़ा जब मन्त्रीको मालूम हुआ कि राजा का हाथ है बड़े शोच व लज्जा में पड़ा। राजा ने कहा कि भूत व प्रेत वही है जो भगवत् से विमुख है तुम चिन्ता मत करो हमको यह करना योग्य था भगवत् करुणासिन्धुने अपने भक्त की ऐसी निष्ठा देखके आज्ञा की कि राजा को महाप्रसाद लेजाओ व कटा हाथ उठा लाओ। पुजारी लोग दौड़े व इधर से राजा दर्शन को चले राह में पुजारीलोग जब महाप्रसाद आगे लेकर देनेलगे तो राजा ने बड़े भाव व भक्तिसे लेनेको दोनों हाथ उठाये उस समय भगवत् कृपा से कटा हाथ भी नया निकल आया व राजा ने दोनों हाथों से महाप्रसाद लेकर अपनी छाती से लगाया और दर्शन करके प्रेम आनन्द में पूर्ण होकर भगवद्भजन में रहनेलगे। भगवत् ने कटाहुआ हाथ अपने बाग़ में लगवा दिया कि वह दौना का वृक्ष सुगन्धवान् फूलों का होगया कि अबतक उसके फूल जगन्नाथरायजी को चढ़ायेजाते हैं एक पुराण में लिखा है कि भगवत् जगदीश का प्रसाद अन्न जलके सदृश नहीं भगवद्रूप है जो कोई और विचार करते हैं सो पापी हैं और उनका नाश होजाता है॥

कथा सुरेश्वरानन्दजी की॥

सुरेश्वरानन्दस्वामी चेले रामानन्दजी के परमभगवद्भक्त हुये और महाप्रसाद की महिमा ऐसी इस संसार में प्रकाशित की जिसके प्रभाव करके हजारों को दृढ़ विश्वास होगया अर्थात् एकबेर राह चलते में किसी द्वेषीने दारू व मांस का बरा बनाहुआ आगे ले आकर कहा कि भगवत् का महाप्रसाद है सुरेश्वरानन्दजी ने भगवत् महाप्रसाद का नाम सुनते ही भोजन करलिया और चल खड़ेहुये पीछे से जो चेले आते थे उन लोगों ने भी देखादेखी वही आचरण किया स्वामीजी ने उनसे क्रोध करके आज्ञा की कि तुमने क्या खाया? उत्तर दिया कि जो आपने स्वामीजी बोले कि हमने महाप्रसाद का भोग लगाया है यह तो मांस निकला और स्वामीजी के उदर से तुलसी और गंगाजी की रेणुका निकली तब चेले चरणों में पड़े और भगवद्भजन व महाप्रसाद का विश्वास हुआ निश्चय करके समर्थ को विष भी अमृत है और असमर्थ को अमृत विष तुल्य है सो शिवजी ने हलाहल पान करलिया अबतक उनके कण्ठका आभूषण है और राहुने अमृत पान किया कि उसका शिर काटा गया॥

कथा श्वेतद्वीपनिवासी भक्तों की ॥

श्वेतद्वीप भगवत् का विहारस्थान है और जो भगवद्भक्त शास्त्रों में चिरंजीव लिखे हैं विशेष करके इसी द्वीप में रहते हैं। एकबेर नारदजी उस द्वीप में गये और ज्ञान उपदेश करने को चाहा भगवत् ने रोंकदिया कि यहां के रहनेवाले मेरे प्रेम और भक्तिभाव में आनन्द रहते हैं उससे अलग नहीं होसक्ते तुम अपनी ज्ञानकहानी कहीं अन्यत्र आरम्भ करो नारदजी उदासीन वैकुण्ठ में गये और वृत्तान्त कहा नारायण ने आज्ञा की कि सत्य करके श्वेतद्वीप के रहनेवालों का यही वृत्तान्त है सो चलके अपनी आंखोंसे देखलेव और भगवत् नारदसमेत वहां आये सरोवर के किनारे एक पक्षी को देखा कि भगवद्ध्यान में था नारायण ने नारदजी से कहा कि यह पखेरू ऐसा भक्त है कि हज़ारवर्ष से इसने जल पान नहीं किया इस हेतु कि भगवत् का भोग लगाहुआ जल नहीं मिला और विना भगवत् प्रसाद के कुछ खाता पीता नहीं। परीक्षा निमित्त भगवत् ने थोड़ा सा जल अपना प्रसादी करके सरोवर के किनारे डालदिया कि उस भक्तने तुरन्त उस जलको अपनी चोंच में उठाकर पान किया। नारदजी ने उस पक्षी की परिक्रमा करी और सेव्य व पूज्य समझकर प्रेम में पूर्ण हुये फिर आगे चले और भगवत्मन्दिर देखा कि उस समय आरती होकर मन्दिर का द्वार ताला मङ्गल होगया था एक जनको उस मन्दिरकी ओर शीघ्रतासे आतेहुये देखा पूछा कहांजाता है उत्तर दिया कि भगवत् आरती के दर्शनों के लिये जाताहूं नारायण ने कहा कि आरती होचुकी और द्वार मन्दिर का ताला मङ्गल होगया वह तुरन्त सुनतेही धरती पर गिरपड़ा और मरगया तिसके पीछे उसकी स्त्री आई नारायण ने कहा कि तेरा पति मरगया उसका क्रिया कर्म करना चाहिये स्त्री ने उत्तर दिया कि तू क्या भगवत् से विमुख है कि भगवत् के दर्शनों पर क्रिया कर्म को पति के विशेषताई बतलाता है नारायण ने उत्तर दिया कि भगवत् आरती होचुकी वह स्त्री सुनतेही तुरन्त अपने पतिके सदृश मरकर होगई तिसके पीछे पुत्रादिक गृहके लोग आये और उनकीभी वही गति हुई। नारायण व नारदजी यह प्रेम व भक्ति उनकी देखकर आगे चले और विचरते विचरते फिर उसी ओर आये संयोगवश भगवत्मन्दिर खुलकर दूसरे समय की आरती आरम्भ हुई और लोग शङ्ख व झांझकी ध्वनि सुन कर भगवद्दर्शनों के लिये दौड़े वह लोग जो मरगये थे उठकर आरती

में जा मिले भगवद्दर्शन करके बहुत हर्षित अपने घर को चलेगये। नारदजी ने जो यह चरित्र देखा तो विश्वासयुक्त होकर भगवद्भक्त हुये और उस द्वीपको तीनोंलोक का पूजास्थान व वैकुण्ठ के सदृश जाना॥

तेरहवीं निष्ठा॥

जिसमें वर्णन व महिमा भगवद्धाम व आठ भक्तों की कथा है॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों और अर्धचन्द्ररेखा को दण्डवत् और श्रीवामन अवतार को कि देवताओं के सहाय के निमित्त प्रयाग में धारण किया व ब्रह्मचारीरूप से बलिराजा के द्वारपर गये उसको छल करके पाताल में भेजदिया प्रणाम वन्दना करके धामनिष्ठा लिखताहूं भगवत्का धाम भगवद्रूप है सो धामशब्द का अर्थ किसी जगह भगवद्रूप से सम्बन्ध रखता है और किसी लोक अर्थात् वैकुण्ठादिक से सम्बन्ध है और जब कि धाम भगवत् का अच्युत, अनन्त और माया से न्यारा है और यह भी गुण भगवत्के वेद और पुराणों में लिखेहैं तो भगवद्रूप होने में क्या सन्देह है और विख्यात है कि जब जीव माया से अलग हो जाता है तब उस धाम में पहुँचता है तो निश्चय करके वह धाम भगवद्रूप ठहरगया कि भगवत्की प्राप्ति भी माया छूटनेपर शास्त्रों में लिखी है जिस प्रकार भगवत् की महिमा और उसके रङ्गरूप का वर्णन अतर्क्य व अनिर्वचनीयहै इसीप्रकार भगवद्धाम का वर्णन भी नहीं होसक्ता परन्तु भगवत् ने जिस प्रकार अपनारूप शास्त्रों में वर्णन कियाहै इसीप्रकार अपने धाम का रूप भी वर्णन कर दिया है तात्पर्य यह है कि वह धाम सच्चिदानन्दघनरूप है मन्दिर, अट्टालिका, वाटिका, फुलवाड़ी, द्रुमलता, विमान, सरोवर, बावड़ी, नाली इत्यादि सब वहां के दिव्यरूप हैं अर्थात् सच्चिदानन्दघन तत्त्व बिना किसी अन्य वस्तु का बना अथवा बनाया हुआ वह धाम नहीं है जिस प्रकार हलवाई खिलौने बनाते हैं और सब आकार सहित वाहन व वाहिनी व साज शृङ्गार अच्छे प्रकार उस खिलौने में रचित होते हैं परन्तु सब खांड़ही खांड़ है दूसरी वस्तु नहीं इसी प्रकार उस धाम का वृत्तान्त है कि यद्यपि केवल एक भगवत्मय प्रकाश का वह धाम है परन्तु सब मन्दिर आदिक जो जिस प्रकार के बुद्धि की दौड़ और चिन्तना में समावें सो वहां प्राप्त व रचित होरहे हैं जाने रहो वह धाम किसी लोक और ब्रह्माण्ड में नहीं असंख्यात ब्रह्माण्डों में जिस किसीको मुक्ति मिलती है तिसको यह धाम मिलता है और इस धाम में पहुँचकर आवागमन से

छूटजाता है सो गीताजी में लिखा है कि जहां जाय के फेर नहीं संसार में गिरताहै वह धाम मेरा है । भागवत में लिखाहै कि भगवद्धाम में पहुँचकर जीव निश्चल होजाता है और फेर जन्म नहीं होता । पद्मपुराण, स्कन्दपुराण व वाराहीसंहिता में लिखा है कि भगवद्धाम में पहुँचकर मुक्त होजाता है और दूसरे पुराण सब इसमें युक्त हैं और वेद की श्रुति और कितनेही उपनिषद् हैं वे ऐसीही आज्ञा करते हैं वहुत विस्तार का प्रयोजन नहीं जिस किसीने एक पुराणभी सुना होगा उसको महिमा व बड़ाई भगवद्धाम की अच्छी प्रकार समझ में आगई होगी सो वह परमधाम श्रीसंप्रदायवालों के निश्चय में वैकुण्ठ है व राम उपासकों के विश्वास में अयोध्या, साकेत, सांतानक व कृष्णउपासकों के विश्वास व सिद्धान्त में गोलोक इसीप्रकार सब उपासक अपने अपने इष्ट का धाम उसी गुण व महिमा सहित वर्णन करते हैं और स्मार्तमतवालों का सिद्धान्त यहहै कि वे लोग उस धामको ब्रह्मलोक कहतेहैं और उनका निज इष्ट जो देवता होताहै उसका धाम सबसे अतिऊपर मानते हैं और दूसरे देवताओं का नीचे जैसे मनुष्यशरीर में हाथ-पांव अर्थात् अङ्ग अङ्गी भाव रखते हैं और कोई कोई को यह निश्चयहै कि वह धाम सच्चिदानन्दघन भगवद्रूप एकहै कोई अन्यस्थान नहीं है जिस प्रकार भगवत् अपने वाक्य के अनुसार कि जिस भावसे जो कोई उसका भजन सेवन करता है उसको उसी रूपसे उसी प्रकार मिलताहै इसी भांति वह धाम भी जब भक्त उस धाममें पहुँचते हैं उनके भाव व विश्वास के अनुरूप दिखाई देताहै भगवत् ने गीताजी में कहाहै कि जो जिसभाव से मेरे शरण होते हैं उनको उसी भावसे मिलताहूँ । नारायण उपनिषद् और कई उपनिषद् व सहस्रशीर्षा आदिसे भी यही बात प्रकट होती है सो जब कि भगवत् अपने भक्तोंके भाव के अनुसार प्रकट होताहै तो भगवत् का धाम भी कि भगवत् का रूपहै वैसाही होना उचित है । भगवत् के प्राप्त होने में जो आनन्द है वही इस धाम में सर्वकाल व सब घड़ी सबको प्राप्त रहता है कि जिसका वर्णन किसी प्रकार किसीसे नहीं होसक्ता । शास्त्रों में जो स्वर्ग व पृथ्वी पर धन व राज्यादिक हज़ारों सुख लिखे हैं वह सब उस धाम के करोड़वां अंश के सुख को नहीं तुलते अब यह वर्णन विस्तारसहित व निश्चय करना उचित हुआ कि मधुपुरी व अवधपुरी व काशी आदि जो धाम व पुरी धरती पर हैं क्या हैं सो जाने रहो ये धाम वहही हैं जिनका वृत्तान्त ऊपर

लिखआये तनक वाल बराबर भी उस धाम और इन धामों में भेद नहीं वरु वैकुंठधाम से इन धामों को एक प्रकार से विशेषता है काहे स कि वह धाम तो ऐसा है कि जब मनुष्य अच्छे प्रकार विश्वास दृढ़ करके उपासना करे और सब ओर से मनको एकाग्र करके लगावे तब न जाने कितने जन्मों में मिलताहै और यह धाम वह है कि कैसेही पापी व अधम ने उनकी शरण को लिया वह भगवत् को जा मिला और किसी जन्म में एक वेर भी उन धामों में रहा उसके प्रताप से संगति को पहुँचा और विचार करना चाहिये कि वह ईश्वर जिसको वेद "नेति नेति" कहते हैं अपने निजधाम को छोड़कर इन धामों में आता है और अब भी विराजमान है तो वड़ाई इन धामों की है कि उस धाम की जो यह कहो कि भला जो यह धाम भी उसी परमधाम के सदृश हैं तो जो आनन्द और सुख वहां है वह क्यों नहीं ? सो जाने रहो कि सम्पूर्ण सुख व शोभा इन धामों में सदा है और इनहीं धामों के प्रभाव करके उस धाम का सुख व शोभा और आनन्द जीव को मिलता है जितना आराधन व प्रीति उस धाम के प्राप्त निमित्त होती है उससे आधा व चौथाई भी इन धामों में विश्वास करके होय तो तुरन्त बेड़ा पार होजावे विश्वास और हृदय की आंखों को खोलकर देखना चाहिये कि तनकभी भेद नहीं है जीव गोस्वामी की कथा में वर्णन होगा कि वृन्दावन की शोभा की तनक झलक वादशाह को दिखलाई और हरिदासजी का वर्णन है कि उस समयके वादशाह को उन्होंने भी व्रज की छवि और शोभा को दिखाया था और एककोना सीढ़ी किसी घाट का टूटाथा कि सातों वादशाहत के धन से भी उस सीढ़ी का वनना वादशाह ने कठिन समझा था सो विश्वास और प्रीति दृढ़ यही मुख्य है और जैसे २ मन निर्मल और विश्वास की बढ़ती होती जाती है तैसेही तैसे शोभा और सुख की बढ़ती होती है अर्थात् हृदय के नयन से दिव्यरूप की शोभा धाम की देखने में आवेगी यह कहो कि भला इन धामों को परमधाम के सदृश लिखते हो और यहां के रहनेवाले ऐसे शठ और धूर्त व कुचाली बहुत देखने में आते हैं कि सारे संसार के पापियों के शिरोमणि हैं और उचित यह था कि यह लोग ऐसे होते कि जिनके दर्शन करतेही पापीलोग पापों से छूटजाते सो इसका क्या कारण है ? सो जाने रहो कि रहनेवालोंके वुरे आचरण देखनेसे भक्तों को विश्वास से शिथिल होना नहीं उचित है क्योंकि धामवासियों के अपकर्म से भी

भगवद्रूप होना उन धामोंका अच्छेप्रकार निश्चय होगया अर्थात् भगवत् कल्पवृक्ष के सदृश हैं सबके भाव के अनुसार फल देते हैं सो उन बसने वालों की रुचि समय के कारण करके पाप में हुई तो भगवत् ने उनकी चाहना के अनुसार पापों की बढ़ती को करदिया और इस विवाद से निश्चय होगया कि यह धाम कल्पवृक्ष के सदृश भगवद्रूप है अब यह शङ्का उचित आई कि जो इन लोगों के पापों की बढ़ती हुई तो ताड़न व शासन भी बहुत होगा और जब कि दूसरों से अधिक ताड़ना हुई तो यह धाम ही दुःखदायी हुआ मुक्तिदायक प्रभाव क्या हुआ और जो दण्ड न होगा तो शास्त्रों में जो आज्ञा विधि निषेध लिखी हैं वह सब व्यर्थ होजावेंगी सो जाने रहो कि रहनेवाले लोगों को पूर्ण फल भगवद्धाम सेवन का मिलेगा और शास्त्रों की मर्यादभी बनी रहेगी किसप्रकार कि शास्त्रों के वचन से प्रसिद्ध है कि जो और जगह के रहनेवाले पापी पातकी हैं वह लाखों करोड़ों वर्षतक नरकों में रहेंगे और चौरासीलाख योनियों में न जाने कितने कितने बेर जन्म पावेंगे और नाना प्रकार का दुःख भोगना होगा और इन रहनेवालों को एकही शरीर में थोड़ेही काल जोकि प्रमाण शास्त्र में लिखा है दण्ड घोर होकर उन पापों से छूटजावेंगे और भगवत् को प्राप्त होंगे। जाने रहो कि पहले चेष्टा उन लोगोंके पापों की ओर युक्त हुई रही इस हेतु पापों की वृद्धि पहले हुई पीछे उसको धाम ने अपना यह प्रताप किया कि सब पापों से शुद्धकरके परमधाम को पहुँचाय दिया। विचार करना चाहिये कि जो कर्म भले होंगे और भगवद्धाम में विश्वास दृढ़ होगा तो क्यों विना दण्ड के वह परमधाम को प्राप्त न होगा और बढ़ती विश्वास और पुण्यों की पहले क्यों न होगी। अब इस बात का उत्तर लिखना चाहिये कि बहुत यात्री ऐसे देखने में आये कि यात्रा करनेपर आगे से और अधिक स्वभाव कठोर व पापोंकी चेष्टा करनेवाले होगये सो जाने रहो कि कल्पवृक्ष का वृत्तान्त यहां भी समझलेना चाहिये जैसे विश्वास और मनसे वे लोग यात्रा करते हैं वैसेही कार्यमें बढ़ती होजाती है रीति धामों की यात्रा और वहां के रहनेकी विधि थोड़े में यह है कि विश्वास शुद्ध उस धाम में होय और जिस दिनसे यात्रा करे काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि मनसे दूर करे मुख से भगवत् का नाम और हृदय से भगवच्चरित्रों का चिन्तवन होय और सत्संग हरिभक्तों का होवे संयम, नियम, शम, दम, तितिक्षा, सत्य, दया, मैत्री व उदारता निश्चय चाहिये और जब वहां पहुँचे तो वहां के

रहनेवालों और सब द्वार व दीवार को भगवन्मय समझ और जो कुछ दान, पूजा, स्नान, व्रत आदि कर्म करे सब भगवत् अर्पण करके फल की चाहना न करे और ढूंढ़के भगवद्भक्तों का सत्संग करे कि तीर्थयात्रा में सत्संग सार है जब इस प्रकार यात्रा और वहां वास करे तो पूर्ण फल मिलने में क्या संदेह है और जो ऊपर लिखने के अनुसार न होसके तो धाम में विश्वास, भजन व सत्संग में प्रीति और अपकर्मों से निवृत्त रहना उचित है कि भला कुछ ठिकाना लगे और उत्तमगति को पहुँचे। अब उन लोगों की यात्रा का वृत्तान्त सुनिये कि जो लोग साधारण व थोड़ी पूंजीवाले हैं उन्होंने तो जब समय यात्रा व पर्वकी आई तो यह चर्चा आरम्भ की कि अबकी बेर बड़ा भारी मेला होगा और अच्छा नयन विश्राम होगा कि चारोंओर से सब भांति के लोग चले जाते हैं यह मन करके दश पांच एकसंग के मिलकर चले पन्थ में सिवाय व्यर्थालाप और हँसी व ठट्टे व वाहियात बोलने व अनाप सनाप बकने व हुक्का पीने के और कुछ न किया जब धाम में पहुँचे तो मेले के देखने में लगे और जब तीर्थस्नान को गये तो स्त्रियों के देखने व ताकने में मन लगाया और चले तब किसी स्त्री के पीछे पले कुत्ते के सदृश होलिये और उसके टिकान्ततक पहुँचाय आये और जो भगवत्मन्दिर में दर्शन को गये भजन ध्यान इत्यादि न बना कोठा अटारी और दूसरी २ लीला देखते फिरे फेर क्रय विक्रय करने लगे और सत्संग न ढूंढ़ा अपने मन की रुचि के अनुसार भँगेरे व चरसवाले व दूसरे कुसंगियों को ढूंढ़ने लगे व हरिभजन व कीर्तन को न किया नाच राग लड़कों आदि को देखते फिरे जब टिकान्त पर आये तो आपस में बैठकर जो स्त्रियां कि दिन में देखी थीं उनकी चर्चा करते रहे अथवा वहां के रहनेवालों की निन्दा व वणिक्लोगों के ठगपने के वर्णन करि फिरि सो रहे जै दिन वहां रहे यहही आचरण रक्खा और जो स्नान व यात्रा के फल को मांगा तो अपने भाग्य व कर्म के अनुसार और धनवान् यात्री ऐसे हैं कि जब यात्रा की मानस करी तो पहलेही उसके फलकी चाहना करली कि अमुक कार्य हमारा होगा अथवा बेटा होगा व धन मिलेगा अथवा चाकरी व द्रव्य उत्पन्न की जगह मिलेगी और रास्ते में सिवाय वार्ता डिगरी, डिसमिस, मुक़द्दमा अथवा जवाबदावी व रद्द जवाब का वर्णन अथवा स्तुति, निन्दा, मित्र, शत्रु व बादशाहों के व

हाकिमों की करनी की कथन व रस की काव्य, विरह की जलन, खाने पहिरने की रचना व सुन्दरता की इसी प्रकार की वेठौर ठिकाने के और कुछ मुख से न निकला । जो हज़ार में एक दो को विष्णुसहस्रनाम या महिम्न कण्ठ हुआ तो नहाने के पीछे कवहीं पाठ करलिया नहीं तो कुशल क्षेम और जब धाम में पहुँचे तो घोड़े और बैल व दुशाले व सामग्री आदिक का लेनदेन प्रारम्भ किया अथवा कोटा, अटारी, फुलवारी देखते फिरे कै मित्र, हाकिम व ओहदेदार चाकर के बड़े लोग जो मेले में आये रहे उनको ढूँढ़ ढूँढ़ मिले कै और लोग मिलने को आते रहे और जो स्नान को किसी तीर्थपर गये तो मांगनेवालों के डरसे शरीर को भिजोकर तुरन्त चलदिये जो कुछ दान दिया तो हज़ार आदमियों को दिखलादिया और हज़ारों से वर्णन किया और यह चाहना की कि इस दान के प्रभाव से अमुक अमुक कार्य सिद्धहोयँ और जो कोई साधु ब्राह्मण मांगने को आया तो रुपया पैसा देने की जगह गालियां दीं और कहा कि देखो कैसा मोटा संडा है घास खोदकर नहीं खायाजाता संतके धन पर कमर बांध रक्खी है और जो मन्दिर व शिवालय में दर्शनों के निमित्त गये तो सब मनोरथ मांगे और शेष आचरण पहले लोगों की भांति तात्पर्य कहने का यह कि जब ऐसे आचरण से यात्रा होवे तो यह फल जो शास्त्रों में लिखा है किस प्रकार इस जन्म में प्राप्त होय और क्यों न वे लोग कठोर हृदय होजावें अभिप्राय विस्तार करने का यह है कि भगवद्धाम अर्थात् मथुरा अयोध्या आदि निज परमधाम के सदृश हैं विश्वास और भगवद्भजन और धाम में प्रीति उचित है जो थोड़ीसी प्रीति और भगवत् के मिलने की चिन्ता होगी तो निश्चय करके बहुत शीघ्र भगवद्भक्ति की बढ़ती होकर भगवत् की प्रीति सहज में होजावेगी । हे मन ! जो बात कि ऊपर लिखआया स्मरण रखना योग्य है नहीं तो सब से अधिक तेरी दुर्दशा होगी । वह समाज जो ग्रन्थके प्रथम भूमिका के अन्त में लिख आया जो अनुक्षण हृदय के नयनों के आगे रक्खेगा तो किसी यात्रा आदि के विना किये ही सब कुछ तेरे आगे हाथ बांधे आज्ञा के अनुवर्त्ती है व न तेरे समान दूसरा कोई होगा किस हेतु कि भगवद्धाम उसी का नाम है कि जहां भगवत् विराजमान हैं ॥

कवित्त ॥

श्यामघन तनपर विद्युसे दशनपर, माधुरी हँसनपर फँसन खगीरहै ।

घुरवाले भालपर लोचन विशालपर, अरु वनमालपर जुगुत जगीरहै॥
जङ्घयुग जानुपर मञ्जुल मुखानपर, श्रीपतिसुजान मतिप्रेमसों पगीरहै।
नूपुर नगनपर कञ्जसे पगनपर, आनँद मगन मेरी लगन लगीरहै॥ १॥

कथा कागभुशुण्डिजी की॥

महिमा और कथा कागभुशुण्डिजी की जितनी पुराणों में लिखी हैं उतनी थोड़े में लिखनेकी समवाई नहीं है परन्तु प्रयोजनमात्र धामनिष्ठा के लिखता हूं कि वे पूर्व शूद्रवर्ण अयोध्यावासी हुये किसी दुःख पड़ने से उज्जयिनी में जारहे शिवमन्दिर में जप करते समय गुरु आये दण्डवत् न किया। शिवजी ने शाप दिया कि दशहज़ार वर्ष सर्पादिक योनि में इसका जन्म होय। पीछे गुरु ने स्तुति बहुत करी शिवजी प्रसन्न हुये वाणी भई कि हे ब्राह्मण, परउपकारी! वर मांग। ब्राह्मणने प्रथम भक्ति मांगी फिर उस शूद्र के कल्याण की विनय करी। आज्ञा हुई कि तथास्तु और शूद्र को आज्ञा हुई कि तेरा जन्म अयोध्यापुरी में हुआ है व अयोध्यापुरी का यह प्रताप है कि किसी जन्म में एकबेर अयोध्या बस जावे निश्चय रघुनन्दन स्वामी का भक्त होकर कृतार्थ और जन्म मरण के दुःख से छूट जाता है सो भगवत् का वचन है कि यद्यपि सबने वैकुण्ठ का वर्णन किया है परन्तु अयोध्या के बराबर प्यारा नहीं सो उस अयोध्यापुरी के प्रताप और मेरी कृपा से वह परमगति तेरी होवेगी कि जिसका कबहूँ क्षय न होवे अर्थात् श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणकमलों में निश्चला भक्ति होगी परन्तु आगे पर किसी साधु ब्राह्मण का निरादर न करना ईश्वर के तनु हैं जो कोई इन्द्रके वज्र व हमारे त्रिशूल से भी न मरे सो ब्राह्मणों की क्रोधाग्नि से भस्म होजाता है तिसके पश्चात् शिवजी की आज्ञाके अनुसार कागभुशुण्डि ने वह देह पाई अन्तमें ब्राह्मण के वंश में जन्म हुआ। माता पिता मरगये तब वन को गमन किया जहां कोई ऋषीश्वर मिलता उनसे श्रीरघुनन्दनस्वामी के चरित्रों को पूछते फिर लोमश ऋषीश्वर के दर्शन हुये और उनसे वही अभिप्राय अपने मनका पूछा ऋषीश्वर ने पहले कुछ सगुण उपासना का वर्णन करके निर्गुण ब्रह्म का वर्णन आरम्भ किया। कागभुशुण्डि ने कहा कि महाराज सगुण उपासक हूँ रामचरित्ररूपी जल से मेरा मन मीन के सदृश अलग नहीं होसक्ता। ऋषीश्वर ने थोड़ीसी सगुण उपासना वर्णन करके फिर निर्गुण ब्रह्मका वर्णन आरम्भ किया कागभुशुण्डि ने उस निर्गुण मत को

खण्डन करके फिर सगुण उपासना को दृढ़ किया इसी प्रकार से संयोग वादविवाद की पहुँचगई तबतो ऋषीश्वर क्रोध करके बोले कि कौआकी भांति अपनीही काँव काँव करता है मेरी सांची बातको नहीं सुनता इस हेतु तुरन्त काग की देह तेरी होजाय सो उसी घड़ी काग का शरीर होगया व भगवद्भक्तों को किसी के साथ वैर व शत्रुता नहीं इसहेतु कुछ सोच व चिन्ता को न किया और ऋषीश्वरको दण्डवत् करके अपनी राहली। श्री-रघुनन्दन स्वामीने इस परीक्षा में जब कागभुशुण्डिजी को सच्चा पाया तो लोमशऋषीश्वर के मन में दया को उपजाय दिया अर्थात् ऋषीश्वर यह सहिष्णुता व धीरता कागभुशुण्डिजी की देखकर लज्जित हुये और अपने पास बुलाकर आश्वासन किया बालरूप भगवत्‌की उपासना व राममन्त्र का उपदेश किया व रामचरित्र सुनाकर यह आशीर्वाद दिया कि राम-भक्ति दृढ़ तुम्हारे हृदय में बसी रहेगी व रघुनन्दनस्वामी के प्यारे होगे व जो इच्छा करोगे सो सब पूर्ण हुआ करेगी व मृत्यु तुम्हारे आधीन रहेगी। ज्ञान वैराग्य सदा रहेगा और तुम्हारे स्थान के चारचार कोसतक माया नहीं व्यापेगी रघुनन्दनस्वामी के गुप्तचरित्र हैं सो अनायास सब तुमको प्राप्त रहेंगे जब यह आशीर्वाद ऋषीश्वरने दिया तो आकाशवाणी हुई कि ऐसाही होगा कि यह मेरा भक्त अनन्य है। पीछे कागभुशुण्डिजी ने ऋषीश्वर के चरणों को दण्डवत् करके नीलाचल पर्वतपर जोकि सुमेरु के निकट है जाकर निवास किया और बहुत कल्प व्यतीत हुये अबतक वहां बसे हैं। रघुनन्दनस्वामी के कीर्तनमें सदा रहते हैं जिनके सत्सङ्ग से महाअधम जीव भी जीवन्मुक्त की पदवी को पहुँचगये और शिवजी महाराज ने हंसरूप होकर रामचरित्र सुना और गरुड़जी भगवत् के नगीची होकर ऐसी माया में पड़गये थे कि शिवजी व ब्रह्मा भी उपदेश न करसके परन्तु कागभुशुण्डिजी ने ऐसी कृपा करी कि माया दूर होगई। एकबेर काग-भुशुण्डिजी को यद्यपि वरदान सब प्रकार का पाये रहे पर भगवत्‌माया ने ऐसा नचाया कि बुद्धिका दीपक ठण्ढा होगया और यह कथा सब पुराणों में लिखी है परन्तु हरिकी माया भगवद्भक्तों का कुछ बिगाड़ नहीं सकती काहेसे कि भगवत् आप रक्षा करते हैं इसी कारण उस मायासे भी परम कल्याण कागजी का हुआ। जाने रहो कि जब भक्तको थोड़ा भी अभिमान उत्पन्न होजाता है तब भगवत् अपनी माया से उस अहंकारको दूर कर देते हैं जो ऐसा न करें तो वह भक्त दोनोंलोक से जाता रहे जैसे बालक

के गुमड़े को उसकी माता चिरवाती है और वह थोड़ीसी पीड़ा होनेसे सदा का दुःख दूर होजाता है सो भक्तों को किसी प्रकार का कष्ट और दुःख होना कारण बढ़ती भक्ति और परमकल्याण का दायक है भगवद्धाम की यह महिमाहै कि जिस पद को ब्रह्मादिक भी नहीं पहुँचते सो पदवी सहज में प्राप्त होती है ॥

कथा भगवन्त की ॥

भगवन्तजी आगरे के सूबाके दीवान भगवद्भक्त ऐसे हुये कि कुञ्जविहारीजी के चरित्र व उनका स्वरूप व प्रियाप्रियतम के आपुसकी प्रीति व प्रेम में दिनरात मग्न रहतेथे और सिवाय प्रियाप्रियतम के दूसरी ओर भूलके भी चित्त नहीं जाताथा, विधि-निषेध से न्यारे होकर युगलस्वरूपके माधुरी रस में छके रहते थे, वैष्णवीरूप धारण किये हुये भजन व भाव का मनमें विश्राम रखते और श्रीवृन्दावन धाममें प्रिया प्रियतमके तुल्यभाव था, जो कोई वहां का रहनेवाला उतरता तो उसको भगवद्रूप जानकर द्रव्य व अच्छे पदार्थ आगे धरते। एकबेर स्वामी हरिदासजी अधिकारी मन्दिर गोविन्ददेवजी के प्रेम व भक्ति में अद्वैत व भाव में अनन्य व भगवन्तजी के गुरु रहे व भगवत् ने आप जिनसे दूध व भात मांग करके भोग लगाया आगरेकी ओर आये भगवन्तजी सुनकर बड़े आनन्दित हुये अपनी स्त्री से मंत्रणा किया कि भेंट क्या दिया चाहिये। उस बड़भागिनी ने उत्तर दिया कि एक एक धोती शरीरपर रखलेव और सब घर वार, सम्पत्ति, हाथी, घोड़े भेंट करदेव यह सुनकर भगवन्तजी स्त्री से बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि प्रेम और भक्ति का रस भगवत् ने तेरेही भाग में दियाहै यह विचार इन दोनों का स्वामी हरिदासजी ने भी सुना अति प्रसन्न हुये परन्तु उनका धन सम्पत्ति लेना अनुचित समझकर उनके यहां न गये श्रीवृन्दावन को लौट आये। भगवन्तजी गुरु के नहीं आनेसे बड़े उदासीन व शोकयुक्त होकर सूबे से बिदा मांगि वृन्दावन को आये। यात्रा इत्यादि करके भांति भांति भगवद्भाव व चरित्रों के सुनने से आनन्दित हुये व आप भगवच्चरित्रोंकी रचना करके भगवत् भेंट किया। एकबेर व्रजवासी सब चोरी के कारण आगरे के कारागार में बद्ध रहे भगवन्तजी ने जाकर छुड़ा दिया। एकबेर व्रजवासियों ने भगवन्तजी की सब वस्तु को चुरालिया बड़े आनन्द व प्रेम में मग्न होगये कि उस चित्तचोर मनमोहन नन्दकिशोर ने मेरे धन को गोपियों के माखन के सदृश समझा

ऐसा भाव भगवन्तजी का। अब उनके पिता माधवदासजी का वृत्तान्त सुनिये कि जब उनके देहान्त का समय आया चेष्टा पहिंचानकर लोग पालकी में डालकर वृन्दावन को लेचले आधी दूर जब पहुँचे तब सुधि भई पूछा कहाँ लिये जाते हो। उत्तर दिया कि जिस धाम का रात दिन ध्यान करते रहे तहांही लियेजाते हैं। माधवदासजी ने कहा कि शीघ्र लौट चलो मेरा शरीर वृन्दावन के योग्य नहीं। विचार करो कि जब यह शरीर जलाया जायगा और दुर्गन्ध उठेगी प्रियाप्रियतमके खेल और विहार में भङ्ग होगा कदापि इस शरीर को वृन्दावन में लेजाना उचित नहीं और वृन्दावन में जानाही है तो आपसे आप जानेवाला युगलस्वरूप को पहुँच जावेगा यह कहकर तनको छोड़ दिया व नित्य विहार में जा मिले॥

कथा हरिदासजी की॥

हरिदासजी जाति के बनिये रहनेवाले काशी के निकट के राधावल्लभी संप्रदायमें परमभक्त व अगणित गुण व गूढ़ भगवच्चरित्रों का सार जाननेवाले हुये मानो पलरेसे मुख्य अभिप्राय शास्त्रोंकी घटती बढ़ती देखा करते रहे, जिन्होंने डङ्का देकर अपने प्रण को पूरा किया और राधावल्लभ जी के भजन का प्रताप दिखाया। भगवद्भजन में दृढ़ व कलियुग में कामधेनु के सदृश रहे। हरिदासजी ने प्रण किया था कि वृन्दावन में देहत्याग करें संयोगवश ज्वर हुआ और वैद्यलोगों ने औषध देने से हाथ खींचा तब डोली में बैठकर भगवच्चरणारविन्द में मन लगाकर वृन्दावन चले बीच में तन छूटगया परन्तु प्रण पूर्ण करने के निमित्त वैसाही शरीर बना कर वृन्दावन में आये और श्रीराधावल्लभलालजी व गोसाईं सुन्दरदास अपने गुरु के प्रेम और भावसे दर्शन करके सत्संग और भगवच्चरित्रों के सुख लिये और चीर घाटपर स्नान करके उस देह को छोड़ दिया व साथी सब लाश को दग्ध करके रोते व शोकयुक्त वृन्दावन में आये सब वृत्तान्त उनके गुरु और सबसे कहा गोसाईंजी ने कहा कि तुम उनके प्रणकी चिन्ता कदापि मत करो कल्ह हरिदासजी हमारे पास आये बोल बतराय करके व भगवद्दर्शन करके स्नान यमुनाजी का किया व देहत्याग दिया सबको भगवद्भजन का विश्वास हुआ इस चरित्र में जो किसी को शङ्का होय कि जो हरिदासजी ऐसे समर्थ रहे कि दूसरा शरीर धारणकर लिया तो पहले शरीर से क्यों नहीं वृन्दावन में आये सो जाने रहो कि

हरिदासजी को कुछ ऐसी लाग अपने प्रण पूरे होनेकी नहीं रही चाहे पूरा हो या न हो परन्तु आप भगवत् को उनके प्रण पूर्ण होने की लाग पड़ी क्योंकि पद्मपुराण आदिक में वचन भगवत् का है कि मेरे भक्त जो चाहना करते हैं सो पूर्ण किया करताहूं सिवाय इसके भगवत् को यह बात फैलानी जगत् में थी कि मेरे भक्तों का प्रण कबहूं नहीं बिचलता है एक तन छूटा तो क्या हुआ दूसरे तनसे वृन्दावन में पहुँचगये॥

कथा मधुगोसाईं की॥

मधुगोसाईंजी मधु श्रीरंग विख्यात थे परमरसिक प्रिया प्रियतम व श्रीवृन्दावन के हुये दर्शन की चाह व वृन्दावनवास के निमित्त घरबार छोड़कर बंगाले से वृन्दावन में आये। जब यात्रा व दर्शन करचुके तब चाहना साक्षात् दर्शनों की हुई और ब्रजकिशोर किशोरी की परम मनोहर मूर्तिके ध्यानमें छके हुये सब वन व कुञ्ज में ढूंढ़ने फिरने लगे दिन रात खाना, सोना, शीत उष्ण का विचार निर्मल मनसे दूर किया जब महाराज ने भक्तिभाव व प्रीति ऐसी अपने भक्त की देखी तो यमुना के किनारे वंशीवट के निकट इस स्वरूपसे दर्शन दिया कि परम शोभायमान श्यामसुन्दर स्वरूप माथे पर मुकुट कानों में कुण्डल स्वर्णतारों का बागा व घुटन्ना पहिनेहुये व मणिगणके आभूषण सब अङ्गोंपर शोभित एक हाथमें मुरली और दूसरे में छड़ी अपने सखाओं के संग हँसी खेल कररहे हैं गोसाईंजी को यह रूप अनूप देखकर कुछ सुधि न रही ब्रह्मानन्द में मग्न होकर वेसुधि दौड़े व चरणारविन्द में लिपटगये उनके भाग्यकी बड़ाई किसप्रकार लिखी जावे कि जिस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन के चरण-रज को ब्रह्मादिक वाञ्छा करते हैं सो उनके भक्ति व प्रेमके वश होकर आप प्रकट हुये॥

कथा भूगर्भ की॥

भूगर्भजी गोसाईं परममाधुर्य उपासक हुये घरबार छोड़कर विरक्त होगये और वृन्दावन में आय कर निश्चल व दृढ़वास किया अर्थात् सिवाय उस परमधाम के दूसरी किसी ओर चित्त व चाहना न हुई किसी पुराण का वचन है कि वृन्दावन से बाहर जो करोड़ों चिन्तामणि मिलते हों अथवा आप भगवत् मिलता हो परन्तु वृन्दावनकी रज व धूलि से यह शरीर कबहीं अलग न होय सो ऐसेही दृढ़भाव से गोविन्ददेवजीकी कुञ्जमें वास करके मानसीभाव से रूपमाधुरी प्रियाप्रियतम की तिसमें

बेसुधि व मग्न रहा करते खाने पीने की सुधि भी विशेष करके भूलिजाते मन, प्राण,बुद्धि, सुधि और जितनी चित्त की वृत्ति हैं सब रूप अनूप के चिन्तन में ऐसी लगी कि दूसरी ओर कदापि न चलायमान हुईं॥

कथा काशीश्वर की॥

गोसाईं काशीश्वरजी परमभक्त हुये पहिले अवधूत रहे पुरुषोत्तमपुरी में आये व श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चेले हुये फिर आज्ञा से गुरुके वृन्दावन में आये प्रेम व आनन्दमें मग्न व कृतार्थ होगये थोड़ेही दिनमें उनकी भावना व प्रीति ऐसी विख्यात हुई कि श्रीगोविंददेवजी महाराज की सेवा पूजा उनको मिली। उसी सेवा में रातदिन रहने लगे॥

कथा प्रबोधानन्द की॥

प्रबोधानन्दसरस्वती संन्यासी चेले श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के परम रसिक भक्त हुये प्रिया प्रियतम का विहार व कुञ्जखेल के रसको अपनी काव्य रचना में ऐसा वर्णन किया कि जिसको पढ़ सुनकर करोड़ों प्रेम व आनन्दमें मग्न हुये व होते हैं। युगलस्वरूप मुखचन्द्र में मनको चकोरकी भांति लगाया और वृन्दावनवास की दृढ़ शिक्षा जगत् को लखाई कि किसी प्रकार वृन्दावन के बाहर न जावें॥

कथा लालमती की॥

मनुष्यतनु को पाकर जो लाभ होना चाहिये सो लालमतीजी को हुआ कि गौड़स्वामी के चरणकमलों से अन्यत्र किसी ओर चित्त की वृत्ति नहीं जाती रही और लालमतीजी वात्सल्यउपासक जान पड़ती हैं इसी हेतु भक्तमाल में नाभाजी ने गौड़स्वामी की प्रीति से यह पद धरा नहीं तो प्रिया प्रियतम अथवा किशोर किशोरी यह पद धरते। लालमती जी को जैसी प्रीति युगलरूप में थी वैसेही यमुनाजी से व व्रजकी कुञ्जोंसे और वंशीवट इत्यादिक भगवत् के खेलस्थान व व्रजमण्डल से रही व अचलवास श्रीवृन्दावन में करके भक्तिभाव को दृढ़ किया व यद्यपि वात्सल्य उपासना लालमतीजी को रही और गोकुलस्थों की सेवक रहीं परन्तु धर्मनिष्ठा का विश्वास और जिस विधि से वहां वास चाहिये सो सब लालमतीजी में रहा इसहेतु धामनिष्ठा में लिखागया॥

चौदहवीं निष्ठा॥

भगवत् नाम की महिमा जिसमें पांच भक्तों की कथा हैं॥

श्रीकृष्णचन्द्र स्वामी महाराज के चरणकमलों के षट्कोण रेखा व

परशुराम अवतार को दण्डवत् है कि पृथ्वी के भार दूर करने के हेतु इकीसवार क्षत्रियों को वध करके ब्राह्मणों को राज्य दिया और यह अवतार जमीना गांव में वैशाख शुक्लतृतीया को हुआ यद्यपि भगवन्नाम का लेना कीर्तन में है परन्तु स्मरण से सम्बन्ध अधिक है इस हेतु अलग निष्ठा स्थापित हुई और जो चार प्रकार की उपासना अर्थात् नाम, धाम, लीला, रूप शास्त्रों में लिखी हैं तो नाम की उपासना प्रथम अग्रगामी है इसहेतु नामनिष्ठा लिखना उचित समझा महिमा भगवत् नाम की यद्यपि सब वेद व पुराणों में वर्णन की है परन्तु पार न पासके जैसे भगवत् की महिमा व चरित्र अनन्त हैं उसी भांति नाम की महिमा भी व नाम अनन्त हैं। शेषजी जिस नाम को नित्य नवीन वर्णन करते हैं परन्तु पार नहीं पाते शिवजी का प्राण आधार है व संसार से उद्धार के निमित्त भगवन्नामही बहुत है और साधन का प्रयोजन नहीं और विशेषता यह है कि कौन कौन भाव से नाम स्मरण करें निस्संदेह भगवत् प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि भक्ति से अथवा बे भक्ति से भगवन्नाम का उच्चारण सब पापों को नाश करदेता है जिसप्रकार महाप्रलय की अग्नि सारे संसार को भस्म करदेती है। भागवत में लिखा है कि औषध जाने कै विन जाने जिस प्रकार अपना गुण करती है तिसी प्रकार भगवन्नाम व नृसिंहपुराण में भगवत् का वचन है कि जो मेरे नाम का जप करते हैं सो अपने करोड़ों पुरुषों सहित मेरे धाम को पहुँचते हैं। विष्णुरहस्य में लिखा है कि वही परमज्ञानवाला है और वही परमतपवाला है जो भगवत् का नाम लेवे। रामरक्षा में विश्वामित्रजी का वचन है कि राम राम अथवा रामचन्द्र रामभद्र जो कोई स्मरण करते हैं उनको कभी पाप स्पर्श नहीं करता, दोनों लोककी कामना सिद्ध होती है। स्कन्दपुराण का वचन है कि राजसूय यज्ञ व अश्वमेध और अध्यात्मज्ञान इत्यादि का सारांश श्रीकृष्णस्वामी ने अपने नाम में रखदिया है अर्थात् सबका फल नाम से होजाता है जो यह शङ्का कोई करे कि जिस आदमी का नाम लेकर पुकारते हैं तो तुरन्त आजाता है और ईश्वर का नाम हज़ारों लोग लेते हैं ईश्वर नहीं आता है इसका क्या कारण है सो यह हेतु कि जिस मनुष्य को पुकारा जाता है किसी प्रकार की बेविश्वासी उसके जानलेने और पहिंचान में नहीं होती है इसी प्रकार जब नाम व नामी में दृढ़ विश्वास होगा तो निस्संदेह तुरन्त भगवत् साक्षात्कार

होजायगा और एक दृष्टान्त भी है कि धर्मात्मा व न्यायकर्ता राजा को सभामें हज़ारों दुःख कहनेको व न्याय के निमित्त जाते हैं उसमें बहुत लोग ऐसे हैं कि न न्याय करवाने की रीति जानते हैं और न राजसभा में जाने की रीति जानते व न कोई पक्ष उनको है और न राजा का स्वभाव पहिंचानते केवल अपनी दुहाई तिहाई शोरगुल से काम है सो यद्यपि राजा के न्याय व धर्मशील स्वभाव से अपने न्याय को पहुँचते हैं परन्तु जो विलम्ब होता है सो अज्ञानता से उनलोगों के राजा का कुछ दोष नहीं और कितने लोग ऐसे हैं कि राजसभाकी रीति व्यवहार जानते हैं और राजसेवकों से पहिंचान है ऐसे लोग जब सभा में गये उसी घड़ी अपने परिश्रम व राजसेवकों की कृपा से अपना अर्थ सिद्ध करलाये और केवल राजा की प्रसन्नता के हेतु सभामें जाते हैं व किसी प्रकार की कुछ याचना नहीं करते ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं सो ऐसे लोगों का अर्थ राजा आप सिद्ध करदेता है उनकी विनय व प्रार्थना का प्रयोजन नहीं होता तैसे ही यह नाम भी है जापक के विश्वासके अनुकूल अर्थ को सिद्ध कर देता है यद्यपि तरवार में यह शक्ति है कि लोहे के तवे को दो टुकड़े करदे परन्तु निर्बल के हाथ चिह्न भी नहीं उखड़ती और बली के हाथ से तुरन्त दो टुकड़े होजाते हैं यही वृत्तान्त नाम के विश्वासका है। अब यह शङ्का उत्पन्न हुई कि विना मन के लगाये नाम के लेने से भगवत् कैसे मिल जायगा? सो जाने रहो कि किसी प्रकार नाम लिया जावे निश्चय करके भगवत् प्राप्त होजायगा किस हेतु कि नाम और नामी भिन्न नहीं हैं और रीति है कि नाम के पुकारने से नामी पहुँच जाता है सो भगवत् सब जगह प्राप्त रहनेवाला नाम के पुकारनेसे क्यों न आवेगा प्रेमसे पुकारे के विना प्रेम पुकारे सो श्लोक सब इसके साक्षी ही हैं पर अजामिलकी बात इस निष्ठा में लिखी जायगी कि धोखेसे भगवत् का नाम लिया था सो परमधाम को गया और बाल्मीकिजी की कथा का कीर्तननिष्ठा में वर्णन हुआ है कि उनको भगवत् की महिमाका निर्मल ज्ञान नहीं रहा और न नाम की महिमा जानते रहे और जो किसी को हठ इस बातका हो कि जब प्रीति दृढ़ व एकाग्रचित्त लगेगा तबहीं भगवत् प्राप्त होगा तो जाने रहो कि परम्परा की रीति के अनुसार प्रारम्भ में प्रीति व एकाग्रचित्त की वृत्ति किसीको नहीं होती और जो होती है तो बहुत कम पर नामही वह विश्वास व मनकी लगनको दिन दिन अधिक करके भगवत्पद को पहुँचाय देता है

जसे बालपनकी विद्या के अभ्यास में प्रथम न मन लगे व न प्रीति उपाध्याय के भय से अक्षर घोखते घोखते पण्डित होजाता है इसी प्रकार भगवन्नाम की रटना व विश्वास कर मनकी लगन बढ़ाय के पद को पहुँचाय देती है। इस समय में बहुत लोग प्रकट भजन और नाम लेनेको अच्छा नहीं कहते हैं व यह बात बनाते हैं कि विना मन लगे क्या होता है सो वे लोग कवहीं किसी मनोरथ की सिद्धता को नहीं प्राप्त होते न उनके संदेह निवृत्त होते हैं निश्चय करके बौड़हे कुत्ते के सदृश हैं भूंक भूंक के मरजावेंगे प्रथम तो उनके नाश करने को अपराध शास्त्र की आज्ञा का नहीं अङ्गीकार करना यही प्रवल है अर्थात् शास्त्रों में तो यह आज्ञा हो चुकी कि विना मन ऊपरही से नाम लेनेसे उद्धार होता है और वे लोग उसके प्रतिकूल वर्णन करें तो निश्चय करके असुर व अपराधी हुये और ऊपरही के भजन से मन भी लगने लगता है सो जब कि उन असुरबुद्धियों को पहलेही पदसे अरुचि भई तो उनको दूसरा पद कव प्राप्त होगा और इसीसे सदा जन्म मरण के दुःखमें बँधे रहेंगे और बौड़हे कुत्ते के दृष्टान्त से यह अभिप्राय है कि पापकर्मों के मद से उनकी बुद्धि जाती रही सूक्ष्म अर्थ समझना तो अलगरहा मोटी बातों पर भी उनका विचार नहीं पहुँचता अर्थात् शीतल जल का स्नान और अग्नि का सेवन अथवा ऊपर की सुन्दरताई या किसीकी बात अथवा सुगन्ध व ठंढी पवन व दुर्गन्ध इत्यादि तो ऊपर से हृदय के भीतर भी न जावे और भगवन्नाम ऐसा हुआ कि वह ऊपर से कहा हुआ कभी गुण न करे धन्य उनकी समझ व वुद्धि और शोच की बात है कि प्रकट विख्यात बात पर दृष्टि नहीं होती कि पारस पाषाण को लोहा जानिके लगिजावे अथवा विना जाने पर भी निश्चय सोना करदेता है और आग में कोई वस्तु जानिके डाले अथवा बेजाने निश्चय करके भस्म होजाती है। अमृतको कोई जानिके पीवे अथवा बेजाने निश्चय अमर होजायगा इसी प्रकार भगवन्नाम को कोई मनुष्य विना जाने ऊपरसे लेवे अथवा जानिके हृदयसे परन्तु निश्चय भगवद्रूप होजायगा तात्पर्य यह कि चारों फल के देने को और संसारसागर से उद्धार के निमित्त मेरे स्वामीका नाम समर्थ है और किसी साधन का प्रयोजन नहीं और इससे अच्छा कोई शरण या अवलम्ब दिखाई नहीं देता है सतयुग में भांति भांति के कर्म व त्रेता में यज्ञ आदिक और द्वापर में भगवत्पूजन इत्यादि व्यवस्थित रहा और कलियुग में कि पापरूप है विना

कृष्ण नाम के कोई उपाय अच्छा व सुखसाध्य भगवत् और शास्त्रोंने नहीं ठहराया। भगवत् का वचन है कि जब महापापी धोखे से नाम लेकर संसार-समुद्र को उतर गये तो जानिके नाम लेवैंगे उनका क्या कहना है। रामस्तवराज में लिखा है कि रामनाम ब्रह्महत्या का दूर करनेवाला है। भगवत् का वचन है कि कैसाही किसी को दुःख हो और कैसाही विषयी और पापी हो भगवन्नाम के प्रभाव से सब पापों व दुःखों से छूटकर परम आनन्दको प्राप्त होता है सो दोनों लोक का साधन भगवन्नाम से अधिक दूसरा दृष्टिमें नहीं आता और यह बात विख्यात है कि जब किसी को कुछ दुःख होता है अथवा कुछ कामना होती है तो वरण बिठलाते हैं और मनोरथ को प्राप्त होते हैं तो जाने रहो कि अभ्यास और जप भगवन्नाम का सर्वदा व सब घड़ी अत्यन्त प्रयोजन है व अवश्य करणीय है परन्तु अत्यन्त आवश्यक से आवश्यक यह है कि साढ़े तीन करोड़ शरीर पर रोम हैं सो अपने जीवते भर में एकबेर प्रतिरोम एकनाम के गणना से साढ़े तीन करोड़ नाम पूरा करदेना उचित है और इक्कीसहजार छः सौ श्वासा रात दिनमें चलती हैं सो इतनाही नाम नित्य जप लेना चाहिये इसहेतु कि कोई श्वासा नाम व्यतिरिक्त गणनामें न आवै इक्कीसहज़ार छःसौ नाम तीन सवातीन घड़ी में पूरे होजाते हैं अर्थात् सवा घण्टे में और यह कुछ प्रयोजन नहीं कि एकजगह बैठकर लियेजावें चलते फिरते बात करते जिस प्रकार होसके पूरे करदेने चाहिये सो यह दोनों प्रकार का कर्तव्य उनलोगों के निमित्त लिखा गया कि जिनको नाम लेनेमें प्रीति नहीं और जिनको भगवन्नाम में प्रीति है और अनुक्षण नाम को रटे हैं उनको एकपल नाम विना नहीं जाता उनके हेतु कोई रीति लिखनी क्या प्रयोजन कि उनका जीवनधन भगवन्नाम है अरे मन! तनक तू समझ और चेतकर कि तू भगवत् अंश से हुआ सदा एकरस प्रकाशमान और ज्ञानानन्दस्वरूप है कभी ऐसा नहीं हुआ कि तू न रहा हो व आगे न होगा न कभी तुझको मृत्यु है और न कभी जन्मता है परन्तु श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों से विमुख होकर इस गति को पहुँचा है कि भांति भांति के दुःख नरक व स्वर्ग नाना प्रकार की पीड़ा चौरासी लाख योनि की तेरे मुण्ड पड़ी है स्त्री, लड़के, धन व गृह-मित्र आदि इनको तू अपना और नित्य समझकर उनके चिन्ता व शोच में दुःखित व मग्न रहता है सो अब तू अपने ऊपर दया और उस स्वरूप के चिन्तन में रहाकर जो कि ग्रन्थारम्भ में लिखा है कि

जिस करके माया के जालसे तेरी छुट्टी होकर परमानन्द की प्राप्ति होय ॥

कथा अजामिल की ॥

अजामिल पूर्वजन्मका ब्राह्मण था और वन में तप किया करता था मरतीसमय एक चाण्डाली में उसका ध्यान गया और मरगया इस जन्म में भी कान्यकुब्जनगर में ब्राह्मण के घर जन्म पाया परन्तु पहलेहीसे पाप-कर्ममें रत रहा एक पुंश्चली स्त्री को देखकर आसक्त होगया उसके साथ रहनेलगा व पक्षी मृगा मारना, मद्यपान, चोरी व जुआ खेलना ऐसा ही पापकर्म उसकी जीविका थी कि वर्णन उन कर्मोंका अच्छा नहीं। एक बेर भगवद्भक्त लोग विना जाने उसके घर आये उसने प्रेम से सब सेवा रसोईं इत्यादि की अच्छे प्रकार से करी और दीन होकर अपना सब वृत्तान्त कहकर चरण पकड़ लिये। हरिभक्तों को दया आई चलती बेर उपदेश करगये कि अबकी लड़का उत्पन्न होय तो नारायण नाम धरना अजामिलने वैसाही किया और नारायण नाम लड़केको प्यार बड़ा करता था जब मरणसमय यमदूतों करके पीड़ित हुआ तब पुकारा हे नारायण ! तबतक नारायणके पार्षद पहुँचे, यमदूतोंको मारकर निकाल दिया, अजा-मिलको वैकुण्ठ में लेगये। यमदूतों ने जाकर यमराज के पास दुहाई दी कि ऐसा पापी सो अपने बेटे को पुकारा कुछ भगवत् को जानकर नहीं सो पार्षदलोगों ने हमको मारकर निकाल दिया, उसको वैकुण्ठ में लेगये यमराज ने कहा कि जब मरने के समय किसी प्रकार भगवन्नाम लिया तो अब कौन धर्म कर्म करने को शेष रहगया तुमको इतना ज्ञान नहीं अच्छा हुआ जो तुम्हारा दण्ड हुआ। आगे पर जाने रहो कि जहां भगवन्नाम का उच्चारण किसी प्रकार हो वहां न जाना क्योंकि जहां भगवन्नाम है तहां यमदूतों का क्या काम है। अजामिल जब परमधाम को गया तब उसकी पुंश्चली स्त्री भी मनको लगाकर उसी गति को पहुँची। धन्य है भगवन्नाम की महिमा व प्रताप को कहां अजामिल के पाप घोर व क्या पदवी केवल धोखे से नाम लेने के प्रभाव से मिली तो जानकर नाम लेने से कैसी गति मिलेगी। इस चरित्र में महिमा सत्सङ्ग और नवें अध्याय गीताजी में जो दृढ़ निश्चय करके कहा है कि मेरे भक्त का नाश नहीं सो भी प्रकट है ॥

कथा एक राजा की।

एक राजा अन्तर्निष्ठ परमभागवत ऐसे हुये कि भगवत् का स्मरण

भजन इत्यादि सर्वकाल मनहीं में किया करते और बाहर की वृत्ति ऐसी थी कि सबलोग महाविषयी व संसारी जानते थे और रानी हरिभक्त रही उसको भी राजा के अन्तर्निष्ठा का वृत्तान्त ज्ञात न था इस शोच में रहा करती थी कि राजा को किसी प्रकार भगवत् में प्रीति होती। एक दिन निद्रा में राजा के मुख से भगवन्नाम निकल गया रानी ने उस दिन नौबत बजवाई दान पुण्य बड़ा उत्साह किया। राजा ने उत्साह का हेतु पूछा। रानी ने विनय किया कि रात आपके मुखसे भगवन्नाम निकला इसी हेतु उत्साह किया। राजा ने कहा कि मूलप्राण का तो भगवन्नाम शरीर में था जो वहही निकलगया तो तन किस काम का है यह कहकर तन छोड़ दिया तुरन्त परमपद को जा पहुँचा। रानी ने जो यह गति गुप्तभक्ति और भाव राजा का देखा तो ऐसे परमपद परमभक्त के वियोग और अपने अज्ञानता के शोक से अत्यन्त विकल व बेसुध हुई कि राजा के प्रेम व भगवद्भाव में मग्न होकर प्राण त्यागके जिस परमधाम को राजा पहुँचे तहांही पहुँचीं। निश्चय करके जिसको भगवन्नाम से प्रीति नहीं सो मृतक प्राय है और जिसको उस नाम से प्रीति है सो सदा अमर है॥

कथा एक ब्राह्मण की॥

एक ब्राह्मण भगवद्भक्त अपनी स्त्री को मैकेसे लिये आताथा राह में ठगों से भेंट हुई और ठगोंने पूछनेपर कहा कि जहां तुम जातेहो तहांही हमभी जाते हैं सो हम सीधी राह देखे हैं तुमभी इसी राह चलो। ब्राह्मण को विश्वास न आया तब उनसे चोरोंने रामचन्द्र के नाम को बीच दिया तब उस स्त्री ने ब्राह्मण को समझाया कि अब न मानना अयोग्य है। तब दोनों उन ठगों के साथ चले जब महाघन वनमें गये ठगों ने ब्राह्मण को मारकर सब वस्तु और स्त्री को ले चले। वह स्त्री पीछे फिर फिर देखते जाय ठगों ने पूछा कि अब पीछे कौनको देखती हो खसम तेरा तो मारा गया। उसने उत्तर दिया कि जो हमारे तुम्हारे बीच में है उसको देखती हूं व सबोंने कहा कि कहने की बात है कहां अब रामचन्द्र हैं परन्तु उस स्त्री को दृढ़ विश्वास था तबतक धनुषधारी महाराज धनुष बाण लिये घोड़े पर सवार पीठ ठोंक आनपहुँचे व ठगों को मार व ब्राह्मण को जिलाय उन दोनों को घरके समीप पहुँचाय आप अन्तर्धान होगये॥

कथा कबीरजी की॥

कबीरजी काशी में भगवद्भक्त ऐसे हुये कि जिनकी भक्ति और प्रताप

जगत् में विख्यात है जिन्हों ने भगवद्भक्ति से व्यतिरिक्त कर्म को अधर्म जाना अर्थात् योग, यज्ञ, दान व व्रत इत्यादि विना भगवद्भजन व भाव के वृथा समझा और निश्चय करके शास्त्रों का भी यहही अभिप्राय व सिद्धान्त है कि और साधन शून्य के सदृश हैं और कृष्ण नाम अङ्क के सदृश है जो कृष्ण नाम अङ्कप्राप्त है तो योग, यज्ञ, दान इत्यादि शून्य कृष्ण नाम अङ्कपर अधिक होकर सब दशगुने होजाते हैं और जो कृष्णनामरूपी अङ्क नहीं तो सब शून्य व व्यर्थ व रिक्त किसी प्रयोजन के नहीं रहते। तात्पर्य इस लिखने का यह है कि जो साधन कर्म हो सो भगवद्भक्ति प्राप्ति के अर्थ व कृष्ण नाम की प्रीति के निमित्त हो संसार के कार्य व स्वर्गादि के निमित्त न होय। कवीरजी ने एक ऐसा ग्रन्थ वनाया जिसको सब मतवादी अङ्गीकार करें और सबके उद्धार के निमित्त काम आवे व भगवद्भजन में ऐसे दृढ़ थे कि भजन के आगे वर्णाश्रम के धर्म को सब वृथा जाना और उनकी कथा यद्यपि वहुत जगत् में लोग कहते हैं परन्तु जो कुछ भक्तमाल के तिलक से ज्ञात हुआ सो लिखी जाती है। प्रारम्भही से अपनी जाति व मत की रीति को छोड़कर भगवद्भजन में रहा करते थे आकाशवाणी हुई कि माला तिलक धारण करो व रामानन्दजी के चेले हो। कवीरजी ने विनय किया कि रामानन्दजी मुसल्मानों की परछाहीं भी नहीं देखते हमको चेला किस प्रकार करेंगे तव उसका भी उपाय भगवत्ने वतलादिया तव कवीर जी उसी प्रकार कुछ रात बाकी रहते राह में पड़े रहे। रामानन्दजी स्नान को जाते थे उनका चरण कवीरजी पर पड़ा और रामराम मुखसे निकला कवीर ने उसीको उपदेश समझा और तिलक माला इत्यादि धारण करके उस महामन्त्र का जप और भजन करनेलगे। कवीरजीकी माताने जो अपने मतके विरुद्ध आचरण देखा तो शोर व चिल्लाहट किया व समझाया। कवीरजी ने कुछ न सुना अपने स्मरण भजन में रहते रहे। नितान्त इस वात की पुकार रामानन्दजी तक पहुँची। रामानन्दजी ने आज्ञा दी कि कवीर को पकड़लाओ हमने कव उसको चेला किया है। कवीरजी गये रामानन्दजी ने परदा डलवाकर वृत्तान्त पूछा। कवीरजी ने सब वृत्तान्त उपदेश का वर्णन किया और यह भी विनय किया कि सब शास्त्रों का मत युक्त इस वातपर है कि रामनाम महामन्त्र है तो तन्त्रशास्त्र रामस्तवराज में लिखा है कि श्रीरामनाम परम जाप्य है, महामन्त्र ब्रह्मस्वरूप है और

शिवजी ने पार्वती को रामनाम परम मन्त्र सहस्रनाम के तुल्य उपदेश किया है सो उस नाम से कि जिसका उपदेश आपके श्रीमुख से मुझको हुआ दूसरा बड़ा मन्त्र कौन है ? कि जिसका उपदेश आप करते तब चेला कहवावते और जब कि उस नाम का उपदेश आपके मुखसे हुआ तो आपको गुरु और मुझको चेले होने में क्या संदेह । अब रहा रामानन्दजी ने प्रसन्न होकर परदा उठाके कबीरजी को छाती से लगाया व भगवद्भजन स्मरण व साधुसेवा का उपदेश किया व बिदा करदिया । कबीरजी प्रयोजनमात्र को उद्यम कपड़ा बुनने का करते थे व मन अनुक्षण राम नाममें रहता था । एक दिन कपड़ा लेकर बाज़ारमें बेंचने गये किसी साधु ने जांचा वह कपड़ा देदिया और खाली हाथ के कारण से घर न गये छिपरहे । घरके सब चिन्ता में पड़े । भगवत् उनके घरवालों के दुःख न सहँसके तीन दिन बीते बनजारे का रूप धर बैलों पर सब प्रकार के अन्न लादे आये कबीरजी के घर डालकर चले गये । पीछे लोग कबीरजी को ढूँढ़कर घर लाये जो नाज जमा देखा भगवच्चरित्र समझकर आनन्दित हुये साधुओं को बुलाकर बांटदिया । पीछे अपना उद्यम भी छोड़ दिया । ब्राह्मणों ने अन्न में कुछ न पाया तिस करके बटुर के कबीर के घर आये और कहनेलगे कि सुन रे जुलाहे ! तुझको धनका बड़ा गर्व होगया है कि बिना हमको जनाये वैरागियों को कि छोटी जाति और शूद्र थे नाज बांट दिया तू इस नगर को छोड़कर दूसरी जगह जाकर वास कर । कबीरजी ने कहा क्यों दूसरी जगह छोड़जावें किसी के घर चोरी करी है कि राह लूटी है । ब्राह्मणों ने कहा कि भला इसी में है कि कै तो तू कुछ हमारी भेंटकर नहीं काशी से बाहर जा । कबीरजी उनको अपने घरमें बैठालकर आप कहीं जा छिपे । भगवत् को अपने भक्तका प्रताप सारे काशी में विख्यात करना था इस हेतु कबीरजी का रूप बनाकर घर आये और रुपया व नाज ब्राह्मणों को इतना बांटा कि सारी काशी में यश कबीरजी का हुआ और भगवत् ने ब्राह्मण के रूप से कबीर से जाकर कहा कि वन में क्यों दिनभर रहता है । कबीर के घर जाना रुपया सबको बँटता है । कबीरजी अपने घर आये देखकर भगवत् कृपाके प्रेम से आनन्द हुये जब यह सिद्धता भगवत्कृपा सारी काशी में फैली तो भीड़ लोगों की होनेलगी तब यह उपाय किया कि एक हाथ वेश्या के गले में डालकर और दूसरे हाथमें शीशा गङ्गाजलका मदिरा का भ्रम करावते उन्मत्त

की भांति काशीमें फिरनेलगे भगवद्भक्तों ने देखा तो कुसंगसे भय माना व कहने लगे कि कबीरजी परमभागवत हैं वेश्या के साथ लेने से उनको लोगोंने विषयी समझलिया तो दूसरे लोगों को यह वेश्याओं का कुसंग क्यों न रसातल को पहुँचावेगा और विमुख देखकर हँसे व कबीर जीकी निन्दा करनेलगे तब वह भीड़ तो आनेजाने लोगोंकी कम न हुई पर निन्दा करने के अपराध में बहुत लोग वध होनेलगे तब कबीरजीने यह उपाय किया कि उसी प्रकार वेश्या व शीशा लिये राजदरबार में पहुँचे सभा में बैठगये पर राजा व सभा के लोग किसीने आदर सत्कार जैसा करते थे न किया बेविश्वास होगये। कबीरजी ने उठकर थोड़ा सा गङ्गाजल धरती पर डाला व राम राम कहकर शोच किया। राजाने कारण डालने व शोच करने का पूछा। कबीरजी ने उत्तर दिया कि इस समय रसोइया श्रीजगन्नाथजी का आग में जलने लगा था मैंने यह पानी डाल कर आगको बुझाके रसोइया को बचाया है। राजा को आश्चर्य हुआ हल-कारा भेजकर समाचार मँगाया तो सत्य ठहरा। राजा बहुत लज्जित हुआ कि ऊपर के आचरण देखकर वैसे परमभागवत का आदर सत्कार न किया नितान्त लकड़ियों का भार शिर पर धरे रानीसहित नंगे पाँयन आय कै अतिदीन होकर कबीरजी के चरणों में पड़ा। कबीरजी ने अप-राध क्षमा करके भक्ति का उपदेश किया। उस समय का बादशाह सिक-न्दर नामी था काशीजी में आया और ब्राह्मणों और मुसल्मानों के लगाने से कबीरजी पर क्रोध करके तलबी की, कबीरजी गये, लोगोंने बाद-शाह को सलाम करने को कहा। कबीरजीने कहा कि हमको न सलाम करने आता है न बादशाह से कुछ काम है एक राम नाम को जानता हूँ वही मेरा सब कुछ है और मेरा प्राण का आधार वही है। बादशाह ने सुनकर क्रोध करके जंजीर से बँधवाकर गङ्गाजी में डलवा दिया न डूबे तब आग में डलवा दिया न जले तब मतवाला हाथी उनपर छोड़ा हाथी भी भाग गया यह सब प्रभाव कबीरजी का देखकर बादशाह चरणों में गिरा अप-राध क्षमा कराया और कहा कि मैं आपका किंकर हूँ धन, सम्पत्ति, राज्य जो आज्ञा हो सो भेंट करूं। कबीरजीने कहा कि हमको एक राम नाम छोड़ और किसी से कुछ काम नहीं यह कहकर अपने घर चले आये भक्तोंको आनन्द दिया। काशी के ब्राह्मणों ने जो यह वृत्तान्त सुना तो लज्जित हो-कर कबीरजी के दुःख देनेके उपाय में हुये। बहुत आदमियों को साधुवेष

बनाकर सारे मुल्क में कबीरजी की ओर से नेवता फेर दिया कि फलाने दिन कबीरजी के यहां भण्डारा है और उसी दिनपर साधुओंकी जमात आनि पहुँची । कबीरजी को जब समाचार मालूम हुआ तो छिप रहे भगवत् आप कबीरजी के रूप से आये और ऐसी धूमधाम आदर सत्कार से भण्डारा पूर्ण किया कि वैसा भण्डारा भगवत् से बनिआवे फिर पीछे साधुरूप से कबीरजी के पास गये सब वृत्तान्त भण्डारे का वर्णन किया । कबीरजी भगवत्कृपा के आनन्द में मग्न होगये । एक अप्सरा स्वर्ग की कबीरजी की परीक्षा के हेतु मोहनीरूप बनाकर आई । कबीरजी ने तनक उसकी ओर निगाह को भी न किया ऐसे भगवद्रूपमें छके थे नितान्त चली गई । भगवत् ने प्रसन्न होकर चतुर्भुजरूप प्रकट होकर दर्शन दिया और हस्तकमल उनके मस्तक पर रखकर आज्ञा की कि शरीरसमेत परमधाम को चलो । कबीरजी भगवद्रूप की माधुरी देखकर आनन्द होगये और जाने को तैयार हुये परन्तु भगवद्भक्त का प्रभाव प्रकट करने हेतु एक आश्चर्य चरित्र किया अर्थात् काशीके उस पार मगहदेश है वहां जो कोई मरता है उसको गदहे का तन मिलता है सो कबीरजी परमधामके जाने के समय उसी देश अर्थात् गङ्गापार गये और वहां जाकर शरीर सहित परमधाम की यात्रा की । इस चरित्र से यह दिखाया कि जो कोई केवल कर्मशास्त्रनिष्ठ है मगहदेश में मरने से गदहे का शरीर उसको मिलता है और जोकि भगवद्भक्त हैं उनको सब देश व सब स्थान हजारों काशीके समान हैं और भक्तिकी यह पदवी व प्रभाव है कि मगहदेश में मरकर भगवद्भक्त शरीरसहित परमधाम को जाता है तिसके पीछे मुसलमानों ने चाहा कि लाशकी क़बर दें क्योंकि कबीरजी मुसलमान थे और हिन्दू लोगों ने कहा कि कबीरजी साधु थे हम उनकी लाश जलावेंगे इस पर तकरार हुई चादरा उठाकर देखें तो लाश के स्थान सुगन्धवान् फूल मिले भगवद्भक्ति का विश्वास हुआ ॥

कथा पद्मनाभ की ॥

इस संसार में भगवत् का नाम महामन्त्र व महाधन और सेवा, पूजा, जप, तप, योग, ज्ञान व वैराग्य का सार और भगवद्रूप है नाम से सिवाय और कोई दूसरा नहीं नाम ही से दोस्ती और नाम ही से नेह और नाम ही से नाता व नाम ही से विश्वास चाहिये कि यह ही भक्ति है और यही ज्ञान और नाम ही नामी है और नाम ही नाम

है। आप श्रीकृष्ण महाराज अपने नाम की बड़ाई नहीं कह सके इसबात पर सबका मत युक्त है। पद्मनाभजी का वृत्तान्त सुनिये कि उनको कबीर जी अपने गुरु की कृपा से रामनाम की अच्छे प्रकार परीक्षा हुई। काशी-जी में एक साहूकार को कुष्ठ का रोग था और कृमि शरीर में उसके पड़ गये थे गङ्गा में डूबने को चला। संयोगवश पद्मनाभजी भी वहां आगये उसका कष्ट देखकर दया आई कहा कि तीनबेर रामनाम लेकर गङ्गा में स्नान कर कि अच्छा होजावेगा। वैसाही उसने किया कि तीनबेर राम राम कहकर डुबकी लगाई अच्छा होगया। पद्मनाभजी ने उसको भक्ति का उपदेश किया और वृत्तान्त अपने गुरु कबीरजी को सुनाया। कबीर जी ने क्रोधयुक्त होकर कहा कि तुमको अबहींतक रामनाम की महिमा मालूम नहीं हुई कि एक रोग तुच्छ के दूर करने को तीनबेर रामनाम कहलाया। रामनाम ऐसा महामन्त्र है कि उसके शब्द एक बार भी कान में पड़जावें तो करोड़ों जन्म के महापातक दूर होजाते हैं एक कुष्ठी का कुष्ठ-रोग कौन बड़ी बात है। पद्मनाभजी को यह महिमा सुनकर और विशेष विश्वास दृढ़ हुआ दिन रात उसी नाम के स्मरण भजन में रहने लगे॥

पन्द्रहवीं निष्ठा॥

ज्ञान ध्यान की महिमा जिसमें बारह भक्तों की कथा है॥

श्रीकृष्ण स्वामी के चरणकमलों की मीनरेखा को और सनत्कुमार अवतार को कोटानुकोटि दण्डवत् है यह अवतार भगवंत् ने ब्रह्मपुरी में धारण किया व ब्रह्मज्ञान की विशेष प्रवृत्ति इसी अवतार से हुई। वेद, श्रुति, सब स्मृति व पुराण इस बात में युक्त हैं कि विना ज्ञान के मुक्ति नहीं तो वेदान्त १ सांख्य २ पातञ्जल ३ मीमांसा ४ तर्क ५ वैशेषिक ६ शास्त्रों ने कि वेद के अर्थके कथन करनेवाले व वेद के अङ्ग कहलाते हैं और जहांतक जो कोई मार्ग मतमतान्तर किसी के ध्यान में आवें और जो प्रवर्त्तमान हैं उन सबका मूल कारण किसी न किसी एक शास्त्र में नि-श्चय करके मिलता है यह बात कदापि नहीं कि किसी मत व पन्थ का मूल शास्त्र से बाहर होय उसके निश्चय के निमित्त सबने मथन व परि-श्रम किया तो सबने ज्ञानही को मुख्यतर जाना परन्तु सब शास्त्र अपने अपने मत व रीति से मुक्ति का वर्णन करते हैं इसहेतु उस ज्ञान का स्वरूप देखने में छःप्रकार पर दिखाई देनेलगा अर्थात् हरएक शास्त्रों के आचार्य ने अपने मूलमत के अनुसार अर्थ ज्ञान शब्द का लिखा व अभिप्राय

अपने ज्ञान का ठहराया परन्तु परिणाम व फल सबका विचार करके देखा जावे तो एकही निकल आता है । जो सब शास्त्र के मिलाने से थोड़ा भी अर्थ व वृत्तान्त ज्ञान शब्द का लिखाजावे तो भी बात वहुत वढ़जाय और देखनेमें कुछ फल विशेषभी लाभ नहीं होता इसहेतु सव शास्त्रों के मतवाद से किनारा करके जो मुख्य अर्थ व अभिप्राय वेद व वहुत से शास्त्रों के मतयुक्त हैं वह लिखता हूं । जाने रहो कि ईश्वर, माया, जीव इन तीनों का स्वरूप यथार्थ जानकर और ईश्वर के अद्वैतता पर मनको दृढ़ करके उसी को देखना और जानना यह ज्ञान का स्वरूप है अर्थात् ईश्वर एक असहाय सबसे असंग और जो गुण वेद व शास्त्रोंने कि सत्चित् आनन्दघन, अच्युत, अनन्त, नित्य, निर्विकार, व्यापक व अविनाशी इत्यादि वर्णन किये हैं तिन गुणों से युक्त और सवगुणों से न्यारे हैं । भक्तजन उसकी उपासना पांच स्वरूप से करते हैं प्रथम परम अर्थात् श्रीविष्णु नारायण वैकुण्ठनिवासी का उस स्वरूप व सामां व समाज से कि जो वेद व शास्त्रों ने भगवद्ध्यान के वर्णन में लिखा है ध्यान व आराधन करना परन्तु यह जाने रहो कि जो श्रीरघुनन्दन व श्रीकृष्णस्वामी के उपासक हैं वह श्रीरघुनन्दन स्वामी को परम व अयोध्यानिवासी और श्रीकृष्णस्वामी गोलोकनिवासी को परम अर्थात् परमात्मा मानते हैं । अभिप्राय यह कि जो जिस स्वरूप अर्थात् राम, कृष्ण, विष्णु अथवा नृसिंह के उपासक हैं वह अपने इष्ट को परम मानते हैं । मालूम रहे कि यह वह सगुण रूप है कि जिसको शिव व ब्रह्मा इत्यादि सब योगीजन भांति भांति की समाधि लगाकर ध्यान करते हैं और भेद नहीं पावते । वेद और शास्त्र, पुराण व स्मृति इत्यादि में हज़ारहों उपाय धर्म, कर्म, ज्ञान व वैराग्य आदि लिखे हैं सो इसी स्वरूप की प्राप्ति के हेतु हैं इसी स्वरूप के प्राप्त होने से मुक्त, निश्चल, कृतार्थ व कृतकृत्य कहलाते हैं । दूसरा व्यूह २ स्वरूप इस संसार को पालन करता है और फिर नाश कर देता है अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तीसरे विभूति अर्थात् अवतार सो अधर्म के दूर करने और वेदमर्याद के दृढ़ करने और अपने भक्तों की रक्षा करने के निमित्त होता है सो दो प्रकारका है । एक मुख्य अवतार राम कृष्ण इत्यादि हैं जिनका शरीर माया का रचा हुआ नहीं वे माया के अधीश हैं और पांच उपनिषद् वेद के उनके उपासना में गोपालतापिनी व रामतापिनी इत्यादि विख्यात हैं परन्तु यह सिद्धान्त

श्रीसंप्रदायवालों का लिखा है जो लोग राम, कृष्ण, नृसिंह आदि के उपासक हैं वे अपने इष्ट को अवतारी मानते हैं व विष्णु व दूसरे लोगों को अवतार। दूसरा गौण अवतार उसमें दो भांति हैं एक तो संसारीलोगों के अज्ञान दूर करने के निमित्त व धर्मकी प्रवृत्ति करने को होता है जैसे व्यास, वलि व पृथु इत्यादि। दूसरे परशुराम, शिव व गणेश इत्यादि और कुछ वर्णन अवतारों का दूसरी निष्ठा में किनारे लिखागया है और चौथा अन्तर्यामी उसके दो प्रकार हैं एक निरूप अर्थात् ज्ञानानन्द, अलख, अविनाशी, निरीह, निरञ्जन, निर्गुणब्रह्म व सर्वव्यापक हैं जिस प्रकार तिल व काष्ठ के सब अङ्गमें तेल व अग्नि प्राप्त हैं परन्तु दिखाई नहीं देते इसी प्रकार वह सब जगह प्राप्त व व्यापक है और जिसकी सत्ता व प्रेरणा से माया अनन्त ब्रह्माण्डों को रचती है दूसरा रूपवान् अर्थात् सगुणस्वरूप शंखचक्रधारी माया से निर्लेप वासुदेवस्वरूप है और यह ही भगवाद्विग्रह संकर्षण आदि व्यूहस्वरूप के साथ कि जिनका वर्णन दूसरे स्वरूप में हुआ गिनती होता है अर्थात् वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध पांचवां अर्चास्वरूप है कि जिसका वर्णन आठवीं निष्ठा प्रतिमा व अर्चा में लिखागया। इतना भगवत्स्वरूप का वर्णन होचुका माया का स्वरूप यह है कि जड़ अर्थात् अचल है स्वतन्त्र किसी प्रकार का कुछ पराक्रम नहीं रखती भगवत् की प्रेरणा से सब कार्य करती है। कोई का यह वचन है कि वह माया अनादि शान्त है अर्थात् यह मालूम नहीं होसक्ता कि कब से है और कब उत्पन्न हुई परन्तु अन्त उसका होजाता है। जब वेद व शास्त्र सिद्धान्तके अनुसार छूटने के निमित्त उपाय किया जाता है तो वह माया दूर होजाती है और कोई यह कहते हैं कि माया नित्य है व सदा रहेगी कि भगवत् की शक्ति है दूर होना उसका असंभव है परन्तु जब वेद के अनुसार यह जीव भगवत् आराधन करता है तो भगवत् की कृपासे वह माया उस जीव पर अपना बल जैसा औरों पर करती है नहीं करसक्की इस बात में मूल अर्थ दोनों का एक है केवल बोलनमात्र है। वह माया दो प्रकार की है एक विद्या कि जिससे अनन्त ब्रह्माण्ड व ब्रह्माण्डों के स्वामी उत्पन्न होते हैं। दूसरी अविद्या कि जिस के जाल में यह जीव फँसा हुआ है। जीव का स्वरूप कि जिसको आत्मा भी कहते हैं कुछ नामनिष्ठा के अन्तमें वर्णन हुआ अर्थात् भगवत् अंश, निर्विकार, प्रकाशमान, ज्ञानानन्दस्वरूप व तीनों काल भूत-भविष्य-वर्त-

मान में प्राप्त है परन्तु भगवत् के सदृश अनन्त नहीं, भगवत् शेष हैं और जीव शेषी है, शेष पद का वर्णन विस्तार से सेवानिष्ठा में होगा सो जीव पांच प्रकार के हैं। पहले नित्य हैं कि उनका जन्म दूसरे जीवों की भांति संसार में नहीं होता जैसे विष्वक्सेन व गरुड़ आदि। दूसरे मुक्त हैं कि भगवत् आराधन व ज्ञान के अवलम्ब से मुक्त हुये। तीसरे केवल हैं कि मुक्त होने के किनारे अपने तप व परिश्रम से पहुँच गये अर्थात् जीवन्मुक्त। चौथे मुमुक्षु कि जो मुक्ति चाहते हैं उनके दो प्रकार हैं पहले वह कि जिन्होंने नवधाभक्ति करके भगवच्चरणों में चित्त लगाया है। दूसरे शरणागत की भक्ति इत्यादि से कुछ सम्बन्ध नहीं सब प्रकार से केवल भगवच्चरणों की शरण ली है और अपने को सब कार्य व साधन में निराला परतन्त्र समझकर सब बोझ व भार भगवत् पर डालदिया है उनके दो प्रकार हैं एक तृप्त कि जो चाहना भगवत् सेवा भजन इत्यादि की रखते हैं। दूसरे आर्त्त कि जो भगवत् की सेवा भजन इत्यादि में रत हैं। पांचवें बद्ध हैं कि जो संसार के विषय भोग के स्वाद में भ्रमित व लीन रहकर सदा आवागमन की फांसी में फँसे रहते हैं और यही दशा रहेगी यद्यपि कोई पांचों प्रकार जो लिखिआये तिसको तीन प्रकार वर्णन करते हैं पहले विमुक्त जोकि संसार से छूटगये, दूसरे मुमुक्षु अर्थात् साधक जोकि छूटने के हेतु उपाय करते हैं, तीसरे विषयी जो कि संसार के सुखस्वाद में भूलरहे हैं परन्तु जो विचार किया जाता है तो अभिप्राय दोनों का एक है जीवका वर्णन होचुका। इस ज्ञानके निर्णय में कोई यह कहते हैं कि ईश्वर, माया व जीवके स्वरूप जानि लेनेके पीछे ईश्वर जीव को एक समझ के अभ्यास व वैराग्य केवल चित्तकी वृत्ति से दृढ़ होय और हृदय से द्वैत का भाव मिटजाय उसका नाम ज्ञान है और उसीको विज्ञान कहते हैं तात्पर्य उनका यह है कि भीतर बाहर व मन जहांतक पहुँचे सो सब भगवत् निर्विकार ज्ञानानन्दस्वरूप है सिवाय भगवत् के न कबहीं कुछ हुआ न है न होगा और यह जो संसार दृष्टि में आता है सो स्वप्नप्राय है वास्तव में सब ईश्वर है और कोई का यह वचन है कि निश्चय करके जहांतक मन व इन्द्रियों करके देखने में आताहै वह सब भगवद्रूपहै और यह जीव दास उस भगवत् का है और कोई ऐसे हैं कि उनको न पहले वचन से कुछ प्रयोजन है न दूसरे से वे यह कहते हैं कि अपने सच्चे प्यारे के ध्यान में चित्त की वृत्ति ऐसी मग्न होजाय कि सिवाय उस रूप अनूप

के और कुछ तनक भी भीतर बाहर शरीर में बाक़ी न रहे वही ज्ञान है और वही वैराग्य है और वही भक्ति है और वही शरणागति सो जाने रहो इसी प्रकार के वचन थोड़े थोड़े अन्तर से उनके मतान्तर के विचारने से बहुत हैं परन्तु परिणाम सब सिद्धान्त व वर्णन का एक होजाता है काहे से कि जिसने जीव ईश्वर को एक जाना तो उसकी दृष्टि में सिवाय एक ईश्वर के दूसरा न रहा और जिसने अपने आपको दास और भगवत् को स्वामी विचार किया तो वहभी भगवद्रूप के माधुरी में मग्न होजाने के समय अपने को भूलजायगा सिवाय उस रूपके और कुछ दृष्टि में न आवेगा सो सबको परीक्षा मिलीहोगी कि कोई समय किसीकाम में चित्तकी वृत्ति ऐसी एकाग्र लगजाती है कि तनिक सुध बुध अपने बिराने व तन बदन की नहीं रहती तो भगवत् के चिन्तवन व रूप माधुरी का सुख व आनन्द जब लाभ होगा तो कब दूसरा कोई और सिवाय इस रूप के शेष रह सकता है अब तात्पर्य व मूल अभिप्राय सब शास्त्रोंका लिखता हूं कि जिस प्रकार होसके यह जीव भगवच्चरणों में लगे सब मनोरथ इसलोक व परलोक का और सब ज्ञान व वैराग्य इत्यादि आपसे आप प्राप्त होजावेंगे सो भगवत् ने गीताजी में आप श्रीमुख से कहा है कि हमको एक जानकर अथवा पृथक् जानकर अथवा बहुत प्रकार का जानकर जो भजन सेवन करते हैं उनको निश्चय करके मिलता हूं काहेसे कि सब ओर मैं प्राप्त हूं सो जाने रहो कि जबतक भगवच्चरणों में मन नहीं लगता तबतक सब बुद्धिमानी मूर्खता है और सब जानकारी पर धूलि क्या अच्छी बात हो कि मेरा मन सब भ्रमना को छोड़कर श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों में मग्न होजावे और क्या सुन्दर भाग्य खुले कि उस समाज को जो कि ग्रन्थारम्भ में नीचे लिखा है रात दिन चिन्तन करता रहे कि यह संसार-समुद्र गोपद जल से भी तुच्छ होजाय॥

कथा वशिष्ठजी की॥

वशिष्ठजी दशों पुत्रों में ब्रह्माजी के भगवद्भक्त और सब विद्या के आचार्य हुये ज्योतिषविद्या, चिकित्सा व संगीत इत्यादि में संहिता उनकी बनाई विख्यात हैं पिछले लोगों ने उनकी संहिता को प्रमाण करके नई परिपाटी रचना की परन्तु विशेष करके उनका अधिकार धर्मशास्त्र, भक्ति व ज्ञानशास्त्र में अधिक है जिन्होंने अन्तरिक्ष में निरवलम्ब स्थिति करके भगवद्भजन व ध्यान किया और फिर दूसरे ब्रह्माण्ड में जाकर वहां

की ब्रह्माणी की सहाय के निमित्त ब्रह्मा से विज्ञापन किया और धर्म की प्रवृत्ति की सहाय के हेतु अबतक यह विचार है कि तीन स्वरूप धारण करके तीन जगह एक ब्रह्मलोक, दूसरे धर्मराज की सभा में, तीसरे सप्त ऋषीश्वरों में रहते हैं जिनके प्रताप को देखकर राजा विश्वामित्र ने अपना राज्य छोड़ दिया व भगवद्भक्ति को अङ्गीकार किया और तितिक्षा ऐसी थी कि नहीं देने नन्दिनी गऊ व नहीं कहने ब्रह्मऋषि के वैर के कारण से विश्वामित्र ने सौपुत्र उनके एक राक्षस से वध करवा दिये परन्तु समर्थ होकर उसके बदले कुछ न किया उनका वचन ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सारे जगत् को ऐसा अङ्गीकार था कि जब विश्वामित्रजी ने ब्राह्मण होने के निमित्त बहुतकाल तप किया और उनके ब्राह्मण होने का निश्चय वशिष्ठजी के वचन पर था जब वशिष्ठजी ने अपने मुख से ब्राह्मण कहा तब सबके निकट उनकी गणना ब्राह्मणों में हुई। भगवच्चरणों में ऐसी प्रीतिथी कि ब्रह्माजी से यह बात सुनी कि पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन सूर्यवंश में रामावतार होगा बड़ी प्रसन्नता से पुरोहिताई सूर्यवंश की अङ्गीकार किया जब भगवत् अवतार हुआ तो कबहीं वात्सल्यभाव में व कबहीं चराचर में व्यापक देखकर प्रेमके रङ्ग में रँगिजाते थे॥

कथा विश्वामित्र की॥

विश्वामित्र पहले क्षत्रिय राजा गाधि के पुत्र थे। जब नन्दिनीगऊ से वशिष्ठजी के हेतु सेना प्रबल हारिगई और राजा से ब्राह्मणों का प्रताप और पदवी भगवद्भक्ति के कारण से अधिक देखा तो राज्य को छोड़कर भगवद्भजन में लगे और कई लाख वर्ष तक ऐसा घोर तप किया कि क्षत्रिय से ब्राह्मण होगये। भगवद्भक्ति और तपकरके ऐसा बल व प्रताप रखते थे कि दूसरा ब्रह्माण्ड उत्पन्न करदेवें सो एकबेर ब्रह्मा से क्रोध करके नवीन ब्रह्माण्ड रचने का विचार किया और बहुतलोग कई प्रकारके उत्पन्न किये कि ब्रह्मा और सब देवता सबने आयके वह रिस निवारण की कि नवीन ब्रह्माण्ड की रचनासे शान्त भये सो जो वस्तुको उत्पन्न किया सो अबहीं तकहैं व त्रिशंकुनामक अयोध्याके राजाको शरीरसहित स्वर्गको भेजदिया जब इन्द्र ने उसको धरतीपर गिरादिया तो उसने आकाश से पुकार करी विश्वामित्रजी ने अपने तपबल से धरतीपर गिराने न दिया कि अबतक निराधार में है और इन्द्र को स्वर्ग से निकालने की इच्छा की तब देवताओं की प्रार्थना से फेर दयाको किया। इस प्रकार के चरित्र विश्वामित्रजी के

बहुत हैं भगवत् के निष्कामभक्त और कर्मशास्त्र के प्रवर्तक ऐसे थे कि एक बेर बहुत कालपर्यन्त अकाल पड़ा था कुछ भोजन को न मिला बहुत दिन पीछे एक चाण्डाल से कुछ अखाद्य वस्तु मिली और असमय में उसको खाद्य विचारकरके लाये। स्नान सन्ध्या आदि करके चाहा था कि भगवत् अर्पण व पितृकर्म करके भोजन करें परन्तु भगवत् को अपने भक्तों को ऐसा दुष्ट भोजन खाने देना अङ्गीकार न हुआ इस हेतु जब विश्वामित्रजी ने अर्पण करने को भगवत् का ध्यान किया तो समाधि लगगई और ऐसी वृष्टि भई कि सब वन व खेत भांति भांति के फल व धान्य से हरित होगये और उस मांस का भी वृक्ष कटहल व बड़हल का जमिआया। जब समाधि से जगे तो दण्डवत् व स्तुति भगवत् की करके फलादिक से क्षुधा को शान्त किया। श्रीरघुनन्दन स्वामीके चरणकमलों में जो प्रीति थी उसका वर्णन तो कब होसक्ता है कि भाव और भक्ति के वशीभूत होकर उन के साथ गये और आप उनके यज्ञकी रक्षा करके अपने रूप अनूप अमृत से तृप्त व कृतार्थ किया ॥

कथा राजा भरत की ॥

राजा भरत जोकि जड़भरत करके विख्यात हैं तिनकी कथा ऐसी प्रसिद्ध है कि सब कोई जानता है इसहेतु बहुत सूक्ष्म करके लिखता हूँ इन्होंने संसार अनित्य जानकर राज्य छोड़दिया वन में नदी गण्डकी के तीर वास करके भगवत् आराधन करने लगे। एक हरिण के विरह से प्राण त्यागकिया। हरिणका तन पाया फिर वह तन छोड़कर ब्राह्मण का तन मिला और पूर्वजन्मों का स्मरण बना रहा व हरिण के स्नेह से दोबेर जन्म लेना पड़ा इसहेतु महाविरक्त होकर सदा भगवद्भजन में लीन रहे व किसी से न कुछ बोलें न उत्तर दें इस कारण जड़भरत नाम हुआ। एक बेर कोई भीलों का राजा काली के वलिदान के निमित्त पकड़कर लेगया जब तरवार मारने का मन किया तो दुर्गा ने वही तरवार लेकर उन दुष्टों का वध किया व अपना अपराध क्षमा कराया। एकबेर राजा रहूगण ने पालकी में लगाया चींटी बचाय के चलने से पालकी उचके कहारों के साथ चाल न मिले राजा क्रोध करके बोला कि ऐसी मोटाई पर अच्छे प्रकार क्यों नहीं चलता क्या दण्ड देनेवाला मुझको नहीं पहिचानता है। भरतजी ने ऐसे ऐसे उत्तर दिये कि राजा को कुछ ज्ञान होगया। चरणों में पड़कर अपराध क्षमा कराया। भरतजी को दया आई भगवत् का ज्ञान उपदेश किया। राजा

कृतार्थ व ज्ञानवान् होगया। भगवद्भजन स्मरणमें लगा। भरतजी परमधाम को जाने लगे तो योगाभ्याससे देहत्याग किया व उस परमपद को पहुँचे कि जहां से फिर नहीं फिरते। विचार करना चाहिये कि थोड़ीसी भी प्रीति किसी वस्तु की कैसी दुःखदायी होती है ॥

कथा अलर्क मन्दालसा सुबाहु की ॥

अलर्क राजा रतिध्वज का बेटा अनन्यभक्त ज्ञानी हुआ। वृत्तान्त यह है कि मन्दालसा अलर्क की माता बड़ी ज्ञानवती व वैराग्यवती थी उसने अपने मनमें प्रण किया था कि जो मेरे उदर से जन्म ले फिर उसको जन्म मरण का दुःख न हो सो जब अलर्कजी ने जन्म लिया उनको उपदेश भगवद्धर्म का ऐसा किया कि घरबार छोड़कर वनको चलेगये और भगवद्भजन में लगे पीछे और लड़के जो हुये तो उनकी भी मति अलर्कजी के सदृशहुई। अन्तमें जो छोटा बेटा सुबाहुनामा हुआ तो राजाने राज्यके निमित्त मन्दालसा से मांगा। मन्दालसा ने अङ्गीकार किया परन्तु अपने प्रण की शोच और चिन्तना रही और एक पत्री यन्त्र की भांति लिखकर सुबाहु को देदी कि जब बड़ा कष्ट कुछ आन पड़े तो खोलकर पढ़ना। जब सुबाहु को राजगद्दी का अधिकार हुआ उसके सुख में मग्न हुआ तो मन्दालसा ने अलर्कजी से कहा अलर्कजी को सुबाहुपर बड़ी करुणा व दया हुई और चिन्ता को किया कि कौन प्रकार से सुबाहु को संसार के जाल से छुड़ाकर भगवत् सम्मुख करना चाहिये सो काशी के राजा को आधा राज्य देनेको बाचा बोल दिया फौज चढ़वाई युद्ध भये पीछे सुबाहु को सामर्थ्य युद्धकी न रही शोच में पड़ा तब उस यन्त्र को जो माता ने दिया था पढ़ा उसमें लिखा था कि जब बहुत दुःख हो सत्संग करना चाहिये और यह संसार अनित्य है भगवत् नित्य और सच्चिदानन्दघन हैं ऐसे स्वामी को छोड़ कर जो अनित्य संसार में मन लगाते हैं सदा आवागमन के जाल में फँसे रहते और जो भगवच्छरण होकर भजन सुमिरण में रहते हैं सो भगवत् के परमपद को प्राप्त होते हैं। सुबाहु को इस वचन से कुछ ज्ञान होगया परन्तु सत्संग को भी विशेष जानकर दत्तात्रेयजी के पास पहुँचा उनके थोड़े ही उपदेश से पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होकर सब राजकाज छोड़ अपने बड़ेभाई अलर्क के पास गया। हाथ जोड़कर विनय किया कि आप की कृपा से राज्य और संसार के बखेड़े से छूटकर भगवच्छरण हुआ हूँ आप राजगद्दी अङ्गीकार करिये। अलर्कजी बहुत प्रसन्न हुये और कहा

कि हमको कुछ चाहना नहीं है केवल तुम्हारे छुड़ाने के हेतु यह उपाय किया था । अलर्कजी ने काशी के राजासे कहा कि सुबाहु ने तो राज्यको त्याग करदिया तुम राज्य करो उसने जो सब वृत्तान्त सुना व संसार की अनित्यता पर विचार किया तो उसने भी अङ्गीकार न किया अपने राज्य को भी छोड़कर भगवत् के शरण में आया और सबनें ऐसा भगवत् के भजन व सेवा में मन लगाया कि थोड़ेही काल में परम आनन्द व परम पद को प्राप्त हुये ॥

कथा श्रुतिदेव बहुलाश्व की ॥

श्रुतिदेव ब्राह्मण व बहुलाश्व राजा दोनों परमभक्त भगवत् के व ज्ञानी अयोध्या में हुये । जैसे अपने भक्तों के हेतु भगवत् अवतार धारण किया करते हैं तैसाही चरित्र इन दोनों भक्तों के निमित्त किया अर्थात् जब श्रीकृष्ण महाराज जनकपुर से द्वारका जाने को बिदा हुये तो अयोध्याजी में आये । ब्राह्मण व राजा दोनों आगे जाकर मिले व दर्शन पाकर कृतार्थ हुये और दोनों ने अपने २ गृह के पवित्र करनेके हेतु विनय किया भगवत् ने विचार किया कि दोनों भक्त बराबर मेरे किसके जाऊँ किसके नहीं कृपायुक्त होकर सब ऋषीश्वर व सब सामान सहित दो रूप होकर दोनों भक्तों के गृह को पवित्र किया चार महीने तक दोनों भक्तों के घर अयोध्याजी में रहे । एक का भेद दूसरेने न जाना। रातदिन नित्य नये भाव प्रेम से सेवा करते रहे विदा के समय अनपायिनी भक्ति का वरदान पाया ॥

कथा उद्धव की ॥

उद्धव परमभागवत और ज्ञानी हुये यद्यपि श्रीकृष्ण महाराज कृपा-सिन्धु उनको मन्त्री व एकान्ती मित्र व नगीची नातेदार समझते थे तथापि उद्धवजी सदा अपने दासभाव से सेवन करते रहे जब श्रीकृपा-सिन्धु महाराज ने व्रजगोपियों के बोध व समझाने के हेतु व्रज में भेजा तो गये व व्रजसुन्दरियों को कि व्रजचन्द्र महाराज के वियोग से विना जल के जैसे मीन तड़फड़ाती हैं सो दशा थी उन विरहिनियों को ज्ञान व योग का उपदेश करने लगे परन्तु व्रजकिशोरियों के नयन व मन प्राण सब श्रीमनमोहन श्यामसुन्दर के रूप व माधुरी के अमृतसिन्धु में मग्न और प्रेम व स्नेह के रस ले छकी व मतवारी थीं वह उपदेश उद्धवजी का तनक भी उनको न लगा और यह वचन बोलीं ॥

सो० सजल मेघ तन श्याम, अधर सुधर मुरली धरे।
मोहीं सब व्रजवाम, और न जानति ब्रह्म हम ॥ १ ॥

ऐसे ऐसे उत्तर प्रामाणिक दिये कि उद्धव का ज्ञान व योग धूलि में मिलगया और प्रेम में बेसुध व विह्वल होकर व्रजवल्लभाओं के चरणों में लोटनेलगे क्या जाने उस अपने ज्ञान और योग भूले हुये को ढूंढ़ने लगे होंगे कभी उनके दर्शन से अपने आपको कृतार्थ मानकर अपने भाग्य की बड़ाई करते थे और कभी उस परमानन्द से कि जो गोपियों को प्राप्त था अपने आपको भाग्यहीन जानकर अपने भाग्य से लड़ते थे कि मैं इस व्रज में गोपवधू क्यों न हुआ सो उद्धवजी गोपियों के प्रेम से बेसुध होगये तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि आप व्रजभूषण महाराज ने ऐसी ईश्वरता व प्रभुता से युक्त की कि ब्रह्मादिक भी जिसका पार नहीं पाते ऐसे उनके प्रेम में मग्न हैं कि अपने परमधाम को छोड़कर उन के हेतु नरशरीर धारण किया फिर उनकी प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता पर भी अधिक से अधिक जानकर सब प्रकार से उनकी इच्छा व चाह को पूर्ण किया और उनके अनुकूल चरित्र किये और अबतक ऐसे वशवर्ती हैं कि जो कोई उनके चरित्रों को कैसाही पातकी व अपराधी पढ़ता है अथवा सुनता है उसके हृदय में आजाते हैं निश्चय करके व्रज-सुन्दरियों का चरित्र संसारसमुद्र से पार उतारने के हेतु ऐसा बड़ा जहाज़ है कि अच्छे व बुरे कर्मरूप पवन की झोंक नगीच नहीं आती नहीं मालूम कि कितने असंख्य जीव उसके प्रभाव से इस जन्म मरणरूपी घोर नदी से पार हुये और आगे होंगे जब उद्धवजी ने ऐसा प्रेम व्रज-नागरियों का देखा तो अपने ज्ञान व योग को तुच्छ जानकर मथुरा को सिधारे और सब वृत्तान्त श्रीनटनागर व्रजचन्द्र महाराज से निवेदन किया वाह वाह धन्यहै गोपियों का प्रेम कि जब आपने वह वृत्तान्त सुना तो यद्यपि हर्ष शोक, दुःख सुख व माया और मन से परे हैं परन्तु उस प्रेम में ऐसे मग्न होगये कि जिस प्रेम का प्रवाह हृदय से उमँगकर नयनरूपी झरना से प्रवाहवान् होकर निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निर्द्वन्द्व, निर्मोह, निर्लेप नाम और गुणोंको बहाता हुआ कपोलोंपर होकर वैजयन्ती और पीताम्बर को भिजाता हुआ वक्षस्थल से चरणकमलों तक पहुँचा। पीछे जब कृपासिन्धु महाराज मथुरा को छोड़कर द्वारका को पधारे तो उद्धव जीने चरणसेवा न छोड़ी व साथ गये। जब यादव लोगोंको शाप हुआ तो

भगवत्ने कृपा करके ज्ञान उपदेश किया व भक्ति का वरदान देकर बदरिका-
श्रम को भेज दिया ॥

कथा बाल्मीकि श्वपच की ॥

बाल्मीकि श्वपच भगवद्भक्त ज्ञानवान् हुये जब राजा युधिष्ठिर ने इन्द्र-
प्रस्थ में राजसूययज्ञ किया तो भगवत् से पूछा कि कैसे परीक्षा होगी कि
यज्ञ पूर्ण हुआ ? भगवत् ने कहा कि जब हमारा शंख आपसे बजे तब
समझलेना कि यज्ञ पूर्ण और सिद्ध हुआ । राजाने शंख को भगवत् आज्ञा
के अनुसर यज्ञस्थान में स्थापित किया उस यज्ञ में जितने पृथ्वीपर ब्रा-
ह्मण, ऋषीश्वर, ज्ञानवान्, राजा व रङ्क आये थे सबका सत्कार दान व
मानसे करके राजा युधिष्ठिर ने सन्तुष्ट किया व सबको यथायोग्य रीति
से भोजन कराया परन्तु शंख न बजा तब संदेह से युक्त होकर श्रीकृष्ण
महाराज से कारण पूछा तब आज्ञा हुई कि मालूम होता है कि किसी
भक्त ने अपनी जूठन से इस यज्ञ को सफल नहीं किया इसी कारण से
शंख नहीं बजा । राजा ने विनय किया कि महाराज सब देशोंके ऋषीश्वर
और ब्राह्मण आये क्या उनमें कोई तुम्हारा भक्त नहीं था ? भगवत् ने कहा
कि उन ऋषीश्वर और ब्राह्मणों से पूछना चाहिये सो राजा ने सब से
पूछा तो किसीने ऋषीश्वर और किसीने पण्डित और किसीने वेदपाठी
और किसी ने ब्रह्मवादी और किसीने कर्मेष्ठी अपने आपको बतलाया
परन्तु भगवत् उपासक किसी ने न कहा तब राजा वा द्रौपदी व अर्जुन
सब ने बड़ी प्रार्थना से भगवत् से पूछा कि महाराज भक्त को बतलावो
तब उन्होंने बाल्मीकि श्वपच को बतलाया तब अर्जुन व भीम आदि
राजा के भाई उनके घर गये व प्रणाम करके अपने घर आने के हेतु
विनय किया । बाल्मीकिजीने पहले बहुत प्रार्थनाही से नाहीं किया पीछे
भगवत् की इच्छा समझकर राजा के घर आये । राजा युधिष्ठिर व भक्त-
वत्सल महाराज ने बड़े आदर व सन्मान से उनको बैठाला । द्रौपदी आप
थाल भोजन का तैयार करके लाई व जब बाल्मीकिजी ने भोग लगाया
शंख थोड़ा बजा । भगवत् ने छड़ी शंखपर मारी व आज्ञा को किया कि अब
किसहेतु थोड़ा बजता है ? शंखने विनय किया कि महाराज द्रौपदी से पू-
छना चाहिये । द्रौपदी ने हाथ जोड़कर विनय किया कि मेरा अपराध सच
करके है किसहेतु कि जितने भोजन अलग अलग कई प्रकार के बाल्मीकि
जी के आगे गये उन सबको एक में मिलाकर भोग लगाया हमको बुरा

मालूम हुआ और मन में कहा कि वाल्मीकिजी नाना प्रकार के भोजन के स्वाद को कुछ नहीं जानते हैं इसीसे सब को एक में मिलाकर खाते हैं। भगवत् ने कहा कि अब आगे पर भूलकर भी भगवद्भक्तों को बुरा और उनके आचरण पर दोष विचार करना न चाहिये । पीछे शुद्ध व विश्वासयुक्त चित्त से भोजन कराया तो शंख अच्छी उच्चध्वनि से बजा व राजा का यज्ञ पूर्ण हुआ और भगवद्भक्ति व प्रताप भक्तों का सारे संसार में पहुँचा भजन भाव की प्रवृत्ति अच्छे प्रकार हुई सच बात है ॥

चौ० हरिको भजै सो हरिको होय । जाति पांति पूछै नहिं कोय ॥

महाभारत में भगवत् का वचन है कि जो चारों वेद का जाननेवाला है परन्तु मेरा भक्त नहीं तो उससे जोकि चाण्डाल और पतित भी है और मेरा भक्त है तो वही मेरा प्यारा है उसीको देना चाहिये और वही मिलने के योग्य है और उसीका पूजन उचित है जैसा मेरा ॥

कथा ज्ञानदेव की ॥

ज्ञानदेवजी परम भागवत विख्यात हैं जिसके चेले नामदेव व तिलोचनजी सूर्य व चन्द्रमा के सदृश हुये। काव्य उनका सरस्वती व गङ्गा की भांति जगत् को पवित्र करता है। ज्ञानदेव के पिता घर को छोड़कर किसी संन्यासी के पास गये व यह कहा कि हमारे घर स्त्री नहीं है हम संन्यास लेंगे यह कहके संन्यासी होगये। उनकी स्त्री पीछे पहुँची व संन्यासी से झगड़ा बखेड़ा करके उनको घर ले आई। दूसरे ब्राह्मण सजातियों ने उनको जाति से अलग करदिया कि यह संन्यासी होगया जाति में नहीं मिलसक्ता सो अलग रहे। तीन लड़के जन्मे बड़े बेटे जो ज्ञानदेव थे लड़काई से श्रीकृष्ण महाराज के चरणकमलों में उनकी प्रीति थी ब्राह्मणों के पास जो वेद पढ़ने के हेतु गये तो किसी ने न पढ़ाया कि जाति से बाहर है वेद पढ़ने का अधिकार नहीं । ज्ञानदेवजी ने कहा कि ब्राह्मण होना कुछ वेद पढ़ने पर सिद्धान्त नहीं है कि पशु पढ़ सक्ते हैं सिवाय इसके वेदको भगवत् से अधिक कोई नहीं जानता और वह सब में सब जगह प्राप्त है यह कहकर एक भैंसे को वेद पढ़ने की आज्ञा दी उस भैंसे ने पढ़ना वेद का आरम्भ किया और कई शाखाको ऐसी शुद्ध वाणी से कि किसी ब्राह्मण को स्मरण न था पढ़ सुनाया वे लोग यह वृत्तान्त देखकर भगवद्भक्त में विश्वासित होकर चरणों में गिरे ज्ञानदेव जी ने उनपर दया की और भगवद्भक्ति की शिक्षा की ॥

कथा लड्डूस्वामी की ॥

लड्डूस्वामी परम भागवत भगवत् रङ्गमें रँगेहुये और सब में उसी भगवद्रूप के चिन्तवन के करनेवाले हुये दुःख सुख से अलग होकर जहां तहां विचरते रहते थे संयोगवश ऐसे देश में पहुँचे कि जहां तनिक लेश भगवद्भक्ति का न था और वहांके लोग दुर्गा की प्रसन्नता के हेतु मनुष्य का बलिदान देते थे। लड्डूस्वामी को मोटा चिकना देखकर काली की भेंट के हेतु लेगये सो भगवत् अपने भक्तोंकी सहाय के हेतु सदा साथ रहते हैं सिवाय इसके लड्डूस्वामी की दृष्टि में दुर्गा भी भगवद्रूप थी इसहेतु वह प्रतिमा काली की फटगई व दुर्गा भयंकररूप से प्रकट हुई सब दुष्टों को तरवार से वध किया और भगवद्भक्त के दर्शन से अति प्रसन्न हुई। भगवद्भक्ति का प्रताप दिखाने के हेतु उनके सम्मुख नृत्य किया और चरणोंको दण्डवत् किया। यह वृत्तान्त दुर्गा महारानी केविश्वास व सहाय का वहां के रहनेवालोंने देखा तो आधीन हुये और भगवद्भक्ति को अङ्गीकार किया ॥

कथा नारायणदास की ॥

नारायणदास उत्तरदेश में बदरिकाश्रम के निकट परम भागवत नारायणस्वरूप हुये। भक्ति व भजन में अत्यन्तनिष्ठ थे। मन तो भगवत्स्वरूप के चिन्तवनमें मग्न रहता था और मुखसे अनुक्षण भगवच्चरित्र और नाम लेतेथे। भगवद्भक्ति के प्रवृत्त व गुप्तचरित्र व भाव के कहनेवाले एकही हुये। भक्तोंकी सेवा भगवत्के सदृश किया करते थे। बदरिकाश्रमसे दर्शन के हेतु मथुराजी में आये केशवदेवजी के दरबार में रहने लगे। एक दिन सोचा कि जो लोग केशवदेवजी के दर्शन को आते हैं उनका मन जूतियों की चिन्ता में रहता होगा सो उनकी रखवारी करना आरम्भ किया व उनके प्रताप व महिमा को कोई जानता नहीं था इस हेतु किसीने इस सेवा के करने में वर्जना व प्रार्थना को न किया। एकबार एक दुष्ट बड़ी भारी गठरी उनके शिरपर रखवाय के लेचला राह में किसी ने पहिचानकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया तब वह दुष्ट लज्जित होकर अपराध क्षमा कराने लगा। आपने कहा कि इस शरीर से किसीका कुछ काम निकले सोई लाभ है तुम शोच मत करो तब वह रोनेलगा चरणों में गिरपड़ा नारायणदासजी ने उसको भगवद्भक्ति का उपदेश करके एकक्षण में भगवद्भक्त व सब अपराधों से निर्मल करदिया। सत्य करके भगवद्भक्तों को सब कुछ सामर्थ्य है जो चाहें सो कर दिखलावें जो किसीको यह शङ्का होय कि ऐसे

अपराधी पर ऐसी कृपा किसहेतु करी सो यह लक्षण व धर्म शुभदर्शन व साधुता का है जैसे मेघ की वृष्टि गाली देनेवाले व स्तुति करनेवाले को बराबर है इसी प्रकार भगवद्भक्तों की कृपा सबपर बराबर होती है ॥

कथा किन्हरदास की ॥

किन्हरदास परम भागवत भजनानन्द हुये । भगवद्भक्तों की कृपा से निज भगवत्स्वरूप की माधुरी का उनको लाभ हुआ गुरु के शरण होकर भगवद्भक्ति का स्वरूप अच्छा जानकर संसार के सब धर्म छोड़दिये वस्तु व अवस्तु, झूठ व सांच, ज्ञान व अज्ञान, सार व असार को विचार कर सारे जीवन को भगवद्रूप जानकर निश्चय किया जैसे लोग बतलाया करते हैं कि फलाने वृक्ष की शाखापर वह चन्द्रमा दिखाई देताहै और चन्द्रमा उस शाखा से लाखों कोस पर है इसी प्रकार किन्हरदास कहने मात्र को संसार में होकर वास्तव करके अलग थे कबहीं किसी को कठोर व दुर्वाच्य न कहा भगवत् और भक्तों के चरित्र सदा वर्णन करते थे ॥

कथा पूर्णदास की ॥

पूर्णदासजी की महिमा कौन वर्णन करसके जिन्होंने हिमाचल पर्वत में गङ्गाकिनारे योग के प्रकार से समाधि लगाकर भगवत् के ध्यान में मन लगाया और रीछ व व्याघ्र आदि का कुछ डर न किया । प्राणायाम की विधि से प्राण को जीतकर जीवन मरण अपने वशमें करलिया साक्षी शब्द व पद निर्वाण उपासनाके उनके बनाये हुये बहुत हैं व विख्यात हैं ॥

सोरहीं निष्ठा ॥

वैराग्य व शान्त के वर्णन में जिसमें चौदह भक्तों की कथा हैं ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की बिन्दुरेखा को दण्डवत् करके श्रीनारायण अवतारकी वन्दना करताहूं जिन्होंने बदरिकाश्रम में वह अवतार धारण करके तप और वैराग्य की प्रवृत्ति संसार में फैलाई । जाने रहो कि तीव्र वैराग्य के परिपक्व होने पीछे शान्त की पदवी प्राप्त होती है इस हेतु पहले वैराग्य का स्वरूप तिस पीछे शान्तरस का वर्णन इस निष्ठा में लिखा जायगा । सब कोई इस बात को जानता है कि विना एकाग्र होने मनके भगवत् नहीं मिलता और मन एकाग्र तब होताहै कि सब सम्बन्धसे अलग व त्याग होय सो गीताजी में जब अर्जुन ने भगवत्से प्रश्न किया कि मनका रोंकना ऐसा कठिन है कि जैसा कोई वायुके पकड़ रखनेका यत्न करे क्योंकि मन चञ्चल व बलवान् व हठवाला है तब भगवत् ने उसके उत्तर में कहा

कि अभ्यास व वैराग्य से मन पकड़ा जाता है इसहेतु त्याग मुख्यसाधन है सो स्वरूप उस वैराग्य का सूक्ष्म यह है कि सार को ग्रहण करना व असारको छोड़देना परन्तु व्याससूत्रों में उस वैराग्यकी दो अवस्था लिखी हैं। पहली अपर कि उसको वशीकार कहते हैं उसका स्वरूप यह है कि संसारी सुख व आनन्द से लेकर स्वर्ग व ब्रह्मलोक पर्यन्त के सुख आनन्द से वैराग्य व त्याग होय व यद्यपि सूत्र के अक्षर से प्रकट कोई अर्थ इस अवस्था का मालूम नहीं होता परन्तु तात्पर्य उस सूत्र का चार प्रकार के निर्णय पर है प्रथम यतिमान अर्थात् सार और असार का विचार और उसके त्याग का उपाय १ दूसरा व्यतिरेक अर्थात् यह मनन करना कि इतना अवगुण अन्तर व बाहर का मिटगया और इतना और बाक़ी है उनका भी त्याग चाहिये २ तीसरे इन्द्र अर्थात् जहांतक स्वाद व सुख व चाह सब देखे या सुने हैं उनकी ओरसे मनको ऐसा रोंकना कि फिर मन उनकी ओर न जावे ३ चौथे वशीकार अर्थात् सुख व स्वाद के चाह की तनक लस मनमें बाक़ी न रहे ४ दूसरी अवस्था का नाम पर है उसमें कोई विशेष निर्णय नहीं स्वरूप उसका यह है कि माया से मिले हुये जो तीन गुण अर्थात् सत्त्व रज तम उनको त्याग करके केवल भगवत् सच्चिदानन्द घन पूर्णब्रह्म परमात्मा के साक्षात् स्वरूप में मग्न होजाना और माया के गुणोंसे सर्वप्रकार वैराग्य होना इस निर्णय से लाभ यह हुआ कि भगवत् की प्राप्ति केवल वैराग्य से है जबतक सब स्वाद व सुखकी चाहसे वैराग्य न होगा तबतक कदापि भगवत् न मिलेगा और विचार से भी मालूम होताहै कि मन एक पात्र के सदृश है जबतक वह संसारी सम्बन्ध व सुख भोगके चाहसे भराहै तबतक भगवत् के आनेकी व निवास की कहां ठौर है जो भगवत् को उस मनरूपी पात्र को पूर्ण करना अङ्गीकार है तो दूसरे सब सम्बन्ध व सुखभोग की चाहना से खाली करना चाहिये। शास्त्रों में जो यह बात लिखी है कि गृहस्थाश्रम के पश्चात् गृह त्याग करके वनवास करे तो अभिप्राय उसका यह है कि गृहस्थीदशा में भगवद्भजन नहीं हो सक्ता। जब सब संसार के कार्य से अलग होगा तब मन एकाग्र होकर भगवत् में लग जायगा। जिस किसीका मन संसार से त्याग व भगवत् की ओर लगजाय तो वह त्याग इस परम्परा के अनुसार होय जो ऊपर लिख आये अर्थात् सार का ग्रहण व असारका त्याग और उन दोनों के विचार में लगा रहे नहीं तो केवल इसका नाम वैराग्य नहीं कि घरबार

स्त्री को छोड़कर फ़क़ीर होगये और बाबाजी कहलाने लगे जो इसी का नाम वैराग्य हो तो वनजन्तु सदा वन में मग्न रहते हैं अथवा हजारों मनुष्य ऐसे हैं कि दरिद्रता के कारण से शरीर पर वस्त्र नहीं न एक कौड़ी पास है व न स्त्री न बेटा तो क्या वे भगवत् को पहुँचजाते हैं वरु सदा आवागमन के जाल में फँसे रहते हैं और जिनको सार व असार को विचार अनुक्षण रहता है और उनके ग्रहण व त्याग में लगे रहते हैं उनको जो गृहस्थधर्म भी है तो सब संसारी सम्बन्ध वनके सदृश हैं और सब लड़के बाले सत्संग व साधुसेवी हैं सो पुराणों में जनक व प्रह्लाद व राजाबलि आदि की हज़ारों कथा व इस भक्तमाल में सैकड़ों भक्तों की साक्षी है और जिनलोगों का मन कुटुम्ब व परिवार में फँसा हुआ है और सार असार का विचार नहीं तो वे सब वस्तु को छोड़कर जङ्गल में चलेजावें तौभी हज़ार दुनियांदारों के बराबर हैं व मुमुक्षु साधक को एक बात यह भी जानकारी है कि सार व असार के विचार व गृह कुटुम्ब के त्याग करने से मन निर्मल होकर भगवत्स्वरूप का प्रकाश जिस २ भांति प्रकट व साक्षात् होता जाताहै उसी २ भांति परोक्ष व अभूत बात का जानना व सत्य होजाना वचन आशीर्वाद व शाप और प्राप्त होजाना सामा मन वाञ्छित जोकि अणिमादिक अष्टसिद्धि प्रसिद्ध की सम्बन्धी हैं यह सब अधिक होजाता है । जो तो उस विरक्त योगी का मन उन सिद्धियों की ओर लगगया तो सब जाता रहा फिर ठिकाना लगना कठिन है सो उस समय मनको ऐसा सम्हाले कि तनक भी मन उन सिद्धियों में न लगे ऐसा त्याग करे कि जैसे वान्त व विष्ठा को घिनावना जानकर छोड़ देते हैं जो उस समय सम्हल गया तो तुरन्त वाञ्छितपद को पहुँचगया। जो उन बटमारों ने लूट लिया तो सातवें पाताल को गया व यद्यपि शान्तरस का स्वरूप वैराग्य में मिला प्रकट होताहै परन्तु उपनिषद् और रस शास्त्र के अनुसार शान्तरस अलग स्थापित किया है इसहेतु रसों की पद्धति के अनुसार से उस शान्तका वर्णन लिखा जाता है । आरम्भमें प्रकट होने सब रसों के हेतु चार सामग्री अर्थात् विभाव, अनुभाव, सात्त्विक व व्यभिचारी लिखीगई सो इस शान्तकी प्रथम सामग्री विभाव में भगवत् सब मङ्गल व आनन्दकी खानि अनगिनत ब्रह्माण्डों का नायक व रचनेवाला असंख्यात जीवों को व सब जानने वाला तीनोंकाल में विराजमान जिसका नाम पाप व महाकष्ट से छुड़ाने

वाला परमानन्द के देनेवाले जो गुण हैं तिनकी राशि जिसके बराबर अथवा अधिक दृष्टान्त को कोई नहीं पूर्णब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानन्दघन, भगवत् अपना इष्टदेव वह तो विषयालम्बन है और शिव सनकादिक नारद अथवा दूसरे भक्त आश्रयालम्बन हैं व सामग्री दूसरी अर्थात् अनुभावदृष्टि नासा के अग्रपर व ध्यान अनुक्षण व सब ओर से निर्मल व दुःख सुख का त्याग इत्यादि व सामग्री तीसरी अर्थात् सात्विक की जो जो आठ दशा हैं उनमें से एकदशा मूर्च्छा की नहीं होती और सात यथा कथञ्चित् समयपर होती हैं व सामग्री चौथी व्यभिचारी में स्मृति व निर्वेद इत्यादि कई दशा योग्य इस रस के किसी समय में प्रकट होकर जाती रहती हैं। स्थायीभाव इस रस का वह है कि सबमें बराबर दृष्टि हो व ब्रह्मलोक तक के सुखों से अनरुचि होय। जिन भगवद्भक्तों की वैराग्य के प्राप्त होने पीछे शान्तरस में दृढ़ स्थिति का संयोग पहुँचा उनके लक्षण यह हैं कि किसी जीव से वैर नहीं रखते सबके मित्र, सब पर दया करनेवाले होते हैं अहंकार व गर्वसे रहित व दुःख सुख दोनों को बराबर जानते हैं। सहनशील व सब ओर से चित्त सन्तुष्ट भगवत्के ध्यान में अनुक्षण मन लगा हुआ दृढ़ और अनन्य विश्वास भगवच्चरणों में सब इन्द्रिय भगवत् स्वरूप में मग्न किसी को उनसे दुःख नहीं पहुँचता न आप किसीसे दुःखी होते हैं। सुख, क्रोध व भय से जो भांति भांति की चिन्तना मन में उत्पन्न होती हैं उनसे छूटेहुये न कबहीं प्रसन्न होते हैं न अप्रसन्न न कबहीं किसी बात का शोच करते हैं न किसी वस्तु की चाहना मन विमल व एकाग्र अच्छे व बुरे से अलग बुद्धिमान् व पवित्र शत्रु मित्र दोनों से बराबर संसार से व संसारी कार्य करने से अलग व अनरुचि मान व अपमान, निन्दा व स्तुति, दुःख व सुख, शीत व उष्णकाल को सम करके मानते हैं। क्षुधा शान्त के हेतु थोड़ेही से सन्तुष्ट होते हैं घरबार से न्यारे बुद्धि निर्मल व तीक्ष्ण यह सिद्धान्त श्लोकों में से थोड़े से श्लोकों का अर्थ लिखागया स्तुति व बड़ाई शान्तरस व वैराग्य की लिखने व कथन में नहीं आयसक्री जिस किसीको जानने और सुनने की विशेष प्रीति होय सब पुराणों से मालूम करसक्ता है। हे श्रीकृष्णस्वामी! कहां मैं और कहां शान्तरस की पदवी! यद्यपि आपकी कृपा से सब कुछ लाभ होसक्ता है कि एक निमिष में मशक को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मशक और तृण को कुलिश और कुलिश को तृण करसक्के हैं परन्तु अपने

अपराध व अपकर्म की ओर देखता हूं तो किसी बात के निमित्त नहीं कह सक्ता जो निर्लज्ज होकर वैराग्य व शान्त माँगूं तो यह शोच होता है कि उस श्यामसुन्दर नवलकिशोररूप अनूप के चिन्तवन के हेतु क्यों न प्रार्थना करूं कि जिसके ज्ञान और वैराग्य दोनों सेवक व दास हैं अरे मन ! इस रूप और समाज के चिन्तवन में जो तू लगे तो तेरी पदवी का कोई नहीं कि चित्रकूट के निकट मन्दाकिनी के किनारे पर एक वन परम शोभायमान तमाल, कदम्ब, आम, चम्पा व मौरसरी इत्यादि वृक्षों का है और उन वृक्षों के मध्यमें जो चार वृक्ष एक वट दूसरा पीपल तीसरा प्लक्ष चौथा तमाल है उन पर भांति भांति की बहुत ललित हरी लता रङ्ग रङ्ग के सुगन्धित फूलों की छाईहुई उन वृक्षों के नीचे इन्द्रादिक देवताओं ने भीलरूप बनाकर परम शोभन कुटी रची है और उस कुटी के आगे बड़ी एक वेदी है कि श्रीजानकी महारानी अखिलब्रह्माण्डेश्वरी ने देवताओं के बनाने पीछे अपने श्रीहस्तकमल से उसकी शोभा को रचा है । उसके चारों ओर फुलवारी में रङ्गरङ्ग के फूल रायवेल, चमेली, दवना मरुआ व मदनबाण आदि के ऐसी सुन्दरताई के साथ हैं कि जिस ओर दृष्टि जाती है बरबस मन अटकता है उसके बीच में श्री-रघुनन्दन स्वामी शान्तस्वरूप शोभाधाम कि जिनके मुख की शोभा के आगे नीलमणि, कमल, घन व चन्द्रमा की उपमा फीकी है मुनिवेष बनाये हुये जटामुकुट शिरपै हैं और उसमें फूल जगह २ श्रीमहारानी जी ने गूथे हैं कानों और हाथों में फूलों के आभूषण, वनमाला गले में, धनुष बाण धारण किये विराजमान हैं वाम अङ्ग श्रीजनकनन्दिनी शो-भित, लक्ष्मण महाराज शस्त्र धारण किये सेवा में हाथबांधे तत्पर हैं, चारों ओर मुनि बैठे हैं, कुछ प्रश्नोत्तर होरहा है ॥

दो० लसतमञ्जु मुनिमण्डली, मध्य सीय रघुनन्द ।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भक्त सच्चिदानन्द ॥ १ ॥

कथा रन्तिदेवजी की ॥

रन्तिदेवजी राजा दशकन्त के वंश में ऐसे परमभागवत हुये कि राज्य करते समय सम्पूर्ण राज्य की आमदनी को ब्राह्मणसेवा व यज्ञ दान इत्यादि में लगादिया और जब राज्य व संसार को असार जानकर त्याग किया व स्त्री पुत्र सहित वन में जाकर भगवद्भजन करने लगे तो उस दशा में भी जो कुछ मिलजाता तो याचक व भूखे को उठादेते थे। एकबेर

अट्ठाईस दिन पीछे थोड़ासा नाज भगवत् इच्छा से मिला उसके तीन भाग करके भगवत्अर्पण करके भोजन करने बैठे तबतक एक ब्राह्मण आगया और भोजन यांचा राजाने अपना भाग उठाके दिया तिस पीछे एक शूद्र आया राजा ने अपने लड़केका भाग देदिया फिर एक म्लेच्छ ने यांचा उसको स्त्रीका भाग उठादिया और आनन्द होकर भगवद्भजन करनेलगे। भवगत्ने जो राजा को भजन व वैराग्य व दयामें दृढ़ देखा तो प्रसन्न हुये साक्षात् दर्शन दिये बड़ी कृपा करके आज्ञा की कि जो चाहना होय सो मांगो। राजा ने विनय किया कि सिवाय भक्ति के और कुछ चाहना नहीं है सो अपनी भक्ति दीजिये और यह संसार भांति भांति के दुःख व पीड़ा में फँसा है तो दूसरा वर यह मांगता हूँ कि सबका दुःख मुझको मिले व मेरे भाग्यमें जो कुछ सुख हो सो सबको मिले। भगवत् इस परोपकार व दयापर अधिक प्रसन्न हुये व जो पद परमयोगियों को मिलता है सो उनको दिया। जाने रहो कि जो कोई भगवद्भजनसे विमुख हैं उनको सब सुख व ऐश्वर्य संसार के दुःखरूप होजाते हैं और जो भगवद्भक्त व भजनानन्द हैं उनको सब दुःख व पाप सब सुख व पुण्य परमानन्दके सदृश हैं॥

कथा परशुरामजी की॥

परशुरामजीने अपनी भक्तिके प्रतापसे जङ्गल देशके जङ्गली लोगों को इस प्रकार सत्संगी व पार्षदरूप कर दिया कि जिस प्रकार चन्दन के वृक्षों की हवा सारे वनको चन्दन कर देती है अथवा जैसे बहुकाल का अन्धकार दीपकसे तुरन्त दूर होजाय। श्रीभट्टजी व हरिव्यासजीका जो परम्परा मार्ग था उसीपर चलते थे। भगवत्कथाकीर्तन का ऐसा नियम था कि हज़ारों को भगवत्सम्मुख करदिया। भक्ति व माला, तिलक की प्रवृत्ति चलाई व राजधानीमें रहकर सब ऐश्वर्य प्राप्त था परन्तु उस सब वैभव संसारी से ऐसा वैराग्य था कि सबको तुच्छ जानते थे सो यह दोहा बनाया उन्हीं का है॥

दो० माया सगी न मन सगो, सगा न ये संसार।
परशुराम या जीवको, सगो सो सिरजनहार॥

कोई साधु इनकी परीक्षा को गया व कहा कि आपको भगवत्से प्रीति है तो इस वैभव से क्या काम है अलग भजन करना चाहिये। परशुराम जी अभिप्राय उस साधु का जानगये और सब छोड़कर कोपीन बांधके

एक पहाड़ की गुफामें जा बैठे भगवद्भजन करनेलगे। संयोगवश वहां एक बनजारा आगया और बहुत धन व पालकी और राजाओं की सामां सब भेंट करी। वह साधु अच्छी प्रकार समझगया कि परशुरामजी को कुछ चाहना वैभव की नहीं है परन्तु भगवत् इच्छा से आपसे आप आते हैं परशुरामजी के चरणों में पड़ा लज्जित होकर विनय किया कि मैं अज्ञतासे बोला मेरा अपराध क्षमा कीजिये आपका प्रताप जाना सत्य करके भगवद्भक्त जितना ऐश्वर्य का त्याग करते हैं उतनीही और बढ़ती होतीहै तो जो संसारी सुखके चाहनेवाले जितना भगवद्भजन में लगेंगे उतनाही वैभव सुख उनको मिलेगा और सिवाय उसके परमनिधि भगवद्भक्ति भी उनको लाभ होगी॥

कथा रांका बांका की॥

रांकाजी परम वैराग्यवान् भगवद्भक्त हुये और बांका उनकी स्त्री रांकाजी से अधिक भक्तथी। पण्ढरपुर जहां नामदेवजी का घरहै तहांही उनका घर था। जङ्गल से लकड़ी लाते बेंचके निर्वाह करते दिनरात सिवाय सुमिरन भजन के और कुछ धन्धा न था। एक दिन नामदेवजी ने भगवत् से विनय किया कि बड़े शोच की बात है कि रांका बांका दोनों परम भक्त ऐसे खाली हाथों से दिन काटें। भगवत् ने कहा कौन उपाय किया जाय कि वे कदापि धन अङ्गीकार नहीं करते सो अपनी आंखों तुम यह लीला देखलेव यह कहकर नामदेवजी को अपने साथ वनमें ले गये और जिस राह रांका बांका लकड़ियों के लेने के हेतु जाते थे उस राह में एक थैली मुहरों की डालदी। रांकाजी की दृष्टि जो उसपर पड़ी तो विचार किया कि स्त्री पीछे आती है ऐसा न हो कि उसको लोभ इस द्रव्य का होजावे इस हेतु उसपर धूलि को डालदिया। स्त्री जो रांकाजी के निकट पहुँची तो पूछा कि तुम धूलिमें क्या देखतेथे। रांकाजीने वृत्तान्त देखने मुहरों की थैलीका व अपने विचार का सब कहा। स्त्रीने पूछा कि महाराज मुहर व धूलि में क्या भेद है और धूलि पर धूलि डालना क्या प्रयोजन था? रांकाजी बहुत प्रसन्न हुये और अपनी स्त्रीका बांका नाम धरा और कहा कि तेरे वैराग्य ने मेरे वैराग्य परभी धूलिको डाल दिया। भगवत् ने नामदेवजी से कहा कि देखो कैसा वैराग्य दोनों भक्तों का है फिर पीछे भगवत् व नामदेवजी ने भार लकड़ी का बटोरकर इकट्ठा करदिया कि भला कुछ सेवा होय। रांका बांका ने उन लकड़ियों को किसी दूसरे का

बटोरा समझकर हाथ न लगाया व खाली हाथ घरको चलेआये और यह निश्चय विचारा कि आज मुहरें दृष्टि में आईं उनके असगुन से लकड़ी भी हाथ न आईं जो उन मुहरों को हाथ लगाते तो न जाने क्या होता। भगवत् ने वह लकड़ी बटोरी हुई को रांकाजी के घर पहुँचादिया व रांकाजीने भगवत् का भेजा जानकर अङ्गीकार किया। पीछे भगवत् ने दर्शन दिया और कुछ वस्त्र के अङ्गीकार करनेको आज्ञा किया। रांका रूप अनूप व छवि माधुरी को देखकर ऐसे दर्शन में बेसुधि व मग्न होगये थे कि कुछ भान न था इसहेतु भगवत् ने आज्ञा की तिसका उत्तर न देसके और नितान्त भगवत्प्रसाद् को भगवद्रूप जानकर अङ्गीकार किया पीछे रांकाजीने नामदेवजी से कहा कि महाराज उस शोभाधाम परमसुकुमार व फूल से भी कोमल अङ्गवारे को कण्टक व अनेक भय से युक्त जो वन तिसमें लेजाना और परिश्रम देना तुमको कैसे अच्छालगा ? नामदेवजी और रांकाजी दोनों भगवद्बालरूप के उपासक थे सो भगवत् उनकी उपासना के अनुकूलरूप से प्रकट हुये ॥

कथा रघुनाथ गोसांई की ॥

रघुनाथ गोसाईं की भक्ति और भाव की बड़ाई कौनसे कही जाय कि जिसकी सेवा आप भगवत् ने करी और सदा भगवत् की परिचर्या में तत्पर रहते थे। उत्कल देश में ओड़ेसे नगरके रहनेवाले थे और धन सम्पत्ति बड़ी घर में थी सबको असार व अनित्य समझकर छोड़दिया और जगन्नाथपुरी में रहनेलगे। बाप उनका पुत्र के स्नेह से सदा कुछ द्रव्य व सामां उनके खर्च के हेतु भेजता परन्तु कुछ अङ्गीकार नहीं करते केवल भगवत्रूप के रस में छकेहुये अपने गुरु महाप्रभुजी की सेवा में तत्पर रहकर और श्रीजगन्नाथराय स्वामी के दर्शन करके भले बुरे व उष्ण व शीतल समय के धर्म से अलग रहते। एकबेर जाड़े के समय में ठंढ लगी श्रीजगन्नाथराय स्वामी ने कृपा करके बानात निज अपनी सेवा की दी फिर एकबेर अतीसार का दुःख हुआ श्रीजगन्नाथरायजी ने जैसे माधवदास जी की सेवा करीथी उसी प्रकार इन गोसाईंजी की करी। गुरु ने वृन्दावन वास की आज्ञा करी तब श्रीवृन्दावन में आये और राधाकुण्ड पर विश्राम किया। सदा भगवत् के मानसीपूजन में रहते थे और छविसुधा में छके दिनरात भगवन्नाम का वर्णन व कीर्तन का मन विश्राम था। एक बेर दूध भात जो मानसीभोग भगवत् को लगाया तो ध्यान में आप भी

महाप्रसाद खाया। बहुत भोजन करनेसे गरिष्ठता हुई बीमार होगये। वैद्य ने नाड़िका देखकर कहा कि दूध व भात खानेके कारण से यह दुःख उत्पन्न हुआ है। औषध पाचक व गरिष्ठता दूर करने की करी जाय सो औषध भी लिखा। गोसाईंजी ने उत्तर दिया कि जिस भोजन से गरिष्ठता हुई है वही भोजन अज्ञानरोग के वास्ते औषध सिद्ध व सदा जीने के हेतु अमृत है सो आप औषध अपनी अपने पास रखिये और मुझको जिस दशा में हूँ उसी दशा में छोड़ दीजिये। वैद्य को विश्वास हुआ चरणोंमें पड़ा। वाह वाह इस चिन्तन व ध्यानकी सिद्धताको कि भगवत् सबको ऐसा करै और कुछ भाग उसमें से इस दास को भी देवे॥

कथा श्रीधरस्वामीकी॥

श्रीधरस्वामी ने श्रीमद्भागवत की टीका ऐसी रचना करी कि परम अमृत भागवत का निज अर्थ विना परिश्रम सबको प्राप्त होने लगा। दूसरे तिलककारों के तिलक से तो द्वेष व खैंच प्रकट है अर्थात् जो कोई कर्म का उपासक था तो उसने भक्ति व ज्ञान के अर्थको भी कर्मकी ओर लगाकर टीका किया और जो कोई उपासक भक्ति व ज्ञानके थे उन्होंने अपने २ मार्ग को दृढ़ करदिया। किसीने मुख्य वेद और भागवत पर दृष्टि न किया परन्तु श्रीधरस्वामी ने तीनों काण्ड अर्थात् ज्ञान और भक्ति और कर्म वेद की पद्धति के अनुसार विना पक्षपात लिखा और जैसा अर्थ जिस जगह चाहिये अपने गुरु परमानन्दजी महाराज से बूझकर वैसाही लिखा और परमहंससंहिताको वेद की रीति के अनुसार दृढ़ रक्खा। जब वह टीका रचना होचुकी तो काशीपुरी में पण्डितों की सभा हुई और दूसरे पण्डितों ने भी अपनी टीकाको रख दिया और सब पण्डित अपनी रचना को दूसरे की रचनापर श्रेष्ठता बतलाते थे। श्रीधरस्वामी को तनिक अहङ्कार व हठ अपनी टीका पर न था नितान्त सब पण्डितों के सम्मत से यह बात ठहरी कि बिन्दुमाधव महाराज जिस टीका को अङ्गीकार करें उसीकी प्रवृत्ति चलाई जाय सो सब टीकाओं को भगवत् के मन्दिर में रखवाय दिया और दिन को बन्द करदिया कुछ विलम्ब करके फिर मन्दिर जो खोला तो स्वामी श्रीधरजी के तिलक पर दस्तखत मंजूरी के मिले और सब ना मंजूर हुआ सबको विश्वास हुआ और वही श्रीधरी टीका चली व सबको अङ्गीकार हुआ। श्रीधरस्वामी पहले से भगवत्के परमभक्त थे जिस कारण से घर बार छोड़ा सो यह

है कि धनवान् थे आगरे से कुछ द्रव्य सहित कहीं को जाते थे राह में ठग मिलगये और पूछा कि तेरे साथ कौन है उत्तर दिया कि रघुनन्दन स्वामी मेरा मालिक व जीवन आधार मेरे साथ है। ठगों ने आपसमें सम्मत किया कि यह आदमी अकेला है मारकर धन असबाब लूटिलेव सो एक जो हथियार चलाने को उद्यत हुआ तो श्रीरघुनन्दन स्वामीको धनुषबाण लिये रक्षा के हेतु साथ देखा इसी प्रकार कईबार मन किया व हरबार उस रक्षक को साथ देखा। जब घर आये तो ठगों ने पूछा कि महाराज वह श्यामसुन्दर सुकुमार नवयौवन कौन है जो राह में तुम्हारी रक्षा करता रहा। स्वामी ने उसी घड़ी घरबार व धन सम्पत्ति को त्याग किया कि मेरे स्वामी को उसके हेतु क्लेश हुआ और वे ठग भी विश्वास करके भगवत्सम्मुख होगये॥

चौ०रमाविलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि नर बड़भागी॥

कथा कामध्वज की॥

कामध्वजजी जाति के राजपूत व चार भाइयों में अपने आप परम भक्त व वैराग्यवान् हुये कि वन में रहकर सदा श्रीरघुनन्दन स्वामी की भजन सेवा में लीन रहते थे किसी से कुछ मतलब व प्रयोजन न था। एक काल भगवत्प्रसाद के निमित्त नगर में आया करते थे और उसी घड़ी फिर चले जाते थे। एक दिन उनके भाइयों ने कहा कि जो तुम साथ चल कर रानाजी के सरकार में हाज़िरी देआवो तो तुम्हारा दरमाहा भी लिया जावे। कामध्वजजी ने उत्तर दिया कि जिस सरकार में नौकर हूँ तहां हाज़िर रहता हूँ यह नहीं होसक्ता कि वहां से गैरहाज़िर होकर विमुखों में चेहरा लिखाऊं। भाइयों ने कहा कि जब मरोगे दाहकर्म कौन करेगा? उत्तर दिया कि वहही सब करेगा कि जिसका मैं दास हूँ यह कहकर वनको चलेगये। कुछ दिन पीछे जब अन्तसमय आया तो श्रीरघुनन्दन स्वामीकी आज्ञा से हनुमान्जी आये चन्दन अगर इत्यादि से दाहकर्म कामध्वजजी का किया श्रीरघुनन्दन स्वामी ने अपने भक्तों का प्रताप दिखलाने के हेतु एक चरित्र आश्चर्य जटायु और शबरी के वास्ते यह किया कि जितने भूत प्रेत उस बाग़ में रहते थे सब कामध्वज की चिताका धुआं लगने से पवित्र होकर परमपद को चलेगये। एक प्रेत उस समय कहीं चलागया था जब आया और अपने सजातियों को न पाया तो एक संन्यासी से समाचार सब सुनकर उसी भस्म में लोटकर सद्गति को

गया। जाने रहो भगवत् का वचन है कि मेरे भक्त तीनों लोकको पवित्र करते हैं और प्रयाग व गङ्गा आदि का यह वचन है कि हम सबके पाप व दुःख दूर करते हैं और हमारे पाप भगवद्भक्तों की चरणकृपा से जाते हैं तो क्या आश्चर्य है कि भूत पिशाच इत्यादि शुद्ध होकर सद्गति को पहुँचे॥

कथा गदाधरदास की॥

गदाधरदासजी परमभागवत् और ऐसे प्रेमी हुये कि विहारीलाल जी की सेवा और छवि अभिराम के देखने और शृङ्गारमें सदा आनन्द व लीन रहकर भगवद्भक्तों की रीति से सेवा तन मन से करते थे उदार और भगवच्चरित्रों के कीर्तन करनेवाले ऐसे हुये कि वर्णन नहीं होसक्ता भगवत् में अनन्य विश्वास ऐसा था कि स्वप्नमें भी दूसरे देवता की ओर न देखा संसार को भगवद्भक्ति का बाधक समझकर त्याग दिया व बुर-हानपुर के निकट एकबाग़ में आकर बैठेरहे लोगों ने बस्ती में चलने को बहुत विनय व प्रार्थना की पर न गये सदा भगवत् के ध्यान में मग्न रहा करते थे। एक दिन जल बहुत बरसा भगवत्ने अपने भक्तका क्लेश देख कर एक साहूकार को आज्ञा की कि तुम मेरे भक्त के वास्ते मकान बनाकर उसमें टिकादेव मेरी आज्ञा जनादेव उस साहूकार ने एक मन्दिर बहुत दृढ़ व सुन्दर बनवाकर उसमें भगवत् आज्ञा सुना के बल्से ले आकर विराजमान कराया व और मकान साधुलोगों के टिकने को व आनेजाने वालों के निमित्त बनवादिया। गदाधरदासजी ने श्रीलालविहारीजी की मूर्ति अतिसुन्दर विराजमान करके साधुसेवा को आरम्भ किया जो कुछ आवे उसी दिन ख़र्च करदेते थे कुछ नहीं रखते थे परन्तु रसोइयां कुछ सामग्री इस विचार से कि प्रभात के समय भगवत् के भोग को अतिकाल न होजाय रखलिया करता था। एकरात साधु आये उनकी रसोई के वास्ते सामग्री ढूँढ़ी गई गदाधरदासजी ने रसोइयां को बुलाकर पूछा उसने कहा कि भगवत् के भोग के वास्ते भोर की कुछ सामग्री को रखलिया है सो धरी है गदाधरदासजी ने आज्ञा दी कि उसी सामग्री से साधुओं की सेवा करो भगवत् के वास्ते कल्ह आयजायगी सो उसी घड़ी भगवद्भक्तों की सेवा हुई। प्रभात को तीसरे पहरतक कुछ न आया और भगवद्भोग भी न लगा। चेला लोग भूख से व्याकुल होकर कहने लगे कि देखो अत्यन्त ख़र्च करने से अबतक सब कोई भूखे हैं न जाने भगवत् कब गदाधरदासजी के हाथ से छुड़ावेगा। उसी समय एक साहूकार आगया

उसने दो सौ रुपया भेंट किये। गदाधरदासजीने कहा कि यह रुपया इन असन्तोषियोंके शिरपर मारो कि हाय हाय कररहे थे। साहूकार डरा कि क्या यह रिस कुछ मेरे ऊपर है। गदाधरदासजी ने सब वृत्तान्त उस साहूकार से कहकर उसकी तसल्ली करी कि वह आनन्द हुआ और भगवद्भक्तों का विश्वास करके भगवत् के शरण होगया। पीछे गदाधर-दासजी कुछ दिन वहां रहे फिर मथुराजी में आये व्रजकिशोर के रूप व छवि से छकेहुये सत्संग व भगवत् सेवा में सब वयक्रम व्यतीत किये॥

कथा माधवदास की॥

माधवदासजी की भक्ति, महिमा, प्रताप, वैराग्य, शान्ति व भाव का वर्णन किससे होसक्ता है जिस प्रकार वेदव्यासजी ने अवतार धारण करके वेदों का विभाग किया और पुराण बनाये और महाभारत व सूत्र इत्यादि को जगत् में प्रकट किया फिर उनका सार और सूक्ष्म करके श्रीमद्भागवत में वर्णन किया और भगवद्भक्ति और भागवत धर्म को संसार में प्रवृत्त किया। इसी प्रकार माधवदासजी ने मानो वेद-व्यासजी का अवतार लेकर भगवद्भक्ति और चरित्रों का सब शास्त्रों का सार निकालकर जगत् में विख्यात किया और भगवन्नाम और लीला का कीर्तन करके हजारों लाखों को संसार समुद्रसे पार उतारा। श्री-जगन्नाथरायजी के परम उपासक और वैराग्यवान् और ब्राह्मणों के नायक हुये। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जब स्त्री उनकी मरगई तो विचार किया कि यह संसार आगमापायी है मनोरथ यह किया था कि लड़का लड़की होंगे उनका व्याह शादी करेंगे और कुलकी वृद्धि होगी अब भगवत् ने यह चरित्र दिखाया निश्चय करके यह संसार अनित्य है और किसी का नहीं है यह शोचकर कि जो घर में हैं इनकी चिन्ता करना निपट अयोग्य है कि सबका आहार पहुँचानेवाला व पालन करनेवाला भगवत् है जो कोई अपना उपाय करे वह बुद्धिहीन है ऐसा निश्चय करके और सब विकार संसारी छोड़कर अलग हुये और श्रीजगन्नाथपुरी में पहुँचकर भगवत् के दर्शन किये समुद्र के किनारे पर जाकर बैठ रहे और जो मन भगवत् के रूप अनूप में दृढ़ लगगया था इसहेतु भोजन की सामग्रीके न मिलनेसे विकल न हुये। तीन दिन बीते कि कुछ न खाया और भगवत् का ध्यान करते एक जगह बैठे रहगये। भगवत् ने शोचा कि हमारे वास्ते नित्य हजारों मन व्यञ्जन अतिमधुर भोग का बने और हाय

हाय हमारे भक्तको तीन दिनतक एक दाना भी न पहुँचा भक्तवत्सलताने बेचैन किया और उसी घड़ी निज अपने महाप्रसाद का थाल सोने का लक्ष्मीजी के हाथ भेजा। लक्ष्मी महारानी भोजन लेकर चलीं तो विचार किया कि पिता तो बालक के पालन से सुचित्त रहता है परन्तु ऐसी माता कोई नहीं कि थोड़े दिन के जन्मेहुये लड़के को पालन न करे। माधवदास भक्त के घर में जन्मा हुआ बालक है उसका उपाय व सुधि भोजन की न लीगई तो बड़ी लज्जा की बात है इस हेतु लक्ष्मीजी माधवदासजी के पीछे गईं व झनकार पायजेब और प्रकाश मुख का बिजली के सदृश माधवदासजी को मालूम हुआ परन्तु भगवद्ध्यान में मग्न थे इसहेतु आंख न खोली। लक्ष्मीजी थाल रखकर चली आईं जब माधवदासजी ने थाल देखा तब आनन्दित होकर भोग लगाया भोजन करके अपने भाग को सराहा और सोने के थाल को पत्ते के पनवाड़े की भांति एक ओर डाल दियाथा। मन्दिर के पुजारी सब ढूँढ़ते हुये वहां पहुँचे। माधवदासजी को पकड़ा व बेंत मारा चले आये वह चोट बेंतकी भगवत्ने अपनी कमरपर ली और पुजारियों को बेंत की चोट जनाकर आज्ञा की कि वह थाल व महाप्रसाद माधवदासजी के वास्ते हमने भेजाथा उनको जो विना अपराध दण्ड दिया वह सब हमको हुआ हम बहुत क्रोधमें हैं। पुजारी सब अति भय से व्याकुल होकर माधवदासजी के पास जाकर बड़ी मर्याद से चरणों में पड़कर प्रार्थना व विनय करके अपना अपराध क्षमा कराया। यह वृत्तान्त सारे संसार में विख्यात होगया और भगवत् की कृपालुता को भगवद्भक्त जन सुनकर अतिआनन्द और प्रेम से शरीरमें न समाये माधवदासजी को भगवत् स्वरूप में ऐसा प्रेम और स्नेह था कि देखते देखते वे सुधि होकर मन्दिर में रहजाते थे और जब पुजारी सब मन्दिर बन्द करते थे तो भगवत् इच्छा से उनको दिखाई नहीं पड़ते थे एकरात जाड़े की ऋतु में माधवदासजी को जाड़ा लगा भगवत्ने पुजारियों को आज्ञा किया कि हम को ठण्ढ लगी पुजारी सब तुरन्त भांति भांतिकी रजाइयां लाये भगवत् ने अपने निज ओढ़ने की रजाई व बनात माधवदासजीको कृपा करके दी और आप नई रजाई को लेलिया तब ठण्ढ मिटी। एकबेर माधवदासजी के पेट में मुर्रा का रोग हुआ और अतीसार के होनेसे समुद्र के किनारेपर जापड़े जब पानी लेने व शौच करने की सामर्थ्य न रही तो आप भगवत् आये व उनके शरीर को धोया शुद्ध किया। माधवदासजी ने शोच किया

कि यह कौन हैं जो ऐसी सेवा करता है विचार किया तो जाना कि आप भगवत् हैं हाथ जोड़कर विनय किया कि ऐसा परिश्रम कब उचित है कि दास की दास्यता में भेद आवे और स्वामी की बड़ाई में। भगवत् ने कहा कि मेरे भक्त को जब दुःख होता है तब हमसे रहा नहीं जाता आप चला आताहूं। माधवदासजी ने विनय किया कि रोग को दूर करदेते तो ऐसा परिश्रम न होता। भगवत् ने कहा कि रोग का होना प्रारब्ध कर्म का भोग है सो प्रारब्ध का दूर करना उचित नहीं देखता कि कर्म भोग की पद्धति से विरुद्ध पड़ता है और जब कि मेरे भक्त विना कष्ट उन प्रारब्ध कर्मों को भोग लेते हैं तो क्या प्रयोजन उनके ध्वंस करने का है यह रीति दिखाकर वह रोग भी दूर कर दिया। इस हेतु कि किसी साधक भक्त का विश्वास न छुटजाय। जाने रहो कर्म तीनप्रकार के हैं सो सञ्चित व क्रियमाण तो उसी घड़ी दूर होजाते हैं जिस घड़ी यह मनुष्य भगवत् शरण होता है और प्रारब्ध निश्चय करके भोगना पड़ता है जब यह चरित्र माधवदासजी का विख्यात हुआ तो हज़ारों आदमी की भीड़ रहने लगी। माधवदासजी ने अपनी सिद्धता का विश्वास और भीड़ के दूर करने के हेतु भिक्षा मांगना आरम्भ किया। एक के द्वारपर गये स्त्री चौका देती थी उसने शब्द सुनकर वह पोतने का कपड़ा क्रोध करके माधवदासजी के शिर पर मारा। माधवदासजी को उसपर दया आई हँस के वह कपड़ा उठालिया उसको पानी से धोकर शुद्ध किया बत्ती बनाकर रात को जगन्नाथजी के मन्दिर में दीपक बार दिया। उसका यह प्रताप हुआ कि भगवत् मन्दिर व उस स्त्री के हृदय में बराबर प्रकाश हुआ अर्थात् उस स्त्री को तुरन्त भक्ति उत्पन्न हुई। दूसरे दिन माधवदासजी जब गये तो दौड़कर चरणों में पड़ी ऐसी दयालुता की बड़ाई किस प्रकार वर्णन होसके। एक पण्डित सब देशों के पण्डितों को चर्चा व शास्त्रार्थ में जीतता और दिग्विजय करता हुआ पुरुषोत्तमपुरी में आया और वृत्तान्त पण्डिताई माधवदासजी का सुनकर उनसे कहनेलगा कि मेरे साथ चर्चा करो माधवदासजी ने चर्चा की और काग़ज़पर लिख दिया कि माधवदास हारा। वह पण्डित काशी में गया और अपनी बड़ाई व पाण्डित्य को कहकर कहा कि माधवदास को जीतकर मैं आयाहूं जब वह काग़ज़ पण्डितों की सभा में रखदिया तो उसमें यह लिखा देखा कि माधवदास जीता और पण्डित हारा अतिक्रोध करके फिर जगन्नाथ-

पुरी में आया और माधवदासजीको अनेक दुर्वचन कहकर बड़ी उपाधि व बखेड़ा करने को उद्यत हुआ। माधवदासजी ने कहा कि जो कुछ तुम, कहो फिर लिख देवें पण्डित ने कहा तू बड़ा धूर्त्त है गदहे पर चढ़ाकर और काला मुँह करके नगर में चारोंओर फिराऊंगा। माधवदासजी तो चुप होरहे और वह पण्डित स्नान करने को चलागया भगवत् पण्डित का रूप बनाकर उसके पास पहुँचे और चर्चा करके जीतालिया उसको गदहे पर चढ़ाकर और सौ दोसौ लड़के बटोर करके और आपभी लड़के के रूपसे साथ होकर उस पण्डित की खूब धूलि उड़ाई। संयोग-वश माधवदासजी भी उसी ओर आगये और भगवत् से विनती की कि ऐसे पण्डित को बे मर्याद व मानभञ्जन करना कौन उचित था? भगवत् ने कहा कि बहुत उचित और प्रयोजन था कि वह मूर्ख मेरे भक्तों को गदहेपर चढ़ाकर मुझको गदहेपर चढ़ाया चाहता था। माधवदासजी ने उस पण्डित को आप गदहेपर से उतारा और अपना अपराध क्षमा कराया। एकबेर माधवदासजी के मन में यह आया कि पुरुषोत्तमपुरी में व्रज के चरित्र बहुत कीर्तन हुआ करते हैं व्रज का दर्शन करना चाहिये सो चले मार्ग में एक बाई भगवद्भक्त भोजन कराने के लिये लेगई जब भगवत् का भोग लगाया तो जगन्नाथरायजी आये और माधवदास जी भोजन करनेलगे वह बाई भगवत् का सुकुमार अङ्ग और सुन्दर मुख थोड़ी वयस देखकर रोनेलगी। माधवदासजी ने जब कारण पूछा तो कहा कि यह लड़का जो तुम साथ लाये हो थोड़ी उमर का परम सुकुमार है इसके माता पिता कैसे जीते रहे होंगे? माधवदासजी ने गरदन फेरकर देखा तो अपने स्वामी को देखा भगवत्कृपा और अनुग्रह के प्रेम में बेसुधि होगये और उस बाई का बोध करके आगे चले किसी और गांव में एक महाजन भगवद्भक्त रहता था उसको माधवदासजी ने वचन दिया था कि हम तेरे घर आवेंगे उसके घर गये वह महाजन किसी काम को गयाथा उसकी स्त्री आई चरणों में पड़ी। एक महन्त उसकी अटारीपर रसोई करता था स्त्री ने उस महन्त से कहा कि एक हरिभक्त आगये हैं वह भी तुम्हारे साथ प्रसाद सेवन करलेवेंगे। महन्त ने क्रोधसहित उत्तर दिया कि यहां किसी और की रसोई नहीं होसक्ती लाचार उस स्त्री ने माधवदास जी से विनय किया कि सामग्री तैयार है आप रसोई बनालेवें। माधवदास जी ने कहा कि और रसोई नहीं बनासक्ते जो कुछ वस्तु भोजन के योग्य

होय सो ले आवो। वह दूध गरम लेआई और भोग लगाकर वहां से चले और कहा कि अपने पति से कहदेना कि माधवदास जगन्नाथी आये थे। थोड़ी दूर गये थे कि वह महाजन अपने घर आया और वृत्तान्त अपनी स्त्री से सुनकर दौड़ा जाकर अतिप्रेम से चरण पकड़ लिया और हाथ जोड़कर अपने घर पधारने के वास्ते विनय किया। माधवदास जी ने उसको बहुत करके कहा कि तेरे घर तेरी स्त्री ऐसी बड़भागी है कि वर्णन नहीं होसक्ता। अब तेरी सद्गति और तेरे उद्धार में क्या संदेह है वह महन्तभी माधवदासजी का नाम सुनकर महाजन के साथ आया था हाथ जोड़कर अपराध क्षमा कराने लगा और शिक्षा चाही। माधवदास जी ने कहा कि हरिद्वार में जाकर भगवद्भक्तों की शीतप्रसादी सेवन करो तब कुछ ठिकाना लग जायगा वहां से महाजन व महन्त को बिदा कर के वृन्दावन में आये। श्रीवृन्दावन और श्रीवृन्दावनचन्द्र के दर्शन करके परमआनन्द में मग्न होगये। बांकेबिहारीजी के मन्दिर में दर्शन करने गये थे वहां चने मिले और द्वारपालों ने कहा भी कि अब भगवत् रसोई का भोग लगाया जाता है तब प्रसाद मिलेगा परन्तु चनेही से क्षुधा की शान्ति समझकर यमुना के किनारे पर आये और भगवत् अर्पण करके भोग लगाया जब मन्दिर में रसोई तैयार हुई और भांति भांति के व्यञ्जन मधुर भगवद्भोग के वास्ते पुजारी लेगये तो भगवत् ने कुछ अङ्गीकार न किया। आज्ञा हुई कि माधवदासजी ने चना हमको भोग लगाया इस हेतु अब कुछ चाह न रही। गोसाईं और पुजारी मन्दिर के दौड़ेगये और ढूंढ़कर माधवदासजी को लेआये तब भगवत् ने भोग लगाया। श्रीवृन्दावन के दर्शन करे पीछे तब दूसरे व्रजभूमि के दर्शन को गये और भाण्डीरवन में खेमनामे साधु रहता था उसके स्थान पर टिकने का विचार किया उसने टिकने न दिया और कठोरताई बहुत करी। माधव दासजी अलग कहीं जाकर ठहरे जब उस साधु ने अपने वास्ते तसमई को तैयार किया और खाने को बैठा तो कृमि सब होगये लाचार होकर आया और माधवदासजी के चरणों में पड़ा। माधवदासजी ने उसका अपराध क्षमा किया और भगवद्भजन की शिक्षा की पीछे हरिआने गांव में पहुँचे वहां एक वैरागियों के स्थान में साधुसेवा हुआ करती है और गऊ बहुत रहती हैं उस स्थल में कथा भागवत की होतीथी भगवच्चरित्रों के सुनने के वास्ते कुछ दिन वहां टिकगये और टहल वहांकी अपने अङ्ग

से यह उठाली कि गोबर इकट्ठा करके उपले पाथ दिया करते। एक साधु आगया और माधवदासजी को पहिंचानकर दण्डवत् किया जब उस स्थल के महन्त आदि ने माधवदासजी को जाना तो सब चरणों में पड़े और बहुत विनय किया कुछ दिन वहां रहे और चलती वेर ऐसा वर दे आये कि अबतक वह स्थल पूर्ववत् बना हुआ है और साधुसेवा होती है फिरतीबेर अपने घर भी गये और माता व लड़कों को भगवद्भक्ति उपदेश करके चले आये जब उस महाजन के गांव के नगीच पहुँचे तब स्वप्न में अपने आनेसे उसको जनादिया वह आया और दर्शन किया वहां से पुरुषोत्तमपुरी को चले और भगवत् दरवार में पहुँचकर ध्यान व भजन में लगे। चरित्र माधवदासजी के बहुत हैं जितना जानने में आया लिखागया ॥

कथा नारायणदास की ॥

नारायणदासजी जाति चारन अल्हभक्त के वंश में भगवद्भक्त व वैराग्यवान् हुये। उनका बड़ा भाई तो कमानेवाला था और नारायणदासजी लुटानेवाले। एकबेर भाभी ने भोजन ठंढा खाने के वास्ते दिया, नारायणदासजी ने न खाया, गरम मांगा। भाभी ने वोली मारी कि क्या तू अपने बाबा अल्हजी के ऐसा भगवद्भक्त है कि तुम्हारी आज्ञा उठाया करें? नारायणदासजी को लगगई कि भगवद्भक्ति से विमुख होकर जीना पशु के सदृश है, मनुष्य शरीर केवल भगवद्भक्ति के निमित्त है, संसारी सुख के निमित्त नहीं भगवद्भक्ति सार और यह संसार असार समझकर संसार का त्याग दिया, द्वारका में जाकर ऐसे सेवा भजन में लगे कि भगवत् उनकी भक्ति से वश होकर जो कृपा उनके बाबा अल्हजी पर करी थी वैसेही होकर उन पर भगवत् ने करी साक्षात् प्रकट दर्शन दिये ॥

कथा जीवगोसाईंजी की ॥

इस कलियुग में रूप सनातनजी तो भक्ति के जल के सदृश हुये और जीवगोसाईं महाराज मानसरवर के सदृश व भगवद्भजन उस मानसरवर के दृढ़ घाट के सदृश हैं और भक्ति की दृढ़ता फूले कमल के सदृश है। कलियुग के प्रपञ्च की काई जिस सरवर समीप न गई और भगवद्भक्त जो हंस के सदृश हैं उनको परम आनन्दका देनेवाला हुआ जिन्होंने वृन्दावनमें वास करके प्रियाप्रियतम महाराज की सेवा और भजन में मन लगाया और जगत् के उद्धार के निमित्त सब शास्त्र व पुराण इत्यादि इकट्ठे

करके उनका जो सार व मुख्य अभिप्राय था उसको अच्छा समझकर ऐसी भगवद्भक्ति को प्रवृत्त किया कि करोड़ों संसारसमुद्र के पार होगये और शोक सन्देह के नाश करनेवाले ऐसे हुये जैसे सूर्य अन्धकार का शत्रु है और घटा के सदृश सबका उपकार करनेवाले मित्र हुये। माधुर्यभाव से भगवत् की उपासना करते थे और रासचरित्र और दूसरे विहारलीला को परमतत्त्व जानते थे और उसी को मुख्य तात्पर्य समझते थे, रूपसनातनजी के भतीजे थे, धन ऐश्वर्य बड़ा रहा सबको अनित्य व असार समझकर त्याग किया और श्रीवृन्दावन में आये धोती और चादर रेशमी बड़े मोल की शरीरपर थी। रूपसनातनजी ने मुलाक़ात के समय हँसकर कहा कि नामतो वैराग्यवान् और पोशाक यह तब जीवगोसाईं जी ने उसको भी त्याग किया और गांव से अलग यमुनाकिनारे पर कुटी बनाकर भगवद्भजन और ध्यान रूपमाधुरी में लगे। एक दिन गोसाईं रूपजी उसी ओर जापड़े व्रजवासियों ने कहा कि महाराज, हमारे गोसाईं जी का दर्शन करो। रूपजी आये और जीवगोसाईं जी की मग्नदशा देखकर अतिप्रसन्न हुये और छाती से लगाकर प्रेम में पूर्ण होगये फिर अपने पास टिकाकर सब शास्त्र पढ़ाया और रसग्रन्थ व भगवच्चरित्र गोप्य जो वचन से शिक्षाकी परम्परा है सो सब अच्छी भांति समझादिया। जीव गोसाईंजीने उनको ऐसा प्रवृत्त किया कि सारे संसार को मिला और जहां तहां गोसाईंजी की विद्या और पाण्डित्य की ख्याति होगई और अकबर बादशाह ने गङ्गा व यमुना के माहात्म्य व बड़ाई के निर्णय के वास्ते बुलाया सो वृन्दावन व व्रजभूमि छोड़कर कहीं रात्रिको निवास नहीं करने का प्रण था इसहेतु बादशाह ने कई जगह घोड़ों के रथ की सवारी बैठाकर एक पहर के भीतर फिर लौटने पहुँचादेने का वाचा प्रबन्ध करदिया सो आगरे में आये और ऐसे सुष्टुवाद से यमुनाजी की बड़ाई को ठहराय दिया कि किसी को कुछ अनुवाद की जगह न रही अर्थात् यह सिद्धान्त दिखाकर बोले कि अल्पविचार के वास्ते वृथा हमको बुलाया कोई एक पुराण देखलिया होता कि गङ्गाजी को जिस पूर्णब्रह्म का चरणामृत लिखा है यमुनाजी उसी पूर्णब्रह्म की पटरानी हैं विचार करलेना चाहिये कि बड़ाई किसकी हुई इस उत्तर से किसीको कुछ संदेह किसी बात का न होय यह उपासना व सिद्धान्त की परमपक्कता है जिस ओर जिस किसी को जैसा विश्वास है उसको वह देवता वैसाही फल देता है। बादशाह निर्णय

गोसाईंजी का सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और विनय किया कि कुछ सेवाकी आज्ञा होय। गोसाईंजी ने कहा कुछ प्रयोजन किसी बात का नहीं है जब बादशाह ने बहुत कहा तो आज्ञा की कि सब पुराण, स्मृति व सब शास्त्र काशीजी आदिसे मँगवा के वृन्दावन में इकट्ठे करादेव। बादशाहने थोड़ेही दिन में आज्ञा गोसाईंजी की पूर्ण कर दी कि अबतक सब पुराण, स्मृति व शास्त्र बृन्दावन में प्राप्त हैं। गोसाईंजीने जिसप्रकार गोविन्ददेवजी का मन्दिर मानसिंह अजमेर के अधिपति से बनवाया सो वृत्तान्त रूपसनातनजी की कथा में लिखा है। बादशाह अकबर वृन्दावन में आया व गोसाईंजी के दर्शन को गया चलतीसमय विनय किया कि वास्ते बनवा देने मकान इत्यादि के कुछ आज्ञा होय गोसाईंजी ने कहा कुछ प्रयोजन नहीं बादशाह ने हठ करके कहा तब गोसाईंजी ने कहा कि हृदय की आंखों से श्रीवृन्दावन व यहां के सजावट को देखना चाहिये तिस पीछे हठ अपने श्रद्धा के अनुकूल उचित है। बादशाह ने आंख बन्द करके देखा तो धरती और मन्दिर सबओर कुऐं आदि वृन्दावन के सब सोने के खचित मणिगण के जड़ाव से जड़ित हैं ऐसे दिखाई पड़े कि जिसके तड़प से आंखैं बन्द होजाती थीं और दूसरे सामान सब हरएक प्रकार के ऐसे देखे कि कान और ध्यान ने कबहीं न सुने थे अधीन होकर विदा हुआ। रीति गोसाईंजी की ऐसीथी कि जो कोई भेंट पूजा ले आता था यमुनाजी में डाल देते थे अपने पास कुछ नहीं रखते थे। सेवक लोगोंने हाथ जोड़कर विनय किया कि किस वास्ते यमुनाजी में डाला करते हो अच्छी बात है कि साधुसेवा हुआ करे कहा कि साधुसेवा करनेके योग्य कोई देखने में नहीं आता। एक चेलेने कहा कि जो आज्ञा होय तो यह दास आपके मनके अनुकूल यह सेवा करे सो गोसाईंजी ने आज्ञा दी उस ने साधुसेवा का आरम्भ किया एकसाधु ने रात के समय कुवेला में भोजन मांगा वह सेवा करनेवाला टहल और परिश्रम सेवा से थकगया था रिस करके बोला कि इस समय भोजन कहां है प्रभात को मिलेगा जो बड़ी भूख हो तो मुझको खालेव गोसाईंजी सुनकर बोले कि इसी श्रद्धा पर सेवा साधुओं की अङ्गीकार करीथी कि उनको आदमी खानेवाला कहताहै फिर पीछे हरिभक्तों का माहात्म्य और उनकी बड़ाई और सेवा का फल सबको समझाया। गोसाईंजी श्रीगोविन्ददेवजी की सेवा पूजा में गोसाईं रूपजी की आज्ञा से रहते थे बहुत कालपर्यन्त बड़ी प्रीति

और स्नेह से सेवाको किया जब एक चेले की भगवद्भक्ति और प्रेम की सबप्रकार से परीक्षा कर ली तब भगवत्सेवा उसको सौंपकर आप श्री वृन्दावन की लता, कुञ्ज, यमुना किनारे व वन इत्यादि में भगवद्रूप के मनन व ध्यान से बेसुधि व निमग्न रहनेलगे ॥

कथा सुरसुरीजी की ॥

सुरसुरीजी परमसती भगवद्भक्ता ऐसी हुईं कि जिनका सत रखने के वास्ते आप भगवत् स्वरूप धारण करके आये धन सम्पत्ति अनित्य व संसार को असार समझकर घर त्याग करके और अपने पति सुरसुरानन्द के साथ वृन्दावनमें आयके भगवद्भजन व ध्यान मे लगीं। रूप अति सुन्दर था। उनकी कुटी के पास मुसलमानों का डेरा आनि पड़ा उनका सरदार सुरसुरीजी के स्वरूप को देखकर आसक्त हुआ अपने सेवकों को पकड़लाने की आज्ञा दी। सुरसुरीजी ने धनुर्द्धारी का ध्यान किया भगवत् ने तुरन्त व्याघ्र के रूपसे प्रकट होकर सब दुष्टों को विडारा कितनों को मारडाला कितने घायल हुये व्याघ्र के रूप से इसहेतु प्रकट भये कि तरकश से तीर निकालते धनुषपर चढ़ाते विलम्ब होगी और व्याघ्ररूप में सब अङ्ग शस्त्ररूप हैं जल्दी अच्छी दुष्टों के घातसे बनिआवेगी इसहेतु व्याघ्ररूप से प्रकट हुये ॥

कथा द्वारकादासजी की ॥

द्वारकादासजी चेले स्वामी कील्ह के परमभक्त श्रीराम उपासक हुये। पातञ्जल शास्त्र के अनुसार से शरीर त्याग करके भगवत् का परमधाम पाया। कूकसगांव के नगीच नदी बहती है उसके जल में जाकर भगवत् का ध्यान किया करते थे और रघुनन्दन स्वामी के चरणों में ऐसा दृढ़ विश्वास था कि संसार की अनेक मोह की फांसी को काटकर एक उसी ओर चित्त को दृढ़करके लगाया ॥

कथा राघवदासजी की ॥

सबको जीतनेवाला कलियुग तिसको जीतकर राघवदासजी ने अपने आधीन करालिया और भगवद्भक्ति को ऐसा निबाहा कबहीं किसी प्रकार का भेद न पड़ा काम जो चाहना व क्रोध जो रिस और लोभ जो लालच इनके तनको पवन ने स्पर्श भी न किया जैसे सूर्य जल को आकर्षण करके फिर बरस देता है परन्तु सूर्य को न चाहना आकर्षण की है न बरसने की अपनी २ ऋतु पर आप से आप आकर्षण व वर्षा

होती है इसी प्रकार राघवदासजी को कुछ चाहना किसी ऐश्वर्य व संपत्ति के बटोरनेकी न थी आपसे आप द्रव्य आता था वखर्च होता था। भगवद्भक्तों की सेवा में विश्वास, सहिष्णु, प्रियदर्शन व मीठे बोलनेवाले सुन्दररूप थे। अल्हरामजी जो रावल करके बाजते थे अपने गुरु की सेवा भगवत् की सेवा के सदृश करके संसार में विख्यात हुये ॥

कथा हरिवंश की ॥

भगवत् का वचन है कि जे निष्किञ्चन मेरा भजन करते हैं उनको मैं शीघ्र मिलताहूं इस वचन पर हरिवंशजी को दृढ़ विश्वास था। जैसे उस घसियारे ने कि उसके पास केवल खुरपा जाली था गङ्गास्नान के समय दान करदिया उसीप्रकार सब वस्तु दान करके व त्यागी होकर भगवद्भजन में लगे और विना भगवद्भजन स्मरण के एक घड़ी व्यर्थ नहीं जाती थी जबतक रहे कोई वचन कठोर न बोले। रामानुजसंप्रदाय में श्रीरङ्गजी के चेले थे। सन्तोषी, सहिष्णु, प्रियदर्शन और श्लाघ्य थे ॥

सत्रहवीं निष्ठा ॥

भगवत्सेवा का वर्णन व महिमा जिसमें दश भक्त उपासकों की कथा है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की ऊर्ध्वरेखा को प्रणाम करके बौद्धावतार को कि गयाजी में धारण करके प्रथम वास्ते एक प्रयोजन के यज्ञादिक की निन्दा करी और फिर सब धर्मों को स्थापित किया दण्डवत् है। सेवानिष्ठा की महिमा के वर्णन से पहलेही एक संदेह का निवृत्त करना प्रयोजन हुआ वह यह है कि भागवत इत्यादि पुराणों में नवप्रकार की भक्तिमें से सेवा, पूजन व दासनिष्ठा को अलग अलग वर्णन किया और विचार करके प्रकट कुछ भेद नहीं जनाई देता सो कारण अलग अलग वर्णन करने शास्त्रों का क्या है सो जाने रहो कि स्वरूप सेवानिष्ठाका सम्मुख रहना अनुक्षण सेवा में अपने स्वामी के और सहि नहीं सकना विश्लेषता एक क्षणमात्र का और करना सब सेवा जो समय समय पर करना प्रयोजन पड़े और वह सेवा मन वच कर्म से होय सो पूजननिष्ठा से तो इस सेवानिष्ठा को यह भेद हुआ कि पूजानिष्ठा उसको कहते हैं जो केवल षोडशोपचार से कियाजाय जिनका वृत्तान्त आठवीं निष्ठा अर्थात् प्रतिमा व अर्चानिष्ठा में विशेष करके लिखा है कुछ अनुक्षण सम्मुख प्राप्त रहने का नियम नहीं है और वियोग भी वह उपासक सहिसक्ता है और दासनिष्ठा से यह भेद है कि दासनाम किंकर का है व करना किंकरताई

निकट व दूर दोनों दशा में बनता है दासको स्वामी की प्रसन्नता पर दृष्टि रहती है हठ किसी बात में नहीं करसक्ता महिमा सेवानिष्ठा की वर्णन नहीं होसक्ती कि जिसके प्रभाव करके पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन का सामीप्य मिलता है जिनको नित्यमुक्त कहते हैं वे इसी निष्ठा से उस पदवी को प्राप्त हैं। भागवत में लिखा है कि देवता व राक्षस अथवा आदमी, यक्ष, गन्धर्व कोई होय नारायणके चरणसेवन से परमकल्याण को पावता है फिर लिखा है कि हे भगवन्! तुम्हारे चरण नौका के सदृश हैं और उनकी सेवामें जिसका मन लगा है सो इस संसारसमुद्र को गोपद जलके सदृश उतर जाते हैं। कपिलदेवजी का वचन है कि जो मेरे चरण की सेवा करते हैं उनको संसार का दुःख कदापि नहीं होता है। सप्तमस्कन्ध भागवतमें लिखा है कि तबतक भय और शोक व लोभ और स्पृहा इत्यादिक दुःख देनेवाले हैं कि जबतक भगवत्सेवा में मन नहीं लगता शेषशेषीभाव जो शास्त्रों में लिखा है उसका निर्णय यह है कि जो वस्तु किसी और के निमित्त होवे उसका नाम शेष है और जिसके निमित्त वह वस्तु होय उस को शेषी कहते हैं जिस प्रकार राजा का राज्य, फ़ौज, प्रजा व सम्पत्ति इत्यादि हैं सो राजा तो शेषी है और राज्य इत्यादिक सब शेष हैं इसीप्रकार सवार तो शेषी है और घोड़ा साईस शेष सो जब क्रम से एकको दूसरे का शेषी विचार कियाजाय तो परिणाममें शेषी होना भगवत् पर समाप्त होता है किसवास्ते कि जितनी वस्तु हैं सो और ब्रह्माण्ड जहांतक गुप्त व प्रकट आंखों से देखनेमें आवें सो भगवत् के वास्ते हैं और भगवत् का है भगवत् से अधिक कोई नहीं और इसी प्रकार जब शेष का परिणाम पदवी का विचार कियाजाता है तो शेषनाग पर समाप्त होता है किस वास्ते कि जब सब वस्तु भगवत् की ठहराईगई तो विचार करना चाहिये कि सब से अधिक कौन वस्तु निज भगवत् की है जो वस्तु अतिशय करके भगवत् सम्बन्धी होवे वही सब शेषवस्तुओं में वास्तव करके अतिशय शेष है सो यह लक्षण सब शेषनागजी में पायेगये अर्थात् कोई अङ्ग शेषजी का ऐसा नहीं कि भगवत् सेवा से रहित होवे। शरीर तो शय्या है और कोमल भाग शरीर का तोशक के स्थान है और सहस्रों फण चँदुये के स्थान और सहस्र फण पर जो मणि हैं सो दीपमालिका के स्थान और विष भरे श्वास को रोंककर जो शीतल श्वास का लेना है सो पंखे के स्थान जिह्वा से भगवत् का नाम लेते हैं और गुप्त व प्रकट के आंखों से अनुक्षण

दर्शन अनन्त गुण शोभाधाम भगवत्के रूप अनूप का करते हैं नासिका से भगवत् शरीर की सुगन्ध और तुलसी सूंघते हैं और सर्प आंखही से सुनते हैं कान उनके नहीं हैं इस हेतु आंखों की राह से भगवत् के श्वासा से वेद और मन्त्र निकलते हैं सो मूल पद अर्थ सहित मन में धारण करते हैं तात्पर्य यह कि सब अङ्ग शेषजी के भगवत् सेवा में लगे हैं और सब वास्ते भगवत् सेवा के हैं इसी हेतु उनका नाम शेष विख्यात होकर पदवी अन्त व परिणाम शेष होने का उन पर समाप्त हुआ सो प्रयोजन इस लिखने से यह है कि सेवा भगवत् की ऐसी हो कि गुप्त व प्रकट के अङ्गमें से कोई अङ्ग सेवासे रहित न होय इस अवस्था को जिसकी सेवा पहुँच जाती है उसीका नाम शेष है और वही अनित्य और वही नित्य मुक्त है और वही समीपी सेवक व पार्षद है और उसी का नाम सामीप्य मुक्तिवाला है। रामानुज संप्रदाय में जो शब्द कैंकर्य विख्यात है वह तात्पर्य भगवत् सेवा से है मूल उस पद के प्राप्त होने का यह है कि जितना काम प्रभात से अगिले प्रभाततक जिस ढङ्ग से यह मनुष्य अपने तन के वास्ते करता है वह सब भगवत् सेवा के सम्बन्ध विचार करके करता है अपने निमित्त तनक न समझे जैसे रसोई करना है तो चौकेका देना और जल का लेआना और रसोई का बनाना भगवत् की रसोई का विचार हो अथवा घोड़ा मोल लेनाहै तो भगवत् की सवारी के निमित्त मोलले अपनी सवारी को विचार के नहीं और सवार होते समय यह ध्यान करले कि भगवत् घोड़े पर सवार हैं और आप साईसकी भांति साथ है अथवा कोई पोशाक बनावना है तो भगवत् के निमित्त हो अपने निमित्त विचार न करे व पहले भगवत् को पहिनावे पीछे प्रसाद भगवत् का आप धारण करे इसीप्रकार और सब काम रात दिन और अपने जाति धर्म के करे और जो त्यागी होय तो जो कुछ वन और पहाड़ में शरीरसे कर्म हो सब भगवत् सेवा केनिमित्त विचारकरे अपने शरीर की मुख्यता सब उठादेवे और यह सेवा भगवत् मूर्त्ति की करे या मानसी व भगवत्के ध्यान स्वरूप में और ध्यान में और विश्वास रूप अनूप भगवत् का ऐसा हो कि मानो वह पोशाक अथवा कोई वस्तु अर्पण न कियाहुआ भगवत् ने अङ्गीकार व धारण करलिया और प्रसाद मुझको कृपा किया केवल बात हीका जमा खर्च न हो और हरएक काम में ऐसा विचार करता रहे और मालूम रहे कोई विधान भगवत् सेवा के सम्बन्धी आठवीं निष्ठा अर्थात्

प्रतिमा व अर्चानिष्ठामें भी लिखेगये हैं कहांतक लिखा जावे मुख्य तात्पर्य यह है कि जो अधिक न होसके तो जितना सामां और काम निज अपने सुख आरामके वास्ते यह मनुष्य करता है वह सब भगवत् के वास्ते किया करे यद्यपि वह सब सामां व वस्तु सब मनुष्यहीके आराम व सुख के वास्ते होजाते हैं परन्तु भाग्य के हीनता के कारणवश विचार व ध्यान भगवत् का नहीं करता है। हे श्रीकृष्णस्वामी! इस भाग्यहीन मन को मैंने बहुत समझाया यहांतक कि समझाते २ हारगया परन्तु इस दुष्ट को कुछ गड़ता नहीं अब मुझको अपने पुरुषार्थ के उपाय का तनक भी भरोसा नहीं है केवल आपकी कृपा का भरोसा करके प्रार्थना करताहूँ कि जिस प्रकार से होसके आपके चरणकमलों में मेरा मन लगे और यह समाज आपके चरित्र का मेरे हृदय में पूर्णमासी के चन्द्रमा की भांति उदय बना रहे और सब रसिकजनन को आनन्द का देनेवाला होय श्रीव्रजचन्द्र महाराज परमरसिक व रिझवार को समाचार पहुँचे कि बरसाने में वृषभानुनन्दिनी ऐसी परम सुकुमारी और शोभायमान हैं कि तीनलोक में जिन की उपमा को कोई नहीं अतिचाह दर्शन की हुई और यह भी सुना कि सांझी के समय में नित्य फूलों के लेने के वास्ते फुलवाड़ियों में आया करती हैं सो उस बाग़ में कि जिसकी शोभा से लज्जित होकर नन्दनवन आकाश में जाकर छिपा आन पहुँचे और जैसे फूल सब खिल खुलके लटक रहे थे उसी प्रकार उसी बाग़ के फूलों में सब अङ्गसे नयन होकर बाट जोहि रहेथे कि अचानक उत्तर ओर से एक सुखमा व शोभाकी मूर्ति हजारों सखियों के बीचमें देखी कि अपने मुख के प्रकाश से सब बाग़ और सब दिशाओं को प्रकाशित व तड़प व बे सुधि बुधि करती हुई आती हैं आभूषण व पोशाक चमक दमक की ऐसी झमाक की व सजावट व सुन्दरताई के सहित तन में शोभित है कि मानों शोभा व छवि व मनोहरता आदि ने पोशाक व आभूषण के स्वरूप से मनमोहन महाराज के मनको मोहिलेने के वास्ते नवलकिशोरी महारानीजी के अङ्ग अङ्ग व शरीर पर वास किया है यद्यपि विश्वविमोहन महाराज रूपराशिने व्रजनागरीजी के देखने वास्ते इच्छा आगे चलनेकी की परन्तु कुछ ऐसी छाया व तेज प्रियाजी की शोभा का मन पर छाया कि उसी जगह खड़ेरहे और चरण न उठा इतने में व्रजचन्दनीजी चित्तचोर मनमोहन महाराज के आवनेकी खबरको पाय अपनी सखियों के साथ हँसती व खेलती

और फूलों को तोड़ती हुई समीप आनि पहुँचीं देखा कि एक नवयौवन श्यामसुन्दर स्वरूपवाला आभूषण व पोशाक बहुमूल्य से सजाहुआ ऐसे सज धज के साथ है कि जिसपर करोड़ों कामदेव और शृङ्गार निछावर होते हैं यकटक नयन लगाये अतिआसक्त देखने की होकर मनसे वेहोश और शोभा के मादक में छकाहुआ मतवारा खड़ा है सो प्रेम की झलक व्रजचन्द्र शोभाधाम की व्रजकिशोरीजी के चित्तपर काम करगई थी इस हेतु वृषभानुकिशोरीजी देखतेही व्रजकिशोर महाराज की शोभा को वेवश होकर मुखचन्द्रमा की चकोर होगई और प्रियाप्रियतम के चार नयन हो-कर देखने रूप व वहार परस्पर के मग्न हुये पीछे वृषभानुकुमारी ने लज्जा कर सखियोंसे पूछा कि यह नाजुक नवयौवन कौन है और कहांका और किसका है कि निर्भय व ढीठ वेपूछे व विना आज्ञा हमारी फुलवारी में नये नये फूलेफूलोंके लालचसे फिरता है। सखियोंने कि दोनोंके मनकी जानने-वाली होगई थीं देखनेवास्ते रूप मनमोहन व प्रियाप्रियतमके मिलनकी समाज व सुख लेने वास्ते प्रियाजी ने जो वचन कहा उसमें भांति भांति के अर्थ प्रकट करके ऐसी ऐसी बातें परिहास व व्यङ्ग कटाक्ष लिये हँसी व ठट्ठेकी आरम्भ कीं कि दोनों ओर की चाह चौगुनी होगई व नित्यके मिलने की रीति बँधिगई इस समय सुन्दरता पर किसी का यह वचन है कि उसी दिन दोनोंने गान्धर्वी विवाह करलिया जो इस वचन पर पुराणों के प्रमाण से एक बात निश्चय किया जाय तो परकीया भाववालों को अङ्गीकार न होगा इस हेतु उसका निर्णय हरएक भाववालों के विश्वास पर निश्चय करके छोड़दिया और प्रिया प्रियतम के रूप का वर्णन जो इस समाज में नहीं किया तो वह भाववालों के मनकी रुचिपर रखदिया जैसी रुचि जिसकी होय तैसीही छवि युगल की मनमें विचारिलेवे ॥

कथा लक्ष्मीजी की ॥

लक्ष्मी जगज्जननी भगवत् की परमप्रिया कि भगवत् की सेवा में मुख्य पदवी है कि एकक्षण भगवत् चरणसेवा से अलग नहीं होतीं यद्यपि लक्ष्मीजी और भगवत् में कुछ भेद नहीं नाममात्र को अलग दिखाई देती हैं जिस प्रकार शब्द व अर्थ की वास्तव में एक बात है परन्तु कहनेमात्र को अलग २ हैं और युगल उपासकों ने दोनों को वाद से एकही सिद्धान्त करदिया परन्तु प्रकट में भगवत् तो स्वामी और लक्ष्मी जी सेवा करनेवाली हैं इस हेतु शास्त्रों ने लक्ष्मीजी को सेवानिष्ठों के भक्तों

में लिखा और दूसरे भक्तों के सदृश लिखने किसी निजचरित्र लक्ष्मीजी की ढूंढ़ी गई तो जानागया कि जितने चरित्र भगवत् के शास्त्र और पुराणों में लिखे हैं सो सब लक्ष्मीजी और भगवत् से मिश्रित हैं इस हेतु सब चरित्र जो वेद शास्त्र में लिखे हैं लक्ष्मीजी के चरित्र समझ लेना चाहिये इसी प्रकार राधिकाजी, सीताजी व रुक्मिणीजी के चरित्रों का वृत्तान्त है तनक भेद नहीं परन्तु उपासक की उपासना और विश्वास का भेद है॥

कथा शेषजी की ॥

सेवानिष्ठा शेषनागजी पर समाप्त हुई सो सेवानिष्ठा की भूमिका में प्रथमही लिखिआये अब लिखना दुबारा प्रयोजन नहीं। जगत् के उपकार व उद्धार में ऐसी प्रीति है कि सदा भगवद्भजन और वेद श्रुति का उपदेश करते हैं और कई शास्त्र नवीन रचना करके विख्यात किये कि संसारसमुद्र से पार उतरने को दृढ़तर सेतु होगये उनमें एक व्याकरण शास्त्र ऐसा है कि जो वह न होता तो वेद और शास्त्रों का अर्थ मालूम न होता और पातञ्जल शास्त्र ऐसा है कि जिससे योगमत और ज्ञानभक्ति के विचार में आते हैं उसी शास्त्र से प्रवृत्ति पाई और साहित्य शास्त्र वह है कि रसभेद व काव्य इत्यादि उसी के प्रभाव से प्रवर्तमान हुये जब कभी धर्मकी हानि हुई तो अवतार धारण करके परमधर्म भगवद्भक्तिका प्रवर्तमान किया और सब विघ्न दूर किये शेषजी के चरित्रों को भगवच्चरित्र समझना चाहिये और जिसकी महिमा वेद और शास्त्र वर्णन नहीं कर सके तो मेरे ऐसे मतिमन्द की क्या सामर्थ्य कि एक अक्षर लिखसकूं और शेषजी का नाम अनन्त है तो उनके चरित्र का अन्त कौन पा सक्ता है अर्थात् कौन वर्णन करसक्ता है ॥

कथा विष्वक्सेन आदि पार्षदों की ॥

१ विष्वक्सेन २ सुसेन ३ बल ४ प्रबल ५ जय ६ विजय ७ भद्र ८ सुभद्र ९ नन्द १० सुनन्द ११ चण्ड १२ प्रचण्ड १३ कुमुद १४ कुमुदाक्ष १५ शील १६ सुशील ॥

षोडश द्वारपाल ये भगवत् के हैं सर्वकाल सेवामें वर्त्तमान रहते हैं व भगवत् के पार्षद असंख्य हैं पृथ्वी के रज की गिनती कदाचित् कोई करसके परन्तु भगवत्पार्षदों की गिनती नहीं होसक्ती। ये सोलह नामी हैं सो लिखेगये उनकी भगवत् सेवा में ऐसी प्रीति दृढ़ है कि कोई समय सिवाय भगवत् सेवा के दूसरा काम नहीं भगवत्स्वरूप को निरखि २

सेवा और रूप के आनन्द में मग्न रहते हैं कवहीं अलग नहीं होते आवागमन की रीति से पार व न्यारे हैं और सबको यह सामर्थ्य है कि करोड़ों ब्रह्माण्ड रचें और पालन करें और फिर नाश करदें भगवत्पार्षद भगवत्रूपहैं इसमें संदेह नहीं जो किसी को संदेह हो कि जन्म मरण से बाहर हैं तो सनकादिकों के शाप से जय विजय पार्षदों के तीन २ जन्म किस हेतु हुये ? उत्तर यह है कि जो मुक्त हैं सो मनुष्यतन धारण करके धरती पर रहें तो उनके वास्ते आवागमन का निश्चय नहीं जैसे नारद व सनकादिक व वशिष्ठजी इत्यादि सिवाय उनके भगवत् भी प्रयोजन वास्ते शरीर धारण करते हैं जो भगवत्के निमित्त आवागमन का निश्चय किया जाय तो पार्षदों के वास्ते भी होसके सिवाय इसके ऐसा संयोग कभी नहीं हुआ कि जब उन पार्षदों का जन्म हुआ तो भगवत् का अवतार न हुआ हो इसीसे यह बात निश्चय हुई कि जिस प्रकार कोई राजा किसी देश को जाता है तो पहले अपना सामां डेरा व नौकरों को भेज देता है इसी प्रकार जब कवहीं भगवत् का पूर्ण अवतार हुआ तो जो चरित्र करना विचारा उसकी सामां को पहलेही से भेजदिया सो यह बात वाराहीसंहिता और गर्गसंहिता से प्रकट है इसके सिवाय भगवत् अपनी इच्छा से इस संसार में अपना रूप प्रकट करलेता है इसी प्रकार जो पार्षदों ने भी प्रकट करलिया तो क्या संदेह है और एक बात यह भीहै कि भगवत् इच्छा सब पर प्रबल है जो वे केवल भगवत् इच्छा करके इस संसारमें देह धारण करके भगवत् इच्छा में वर्तिके फिर उसी लोकमें चलेगये तो आवागमन का निश्चय होसक्ता है । अब यह संदेह उत्पन्न हुआ कि भगवत् सेवा के उपासक एक क्षण का वियोग नहीं सहसक्ते सो वनगमन के समय श्रीरघुनन्दनस्वामी ने लक्ष्मण महाराज को अयोध्याजी में रहनेको आज्ञा दी सो वे सेवा के उपासक थे भगवत् आज्ञा को अङ्गीकार न किया साथ गये सो दोनों पार्षद जय विजय को भगवत् सेवा से वियोग कैसे सहागया? सो यह शङ्का ठीकहै उत्तर इसका इतना ही बहुत है कि उन्होंने जगत् का उपकार विचार करके सेवा में वियोग अङ्गीकार किया यह कि भगवच्चरित्र फैलेंगे जिनको गाय गायके कोटान कोटि जीव भगवत् की सेवा में आवेंगे तो इससे अच्छा और क्या है ? सो यह विचार उनका सिद्ध हुआ कि भगवद्भक्तों के सिवाय कितने राक्षस और दैत्य और परमपातकी भगवत् को प्राप्त हुए ॥

कथा हनुमान्‌जी की ॥

चरित्र और कथा हनुमान्‌जी की और भक्तिभाव ऐसे पवित्र हैं कि आप रघुनन्दनस्वामी सुनकर प्रसन्न होते हैं। श्रीरघुनन्दनस्वामी के चरित्र जो संसारसमुद्र उतरने के वास्ते दृढ़ जहाज़ हैं हनुमान्‌जी के चरित्र उन जहाज़ों के वास्ते बादवान के सदृश हुये। महिमा हनुमान्‌जी की किससे होसक्ती है कि सारा ब्रह्माण्ड उनकी सेवाको धन्य २ कहता है। सीता महारानी जगज्जननी को तो भगवत् का संदेश और रावण के वध होने की भविष्य बात सुनाकर और रघुनन्दनस्वामी के हुजूर हाज़िर होकरके समाचार सुनाये, लक्ष्मण के वास्ते संजीवनी लाये, मृत्यु से बचाया व भरत शत्रुघ्नजी व अयोध्यावासियोंको भगवत् के आवने का समाचार सुना कर उपकार किया, रावण का वध कराकर सब देवताओं को आनन्द देकर धन्य २ कहाया, भगवच्चरित्र संसार में विख्यात करके सब संसारी जीवों को परमपद का अधिकारी किया अर्थ यह कि ऐसा कोई नहीं कि जिस के वास्ते उपकार हनुमान्‌जी ने न किया हो और बहुत प्रकारकी विद्या में हनुमान्‌जी का आचार्य होना शास्त्रों में लिखा है परन्तु गानविद्या, ब्रह्मविद्या, शस्त्रविद्या, व्याकरण और साहित्यशास्त्र में विशेष करके आचार्यत्व हनुमान्‌जी को है। शिवजी के अवतार हैं और केवल रघुनन्दनस्वामी की सेवा के निमित्त अवतार लिया यद्यपि सब निष्ठाओं में उनका विश्वास दृढ़ है परन्तु सेवानिष्ठा में इस हेतु लिखा कि आप भगवत् ने उनकी सेवा को बड़ाई दी और सर्वकाल सेवा में प्राप्त रहते हैं। भगवन्नाम में ऐसा विश्वास हनुमान्‌जी को है कि जब श्रीरघुनन्दनस्वामी लङ्का जीतकर अयोध्याजी में आये तो विभीषण एक मणि की माला कि जैसी कहीं सारे संसार में नहीं है समुद्र से मांगके भगवत् भेंटको लाया और जिस समय रघुनन्दन महाराज राजसिंहासन पर विराजमान हुये तो वह माला भेंट की। देवता व राजा आदि जो वहां थे सबको उसके मिलने की चाह हुई। भगवत् अन्तर्यामी ने विचार किया कि माला एक और इसके चाहनेवाले अनेक तो ऐसे किसीको देना चाहिये कि जिसको चाहना न होय सो हनुमान्‌जी को पहिनाय दी। हनुमान्‌जी ने जब उस माला को देखा तो विचार किया कि प्रकट देखने में कोई बात भगवद्भक्ति की इस माला में दिखाई नहीं पड़ती क्या जाने भीतर कोई बात होगी इस हेतु एक नग को तोड़ा और उसको देखा जब उसमें भगवन्नाम न

पाया तो दूसरे दाने को तोड़ा और नाम भगवत् का न देखा उसको भी डालदिया इसी प्रकार बहुत नग तोड़डाले जो दाने तोड़ते थे चाहनेवालों का मन टूटता था और मनहीं मनमें रिस करके कहते थे कि भगवत् ने कैसे बेसहूर को यह माला अनमोल दी कि जो मोल व परख उसके जवाहिरातों की नहीं जानता नितान्त एक किसीसे न रहागया और हनुमान्जी से पूछा कि किस वास्ते ऐसी दुर्लभ मणि को तोड़के डालते हो ? हनुमान्जी ने कहा कि इस मणि के भीतर रामनाम देखताहूं। उसने कहा कि महाराज कहीं ऐसी वस्तुओं के भीतर रामनाम होता है। हनुमान् जी ने कहा कि जो रामनाम इसके भीतर नहीं तो किस काम की है । उस ने कहा कि जो आपके विश्वास का ऐसा वृत्तान्त है तो आपके भीतर भी रामनाम होना चाहिये। हनुमान्जी ने कहा कि सत्य करके होना चाहिये यह कहकर चर्म अपनी छाती का उखाड़कर दिखाया तो सब रोमरोममें रामनाम लिखाथा सब किसीको हनुमान्जी की भक्ति और विश्वास का निश्चय हुआ। गीताशास्त्र जो महाभारत में भगवत् ने अर्जुन को उपदेश किया तो हनुमान्जी ने भी जो अर्जुनके रथपर ध्वजामें विराजमानथे सुना अर्जुन को उपदेश किया सो एक अक्षर स्मरण न रहा । भगवत् ने टीका करने की आज्ञा दी सो हनुमान्जी ने तिलक गीताजी का भगवत् आज्ञानुसार रचना किया और गीताजी की प्रवृत्ति को जगत् में किया यह बात गीतामाहात्म्य से प्रकट है और महाभारत के समय यद्यपि भगवत् आप सहायक अर्जुन के थे परन्तु हनुमान्जी का भी ऐसा प्रताप हुआ कि आप भगवत् ने बड़ाई को किया और महाभारत से सब बात विशेष करके प्रकट है ॥

कथा जगत्सिंह की ॥

राजा जगत्सिंह बेटे राजा आनन्दसिंह के भगवद्भक्ति और साधुसेवा के मुल्क में भी राजों के राजा हुये । भगवत्सेवा में ऐसी सच्ची प्रीति उनकी थी कि कबहीं उसमें डगमग नहीं होती थी जितना प्रकट ऐश्वर्य व धन असंख्य था तैसेही ऐश्वर्य भक्ति का भी मन में रखते थे जिन्हों ने लक्ष्मीनारायण को अपनी सेवा से वशीभूत करलिया और ऐसा निर्मल यश जगत् में फैलाया कि असंख्य विमुखलोग भगवद्भक्त होगये प्रताप ऐसा था कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार ध्वस्त होजाता है तिस प्रकार शत्रु सब नाश होगये व आज्ञा दृढ़ ऐसी थी कि प्रजा को

आनन्द व धन सम्पत्ति की वृद्धि हो और किसीको पराक्रम अवज्ञा की न होय। लक्ष्मीनारायण की सेवा की यह प्रीति थी कि जो कबहीं राजधानी से बाहर जाते तो भगवत् की पालकी सबसे पहले चलती और आप किंकर के सदृश पीछे होते व जब कबहीं संयोग शत्रु से युद्ध का पड़ता तो मालिक व अधिपति लड़ाई और सेना के भगवत् होते और आप हरवल के सदृश फ़ौज के काम करते। जितनी टहल प्रभात से अगले प्रभाततक भगवत्सेवा की होती सब अपने हाथ से करते अन्त है कि पानी भगवत्सेवाके वास्ते अपने शिरपर धरके लाते। शाहजहानाबाद में राजा जगत्सिंह व दूसरे राजालोग जैसे यशवन्तसिंह उदयपुर के व जयसिंह जयपुर के टिकैत थे सबने यह हाल भक्ति व सेवा का सुना बहुत प्रसन्न और अपनी ओर विचार करके अतिलज्जित हुये। एक दिन राजा जयसिंह व यशवन्तसिंह को राजाजगत्सिंह के दर्शन की अभिलाष जल लेआने के समय की हुई सो दो तीन घड़ी रातरहे पर राहपर जाबैठे और इस समाज से दर्शन हुआ कि सौ दोसौ सिपाही वीर हथियारबन्द सैकड़ों ख़िद्मतगार व गुलामों सहित साथ हैं और आप राजा अपने शिरपर भगवत्सेवा का जल सोने के कलश में लिये हुये जिह्वापर नाम और मन में भगवत्स्वरूप, तिलक और माला धारण किये हुये नांगे पायँन जातेथे दोनों राजों को धैर्य न रहा और साष्टाङ्ग दण्डवत् करके चरणों में पड़े फिर हाथ जोड़कर विनय किया कि जीवने का सुख व फल भगवत् ने तुम्हीं को कृपा करके दिया क्या हेतु कि भक्तिका सुख व राज तो संसार में पाया और परमधाम और भगवत् का स्वरूप उस लोक में मिलेगा। राजा जगत्सिंह राजा जयसिंह की ओर देखकर बोले कि मैं किसी योग्य नहीं हूँ मुझसे क्या भगवत्सेवा और टहल होसक्ती है तु-म्हारी बहिन अलबत्ता भगवद्भक्त है उसके सत्संग और कृपा से थोड़ी२ मेरे चित्तकी वृत्ति भी भगवतसेवा की ओर लगनेलगी है। राजा जयसिंह अपनी बहिन दीपकुँवरि की भक्ति व प्रताप को समझकर बहुत प्रसन्न हुये और किसी कारण से क्रोध था और जागीर अपनी बहिन की ज़ब्त करली थी सो छोड़दी और द्रव्य वस्त्रादिक भेजकर अपने अपराध को क्षमा कराया। दीपकुँवरि ने क्षमा किया और अपने भाई को भगवद्भक्ति और साधुसेवा का उपदेश लिख भेजा। हे भगवन्, श्रीकृष्णस्वामी, कृपा-सिन्धु, महाराज! इस पापपुञ्ज और मतिमन्द परभी कुछ ऐसी दयादृष्टि

होय कि अहंकार आदिक नाना दुर्मतिको छोड़कर आपके चरणशरण रहे ॥

कथा कुँवरकिशोर की ॥

कुँवरकिशोर राजा खेमाल के पोते भगवद्भक्ति के बड़े दृढ़ और प्रेम की मूर्त्ति, बुद्धिमान्, आनन्ददर्शन, उदार, मीठेवचन के बोलनेवाले हुये। भगवद्भक्ति को जगत् में फैलाकर सब छोटे व बड़ों को अपनी अच्छी प्रकृतिके आधीन किया अर्थात् सब कोई धन्य धन्य कहता था अवस्था थोड़ीथी परन्तु भगवद्भक्तिमें जवानों और वृद्धोंसे भी अधिक होगये। अपने पिता पितामह के शिक्षापन को ऐसा निबाहा कि मरणपर्यन्त उसमें भेद न पड़ा अर्थात् जिस समय राजा खेमाल उनका पितामह देहत्याग करने लगा तो आंखों में जल भरके बड़े शोचयुक्त हुआ। बेटोंने विनय किया कि ख़ज़ाना व राज्य व समाज इत्यादि सब कुछ भगवत् का दिया है जो चाहें सो दान करें शोच करनेकी बात क्याहै ? राजाने कहा कि उन बातोंमें से किसी बातका शोच नहीं है कि जो काम सुयश व दान पुण्यका करना उचित था सो सब करलिया परन्तु दो बात का अफ़सोस है एक यह कि कबहीं भगवत्सेवा के वास्ते कलश जल का अपने शिरपर लेआकर सेवा न की, दूसरा यह कि नूपुर बाँधकर भगवत् के सामने नृत्य न किया। राजा के बेटेलोग सुनकर चुप होरहे परन्तु कुँवरकिशोर राजा के पोते ने खड़े होकर हाथ जोड़के विनय किया कि इस दास को आज्ञा हो जबतक जीऊँगा तबतक आज्ञा पालन करूँगा कबहीं व्यवधान न पड़ेगा राजा ने उसी दशा में अतिहर्ष व आनन्द से उठकर कुँवरकिशोर को छाती से लगाया और दोनों सेवा की आज्ञा देकर परमधाम की राह ली। कुँवरकिशोर ने उस राजा की आज्ञा को ऐसा निबाहा कि लिखने व वर्णन करने की किसीको सामर्थ्य नहीं तन, मन व सब इन्द्रिय भगवत्में लगा दिये भगवद्भक्तों ने सारे संसार में यश वर्णन किया ॥

कथा नरहरियानन्द की ॥

नरहरियानन्दजी ऐसे परमभक्त हुये कि दिन रात सिवाय भगवत्सेवा के कुछ काम न था और सदा अनुक्षण भगवत्सेवा सामां की तैयारी में रहते थे। एक दिन भगवत् रसोई का चौका इत्यादिसब बनाकर भगवत् के हेतु रसोई करनेलगे। घर में लकड़ी न मिली और पानी बड़े धूम धाम से बरसता था इसकारण बाज़ार में भी लकड़ी न मिली और भगवत्सेवा सबपर सर्वोपरि है और सब देवता भी इस बात में एकमत

हैं इस हेतु रसोंई में विलम्ब उचित न समझकर दुर्गा का मकान उनके निकट था गये और छत्त उतारने लगे। दुर्गा महारानी इस भगवत्सेवा के दृढ़विश्वास से प्रसन्न हुईं और नरहरियानन्दजी से कहा कि स्थानको तोड़ो फोड़ो मत लकड़ी तुम्हारे घर पहुँचती रहेंगी। नरहरियानन्दजी फिर आये और प्रयोजन भरेको नित्य लकड़ी पहुँचती रहीं। एक स्त्री पड़ोसकी ने इस भेदको जाना और अपने पुरुष से कहा कि नरहरियानन्द जी ने दुर्गाको डरपाकर नित्य लकड़ी का पहुँचाना दुर्गा से ठहरालिया जो तुम भी ऐसाही करो तो नित्य लकड़ी विना परिश्रम आती रहें। वह निर्बुद्धि दुर्गा के स्थान पर पहुँचा और जैसे फावड़ा छत्तपर मारा कि दुर्गा महारानी ने शिर नीचे व पांव ऊपर करके उसको लटकादिया जब मरने लगा तो पुकारा कि हे दुर्गा, महारानी! हे माता! अबकी प्राण छोड़देव फिर ऐसा अपराध न होगा दुर्गा ने कहा कि जो मेरे बदले नरहरियानन्द के घर लकड़ी पहुँचाया करे तो प्राण तेरा बचसक्ता है नहीं तो इसी घड़ी प्राण तेरा लेती हूं लाचार होकर दुर्गा की आज्ञा को अङ्गीकार किया और दुर्गा के शिर से बेगार छूटी भगवत्सेवाकी महिमा जो कुछ कोई वर्णन करे सो थोड़ी है शेष और शारदाले भी वर्णन नहीं होसक्ती है॥

कथा प्रेमनिधि की॥

प्रेमनिधिजी जाति के ब्राह्मण रहनेवाले आगरे के अन्तर व बाहर शुद्ध व सुन्दर मधुर वचन बोलनेवाले, नवधाभक्ति से भक्तों को आनन्द के देनेवाले, गृह में रहकर के गृहस्थी के किसी कार में वद्ध नहीं, शुद्धस्वभाव, उदार, भगवद्भक्तों केसत्संग में नियमवाले और दयालु हुये। वास्तव करके प्रेमनिधि थे। सदा चारघड़ी रात रहते उठकर भगवत्सेवा में लगते और भगवत्सेवा के निमित्त यमुनाजल अपने शिरपर रखकर लेआते एकबेर वर्षाऋतु में कहीं कहीं बहुतकीच राहमेंथी चिन्ता में हुये कि दिन उगे स्पर्श व भीड़ लोगों की राह में होगी कोई नीच से जल छू जायगा व रात को जायँ तो कहीं अँधेरी में गिर न पड़ें व घट फूटजाय नितान्त स्पर्श नीच का अयोग्य विचार के पानी बरसते में उसी अँधेरीमें कलश शिरपर रखकर चले द्वारसे बाहर जैसे चरण दिया कि भक्तवत्सल करुणाकर महाराज उनके मनकी सेवासे प्रसन्न होकर बारह वर्ष के लड़के केरूप से मशाल लेकर प्रेमनिधिजी के आगे आगे होलिये। प्रेमनिधिजी ने जो रूप माधुरी उस मशालची मनमोहन हराङ्ग आँखें असीली घुँघुवारी

अलकैं लालचीरा बांधे हुये कमर मशालचियों की नाईं केसेहुये हाथ में मशाल देखी तो भीतर व बाहर दोनों प्रकाशित हुये आसक्त और मोहित होगये यद्यपि यह विचार लिया कि अपने स्वामी को पहुँचाकर अपने घर आताहै परन्तु उसके देखने की आशा करके जिधर को वह चला साथ होलिये और यमुनाजी पर पहुँचे प्रेमनिधिजी स्नानकर यमुनाजल का कलशा भर और शिर पर रखकर चले घर आये कलशा जलका भगवत्-मन्दिर में रखकर तुरन्त उस मशालची को ढूंढ़ते रहे कहीं पता न लगा जानिगये कि ऐसे रूपवाला सिवाय उस व्रजकिशोर चित्तचोर के और कौन है कि एक निगाह में अपना दास करलेवे और उस परमदयालु करुणाकर से ऐसा और कौन स्वामी है कि सेवक के थोड़ेसे परिश्रम के हेतु अपनी ईश्वरता को कि जिसका वेद और ब्रह्माभी पार नहीं पाते छोड़कर तुरन्त आन पहुँचे यह समझकर भगवत्सेवा और भजन में लगे। पहले कथा फिर जब भगवत्सेवा से छुट्टी पाते तो भगवच्चरित्रोंका कीर्तन किया करते और बड़े प्रेम से कथा कहते थे तो श्रोता बहुत आते थे कथा के पीछे गान और कीर्तन का समाज होता था और सब भगवत् के भाव और भक्ति में पूर्ण होते थे दुष्ट और पापात्मालोगों को यह बात अच्छी न लगती थी बादशाह से जनाया और पिशुनता की कि प्रेम-निधि नगर की स्त्रियों को कथा के मिस अपने घर पर जमा करताहै कि यह बात कारण अनर्थ की है। बादशाह ने चोपदार भेजा और उसने च-लने के वास्ते जल्दी की उससमय प्रेमनिधिजी भगवत् के निमित्त जल लियेजाते थे चोपदार की जल्दी करने से जल का पिलाना भ्रम होगया बादशाह के सम्मुख गये बादशाह ने वृत्तान्त पूछा प्रेमनिधिजीने जो सत्य बात थी कहदी कि भगवत्कथा का कीर्तन किया करताहूं उस समय कोई स्त्रियां आवें अथवा पुरुष रोंक नहीं होसक्ती कि यह सत्पुरुषों का आचरण नहीं है परन्तु स्त्रियों को बुरी दृष्टिसे देखना बड़ा पाप होताहै। बादशाहने कहा कि तुम्हारे टोलेके लोगों ने कुछ खोंटी बातें कही हैं सो हम इसका वास्तव वृत्तान्त समझें बूझेंगे यह कहकर प्रेमनिधि को नज़रबन्द किया और महल में चलागया। रातको जब सोया तब भगवत् ने उसके इष्टदेव के रूपसे स्वप्न में कहा कि हमको जलकी तृषा लगीहै बादशाह ने कहा कि जल के घड़े भरे धरेहैं पान करियेइस उत्तरसे भगवत् को रिस आय गई और कहा कि तेरे घड़ेका पानी कौन पीताहै और एक लात मारी कि

हमारी बात नहीं सुनता। बादशाहने कहा जिसको आज्ञा हो पानी ले आवे कहा कि हमारा जो पानी पिलानेवाला है उसको तूने क़ैद करालिया पानी कौन पिलावे। बादशाह की आंखैं खुलगईं और बड़ी मर्यादसे प्रेमनिधि जी को बुलाया और चरणों में शीश रखकर अपराध क्षमा कराया और कहा कि आप जल्द जावें जो तृषा की तृषा को भी दूर करनेवाला है उसको आपके बिना तृषा लगी है और माल मुल्क जो चाहिये सो लीजिये। भगवद्भक्तों को सिवाय भगवत् के अनित्य पदार्थों की चाह नहीं रहती कुछ न लिया विदा हुये। बादशाह ने मशाल साथ देकर उनके घर पहुँचा दिया उसीक्षण प्रेमनिधिजी ने जल भगवत् को अर्पण किया कि तृषा मिट गई॥

कथा जयमल की॥

जयमल राजा मीरथ के परम भगवद्भक्त हुये। कोई कोई लोग उनको मीराबाईजीका छोटा भाई कहते हैं दशघड़ी दिनचढ़ेतक भगवत् की सेवा पूजा में तत्पर रहते थे और यह आज्ञा थी कि सेवा के समय कोई मनुष्य पास न आवे नहीं तो वधके योग्य होगा हेतु यह कि चित्त की वृत्ति दूसरी ओर न जाय। कोई सजातीय वैरी को यह समाचार पहुँचे और जो समय राजा की सेवा पूजन का था उसी समय बहुत सेना लेकर चढ़ आया जब उसके चढ़ आने का शोरगुल नगर में पहुँचा तो राजा के डरसे कोई राजा से कहनेको नहीं गया परन्तु राजा की माता ने जाकर सब वृत्तान्त कहा। राजा ने उत्तर दिया कि आप सुचित्त रहें भगवत् सब अच्छा करेंगे और आप सेवा में सावधान बनेरहे। शत्रुसूदन महाराज कि सर्वकाल अपने भक्तों के सहाय के हेतु शस्त्रलिये व कमर बांधे रहते हैं राजा के घोड़े पर चढ़के शत्रुकी सेना पर पहुँचे और एकपल में सब सेना को ध्वंस करदिया। राजा जयमल भगवत्सेवा से छुटकारा करके बाहर आये तो शत्रु से युद्ध करने की तैयारी में लगे अपनी निज सवारी के घोड़ेको पसीने में भरा देखकर बड़े आश्चर्य में हुये परन्तु जल्दी सवारी के कारण से कुछ सुधि न किया दूसरे घोड़े पर सवार होकर सेना लेकर शत्रु के सम्मुख पहुँचे। पहले अपने शत्रु को देखा कि धरती पर पड़ा है और विकल है उसने राजा जयमल से पूछा कि तुम्हारे लश्कर में वह श्यामस्वरूप परम अनूप सिपाही कौन है कि जिसने अकेले आयकर मेरी सारी फ़ौज को मारडाला और मेरा मन अपने साथ लेगया। राजा जयमल ने उत्तर

दिया कि भाई तेरे भाग की बड़ाई कौन कहसक्ता है कि मुझको वह सिपाही कबहीं स्वप्न में भी दिखाई न दिया और तुझको दर्शन मिला। उस वैरी ने भी सब चरित्र भगवत् के जानकर निश्चय किया और भगवद्भक्ति अङ्गीकार करके कृतार्थ होगया। राजा जयमल को ग्रीष्मऋतु में यह मन में आया कि अत्यन्त बेविश्वासी व ढिठाई मेरी है कि भगवत् तो नीचे मन्दिर में कि जहां पवन का तनक प्रवेश नहीं होता तहां शयन करें और हम अटारी पर हवादार मकानों में सोवें इस हेतु एक बँगला अतिविचित्र तिमहला तैयार करवाया और उसको फ़र्श, परदे, छत व चांदनी इत्यादि कमख़ाब व स्वर्णतारी का व झालर मुक़ैश व मोतियों से सजाया एक पलंग सोने व चांदी का तोशक व चादर व तकिया आदि से सजिके उसमें बिछाया और सब सामान रात के शयन समय का जैसे मिठाई, पानदान, अतरदान व उगालदान इत्यादि रखकर भगवत् को मानसीध्यान से उसमें शयन कराया व आप हथियार लेकर चौकी और पहरे के वास्ते बँगले के चारोंओर फिरते रहे और ध्यान भगवद्रूप के आनन्द में भरते रहे। नित्य बँगले की सजावट और सब सेवा अपने हाथ किया करते और किसी सेवक व दास को उस काम व सेवा में कुछ करने नहीं देते। भगवत् ने अत्यन्तप्रीति व स्नेह राजाका सेवा में देखा तो अपने वचन के अनुसार जो गीताजी में लिखा है कि जो मेरे भक्त जिस प्रकार मुझको सेवन करते हैं उसी प्रकार मैं उनको अङ्गीकार करताहूँ उस सेवा को ऐसा अङ्गीकार किया कि प्रतिदिन प्रभात को चिह्न ख़र्च होने मिठाई, पान, अतर और पानी का और दँतवन करनेका निर्देश और उगालदान में उगाल होनेका भाव सब राजा को अच्छेप्रकार मालूम हुआ करता और राजा उस भगवत्कृपा के परम, प्रेम के समुद्र में ग़ोता लगाया करते। कुछदिन जब इसी प्रकार बीते और महल में जाना न हुआ तो रानी के यह मन में आया कि राजा न मालूम किसी स्त्री को उस बँगले में बुलाता है सो भेद के बूझने के हेतु ऊपर चढ़कर जो बँगले को देखा तो एक लड़का किशोर परम शोभायमान श्यामसुन्दर स्वरूप पीताम्बर पहिनेहुये शयन में पाया। रानी आधीन हुई और प्रभात को यह वृत्तान्त राजा से कहा। राजा ने यद्यपि इस बात से रानीपर कुछ रिस किया परन्तु भीतर मन में यह विचार किया कि परम बड़भागी यह स्त्री है कि उसको भगवत् का दर्शन हुआ॥

कथा आशकरन की ॥

आशकरन राजा नरवरगढ़ के महाराजा भीमसिंह के बेटे जाति के कछवाहे स्वामी कील्हजी के चेले धर्मात्मा और परम भागवत गुणवान् बुद्धिमान् मधुर बोलनेवाले शूर उदार दृढ़चित्त साधुसेवी श्रीजानकीवल्लभ और राधावल्लभजन के नेमवाले अर्थात् श्रीकृष्णस्वामी और श्रीरघुनन्दन महाराज को एकरूप जानते थे दशघड़ी दिन चढ़ेतक भगवत् की सेवा पूजन अत्यन्त प्रेम से करते थे और द्वारपालों को आज्ञा थी कि कोई मनुष्य उस समय साम्हने न आने पावे और न किसी मामिले का सन्देह । कोई संयोगवश कि बादशाह की सवारी आई प्रभात को किसी कार्य शीघ्र के वास्ते बुलाया बादशाही सिपाही जो आये तो किसी ने उनकी आज्ञा का पालन न किया और न राजातक वृत्तान्त पहुँचाया उन सिपाहीलोगों ने वृत्तान्त सब बादशाह के हजूर में पहुँचाया । बादशाहने क्रोध करके फ़ौज भेजी परन्तु तबभी राजातक कोई न गया और न कुछ भय फ़ौज के आनेका हुआ सेनापति ने बादशाह को लिख भेजा कि फ़ौज के आनेपरभी कोई राजातक वृत्तान्त नहीं पहुँचता जो आज्ञा होय तो युद्ध प्रारम्भ होय । बादशाह यह बात सब सुनकर आप आया और दरवानों ने केवल एक बादशाह को भीतर जानेदिया । बादशाहने देखा कि आशकरनजी सेवा पूजन करके भगवत् के साम्हने दण्डवत् करते हैं बादशाह देरतक खड़ा रहा नितान्त तरवार राजा के पांव में मारी कि एँड़ी कटगई परन्तु राजा ने तब भी कुछ असावधानी न की और न घाव का भान हुआ क्योंकि मन भगवद्रूप में तदाकार हो रहा था और जिसओर मन न होय उसओर का दुःख सुख कब व्यापित होताहै सो भगवत् का वचन है कि जिनलोगों का मन मेरी कथा और चरित्रों में नहीं लगा दुःख सुख उनको मालूम होते हैं राजा दण्डवत् करने के पीछे मन्दिर के द्वारपर चिलमन डारकर बाहर आये और बादशाह को देखकर रीति के अनुसार मिलने की जो बादशाही मर्याद है सो सब की । बादशाह यह वृत्तान्त सब देखकर और राजा के विश्वास और सांची प्रीति पर बहुत प्रसन्न हुआ और लज्जित हो अपने अपराध को क्षमा कराया और मर्याद राजा की बड़ी की सब राजों का शिरोमणि समझा राजा जब परमधाम को गये बादशाह ने सुनकर बड़ा शोच किया और श्रीमोहनजी के मन्दिर में जो राजा सेवन करता था तिसकी सेवा व राग

भोगके वास्ते कई गांव जागीर के बन्धान करदिये कि अबतक माफ़ हैं ॥

अठारहवीं निष्ठा ॥

जिसमें दास्यनिष्ठा की महिमा और वर्णन सोरट भक्तों की कथा का है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की पूर्णचन्द्ररेखा को प्रणाम करके ऋषभदेव अवतार को दण्डवत् करता हूं कि अयोध्यापुरी में वह अवतार धारण करके ज्ञान और वैराग्य की अन्तिमदशा को संसार में प्रकट किया। महिमा दास्यनिष्ठा की कौन वर्णन करसक्ता है इसमें कुछ संदेह नहीं कि इस संसार से उद्धारके हेतु दास्यनिष्ठा से अधिक और कोई अवलम्ब नहीं यद्यपि भगवत्प्राप्ति के हेतु दूसरी निष्ठा भी बहुत हैं परन्तु परिणाम सब निष्ठाओं का इसी निष्ठा में पहुँच जाता है जैसे सखा व वात्सल्य है और उसमें दास्यभाव प्रकट मुख्य नहीं परन्तु जो मूल अभिप्राय पर दृष्टि जाती है तो वास्तव में जड़ उनके निष्ठा की दास्यभाव से सम्बन्ध रखती है और सखा व वात्सल्यभाव केवल मनकी रुचि से चित्त के लगने वास्ते हैं उनके मन्त्रों से साक्षात् अर्थ शरण होने और दास्यभाव के निकलते हैं तो जब कि उन दोनों निष्ठावालों का यह वृत्तान्त हो तो और निष्ठा एक अङ्ग व मिश्रित दास्यनिष्ठा की आपही होगई और हैं ब्रह्मस्तुति में भागवत में लिखा है कि तबहीं तक द्वैत व सुख दुःख इस मनुष्य की बुद्धि को चुरानेवाले हैं और तबहीं तक गृह कारागार है और तबहींतक मोह जो अज्ञान सो पांव की बेड़ी है कि जबतक भगवत् का दास नहीं होता दूसरा वचन भागवत् का है कि जिस भगवत के केवल नाम लेने और सुनने से निर्मल होजाते हैं उसके दास होनेसे कौन पदवी उत्तम नहीं मिलसक्ती है इस प्रकार के हज़ारों वचन सब पुराण इत्यादिकों में विख्यात व प्रसिद्ध हैं और यह निष्ठा ऐसी सहज समवायी को अङ्गीकार व प्राप्त है कि जिस किसी से पूछा जाता है तो अपने आपको ईश्वरदास और ईश्वर को स्वामी और मालिक अपना वर्णन करदेता है और यह बोलना कहना सब छोटे बड़ों के मुख से स्वाभाविक है कोई कोई उपासकों ने जो शरणागती को दास्यनिष्ठा से अलग वर्णन किया तो कारण यह है कि दास तो दास्यता व सेवा टहल के करने में विवश व पराधीन है कि सर्वावस्था व सब दशा में उसको अपने स्वामी की सेवा करना उचित व मुख्यतर है व शरणागत अर्थात् शरण में आया हुआ यद्यपि दास से भी अधिक सेवा टहल करता है परन्तु दास के सदृश उस

पर आवश्यक सिद्धान्त नहीं कि सेवा टहल करे सो प्रसिद्ध देखने और सुनने में आया है कि जो दास किसीका होता है जो वह अपने स्वामी की नियत सेवा टहल न करे तो नमकहरामों में गिनाजाता है और स्वामी भी प्रसन्न नहीं रहता है और जो शरण में आता है उसके ऊपर कोई सेवा टहल नियत नहीं परन्तु वह दासों की भांति दास्यता की टहल व सेवा भी करता है तो अनुक्षण सामने रहने के हेतु और सेवा का काम भी शीघ्र होजाता है । पद्धति दास्यनिष्ठा की जगह २ लिखी हैं और गोस्वामि तुलसीदासजी ने भी अयोध्याकाण्ड रामायण में दास्यनिष्ठा का भाव और रीति अच्छी कुछ वर्णन करी है उसका सारांश तात्पर्य यहहै कि दोनों लोक का लोभ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को मन से दूर करके केवल अपने स्वामी की सेवा व प्रसन्नता को सब सिद्धान्तों पर सिद्धान्ततर समझे और अपने आपको सब प्रकार परवश व आधीन अपने स्वामी के जानकर सुखपायके हर्षित और दुःख पायके दुःखित न होय और सुख को दिया हुआ अपने स्वामी का और दुःख को अपने जन्मान्तरीय पापों का फल समझता रहे और विशेष करके जगत् की बोलन यह है कि जो कोई बात दुःख व हानिकी आय जाती है तो यह कहते हैं कि भगवत् की इच्छा व आज्ञा ऐसीही थी सो जाने रहो कि अपने दास के दुःख व हानि के लिये भगवत् की आज्ञा कदापि नहीं होती । भगवत् हर घड़ी अपने दासों के वास्ते अच्छाही करता है नहीं तो विचार करना चाहिये कि उस मालिक की रिस और कोप करोड़ों ब्रह्माण्डों के ब्रह्मा और काल व यम इत्यादि नहीं सहसक्ने मनुष्य अपराधों से भरा क्या सहि सकेगा इसहेतु कदापि भूलिके व स्वप्नमें भी किसी दुःख व उत्पात के आने से किसी को यह मन में न हो कि भगवत् की इच्छा से हुआ । सेवा टहल जो दास को करना चाहिये अर्थात् आठवीं निष्ठा व सत्रहवीं निष्ठा में लिखी हैं उन सेवाओंका करना उचित व योग्य है सेवा मानसी होय अथवा साक्षात् श्रीविग्रह की तो जबतक सेवा सब न करे तबतक निष्ठा दास्यता की नहीं होसक्ती काहेसे कि दास का काम सेवा करने का है सैर व सपाटा करने फिरने का नहीं जब उस सेवा से छुट्टी पावे तब अपने स्वामी के सम्मुख विनय, प्रार्थना, स्तुति व अपराध क्षमापन किया करे और चरित्र व गुण शोचि समझके उस आनन्द में मग्न रहे उपासकों ने इस निष्ठा को पांचरस में एकरस लिखा है सो रस के विचार

के अनुसार भगवत् सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा करुणाकर दीन-बन्धु दीनदयाल भक्तवत्सल शरणागतपालक इस रस का विषयालम्बन है और भगवद्भक्त जो पहले होगये या अब हैं या आगे होंगे वे आश्रयालम्बन तिलक, माला, तुलसी और शस्त्रों का चिह्न धारण करना, चरित्रों का श्रवण, कीर्तन और शास्त्रों के अनुकूल वर्तना और भगवत् सेवा और टहल की सामां इकट्ठी करनी व्रत एकादशी इत्यादि व सत्संग व भगवत् उत्साह यह सब विभाव व अनुभाव अर्थात् प्रथम व द्वितीय सामग्री है व आठ प्रकार के सात्त्विक जो ग्रन्थ के आरम्भ में लिखे हैं अर्थात् तीसरी सामग्री सब इस रस में अपनी प्रवृत्ति करते हैं व चौथी सामग्री अर्थात् तेंतीस व्यभिचारों की दश दशा जो वात्सल्यनिष्ठा की भूमिका में लिखी हैं इस दास्यरस में भी उतनीही हैं सिवाय नहीं भगवच्चरणों की सेवा में निश्चल प्रीति का होना वह स्थायीभाव है और वह प्रीति कैसी हो कि किसी प्रकार और किसी सबबसे किसी घड़ी कम न होवे जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह रात दिन बराबर चलता रहता है इसी प्रकार चित्त की वृत्ति केवल भगवच्चरणों में लगी रहे हे प्रभु, दीन-वत्सल, करुणाकर, पतितपावन, महाराज! किस अवतरन व अवलम्ब से अपनी दशा के समाचार आपके समीप पहुँचाऊं कि सब प्रकार दीन और दुःखित हूँ और जो चुप हो रहूँ तो विना निवेदन दूसरा उपाय उद्धार का नहीं देखता हूँ काहे से कि आपके सिवाय ऐसा और कौन है कि जिसको पतित और अधम प्यारे हों जो यह आप कहेंगे कि दूसरे देवता बड़े २ नामी व बड़े हैं उनके शरण किसवास्ते नहीं जाता है तो पहले तो वे बपुरे अपनी ही दशा में फँसे हैं मेरे वास्ते क्या करेंगे? दूसरे जब कि आपके चरणकमलों के आगे किसी की कुछ बड़ाई न समझी तो वे हमसे कब प्रसन्न होंगे सिवाय इसके सब अपनी सेवा और स्वार्थ के चाहनेवाले हैं बिना कारण दीनपर प्रसन्न होना केवल एक आपही के बांटे में आया है तो उन देवताओं की सेवा में वह कोई जाय कि जिसको अपने शुभकर्म और सब प्रकारकी सेवा करने का भरोसा हो उनकी सभा में मेरे ऐसे अपराधी को कौन पूछता है इस हेतु मुझको तो न कोई जगह जाने की है व न कोई स्वामी दिखाई देता है न कोई दूसरा शरण है आपके द्वारपर पड़ा हूँ जब कबहीं जो कुछ होगा आपही के चरणारविन्द से होगा और निश्चय करके आप

के द्वार से कोई पतित और पातकी निराश नहीं फिरा इस हेतु मुझको भी निश्चय है कि अपने मनोरथ को प्राप्त होजाऊंगा और एक बिनती यह है कि यद्यपि प्राप्त होना मेरे मनोरथ का मेरे यत्न से अति दुर्लभ है परन्तु आपकी तनकसी कृपा से दासों से मिलसक्ताहूं केवल इतना ही चाहता हूं कि वह सभा व समाज आपके राज्याभिषेक का जो ब्रह्मादिक को परम आनन्द का देनेवाला है सदा निश्चल मेरे मन में बसा रहे भगवत् का वामन अवतार उस स्वरूप से हुआ कि जो विष्णुनारायण शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी का ध्यान शास्त्रों में लिखा है और शरणागतनिष्ठा में लिखा जायगा परन्तु जिस घड़ी राजा बलि के द्वार पर गये और दान लिया उस समय का ऐसा ध्यान भागवत में लिखा है कि परम मनोहर और शोभायमान छोटासा ब्रह्मचारी का स्वरूप जिसको देखकर सूर्य शीतल और चन्द्रमा लज्जा से सब अङ्ग जल होता था बनाकर एक हाथ में जल का कमण्डलु व डोरी दूसरे हाथ में दण्ड लिये हुये मुंजी शोभित छतुरी छाया के वास्ते लगाये हुये राजा बलि के सम्मुख विराजमान और संकल्प कराते हैं॥

कथा प्रह्लादजी की॥

प्रह्लादजी भगवद्दासों में अग्रगणनीय व शोभाके देनेवाले दास्यनिष्ठा और भागवतधर्म के हुये सो कथा उनकी सब पुराणों में और विशेष करके भागवत, विष्णुपुराण व महाभारत में विस्तार से लिखी है इस वास्ते यहां संक्षेप से लिखता हूं। जब हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु के भाई को भगवत् ने वाराहरूप धरके मारा तो हिरण्यकशिपु सदा एकछत्र राज्य करने व अमर रहने के वास्ते उपाय विचार करके तप करने को पहाड़ में चलागया। राजा इन्द्र ने साज और घरबार हिरण्यकशिपु का लूट पाटके ध्वस्त कर दिया और उसकी स्त्री को कि प्रह्लादजी गर्भ में थे पकड़ कर लेचला। नारदजीने आकर छोड़ादिया और अपनी रक्षा में रखकर ज्ञान उपदेश किया। वास्तव करके वह ज्ञान का उपदेश प्रह्लादजी के वास्ते हुआ क्योंकि गर्भ में सुनते थे जब हिरण्यकशिपु अति कठिन २ वरदान लेकर आया तो अपना राज्य व घरबार सब सजि लिया और तीनोंलोक की राजगद्दीपर बैठकर सब देवताओं को बन्दी में डालदिया। कुछ दिन पीछे प्रह्लादजी का जन्म हुआ और ब्राह्मणों ने हिरण्यकशिपु को मंगल आशीर्वाद दिया कि इस महाभाग लड़के के जन्म लेने से

तुम्हारा कुल परिवार पवित्र हुआ और तुम्हारे पुरुषा सब परमधाम के भागी होगये। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादजी को बड़े लाड़ व दुलारसे पालन किया और पांच चार वर्ष के हुये तो शंख व लिखित दोनों शुक्रजी के पुत्र हैं उनके पास वास्ते पढ़ने राजनीति और शास्त्र में प्रवृत्ति होनेके निमित्त भेजा जब गुरुने पढ़ाना आरम्भ किया तब प्रह्लादजी ने भगवन्नाम का उच्चारण किया तब गुरुने कहा कि अरे तू किसका नाम लेता है वह तेरे बाप का शत्रु है जो तेरा बाप सुनेगा तो तुझे दण्ड होगा। प्रह्लादजी ने कहा सब विद्या का पढ़ना केवल उस भगवत् के जानने वास्ते है उसको छोड़कर दूसरी विद्या का पढ़ना निपट निष्फल है और अपने पिता का कुछ डर मुझको नहीं। गुरुने प्रह्लादजी की माता से बहुत शिक्षा कराई परन्तु प्रह्लादजी अपने विश्वास और धर्म में दृढ़ रहे। एकदिन हिरण्यकशिपुने गोद में बैठालकर पूछा तुमने इन दिनों में क्या पढ़ा है? प्रह्लाद जी ने वही नाम भगवत् का सुनाया हिरण्यकशिपु क्रोध से बोला कि यह नाम मेरे शत्रुका किसने पढ़ाया है? अब फिर कबहीं इस नामको न लेना। प्रह्लादजी ने कहा कि यही नाम सब नामियों का नाम देनेवाला है और सब धर्मों का परमधर्म और सब विद्याओं की परमविद्या है तुमको उचित है कि इस नाम का भजन किया करो। हिरण्यकशिपु सुनकर अधिक क्रोधवन्त हुआ अपने भृत्यलोगों से प्रह्लादजीको दण्ड देने के वास्ते आज्ञा दी उन्होंने आज्ञाके अनुसार किया जब कुछ न सपरा तब आग में जलवाया, नदी में डुबोया और पहाड़पर से गिरवाया परन्तु कुछ क्लेश प्रह्लादजी को न हुआ हारिके हिरण्यकशिपु ने फिर पढ़ानेवाले को सौंपा। प्रह्लादजी पाठशाला के सब बालकों को गुरु जब न रहें तब उपदेश किया करें कि यह संसार असार है और जगत् का सब व्यवहार नश्वर है और भगवत् सार है और सदा सब जगह प्राप्त है भगवच्चरणों में मन लगाना परमसुख और भगवत् विमुख होना परमदुःख है। मनुष्य का देह केवल भगवद्भजन के वास्ते है, नहीं तो पशु, पक्षी, तृण व कूड़ा करकट से भी तिरस्कृत है। नारदजी ने जो उपदेश मुझको किया था सो तुमको सुनाया कल्याण इसी में है कि भगवत् शरण होकर स्मरण और भजन करो भगवत् को कुछ जाति और कुलपर दृष्टि नहीं मैं भी तो तुम्हाराही सजातीय हूं देखो भगवत् ने कैसे कैसे संकट काटे हैं। बालकों को उपदेश प्रह्लादजी का लगगया सब भगवद्भजन करनेलगे गुरु आया और यह

वृत्तान्त जब देखा तो रिस की और हिरण्यकशिपु से जाकर सब वृत्तान्त कहा वह क्रोधकी अग्नि में लाल हुआ आया और तरवार हाथ में लेकर प्रह्लादजी के मारनेको उद्यत होकर बोला कि अब तेरा रक्षक कौन है ? प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि वही भगवत् जो सबमें व्यापक और समर्थ सर्वत्र प्राप्त है। हिरण्यकशिपु ने कहा इस खम्भे में भी है उत्तर दिया अलबत्ता इसमें भी है। हिरण्यकशिपुने एक मुष्टिका उस खम्भे में मारी कि शब्द प्रचण्ड व भयंकर उसमें से हुआ और फिर भगवत् भक्तरक्षक और सत्य करनेवाले वचन अपने भक्तों के नृसिंहरूप धारण करके वैशाख सुदी चतुर्दशी मध्याह्न के समय मुल्तान में कि वह राजधानी हिरण्य-कशिपु की थी प्रकट हुये। हिरण्यकशिपु भी युद्ध को उद्यत हुआ लड़ाई होनेलगी जब संध्या का समय आया तब भगवत् ने उसको पकड़ा और अपने जानुओं पर डालकर गृह के द्वारपर अपने नखों से उदर फाड़ा और परमपद को भेजदिया और ब्रह्मा का वरदान सब भगवत् ने सत्य भी रक्खा। ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिक सब देवता स्तुति और विनय करनेलगे और आकाश से जयजयकार की ध्वनि और फूलों की वर्षा होने लगी और जो भगवत् का स्वरूप विकराल व क्रोध भरा था किसी को यह सामर्थ्य न हुई कि समीप जाकर क्रोध को शान्त करे इस हेतु सब ने प्रह्लादजी को भेजा। प्रह्लादजी ने जाकर दण्डवत् करके विनय किया कि हे प्रणतार्तिभञ्जन ! आपकी महिमा वेद और ब्रह्मा भी नहीं कहसके मुझ अधम, अज्ञ व बालक से तो क्या वर्णन होसक्ती है परन्तु कृपासिन्धु व दीनवत्सल जानकर विनय करता हूं कि आपके क्रोध भरे स्वरूप से सब देवता भयभीत और कम्पायमान हैं कृपा करके उनका भय दूर करो। भगवत् ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छा और जो इच्छा तुमको हो सो मांगो कि पूर्ण करूंगा। प्रह्लादजी ने विनय किया कि आपके चरणकमलों की भक्ति से सिवाय किसी वस्तु की चाहना नहीं जो शरीर मुझको मिले आपके चरणों की प्रीति बनी रहे। भगवत् ने यह वरदान दिया और राजगद्दीपर बैठालकर अपने हाथ से राजतिलक करादिया उस समय भगवद्रूप की शोभा ऐसी थी कि जो हजारों सूर्य एकसाथ ऊगैं तो वे भी भगवत्मुख के तेज की समता नहीं पासक्ते उस मुखपर जहां तहां रुधिर की बूंदैं लगी हुईं, बड़ी आँखैं, लाल कुछ पियराई लियेहुये जीभ से बारबार अपने ओठों को चाटते हैं, मूछैं भूरी, गर्दन के

बाल पीले और श्याम, दोनों हाथ अत्यन्त बलिष्ट, नख तीक्ष्ण, चौड़ी छाती पर आंतों की माला विराजमान और पूँछ कमर पर से होकर शिर पर चमर की भांति लहराती हुई, प्रह्लादजी को गोद में लेकर राजतिलक करते हैं, देवता चारोंओर बिनती कररहे हैं, आकाश में दुन्दुभी बजती हैं, अप्सरा नाचती हैं, गन्धर्व भगवच्चरित्रों का कीर्तन करते हैं, फूलों की वर्षा होती है और यह बात मालूम रहे कि भगवत्स्वरूप ऐसा न था कि कोई अङ्ग व्याघ्र का होय और कोई अङ्ग मनुष्य का वह सब स्वरूप भगवत् का कबहीं व्याघ्र के रूप से देखपड़ता तथा कबहीं मनुष्य के यह बात भागवत के तिलक से प्रकट है परन्तु बहुत करके भगवद्रूप व्याघ्र के शरीर से देखने में आता था पीछे भगवत् तो अन्तर्द्धान होगये और प्रह्लादजी राज्य करनेलगे उनके राज्य में भगवद्भक्ति की ऐसी प्रवृत्ति भई कि कोई विमुख न रहा और न्याय धर्म इतना था कि एक वेर प्रह्लादजी के पुत्र विरोचन से व श्रुतधन्वा ब्राह्मण से आपसमें एक सुन्दरी स्त्री के वास्ते यह विवाद हुआ कि विरोचन तो उस स्त्री को राजा के पुत्र होनेसे आप लिया चाहताथा और वह ब्राह्मण कहता था कि राज इत्यादिकों पर ब्राह्मणों की अधिकता है इस हेतु यह स्त्री पहले भाग मेरा है न्याय इस झगरे का प्रह्लादजी पर निश्चय हुआ और आपस में यह प्रबन्ध ठहर गया कि जो अन्यथा कहनेवाला राजा के यहां ठहरे सो वध किया जाय। प्रह्लादजी ने कुछ पक्ष अपने पुत्र का न किया और ब्राह्मण जो सच कहता था उसको वह स्त्री दिलादी और अपने पुत्र के वधके वास्ते आज्ञा दी। वह ब्राह्मण इस न्याय से बहुत प्रसन्न हुआ और उसके बदले विरोचन को वधसे बचाय के प्रह्लादजी को देदिया। इस प्रह्लादचरित्र से भगवत्की भक्तवत्सलता पर विचार करना चाहिये कि यह हिरण्यकशिपु आरम्भ राजसे देवताओं पर उत्पात करताथा और देवतालोग सदा त्राहि त्राहि पुकारते रहे परन्तु भगवत्ने कबहीं हिरण्यकशिपु की ओर कुछ तनक चिन्तन भी न किया जब उसने भगवद्भक्तको दुःख दिया तो उसको न सहिसके और आपने विना पुकारे भक्त की सहाय करी और एक शिक्षा भी इस चरित्र से प्रगट होती है कि जो बाप भी भगवत्सन्मुख होने में बाधा करे तो त्याग के योग्य है जिस प्रकार प्रह्लादजी ने त्याग किया॥

कथा अङ्गदजी की॥

अङ्गदजी बेटे बाली वानरों के राजा के ऐसे परम पवित्र भगवद्भक्त

हुये कि युवावस्था और सर्वसुख राज्य ऐश्वर्य प्राप्त था तथापि सदा मन की वृत्ति भगवच्चरणों में रखते थे और रघुनन्दन महाराज ने उनके बाप को सुग्रीव की दीन पुकार पर बध किया परन्तु तनक भी भक्ति की राह से और अपने धर्म से न फिरे और प्रसन्न हुये कि ऐसी पदवी के योग्य बाली नहीं था सो दी व जानकीजी के खोजने में और रावण से युद्ध होने के समय ऐसा परिश्रम व शूरता करी सो वृत्तान्त विस्तार से रामायण में लिखा है थोड़ासा यह है कि जब रघुनन्दन महाराज की ओर से रावण के पास दूत बनिके गये और प्रश्नोत्तर उचितता के साथ हुआ तो उस घड़ी यह बात ढिठाई की रावण के मुँहसे निकली कि जैसे और आदमी हैं वैसेही रामचन्द्र तेरे स्वामी भी हैं यह वचन सुनतेही अङ्गदजी क्रोध में भरिके कालस्वरूप होगये कि भयसे कितने राक्षस भाग गये व रावण भी कांपकर गिरपड़ा व मुकुट भी उसके माथे से गिरपड़े उसमें से कई मुकुट अङ्गदजी ने श्रीरघुनन्दन महाराज की ओर फेंके उसके पीछे जब अतिउत्तर प्रतिउत्तर का संयोग पहुँचा तो चरण रोपिके रावण से प्रण किया कि जो कोई तुम्हारे में से मेरा पांव उठाय देवे तो श्री रघुनन्दन महाराज लौट जायँगे और सीता महारानी को मैं हार चुका इस बात को सुनकर इन्द्रजित् आदिक बड़े २ वीर उठायके हारिगये चरण न चला न हिला जैसे कामियों की बातों के सुननेसे पतिव्रता स्त्री का मन अथवा कोई आपत्ति के आने से भक्त का मन हरिभजन और न्याय से नहीं चलायमान होता। राक्षसों ने भांति२ के उपायसे चरणको उठाया परन्तु चरणने धरती को इस प्रकार न छोड़ा कि जैसे विना भगवद्भजन संसारका दुःख और विना विद्याके अज्ञान नहीं छोड़ता। सब लज्जितहोकर बैठ गये तब अन्तमें रावण ललकारकर उठा चाहा कि अङ्गदजी के चरण को पकड़ै उस समय अङ्गदजीने शिक्षा और तर्क करके कहा कि अरे मूढ़! मेरे चरण के पकड़ने से तेरा क्या भला होता है श्रीरघुनन्दनस्वामीके चरण क्यों नहीं पकड़ता कि कृतार्थ होजावे रावण लज्जित होकर सिंहासनपर बैठगया अङ्गदजी को भगवत् का ऐसा दृढ़ विश्वास था कि प्रण करने के समय कुछ संदेह न किया और लङ्का को जीतकर जब रघुनन्दनस्वामी अयोध्या में फिर आये और राज्याभिषेक होलिया तब अङ्गदजीभी स्वामी की आज्ञा से बिदा होकर अपने घरको गये और भगवत् के स्मरण भजन में ऐसे लीन हुये कि दूसरी ओर तनक चित्त की वृत्ति न गई ॥

कथा पीपाजी की ॥

पीपाजी ऐसे परमभागवत हुये कि उनकी भक्ति के प्रताप से पशुतुल्य भी भगवत् शरण होगये भगवद्भक्तों के भक्त और सब गुणों के जाननेवाले हुये । गागरौनगढ़ के राजा व पहले दुर्गाजी के सेवक थे । एकबेर भगवद्भक्तलोग जा निकले उनको रसोई की सामग्री जो इच्छा से चाही सो दिलवाय दी उन्होंने रसोई बनाकर भगवत् का भोग लगाया और भगवत् से प्रार्थना की कि यह राजा भक्त होजाय । रातको एक किसी ने राजा को स्वप्न में शिक्षा की कि तू कैसा मतिमन्द है कि भगवत् से विमुख होकर उद्धार चाहता है पीछे एक प्रेत ने भयंकररूप से प्रकट होकर राजा को पलँग परसे धरती पर डालदिया राजा ने उसी घड़ीसे भगवद्भक्ति का आरम्भ किया और सब रचना संसार की असार दिखाई देनेलगी दुर्गाजी साक्षात् हुईं और पीपाजी ने दण्डवत् करके पूछा कि भगवद्भक्ति किस प्रकार प्राप्त होय दुर्गाजी महारानी रामानन्दजी को गुरु करने की शिक्षा करके अन्तर्धान हुईं और पीपाजी रामानन्दजी के दर्शन के हेतु ऐसे व्याकुल हुये कि लोगों को यह संदेह हुआ कि पीपाजी वैराग्य को काशीपुरी में रामानन्दजी के पास आये उन्होंने निराश करदिया कि यह घर त्यागियों व विरक्तों का है राजा का यहां क्या काम है । पीपाजी सब त्यागके फ़क़ीर बनके गये कि मैं भी फ़क़ीर होगया । रामानन्दजी ने आज्ञाकी कि कुयें में गिरपड़ो तुरन्त गिरनेचले जब गिरने लगे तो रामानन्दजी के चेलों ने पकड़लिया साम्हने लाये तब रामानन्दजी ने चेला किया और भगवद्भक्ति कृपापूर्वक देकर कहा कि अपने घर जाओ साधुसेवा करते रहो । एक वर्ष पीछे हमभी साधुसेवा सुनैंगे तो तुम्हारे घर भक्तों सहित आवेंगे । पीपाजी घर आये और ऐसी साधुसेवा व भजन को किया कि वर्णन नहीं होसक्ता पीछे वर्षदिन के पत्र लिखा कि अपने वचन की पालना कीजिये पधारिये । रामानन्दजी कबीर व रैदास आदि चालीस चेलों सहित चले जब नगर के निकट पहुँचे तब पीपाजी बड़ेभाव रीति मर्यादपूर्वक रामानन्दजी को समा सहित घर लाये व ऐसी सेवा करी कि जिसका फल शीघ्र प्राप्त होय कुछ दिन पीछे रामानन्दजी ने द्वारका चलने की इच्छा की और पीपाजी विकल भये तब उनकी प्रीति हृदयकी देखकर रामानन्दजी ने आज्ञा की कि चाहो यहां रहो चाहो फ़क़ीरी अङ्गीकार करके साथ चलो । पीपाजी तुरन्त

सब राज्य छोड़कर साथ हुये बारह रानी भी साथ चलीं । पीपाजी ने उन ग्यारह को समझाकर फेरा एक छोटी रानी जिसका नाम सीता था कमली पहिरना व नङ्गी रहने कोभी अङ्गीकार किया तब रामानन्दजी के सौगन्द दिलाने से साथ लिया और चले एक ब्राह्मण भी साथ हुआ मना करने से विष खा मरा भगवच्चरणामृत से जीगया फिरकर अपने घर आया समाज द्वारका में पहुँचा दर्शन यात्रा करके काशीजी की यात्रा की परन्तु पीपाजी आज्ञा लेकर द्वारका में रहे । एक दिन श्रीकृष्ण स्वामी के दर्शन की इच्छा हुई समुद्र में कूदपड़े दिव्य द्वारका में पहुँच गये दर्शन पाया सातदिन रहे भगवत् की आज्ञा से फिर समुद्र के किनारे जल से सीतासहित निकले कपड़ा भीगा शरीर सूखा सबलोगों ने देख करके आश्चर्य माना पीपाजी को भगवत्ने जो छाप दीथी सो पुजारियों को दी और कहदिया कि जिसके शरीरपर यह छाप लगाई जायगी सो भगवत् को प्राप्त होगा फिर जन्म न पावेगा यह प्रताप पीपाजी का जब विख्यात हुआ तो लोगों की बड़ी भीड़ होनेलगी तब वहांसे चलके छः मंजिल आये थे कि लश्कर पठानों का मिला । सीताजीको सुन्दरी देखकर उन्होंने छीनालिया सीता ने भगवत् को स्मरण किया तुरन्त आप आये और दुष्टोंको दण्ड देकर सीताको आनन्दसे ले आये । पीपाजी ने सीता से कहा कि अब भी घर चलीजाओ तुम्हारे कारण से सब उत्पात खड़े होते हैं सीताने उत्तर दिया कि महाराज ! आपके उपाय करने से कौन उत्पात शान्त हुआ है कि जिसके कारण से भजन में भङ्ग हुआ हो और किससमय प्रभु ने सहाय न करी सो आपको और मुझको इस बात की परीक्षा अच्छे प्रकार होचुकी है तबभी ऐसी सिखावन करना यह दूसरी बात है । पीपाजी इस दृढ़ निश्चय पर प्रसन्न हुये दूसरी राहसे चले राह में एक व्याघ्र आया उसको चेला करके भगवद्भक्ति का उपदेश किया उसने अङ्गीकार किया अबतक वहां का व्याघ्र साधु ब्राह्मण गऊ को नहीं मारता वहां से चलकर एकगांव में आये शेषशायी महाराज का वहां मन्दिर था बाज़ार में लाठी देखकर मालिक से मांगी उसने कहा जङ्गल में से काटलेव पीपाजी ने सब लाठियों को हरी व सपत्र करादिया कि जङ्गल होगया एक लाठी को काट लिया फिर एक चीधरनामे भक्त के घर आये उनके घर कुछ न था अपनी स्त्री को नंगी कोठे में बैठाकर उसका लहँगा बेचकर रसोई को कराया भोगलगे पीछे जब चीधरभक्त को उनकी स्त्री सहित जेंवने को बुलाया तो

चीधर ने कहा कि आप भोजन करें सीथ प्रसाद वह भोजन करेगी तब पीपाजी ने सीताको भेजा देखा तो कोठे में है पूछा कि कोठे में किसहेतु बैठी है उत्तर दिया कि तनपर वस्त्र होना न होना कारण परम आनन्द का नहीं भगवद्रूप का चिन्तवन और साधुसेवा परम आनन्दसार है उस का होना अवश्य योग्य है। सीताजी ने सब हाल जानलिया और उनके भाव के आगे अपनी भक्ति को तुच्छ समझा अपने अङ्गपर के वस्त्र से आधा देकर बाहर लाईं और एकसाथ भोजन किया पीछे सीता व पीपा जी उनकी सेवा उचित समझकर विशेष द्रव्य की प्राप्ति वेश्याकर्म से शीघ्र जानकर बाज़ार में जाबैठे सुन्दररूप देखकर लोग जमा हुये समीप आये तो आंख उठाकर न देख सके पूछा तुम कौन हो जवाब दिया कि बारमुखी हैं घरबार कहींनहीं केवल एक समाजी साथ है वे लोग सुन-कर चुप होरहे। कुछ हँसी की बात न कहिसके नाज व मुहर व रुपया भेंट किया पीपाजी ने वह सब चीधरभक्त के घर पहुँचादिया भक्त ऐसे वैराग्यवान् थे कि उसी घड़ी भगवत्भक्तोंको देदिया आप जैसे थे तैसे रहे। पीपाजी बिदा होकर राह का कष्ट झेलते ठोड़ाशहर में टिके तालाब पर स्नान करनेगये मुहरों से भरा एकघड़ा देखा रात को सीता से कहा चोरों ने सुनकर जाकर देखा तो घड़े में एक बड़ा सर्प है तब विचारा कि इस सांप से उसको कटवाना चाहिये जो हमारे काटने के वास्ते झूठ कहा। उस घड़े को लेआकर पीपाजी के स्थान में डालकर चलेगये। पीपाजी उस समय सातसौबीस मोहर जो पांच पांच तोले की एक एक थी तीनदिन में भण्डारा करके साधुओं को खिलादिया। सूरसेन राजा उस देश का था वह पीपाजी का नाम सुनकर दर्शन को आया चरणों में पड़कर विनय किया कि मुझकोभी अपने ऐसा बना व मन्त्र देकर चेला करो। पीपाजी ने कहा कि अपनी सम्पत्ति व रानी इत्यादि सब हमारे भेंट करो राजा ने तुरन्त वैसाही किया तब उसको मन्त्र उपदेश करके चेला किया व रानी व सम्पत्ति इत्यादि जो भेंटकीथी सो सब फेरदी और कहा कि भक्तों से परदा का प्रयोजन नहीं। राजा के भाई बन्धु यह वृत्तान्त सुनकर बहुत क्रोध युक्त हुये और अन्तःकरण से पीपाजी के साथ दुष्टता करनेलगे। एक बनजारा बैलों के मोललेने को बैल ढूंढ़ता हुआ आया राजा के भाइयों ने बहँकादिया कि पीपाजी के पास बैल अच्छे २ हैं। बनजारे ने पीपाजी के आगे आय के रुपया नक़द रखदिये और कहा कि नये नये बैलों को

मोललेने आया हूं । पीपाजी दुष्टों की दुष्टता जानगये कहा कि इस समय बैल चराईपर गये हैं फिर आकर लेजाना । बनजारा तो चलागया और पीपाजी ने उसी रुपये से भण्डारा व महोत्साह आरम्भ किया हज़ारों साधु जमा थे कि बनजारा आया और बैलों के वास्ते विनय किया । पीपाजी ने कहा कि यह हज़ारों बैल खड़े हैं कि परमधाम तक खेप पहुँचादेते हैं जितने तुमको काम हो लेजाव । बनजारा बड़भागी हरिभक्तों का दर्शन करके उसी घड़ी भगवत् के शरण हुआ व अच्छे कपड़े साधुओं को दिये एकबेर घोड़े पर सवार होकर पीपाजी स्नानको गये घोड़े को खुला छोड़कर नहानेलगे घोड़े को दुष्टलोग चुरालेगये और बांधरक्खा जब स्नान करके चलने का विचार किया तो घोड़ा कसा कसाया आगे आकर खड़ा हुआ मानो कोई तैयार करके लाया है । एकबेर पीपाजी हरिभक्तों की समाजमें गये थे घरपर साधु आये घरमें कुछ न था सीताजी बाज़ार में जाकर एक बनिये से रात को आने के क़रारपर सामग्री लेआईं उसी घड़ी पीपाजी भी आगये बहुत प्रसन्न हुये और सीता ने सब वृत्तांत कहदिया जब रात को सीता शृंगार करके चलीं तो जल बरसने लगा पीपाजी अपनी पीठपर चढ़ाकर बनिये के घर लेगये दर्शन से बनिये को ज्ञान होगया चरण सूखा देखकर पूछा माता किस प्रकार आईं ? सीताने कहा मेरे स्वामी अपनी पीठ पर लाये दरवाज़े पर खड़े हैं बनिया दौड़कर चरणों में पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा । पीपाजी ने कहा लज्जा का कुछ प्रयोजन नहीं अपनी दूकान में जा बच्चा चैन उड़ावो तुमने हमको वह रुपया दिया है कि जिसके कारण भाई आपसमें लड़मरते हैं बनिया बहुत दुःखित और धार मारमार रोने लगा । पीपाजी को दया आई दीक्षा देकर आवागमनके दुःखसे छुटादिया दुष्टों ने यह वृत्तान्त राजातक पहुँचाया ब्राह्मणों ने राजासे कहा कि यह बड़ी अनीति है राजा अज्ञान अपनीही नाईं समझकर बे विश्वास हो-गया । पीपाजीने सुनकर विचार किया कि गुरुसे विश्वास छुटे इसके दोनों लोक बिगड़जायँगे इसको दृढ़ विश्वास करायदेना चाहिये इस हेतु राजा के घरगये ख़बर कराई राजा ने कहला भेजा कि पूजा करताहूं । पीपाजी ने कहा कि यह राजा बड़ा मूर्ख है चमारके घर जूती लेने वास्ते गया है नाम पूजा का लेता है । राजा सुनकर तुरन्त नङ्गेपायँ बाहर आयकर चरणों में पड़गया । पीपाजीने राजा को चेताने वास्ते कुछ और परीक्षा देना उचित समझा । राजा की एक रानी जो बन्ध्या घरमें थी उसको ले आनेकी आज्ञा

की राजा अपने राज्यके शोच में चला। आंगन में व्याघ्र बैठे देखा फिरा कि यही बहाना करूंगा पीछे भी व्याघ्र देखा तब तो करामात पीपाजी की समझा और रानीके पास गया देखा कि बगल में एक लड़का तुरन्त का जन्माहै तब तो आधीन व विश्वासयुक्त होकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और हाथ जोड़कर कांपता हुआ डरसे कहने लगा कि मैंने तुम्हारी महिमा नहीं जानी अब मेरा अपराध क्षमाकर कृपा करो। पीपाजी ने उसी लड़के के स्वरूप से प्रकटहोकर कहा कि ऐ मूर्ख! उस दिनके विश्वास और प्रेम को स्मरणकर कि जिस दिन चेला हुआ। उचित तो यह था कि दिन दिन भगवत् और गुरु में प्रीति अधिक होती यह नहीं कि विमुख होकर नरक में जाना अबसे ज्ञानकर कि दोनों लोक सहजमें प्राप्त हों इस प्रकार शिक्षा देकर अपने स्थान पर आये। एक कोई विमुख ऊपरसे साधु भेष बनाकर पीपाजी से एक रात के वास्ते सीता को लिया और सारी रात भागा और सीताकोभी भगाया इस विचारसे कि दूर निकलजावें कि सीता फेर न जाय जहां प्रभात हुआ तहां से सीता चलने से रुकि गईं कि स्वामी की आज्ञा एक रातकी है तब सवारी ढूँढ़ने गांव में गया गांव की स्त्रियों को सीता का स्वरूप देखा तब तो ज्ञान हुआ सीताजी के चरणों में पड़ा और चेला होगया। पीपाजी को इसी प्रकार एकबेर चार विषयीभी साधु बनिके आये सीताजी को मांगा जब शृंगार करके सीता कोठरी में जा बैठी तब वे भी चारों गये तो देखा कि एक बाघिन मारने व फाड़नेवाली बैठी है तब क्रोध व भयसे भरे पीपाजीके पास आये व कहनेलगे कि अच्छे साधु हो बाघिन बैठाय दी है। पीपाजीने कहा वह सीता है जैसी तुम्हारी रुचि की वृत्तिहै वैसी दिखाई देती है जो शुद्धचित्त से जाओगे तो सीता के दर्शन होंगे पीछे सीता के दर्शन हुये वह सब भी चेले होकर भगवद्भक्ति करने लगे भगवत् को प्राप्त हुये। एक गूजरी से दही बहुत दिनतक साधों की सेवा के निमित्त मँगाया व उसको मोलके रुपये बहुत दिये। एक ब्राह्मण दुर्गा उपासक के घर पीपाजी ने भगवत् भोग लगाकर महाप्रसाद भोजन किया तो उसको भी भोजन कराया उस प्रभाव से उसको दुर्गा के दर्शन हुये भगवद्भक्त होगया व भगवन्मूर्तिकी सेवा आराधन करनेलगा। एक तेलिन सुन्दरी तेल लो तेल लो कहती फिरती थी पीपाजीने कहा कि इस मुखसे रामराम कहने से बड़ी शोभा होती तेलिन क्रोध करके बोली कि जब कोई मरजाता है तब राम नाम कहा करते हैं वह जब अपने घर

पहुँची तो खसम को मरा हुआ देखा आधीन होकर पीपाजी के चरणों में पड़ी और सब लड़के बाले समेत रामनाम कहने का करार किया तब पीपाजी ने उस मुरदे को जिला दिया। साधुसेवा के निमित्त एक भैंस कहीं से आयगई उसको चोर ले चले पीपाजी भैंस के बच्चे को लेकर पीछे पीछे यह पुकारते चले कि भैंस बिना बच्चेकी दूध न देगी इसको भी लेते जाओ चोर आधीन हुये भैंस को स्थान में बांधगये। कहीं से एक गाड़ी गेहूँ और कुछ रुपया लाते थे बटपारों ने वह गाड़ी छीनली पीपाजी वह रुपया भी देने लगे कि बिना रुपये के घी चीनी इत्यादि सामा रसोईकी न होसकेगी बटपार भी सब आधीन हुए वह गाड़ी आप पहुँचाय गये। एक महाजन का बहुत रुपया साधु सेवा के खरच का पीपाजी पर क़रज होगया नित तगादा करता था व पीपाजी आज कल किया करते एक दिन बहुत कड़ाई की पीपाजी ने कहा कि हम कुछ नहीं धराते हैं उसने हाकिम के यहां फ़रयाद की जब हिसाब की बही दिखाने लगा तो सब बही कोरी देखी लज्जित हुआ हाकिम ने दण्ड देने को चाहा पीपाजी छोड़ायलाये चरणों में पड़ा रोने लगा तब बही ज्योंकी त्यों होगई और रुपया भी उसका देदिया। भगवत् ने देखा कि पीपाजी कंगाल होगये रुपया और अनाज बहुत भेजवाय दिया पीपाजी ने वह घर और सब असबाब पुण्य करदिया। एक किसी मनुष्य से गोहत्या होगई उसके जाति भाइयों ने पांति से निकाल दिया पीपाजी ने रामनाम उसके मुख से कहलाया और भगवत् प्रसाद भोजन कराकर भगवद्भक्त करदिया उसकी जातिने ज्यों का त्यों अलग रक्खा तब पीपाजी ने सब वेद व शास्त्रों के सिद्धान्त से नाम की महिमा प्रकट दिखाकर कहा कि वह नाम एकबेर मुख से निकले तो करोड़ों जन्म के महापातक दूर होजाते हैं तो उस नाम के सैकड़ों हज़ारों बेर के लेने से एक गोहत्या कहां बाक़ी रही सबने निश्चय किया उसको जातिमें लेलिया। राजा सूरसेन को एक बेर पीपाजी के दर्शन की चाह हुई उसके मनकी बूझके पीपाजी आप गये दर्शन दिये। एक साधु को रुपया का प्रयोजन लगा उसी जगह इतना रुपया पीपाजी ने दिया कि और बचरहा। एक बेर श्रीरङ्गजी के मिलने को गये रङ्गजी पूजा करते थे फूलों की माला मानस में पहिरावते मुकुट में अटकजाय बनै नहीं तिसको पीपाजी ने कहदिया कि कैसे पूजा करतेहो कि माला पहिनाते नहीं बनती श्रीरङ्गजी

सुनकर दौड़े आये परस्पर मिले एक ब्राह्मण ने लड़की व्याहने वास्ते जांचा पीपाजी ने उसको राजा के पास अपना गुरु बतलाके द्रव्य दिलवाया । एकादशीके दिन जागरण होताथा पीपाजी तुरन्त उठकर अपना हाथ मलने लगे राजा ने कारण पूछा तो कहा कि द्वारका में भगवत्-चँदुये को आग लगगई थी उसको बुझाया है राजा ने सांड़नी लगाकर समाचार मँगाया तो सत्य ठहरा और यह भी मालूम हुआ कि पीपाजी हर एकादशी को जागरणमें वहां आते हैं । एकदिन पीपाजी नदी पर स्नान करनेगये थे एक तेली के लड़के से बैल लेकर एक ब्राह्मण को दे दिया जब तेली ने पीपाजी से अपना दुःख सुनाया तो बैल अपने घर पर बँधापाया । एक बेर अकाल में अनाज व कपड़ा लोगों को इतना दिया कि अकाल था ही नहीं सबका दुःख निवारण किया । एक बेर बड़ी सम्पत्ति कहीं से हाथ लगी दो चार दिन में खरच करदिया ऐसे चरित पीपाजी के अनेक हैं कि जानने में नहीं आते सो भगवत् और भक्तों में क्या भेद है कि ऐसीही महिमा भगवत् की है ॥

कथा प्रयागदासजी की ॥

प्रयागदासजी अपने गुरु अग्रदासजी की कृपा से ऐसे परमभक्त हुये कि मन, वच, कर्म से एक रघुनन्दन स्वामी के चरण कमलों में प्रेम था और भगवद्भक्तों में ऐसी प्रीति थी कि भगवतूरूप जानते थे । मौजे कियारे में भगवत्मन्दिर के कलश चढ़ाने का उत्साह था और मौजे आड़े व बलिये में भगवत्मन्दिर के ध्वजा चढ़ाने को दोनों स्थान से साधु बुलानेको आये प्रयागदासजी ने विचारा कि एक जगह जायँ एक जगह नहीं तो साधु उदास होंगे इसहेतु दोनों जगह दो स्वरूप बनाकर गये और सत्संग इत्यादि का आनन्द लिया और अपने हाथ से एक जगह ध्वजा और दूसरी जगह कलश चढ़ाया । रास होता था भगवत् के स्वरूप की माधुरी देखकर प्रेम में मग्न होगये और प्रेम के तरङ्ग और गीत में प्राण भगवत् पर निछावर करके परमपद को गये ॥

कथा भगवान् की ॥

भगवान् नाम करके भगवद्भक्त सोनेपत ग्राम में हुये जहां कहीं धर्म विमुखिन को सुनते तो भांति भांति के उपदेश करते और भागवत धर्म पर दृढ़ करदेते सो पड़रीनामे गांव में योगियों की जमात रहती थी उन को अपनी सिद्धता की परीक्षा दिखलाकर भगवद्भक्त करदिया । बादशाह

ने करामात समझने वास्ते विष पिलवा दिया भगवत्कृपा से कुछ न हुआ लज्जित होरहा दासभाव में भगवान् की बड़ी प्रीति थी ॥

कथा रामराय की ॥

रामरायजी परम भक्तरूप सारस्वत ब्राह्मण थे। ज्ञान, वैराग्य व योग के बड़े ज्ञाता थे काम, क्रोध, लोभ व मोह के त्यागी थे और साधुसेवा में ऐसी प्रीति थी कि साधु के दर्शन से कमल की भांति प्रफुल्लित होजाते थे। एक बेर साधुसमाज था वहां एक दुष्ट रामरायजी की निन्दा करने लगा भगवत् को उसका दण्ड उचित मालूम हुआ सो सभा में जहां उसके भाई बन्धु सब बैठे थे उसकी पगड़ी उसके शिरसे ऐसी उछल के गिरपड़ी कि जैसे कोई धौल मारे लज्जित होकर सभा से निकलगया ॥

कथा श्रीरङ्गजी की ॥

श्रीरङ्गजी देवलागांव जयपुर के राज्य में है तहां रहते थे सरावगी के बेटे थे उनका सेवक मरकर यमदूत हुआ और उसी गांव में एक बनजारा टिका था उसके प्राण को निकालने को आया आगेकी प्रीतिवश रङ्गजी से मिला और वृत्तान्त कहा श्रीरङ्गजी को चाह इस लीलाके देखने की हुई। जहां बनजारा टिका था तहां गये देखा कि उस यमदूतने एक बैल को भड़का दिया और बनजारा पकड़ने को उठा वह दूत बैल के शिरपर जा बैठा और सींग से बनजारे का पेट फाड़ दिया बड़ी पीड़ा से मारडाला श्रीरङ्ग देखकर त्रसित हुये और उस दूतसे उपाय पूछा कि जिसमें यमदूतों के हाथों से बचें उसने कहा कि विना भगवद्भक्ति सबको ऐसेही पीड़ा होती है और जो भगवद्भक्त हैं उनके पास स्वप्न में भी यमदूत नहीं आते। श्रीरङ्गजीने सरावगी मत असार समझकर उसी घड़ी भगवद्भक्ति अङ्गीकार करके दूतके बतलाने से श्रीअनन्तानन्द जो रामानन्दजी के चेले थे तिनके चेले होगये थे थोड़ेही काल में भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति होगई और जन्म मरण के भय से छूटगये। एक प्रेत नित श्रीरङ्गजी के बेटे को दिखाई देता था इस कारण वह दुबला होगया जब यह वृत्तान्त सुना तब एक दिन लड़के की खाट पर सोरहे जब प्रेत आया तब रगेद लिया प्रेत भागा और कहा कि मैं इसी गांवका फलाना सुनार हूं, परस्त्रीगमन व चोरी झुठाई कर्म करके प्रेत होगया हूं सो अपने उद्धार के हेतु तुम्हारा द्वारा सेवता हूं। श्रीरङ्ग को दया आई भगवत् का चरणामृत उसको दिया कि उसके प्रभाव करके देवता का स्वरूप पायकर संगति का फल प्राप्त हुआ ॥

कथा हठीनारायण की ॥

हठीनारायण कृष्णदासजी के चेले रहनेवाले पंजाबदेश के परमभक्त भगवत् के हुये सर्वकाल भजन में व संतोषयुक्त रहते थे भांग पीने की रुचि थी बादशाह ने धतूरा मिलाकर पिलाया कुछ न हुआ तब मत के द्वेषसे विष पिलाया व ऊपर से ऐसी वस्तु खिलाई पिलाई कि जिसमें विष भीदे और मरजाय परन्तु कुछ काम न किया लज्जित होकर चरणों में गिरा अपराध क्षमा कराया । जाने रहो कोई मनुष्य इस कथा को भांग पीनेके लिये प्रमाण न समझले भांग त्याज्य है मदिरा में शास्त्र ने गिना है बरु भांग में एक अवगुण मदिरा से भी अधिक है कि बुद्धि को हरि लेती है किसी बड़ेके पीनेसे प्रमाण नहीं होसक्ता है । मूर्ख महादेवजी का दृष्टान्त दिया करते हैं तो शिवजी हलाहल विष पान करगये तो विष भी कोई पीवे व शङ्करस्वामी भट्ठी में से औटा हुआ कांच पीगये और कोई भी तो औटा कांच उठाकर थोड़ा भी तो पिये सो बड़ेके आचरण से निषेध है सो ग्राह्य नहीं होसक्ता ॥

चौ० समरथ कहँ नहिं दोष गुसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

और कई पुराणों के वचन युक्त हैं कि जो कोई किसी बड़े महात्माओं के दृष्टान्त से वस्तु निषेध को विधि समझते हैं व त्याज्य को ग्राह्य करते हैं वे नरकगामी होते हैं । हठीनारायण ने सिद्ध होने पीछे भांग पिया और सिद्ध महात्मा विधि निषेध के बंधन से बाहर हैं भगवद्रूप होजाते हैं तात्पर्य यह कि भांग पीना निषेध है ॥

कथा रैदास की ॥

रैदासजी परमभक्त भगवत् के हुये जिनकी वाणी व काव्य हृदय के अन्धकार और संदेह के दूर करने को सूर्यकी भांति है । शास्त्र व वेद के अनुसार कर्म करने में हंस के सदृश हुये अर्थात् निषेध को छोड़कर सार को ग्रहण किया इसी शरीर में भगवद्धाम को पहुँचे और जिनके चरणों को बड़े २ वर्णआश्रमवालों ने दण्डवत् किया । पहले जन्म में ब्रह्मचारी रामानन्दजी के चेले थे भिक्षा करके गुरुसेवा व भगवत्प्रसाद किया करते थे एक दिन पानी बरसता था सो एक बनिया कि जो बहुत दिन से कहता था परन्तु उसकी भिक्षा कबहीं न लेते थे उस दिन उसीके यहां से रसोई की सामग्री लेआये । जब रामानन्दजी भोग लगाने लगे तो भगवत् ध्यान में न आये तब रामानन्दजी ने ब्रह्मचारी से बूझके उस

बनिये का वृत्तान्त बूझा विचारा तो उसका लेन देन चमारों के साथ मालूम हुआ। रामानन्दजी ने ब्रह्मचारी को शाप दिया कि तुझको चमार का जन्म मिले तो ब्रह्मचारी ने ब्राह्मण का तन छोड़कर चमार के घर जन्म लिया परन्तु भगवद्भक्ति व गुरु के प्रताप से पहले जन्म का स्मरण बनारहा जन्मे तबहीं से माता का दूध पीना छोड़ दिया कि बिना गुरु-मन्त्र के उपदेश हुये खाना पीना निषेध है। रामानन्दजी को भगवत् ने आकाशवाणी से कहा कि ब्रह्मचारी को तुमने घोर दण्ड दिया उस पर दया उचित है कि रामानन्दजी उस आज्ञा से चमार के घर गये मन्त्र उपदेश करके रैदास नाम धरा और दूध पीनेकी आज्ञा दी। जब रैदास जी कुछ सयाने हुये तो भगवद्भक्तों की सेवा करनेलगे जो कुछ घर से मिलता भगवद्भक्तों के आगे धरदेते बापने उनको रिस करके घरके पिछवाड़े एक जगह रहने के वास्ते देदी धन बहुत था परन्तु एक दमड़ी भी न दी। रैदासजी स्त्री समेत आनन्द से रहने लगे जूती बनाकर दिन खेवते जो कोई वैष्णव व साधु देखते तो बिना दाम जोड़ा पहिनाया करते फिर एक छप्पर डालदिया और उसमें भगवत्मूर्ति विराजमान करके सेवा करने लगे और आप उस छप्पर के आंगन और चौरे में बिना छाया पड़े रहते यद्यपि ऊपर दुःख दरिद्रता इत्यादि का था परन्तु मन भगवत् के ध्यान में आनन्द रहता था। भगवत् ने वह कङ्गाली भी दूर करना उचित समझकर आप साधु के रूप से रैदासके घर आये रैदास ने बड़ी सेवा करके भोजन कराया और भगवद्रूप वह जाना उस साधु ने प्रसन्न होकर एक पारसपाषाण रैदासजी को दिया और गुण वर्णन करके कहा कि बहुत यत्न से रखना। रैदासजी ने कहा कि मेरे किसी की कामना नहीं मेरा धन सम्पत्ति रामनाम है। उस साधु ने जाना कि प्रभाव इस पारस का रैदास ने नहीं जाना इसहेतु रांपीको लगाकर सोनेका कर दिया रैदासजी ने मन में समझा कि रांपी भी हाथसे गई बहुत कहा तब रैदासजी ने कहा कि छप्पर में रखदेव सो साधु छप्पर में उस पारसको रखकर चलेगये तेरह महीने पीछे फिर आये रैदासजीका वृत्तान्त वैसा ही देखा पूछा कि पारस क्या हुआ? रैदासजी ने कहा कि जहां आप रख गये तहांही होगा मुझको उसके हाथ लगाने से भय होता है। भगवत् उस को लेकर चलेगये एकदिन सेवा पूजा की पिटारी से पांच मुहरें निकलीं रैदासजी को भगवत्सेवा से भी भय होनेलगा भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा

की कि यद्यपि तुमको कुछ लोभ नहीं है परन्तु अब जो कुछ हम देवें उसको अङ्गीकार करो तब रैदासजी ने अङ्गीकार किया और एक धर्मशाला पक्का बनवाकर भगवद्भक्तों को उसमें बसाया और फिर एक भगवत्मन्दिर तैयार करके भांति भांति के चँदोये और झालर, सुनहरी बन्दनवार, दीवारगीरी व छतबन्द इत्यादिसे ऐसा सजा कि जो दर्शन करनेवाले आते थे मन्दिर की शोभा व भगवत्मूर्ति की छवि देखकर मोहिजाते थे पूजा प्रतिष्ठा सब ब्राह्मणों के हाथ से होती थी तिसके पीछे जहां रैदासजी आप रहते थे तहां एक स्थान दोमहला बनवाया और बड़ी प्रीति से भगवत् आराधन आरम्भ किया बहुत से ब्राह्मणों ने शत्रुता के कारण से राजा के पास कठोर वचन मुखसे निकालकर फ़रयाद की कि चमार जाति को भगवत्मूर्ति के पूजन का अधिकार किसी शास्त्र में नहीं लिखा। रैदास निश्शङ्क भगवत्सेवामूर्ति विराजमान करके पूजन इत्यादि सब करता है उसको दण्ड देना चाहिये। राजा ने रैदासजी को बुलाया और ऐसा प्रताप रैदासजी का राजापर व्यापा कि एक दो बात कही और बिदा किया राजाकी रानी का नाम झाली था उसने जो प्रताप रैदासजी का सुना तो सेवक हुई ब्राह्मणलोग रानीके यहां रहते थे उन्हों ने रिस की और कहनेलगे कि रानी की बुद्धि जाती रही राजा के पास सब समाचार कहा रानीने रैदासजी को बुलाया और सब ब्राह्मण इकट्ठे हुये ब्राह्मण जाति की बड़ाई वर्णन करते थे और रैदासजी का यह वचन था कि भगवत् को भक्ति प्यारी है जाति पर दृष्टि नहीं बहुत वाद विवाद भये पीछे यह बात स्थिर ठहरी कि भगवत्मूर्ति जो सिंहासनपर विराजमान है जिसके पास प्रसन्न होकर आजावे वही भगवत् को प्यारा है इस बात पर ब्राह्मणों ने तीनपहर पक्का वेद पढ़ा और मन्त्र जप किया परन्तु कुछ न हुआ जब रैदासजी पर बात आई तो विनय किया कि महाराज! अपने पतितपावन नाम को सच कीजिये और दो एक विष्णुपद कीर्तन किये पद का प्रथम पद यह है ॥ विलम्ब छांड़ि आइये कि तो बुलाय लीजिये। और दूसरे पदका तुक यह है कि ॥

चौ० देवदेव आयों तुम शरना। सेवक जानि कृपा चित धरना ॥

भगवत् सुनतेही पदों को सिंहासन पर से उठकर रैदासजी की गोद में आ बैठे और सब विश्वास करके आधीन हुये तिसके पीछे रानी झाली काशी से अपनी राजधानी में आई और यज्ञ करने का विचार

किया। रैदासजी को बड़ा विनयपत्र लिखकर भेजा रैदासजी चित्तौर में आये रानी बहुत आनन्दित हुई बहुत रुपया दान पुण्य किया ब्राह्मणों को शोच हुआ कि इस रानी का गुरु चमार है अच्छी बात है कि सूखी सामग्री लेकर रसोई तैयार करें सो ऐसा ही किया जब भोजन करने को बैठे तो सबने दोजनों के बीच में रैदासजी को बैठा देखा विश्वासयुक्त आधीन होकर चरणों में पड़े और लाखों मनुष्य चेले होगये और सब के विश्वास दृढ़ करने के हेतु अपने शरीर की खाल उतारके जनेऊ दिखाया और गुरुके शाप की बात सब कही सबका मोह दूर करके आप तन छोड़कर परमधाम को गये जहां से फिर नहीं आता है॥

कथा गोपालभट्ट की॥

गोपालभट्ट ऐसे भगवद्भक्त हुये जो सारे संसार में उनकी साखी विख्यात है भक्तिका प्रताप जिनके ललाट से सूर्य के सदृश प्रकाशित था भक्तों की सभा को शोभित करनेवाले और श्रीमद्भागवत में किसी को जो संदेह होता तो अपने सर्वज्ञता से उसके निवृत्ति करनेवाले हुये बांगड़ देश को भगवत्परायण व भक्त कर दिया दास्यभाव से श्रीराधा-वल्लभलाल के चरणरज के प्रेममें पूर्ण रहे नवधाभक्ति के उपदेश करने वाले और भगवद्भक्तों की कृपा के पात्र थे॥

कथा दिवाकर की॥

करमचन्द जो कश्यप के सदृश थे उनके घर में दिवाकरजी संसारी जीवों के हृदयके अन्धकार दूर करनेके हेतु दूसरे दिवाकर अर्थात् सूर्य हुये और बहुतसे राजाओं को उपदेश करके भगवद्भक्ति में लगाया। हरि-भक्तों से ऐसे थे जैसे फल से लदी किसी वृक्ष की डाली भूमि पर लोटि जाती है और सबको वह फल मिलता है भोलाराम उनका शरणागत किया था श्रीरघुनन्दन स्वामी के निरपेक्षभक्त और सबके मित्र और सब पर बराबर कृपा करनेवाले हुये सीतापति अवधविहारी महाराज के चरित्रों का कीर्तन व सुमिरन किया करते थे॥

कथा खेमगोसाईं की॥

खेमगोसाईं विख्यात व नामी हैं कि रामदास अपने गुरुकी कृपा से श्रीरघुनन्दनस्वामी के अनन्य दास हुये इस लोक और परलोक में सि-वाय रघुनन्दन स्वामीके और किसी को कुछ नहीं जानते थे और न दोनों लोकके सुख दुःख से कुछ कार्य व सम्बन्ध था धनुषबाण की छाप जो दोनों

भुजापर धारण करते थे उनको देखदेख करके बहुत आनन्द हुआ करते थे और परमसुख में मग्न रहाकरते थे भक्तों में उत्तम पदवी में थे ॥

कथा कल्याणसिंह की ॥

कल्याणसिंहजी को भक्ति का पक्ष और उदारता अत्यन्त हुई । भक्ति-पक्ष का संक्षेप वृत्तान्त यह है कि अपने भाई अनूपसिंह सहित श्रीनन्द-नन्दन महाराज के जन्मउत्साह के दर्शन के हेतु नोनिरेशहर जहां उनका घर था तहांसे श्रीवृन्दावन को आते थे एक सरावगी दुष्टकर्मी को देखा किएकसाधु कंगाल कोदुःख देरहा है । कल्याणसिंहजी ने उससाधु वैष्णव का पक्ष किया और उस सरावगी से बचायलिया और उदारता का यह तात्पर्य कि धन सम्पत्ति देना तो एक थोड़ी बात है उनको प्राण देनेसे भी शोच न था और भगवत् ने दोनों बातें उनकी देहान्तपर्यन्त निबाहीं । पहले जगन्नाथस्वामी के चरणों में प्रीति रही अन्तमें रघुनन्दनस्वामी के चरणों में प्रीति होगई जगन्नाथपुरी में रहा करते थे रघुनन्दनस्वामी के स्नेहसे दोनों लोक की स्पृहा दूर करदी थी मन में रूप और जिह्वा पर रघुनन्दनस्वामी व जानकी महारानी का नाम रहता था ॥

कथा राजाखेमाल की ॥

राजाखेमाल जाति के राजपूत राठौर ऐसे परमभक्त हुये कि उनके कुल में भक्ति अचल होगई । रामराय बेटे कुँवरकिशोर पोते कि उनका वर्णन इस भक्तमाल में अलग होआया परमभक्त हुये कि राजा से भी अधिक होगये राजा को भगवद्भक्तों में ऐसी प्रीति थी कि जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र तरङ्ग लेता है इसी प्रकार भगवद्भक्त को देखकर आनन्द होते थे भगवद्भजन में अत्यन्त प्रेम था गङ्गाजल के सदृश मन विमल । मन, वचन, कर्म से श्रीरघुनन्दनस्वामी के दास थे सिवाय उस चरणकमल के दूसरा भरोसा और आशा न थी ॥

कथा केशव की ॥

केशवजी लटेरा पदकरके विख्यात थे लटेरा दुर्बल को कहते हैं काम क्रोधादिक में दुर्बल थे परन्तु भक्तिभाव में पुष्ट और मोटे थे सुरसुरानन्द जी की संप्रदाय में परमभक्त हुये जिह्वा पर नाम और मनमें भगवच्चरित्र रहता था जैसा प्रेम दास्यभाव भगवत् में किशोरजी का था ऐसाही उनके पुत्र को हुआ क्यों न होय कि जैसा वृक्ष बोया था वैसाही फल लगा भगवच्चरित्रों के कीर्तन में एकही थे तैसे ही उदारता और दया में ॥

कथा सोती की॥

सोतीजी हरिभक्तोंकी सभा में वन्दनीय व श्लाघ्य विख्यात सूर्य के सदृश हुये भजन का प्रताप ऐसा था कि भक्ति और धर्म के ध्वजा थे श्रीसीतापति अवधविहारी के चरित्रों में अनुक्षण मग्न रहा करते और भगवत् के दास्यभाव में मनको ऐसा दृढ़ किया था कि तनक दूसरी ओर चित्त की वृत्ति नहीं जाती थी और नरहरिजी उनके गुरु के प्रताप से ऐसीही भक्ति उनके बेटे व पोते सबको भी हुई॥

उन्नीसवीं निष्ठा॥

जिसमें महिमा वात्सल्य व नवभक्त इस निष्ठा के उपासकों की कथा वर्णन है॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की इन्द्रधनुष रेखा को दण्डवत् करके हरि अवतार को प्रणाम करता हूं कि गजके वास्ते वह रूप प्रकट करके आये और उसको ग्राह से छुड़ाया। वात्सल्यनिष्ठा वह है कि अपने बलसे भगवत् को खींचके उपासक के मन में स्थिर करदेती है और ऐसा कदापि नहीं होता कि इस निष्ठा के अवलम्ब से उपासना करनेवाले को भगवत् प्राप्त न होयँ कारण यह है कि भगवत् का प्राप्त होना मनके प्रेम पर निश्चय है सो इस निष्ठा से शीघ्र व विना श्रम प्रीति उत्पन्न हो-जाती है कि और किसी निष्ठा से ऐसी शीघ्र नहीं होती प्रकट है कि प्रीति सांची केवल पिता को अपने पुत्रों के हेतु होती है और बेटा कैसाही रूप व बुद्धिहीन होय परन्तु पिता के कलेजे का टुकड़ा व आंखों का प्रकाश है जो वहही प्रीति भगवत् में लगाई जावेगी तो क्यों नहीं शीघ्रतर भगवत् प्राप्त होगा सिवाय इसके बालकों के चरित्र ऐसे मनोहर हैं कि वरवस चित्त में बसिजाते हैं और बहुतेरों ने देखा होगा कि किसी का लड़का लीला और तोतली बातें करता है और सुन्दर भी है तो राही बटोही भी राहचलते उसकी लीला देखकर प्रसन्न होते हैं और कहलाते हैं और वह लड़का मन में समाजाता है तो वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द-घन कि जिसपर सब सुन्दरताई व लीला और दूसरे चरित्र बालकों के समाप्त हैं इस निष्ठा के सहारे से आराधन किया जावे तो क्यों नहीं शीघ्र मन में समायगा सिवाय इसके प्रीति सब वस्तु की किसी न किसी भय से होती है और जब भय नहीं रहता तो प्रीति भी कम होजाती है और बेटे की प्रीति आपसे आप मन के तरङ्ग से होती है इसहेतु उसको दृ-ढ़ता है इस रूप से निश्चय होगया कि जो इस निष्ठा के अवलम्ब से मन

भगवत् में लगेगा तो कबहीं प्रीति की घटती न होगी और दिन दिन वह प्रीति बढ़कर भगवत्परायण कर देवेगी जहां रसभेद का वादविवाद लिखा है तहां नवरस के निश्चय करनेवालों ने वात्सल्य निष्ठा को एक अङ्ग करुणारस लिखा है और भगवत् उपासकों ने जो उनका उत्तर दिया और निश्चय रसों की करी तो करुणाको एक अंग वात्सल्य का ठहरायके दृढ़ कर दिया सो दोनों के वचन पर जो दृष्टि कीजाती हैं तो समझ भगवत्उपासकों की ठीक और युक्त है किसहेतु कि रस उसको कहते हैं कि जिस करके अधिक स्वादु विशेष करके उस वस्तु का कि जिसको रस विख्यात कियागया है और किसी वस्तु में न होय जैसे वीररस उस को कहेंगे कि सब पदवी वीरता व शूरता की जिसपर समाप्त होंगी इसी प्रकार यहां दयाके विचार में मुख्यरस उसको कहना चाहिये कि जिस पर दया समाप्त हो सो विचार करके देखा जाता है तो दया वात्सल्य निष्ठा पर समाप्त है काहे से कि करुणा उसको कहते हैं कि दूसरे का दुःख देखके मन कोमल होजाय और मन से व वचन से व कर्म से उसके वास्ते उपाय कियाजावे और वात्सल्य वह है कि प्रीति की अति झोंकसे धैर्य छोड़कर स्वाभाविक दया होवे और मन वचन कर्म एक बेर अन्तःकरण की झोंक और खींच से सब एक ओर एक वृत्ति होजावे तो विचार करना चाहिये कि समाप्त होना दया का वात्सल्य पर हुआ कि करुणारस पर और दोनों में करुणाकी अधिक प्रतिष्ठा हुई कि वात्सल्य भी अब भलीप्रकार समझ में आनेके वास्ते एक दृष्टान्त स्मरण हो आया सो लिखता हूं एक संकीर्ण गली में एक ओर से गायें आती हैं और दूसरी ओरसे एक मनुष्य स्नान करके आता है और ऐसा शुद्ध व पवित्र है कि किसी को स्पर्श नहीं करता संयोगवश किसी का एक लड़का दो तीन वर्ष का खेलरहा है जब वह गायें उस लड़के के निकट आईं तो वह मनुष्य बड़ी दया से पुकारा कि कोई जल्दी से आकर इस लड़के को उठा लेवे और आप अशुद्ध होजाने की भय से न उठाया थोड़ी दूर चला था कि उसी मनुष्यका बेटा भी उसी अवस्था का राह में खेल रहा था और मिट्टी व कीच में शरीर उसका अशुद्ध होरहा था वह गायें इस लड़के के भी निकट आनिपहुँचीं वह मनुष्य धैर्य छोड़कर दौड़ा और कुछ विचार अपनी शुद्धता और लड़के की अशुद्धता का न किया तुरन्त उस लड़के को उठाकर अपने गले से लगालिया इस

दृष्टान्त से विचार वात्सल्य और करुणारस में करलेना चाहिये सो मुख्यरस वात्सल्य है और करुणा उसका एक अङ्ग है यह उपासना श्रीदशरथनन्दन अवधविहारी और श्रीनन्दनन्दन वृन्दावनचन्द की प्रवर्तमान है और ऐसा अलौकिक भाव इस उपासनावालों का है कि वर्णन उसका नहीं होसक्ता भगवत् को अपना पुत्र मानते हैं और उसी को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन मुकुन्द जानते हैं कुछ रीति इस उपासना की विष्णुस्वामी व वल्लभाचार्य की कथा में लिखीगई और कोई २ सामग्री आगे लिखीजायगी महिमा इस उपासना व उपासकों की निगम, आगम, ब्रह्मा व शिव भी नहीं कहसके इस मतिमन्द पापपुञ्ज को क्या सामर्थ्य कि जीभ हिलायसके और सच है कि कोई किस प्रकार कहसके कि जो पूर्णब्रह्म अनेक जन्मतक योगियों के हज़ारों साधन करनेपर भी मन में नहीं आता सो उपासकों के वास्ते नररूप हुआ और परमअनूप बालचरित्र दिखाये और अब दिखाता है और आगे दिखावेगा आप उसी पूर्णब्रह्म को यह निष्ठा ऐसी प्यारी है कि अपने भक्तों के चित्त को दूसरी निष्ठाओं से फेरकर इस निष्ठा की ओर प्रीतियुक्त लगादेता है कि इसका निश्चय भागवत व रामायण से अच्छा होताहै अर्थात् नन्दरानी, देवकी, कौसल्या व वसुदेव को कई बेर अपनी ईश्वरता भगवत् ने दिखाई जब उनके चित्तकी वृत्ति उस ओर लगी तो आप भगवत् ने उस ओर से उनके मनको फेरकर बालचरित्रों की ओर लगादिया और परमआनन्द दिया जो भगवत् को यह निष्ठा प्यारी न होती तो क्यों ऐसा करते और अब भी ऐसे भाव को पक्का करदेने के निमित्त अपने भक्तों को इस प्रकार के चरित्र दिखलादेते हैं कि देखने से कथा विट्ठलनाथ, कृष्णदास व कर्माबाई इत्यादिक से मालूम होता है और थोड़ेदिनों की बात है कि एक गोसाईं वल्लभकुल के कि नाम उनका स्मरण नहीं है परमभक्त वात्सल्यरस के उपासक हुये एकबेर मनिहारी उनके घर की स्त्रियोंको चूड़ी पहिनाने के निमित्त उनके घर आई जब गोसाईंजी दाम देनेलगे तो मनिहारी ने कहा कि मैंने सात लड़की व बहू इत्यादि स्त्रियों को चूड़ी पहिनाई हैं गोसाईंजी ने उत्तर दिया कि मेरे घर में छःस्त्रियां बेटी और बहू समेत हैं इस वाद विवाद में मनिहारी विना दाम लिये चलीगई। रात को राधिका महारानी ने स्वप्न में गोसाईं जीको कहला भेजा कि क्या मैं तुम्हारी बहू नहीं जो मेरी चूड़ियों के

दाम मनिहारी को नहीं देते हो अब देखना चाहिये कि भगवत् कैसे मनोहर चरित्र करके अपने भक्तों के भाव को पक्का करदेते हैं सो यह वात्सल्यनिष्ठा भगवत् के शीघ्र मिलने के हेतु सब निष्ठाओं का तत्त्व व अभिप्राय व परमसार है ॥ ग्रन्थ के आरम्भ में लिखागया कि रस चार सामग्री अर्थात् विभाव, अनुभाव, सात्त्विक व व्यभिचारी से प्रकट होते हैं सो इस वात्सल्यरस में पहली सामग्री की सामग्रियों में पूर्णब्रह्म, परमात्मा, अच्युत, अनन्त, सच्चिदानन्दघन, श्रीनन्दनन्दन महाराज के रघुनन्दन महाराज तीन वर्ष से सात वर्ष तक अवस्थावाले सुकुमारअङ्ग तुतले वचन श्यामसुन्दर स्वरूप शिरपर छोटा सा मुकुट शरीर में महीन ज़रतारी का कुरता गोटेपट्टेसे भराहुआ कानों में झूमका और छोटे छोटे कुण्डल व गोरोचन का तिलक भाल पर नाक में बुलाक कपोल पर डिठौना आँखें ढीठ और चञ्चल गले में कठुला व यन्त्र व बघनखा हाथों में कड़े व पहुँची चरणकमलों में घुँघुरू यह विषयालम्बन है और नन्द यशोदा व कौसल्या महारानी इत्यादि आश्रयालम्बन और अत्यन्त चञ्चलता व चपलता की कबहीं माता की गोद में हैं और कबहीं खिलौनों की ओर चित्त कबहीं पखेरुओं पर दृष्टि कबहीं भोजन पर सूरत और कबहीं किसी वस्तु के लेने पर हठ कबहीं तोतली वाणी से कुछ पूछना और कबहीं पलँग को पकड़कर खड़ा होना कबहीं माता की अंगुली पकड़कर चलना सीखना कबहीं नाचना कबहीं आंगन में अपने सखाओं और भाइयों के साथ खेलना ऐसे २ अनेक चरित्र ॥ स्नानकराना, शृङ्गारकरना व बालचरित्र के खिलौना इत्यादि सजिरखना सब प्रकार के पदार्थ खिलाने के योग्य भोजन कराना प्यार करना लाड़ लड़ाना गोद में लेकर रङ्ग रङ्ग की सैर कराना आशीर्वाद देना और इसी प्रकार के अनेक साज व सामां की चिन्तन सब सामग्रियां सामग्री पहली अर्थात् विभाव में कि और सामग्री दूसरी अर्थात् अनुभावकी है ॥ सामां तीसरी अर्थात् आठप्रकार के सात्त्विक सब इस रस में प्रवर्तमान होते हैं व तेंतीसों व्यभिचारी अर्थात् सामग्री चौथी में से दश दश इस रसमें प्राप्त होते हैं एक मनस्ताप दूसरी दुर्बलता तीसरी विवरण चौथी मन उचटजाना संसार के सब कामों से पांचवीं अदृढ़ता छठवीं जड़ता सातवीं दुःखी होजाना आठवीं उन्मत्तता नवीं मूर्च्छा दशवीं मृत्यु और इस रस का स्थायीभाव वह है कि चिन्ता की वृत्ति दोनों लोक

की चिन्ता को छोड़कर एकाग्र होकर दिन रात अचल भगवत् के स्वरूप और प्रेम में दृढ़ होजाय और किसी प्रकार किसी ओर न जाय ॥ हे श्रीनन्दनन्दन ! हे दीनवत्सल ! हे प्रणतार्तिभञ्जन ! हे पतितपावन ! हे दीनबन्धु ! हे कृपासिन्धु, महाराज ! आज तक जो निन्दा इस मन की विनय करके तो व्यर्थ जानपड़ता है किसवास्ते कि उसी निन्दा से कबहीं कुछ प्राप्त न हुआ और न इस मन अभागे ने कुछ सुना और न कुछ माना जो उस कृपा और प्रसन्नता का कि जिसके प्रभाव करके अजामिल और गज, गणिका, पशु व पक्षी इत्यादि विना कुछ साधन व भजन एक क्षणमें परमपद को पहुँचकर जन्ममरण के बन्दीखाने से छूटगये आश्रित होकर आपके द्वारपर विनय व प्रार्थना किया करता तो आप के विरद व दया से कब मैं ऐसा ही संसारी रहता और यह मन अभागा मेरे वशीभूत क्यों न होजाता सो अब उसी कृपा व दया की आश करके विनय करता हूं कि जिस प्रकार से हो सके ऐसी कृपादृष्टि होय कि रूप अनूप आपका दिन रात अचल मेरी आंखों में बसारहे ॥

स० कबहूं शशि मांगत आरि करैं कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कबहूं करताल बजायके नाचत मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कबहूँ रिस मारि कहैं हठसों पुनि लेत वही जेहि लागि अरैं ।
अवधेशके बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर में बिहरैं ॥१॥
तनकी द्युति श्याम सरोरुह लोचन कञ्ज की मंजुलताई हरैं ।
अति सोहत धूसर धूरि भरे छवि भूरि अनङ्ग की दूरि धरैं ॥
दमकैं दँतियां द्युतिदामिनि ज्यों किलकैं कल बालविनोद करैं ।
अवधेशके बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर में बिहरैं ॥२॥
बरदन्त की पङ्गति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलन की ।
चपलाचमकै घनबिज्जु जगैं छवि मोतिनमाल अमोलन की ॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की ।
निवछावर प्राण करै तुलसी बलिजाऊँ लला इन बोलन की ॥३॥

कवित्त ।

दोहनीकी समैं मनमोहनललाजूकी सुललितलोनाई कवि बरने कहाकहैं ।
कबहूं किलाकिधाय नन्दके निकटआय कर उचकाय मुखतोतरे बबा कहैं ॥
ताके ब्रजरानी महाकौतुक सिरानी दीठबानीमृदु सुनत बलैया लेउँ मा कहैं ।
ओटह्वैकैगैयाकी ललैयाबलगैयादैकै यशुमतिमैया सों कन्हैया जब ता कहैं ४

कथा कौसल्याजी की ॥

कौसल्या महारानी के भाग्य की बड़ाई और भक्तिभाव का वर्णन कौन करसक्ता है कि पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जिसकी महिमा को वेद व शास्त्र वर्णन करके पार नहीं पाते सो जिस कौसल्या की भक्ति के वश होकर परम मनोहररूप धारण करके प्रकट हुये और ऐसे चरित्र पवित्र दिखलाये कि जिनको सुनकर महामहापातकी भवसागर पार होते हैं। महाराजाधिराज दशरथजी की कथा में वर्णन हुआ कि पहले जन्म में दशरथजी स्वायंभुवमनु और कौसल्या महारानी शतरूपा रहे और उनको वरदान हुआ कि तुम्हारा पुत्र हूंगा उस समय शतरूपा ने यह भी मांगा कि हमको ज्ञान तुम्हारे स्वरूप का बनारहे । भगवत् ने आज्ञा की कि माता का भाव और ज्ञान दोनों तुमको बनेरहेंगे सो वैसाही कौसल्याजी को दोनों भाव बनेरहे इसहेतु वात्सल्य की उपासना का आद्याचार्य कौसल्याजी को समझना चाहिये ॥ एक समय कौसल्या महारानी भगवत् को पालने में सुलाकर आप कुलदेवता के पूजन करने को गईं व पूजा के समय भगवत् अर्थात् रामचन्द्र को देखा आश्चर्य मानकर वहां से भगवत् के शयन के स्थान में आईं तो वहां सोता देखा फिर पूजा के घर में गईं तो वहां भी भगवत् को देखा सो दो चार बेरके आने जाने में जो दोनों जगह भगवत् को देखा तो चिन्ता में होकर विचार करनेलगीं कि यह कौन कारण है भगवत् ने यह चिन्ता देखकर अपने स्वरूप और अपनी माया के दर्शन माता को कराये कि अगणित ब्रह्माण्ड हैं और अलग २ प्रकार से सब ब्रह्माण्डों की रचना है और सब में श्रीरघुनन्दन महाराज विराजमान हैं परन्तु भगवत् का रूप ब्रह्माण्डों की भांति अनेक प्रकार का नहीं सब जगह एक ही प्रकार व बराबर है ब्रह्मा, शिव, सिद्ध, देवता, असुर इत्यादि स्तुति करते हैं और एक कोने में वह माया कि जो सब ब्रह्माण्डों को बनाकर फिर नाश करदेती है डरसहित खड़ी है । कौसल्याजी यह चरित्र देखकर डरीं और घबराय के चरण पकड़लिया भगवत् ने हँसकर बोध किया और वचन हुआ कि अब मेरी माया तुमको कबहीं न सतावेगी । इस चरित्र से भगवत् शिक्षा करते हैं कि जिसको मेरा स्वरूप लाभ हुआ उसको मुझसे सिवाय और कौन पूजने के योग्य बाक़ी है काहे से कि जिस देवता में जो ईश्वरता है सो सब मेरी दीहुई है और वह देवता हमारेही सम्बन्ध

से पूज्य है फिर तो कौसल्याजी इस प्रकार भगवत्स्वरूप के चिन्तन और लाड़ लड़ाने में तत्पर हुईं कि जिसका वर्णन नहीं हो सका सो जब रघुनन्दन महाराज वन को चलेगये तो स्वरूप भगवत् का ऐसा सम्मुख कौसल्याजी के रहता था कि कबहीं वन का जाना मालूम न हुआ जब कोई स्मरण कराय देता था तब वन का जाना मालूम होता था फिर एकक्षण के पीछे वही दशा होजाती थी जब रघुनन्दन महाराज लङ्का जीतकर आये और कौसल्या महारानी जैसे पहले आरती भगवत् की किया करती थीं आरती करनेलगीं तो यह मालूम न हुआ कि यह समय कौनसाहै और यह शोच हुआ कि लड़के ने ऋषीश्वरों का सा रूप क्यों बनाया है और मेरी प्यारी बहू का रूप भी वैसाही बनालिया दुःखित हुईं और उसी घड़ी जानकी महारानी को अपने साथ उठा लेगईं और आभूषण इत्यादि से शृङ्गार कराया और जब भगवत् के राजसिंहासन पर बैठने की समाज व धूम धाम का आनन्द सारे संसार में हुआ तो कौसल्या महारानी को यह चिन्ता हुई कि राजतिलक के समय ऋषी-श्वर, देवता व असुर इत्यादि सब आवेंगे और मेरा लड़का और बहू परम सुकुमार और कोमल और मनोहर हैं ऐसा न हो कि रूप अनूप देखकर किसीकी नज़र लगजावे सो सुमित्रा इत्यादि रानी तो मङ्गल व आरती इत्यादि की तैयारी में रहीं और कौसल्या महारानी को आरती के करने के समय तक तलाश व उपाय ऐसी २ वस्तु की रही कि जिस में नज़र न लगे सो राजतिलक के समय आरती करने को आरम्भ किया तो पहले नज़र के बचानेवास्ते स्याहीकी बिन्दी अपने लड़के व बहूके चेहरेपर लगाय ली तब आरती करी और रूपको देखकर परम आनन्द में मग्न होगईं उस समय के परम आनन्द का सामां भक्तों के हृदय में बनाहै ॥

कथा श्रीनन्दबाबा व यशोदारानी की ॥

ये नव नन्दहैं—धरानन्द १ ध्रुवानन्द २ उपनन्द ३ अभयनन्द ४ सुनन्द ५ अभयानन्द ६ कर्मानन्द ७ धर्मानन्द ८ वल्लभानन्द ९ ॥ तिनमें धरानन्दजी के घर भगवत् का अवतार हुआ सो धरानन्दजी व यशोदारानी की यह कथा है यशोदा महारानी व बाबानन्दजी के भाव की महिमा कौन कहसका है कौसल्या महारानी का भाव व इनका भाव एक है बार बराबर भी भेद नहीं जो कोई न्यून विशेष कहे तो कारण उपा-

सना भाव के भेद को समझना चाहिये । लीला चरित्रों का भेद अलबत्ता है अर्थात् श्रीराम अवतार में तो ऐसा चरित्र बहुत नहीं हुआ कि जिस को कौसल्याजी से छिपाने का प्रयोजन पड़े और श्रीकृष्ण अवतार में आरम्भहींसे सब चरित्र ऐसे हुये कि मातासे छिपाना अवश्य पड़े कारण इसप्रकार के चरित्रों का प्रकाशित और सबको मालूम है कि भगवत् का अवतार केवल जगत् उद्धार के हेतु होताहै सो ऐसे चरित्र मनोहर किये कि सबका मन भगवत् की ओर लगजाय और उन चरित्रों की खबर यशोदा माता और नन्द बाबा को कबहीं नहीं हुई और जो कोई कारण संदेह का होगया तो यह समझा कि हमारा बालक भोला और सीधासादा है उसने यह काम कदापि नहीं किया होगा सो जब आप गोपिकाओं का माखन चुराते और वे सब मनमोहन के रूप अनूप के देखनेवास्ते उरहनेके बहाने यशोदा महारानी के पास आतीं और फ़रयाद करतीं तो यशोदा महारानी अपने पुत्र कौतुकी का अपराध कदापि न समझतीं बरु उनहीं को लजावतीं । एकबेर रात को किसी कुञ्ज में आप और प्यारीजी विहार और रास विलास करते थे जब दोचार घड़ी रात शेष रही तो कौतुकी महाराज चुपके २ अपने पलँग पर आके सोरहे और जल्दी में पीताम्बर छूटगया नीलाम्बर बदले में लाये थे उसी को ओढ़े शयन में थे प्रभातही यशोदाजी ने जगाया तो नीलाम्बर को देख कर यह जाना कि बलदेवजी का नीलाम्बर बदलगया और आपस के परस्पर हँसी खेलमें नखों के चिह्न श्रीअङ्ग पर झलक रहे थे तो उसको यह विचार किया कि कल्ह इसी वन में यह लड़का गया था कि बन्दरों ने घेरलिया और उनके नखों का चिह्न शरीर पर है और रात के जगने से उनींदी आंखों को यह जाना कि बन्दरों के नखों के लगने से रात को नींद नहीं आई अतिप्यार दुलार करके छाती से लगाया और रोने लगीं और समझाया कि अबसे ऐसे वन में कदापि मत जाना और ब्राह्मणों को बुलाकर दान व निछावर दिया, यद्यपि घर में हज़ारों दास दासी थे परन्तु जो गऊ निज भगवत् के वास्ते नाम करके थीं उनकी सेवा और उनके दूधको गरम करना व जमाना और बिलोवन यशोदाजी निज अपने हाथ से किया करती थीं और जो माखन होता था उसको अलग २ कई पात्रों में ऐसी जगह रखतीं कि जहां आते जाते भगवत् की दृष्टि पड़े अभिप्राय यह था कि किसी प्रकार यह लड़का मुझसे मांगकर

अथवा छिपा के कुछ माखन खावे कि शरीर से पुष्ट हो। ब्राह्मण फ़क़ीर कुछ जाननेवाला जो कहीं सुनतीं तो उसको बड़े निहोरे और चाह से बुलातीं और धन द्रव्य उसको मनमानी देकर इस बात का यन्त्र और गण्डा बनवाया करतीं कि लड़का सुकुमार है बुरी भली जगह समय व बेसमय फिरता है किसीकी नजर न लगजावे और अच्छेप्रकार भोजन किया करे ऐसे २ चरित्र असंख्य हैं कि जो कोटानकोट जन्म शेष और शारदा का पाऊं तबभी वर्णन न करसकूं और किस प्रकार वर्णन होसके कि जो मनुष्य महापापी और पतित उस भाव और चरित्र यशोदा माता के स्मरण करलेता है उसकी महिमा किसीसे नहीं कहीजाती और तरण तारण होजाता है जो परमआनन्द यशोदा माता को लाभ हुआ सो न शिव को न लक्ष्मी को और किसीकी तो क्या गिनती है कि भगवत् इस बात का साक्षी है कि एक सिखापन भगवत् का इस कथा में लिखना उचित समझा और वह यहहै कि जब यशोदाजी ने कई बातें और धूमधाम के करने के कारण से उस ढीठ व धूम करनेवाले को ऊखल में बांधना विचार किया तो यह बात सुनकर सब गोपिका प्रसन्न हुईं कि आज सब लँगराई का बदला होगा और अपने २ घर से रस्सी लेकर दौड़ीं और निज कामना यह थी कि इसी बहाने से उस परमसुन्दर को देखिआवें जब यशोदाजी बांधनेलगीं तो सब रस्सी दो अंगुल घटजाती रही यहां तक हुआ कि किसी गोपिका के घर रस्सी न रही और भगवत् नबँधे तब तो यशोदाजी को बड़ी लज्जा व खिन्नगात्र व परिश्रम हुआ तब कृपासिन्धु तुरन्त उस रस्सी में बँधिगये इस चरित्र में यह शिक्षा है कि मेरे बँधिजाने में केवल दो अंगुल का बीच है एक अंगुल का तो भक्त की ओर से अर्थात् परिश्रम व उपाय के शोच का और दूसरा एक अंगुल का मेरी ओर से अर्थात् करुणा व दयालुता का सो जिस समय भक्त की ओर से परिश्रम सहित उपाय होय और उसके कारण से मैंने दयाको किया तो तुरन्त बँधि जाताहूँ अर्थात् ढूंढ़नेवाले को मिलजाता हूँ ॥

कथा विट्ठलनाथ की ॥

विट्ठलनाथ गोसाईं वल्लभाचार्य के बेटे जिनकी कथा धर्मप्रचारक निष्ठा में लिखीगई ऐसे परमभक्त वात्सल्यनिष्ठा के हुये कि जो सुख वात्सल्य का नन्दबाबा को हुआ था सोई भगवत् नेकृपाकरके उनको दिया विट्ठलनाथजी की रीति थी कि रातदिन भगवत् आराधन व लाड़लड़ाने

और खिलाने और रागभोग की तैयारी और सेवा में रहते थे प्रभातही भगवत् को जगाना और मुखारविन्द धोना कुछ भोजन कराना फिर स्नान कराना आभूषण व पोशाक पहिराना शृङ्गार कराना खिलौना अनेक प्रकार के ढूंढ़के लेआना सेज बिछाना शयन कराना और दूसरे सब बाल-चरित्रों में तत्पर रहना और यह आराधन केवल एकबेर का न था सात बेर करते थे तात्पर्य यह कि सेवा और आराधन के विना चित्त की वृत्ति दूसरी ओर नहीं जाती थी जैसा कुछ वास्तव में गोकुल और नन्दरायजी का समाज था वैसाही शोभाका सामान अपने सेवकों के हृदय में प्रकट कर दिया था इसमें सन्देह नहीं बिट्ठलनाथजीने कलियुग को द्वापर करदिया यद्यपि ध्यान में भगवत् के बालचरित्रों का दर्शन साक्षात् दर्शनों के बराबर होता था परन्तु एकबेर चाहना हुई कि साक्षात् भगवत् के बाल-चरित्र देखें भगवत् ने उनका मनोरथ पूर्ण करना बहुत उचित समझकर आज्ञा की कि हम अपने आवेश अवतार से अपने बालचरित्र दिखा-वेंगे सो जब गिरिधरजी बड़े पुत्र उत्पन्न हुये तो उनके शरीर में भगवत् की कला ने प्रकाश किया और बालचरित्र बिट्ठलनाथजी को दिखलाये जब गिरिधरजी पांच वर्ष की अवस्था से अधिक हुये तो वही कला गिरिधरजी से अलग होकर दूसरे पुत्र के शरीर में आयगई इसी प्रकार सात पुत्र हुये और सबमें भगवत् ने अपनी कला का प्रवेश किया और बालचरित्र दिखाया एकबेर भगवत् बन्दर को देखकर डरे और दौड़ कर बिट्ठलनाथजीकी गोद में आयछिपे उस घड़ी बिट्ठलनाथजी को भगवत् की ईश्वरता का ध्यान था प्रेमसे गोद बैठाकर प्यार करके बोले कि जिस घड़ी लङ्कापर चढ़े और असंख्य बन्दर काल के सदृश विकराल साथ में थे उस घड़ी तो कबहीं न डरे अब इस छोटे एक बन्दर से किस हेतु डरे हैं भगवत् ने कहा कि जो तुम्हारे चित्त की वृत्ति मेरे ईश्वरता की ओर लगी है तो बालचरित्र के उपासना का क्या प्रयोजन है और जो बालचरित्र की उपासना निश्चय है तो उन चरित्रों का कारण पूछना कुछ प्रयोजन नहीं मेरे चरित्र और मेरे स्वरूप भक्तवत्सल व कृपालुता करके भक्तोंकी चाहना के अनुकूल होते हैं नहीं तो इन बातों से अलग और सब माया के गुणोंसे परे हैं बिट्ठलनाथजी इस भगवत् की कृपा से अति आनन्द को प्राप्त हुये सातों पुत्रों का नाम वल्लभाचार्यजी के परंपरा में लिखा हुआ है सब आवेश अवतार हुये सात गद्दी उनके नाम से

अबतक गोकुल में विराजमान हैं और विख्यात हैं इस संसारसमुद्र से पार उतारने को मानो सात जहाज हैं स्वामी वल्लभाचार्य और बिट्ठलनाथ और उनके पुत्रों की विराजमान की हुई सात मूर्ति थीं तिनमें से एक मूर्ति श्रीनाथ महाराज की उदयपुर के राना की चाह और प्रार्थना व विनय से आलमगीर बादशाह जिस समय था तब राना के राज में सैर करने को पधारे और उदयपुर से बारह कोस उत्तर ओर विराजमान हैं और नाथद्वारा सारे संसार में प्रसिद्ध और विख्यात व अबतक आप श्रीनाथजी वहां पथिकों की भांति शोभित हैं निज अपने रहने के वास्ते कोई मन्दिर नहीं बनवाया गोसाईं लोग व पुजारी लोगों के वास्ते बड़ी बड़ी भारी इमारतें तैयार होगई हैं और बिट्ठलनाथजी के वंशमें से वहां के अधिकारी व गोसाईं हैं और इसी प्रकार दूसरी मूर्ति गोकुलचन्द्रमा नाम आलमगीरही के समय में जयपुर का राजा लेगया वह मूर्ति भी अबतक जयपुरमें है और गुरुद्वारा भी बड़ाभारी बिट्ठलनाथ के वंश में से वहां पुजारी व गोसाईं हैं॥

कथा कर्माबाई की॥

कर्माबाई परमभक्त वात्सल्य उपासक हुईं। रीति है कि बालक छोटे प्रभातही उठते हैं और खिचड़ी अथवा रोटी खानेको मांगा करतेहैं और मां को लड़के के जगने के पहले से चिन्ता होतीहै सो कर्माबाई को उसी भाव से पहले चिन्ता भगवत् के खिचड़ी तैयार करनेकी होती थी और विना न्हाये और क्रिया आदिक के किये थोड़ी सी खिचड़ी छोटी सी कुल्हड़ी में अङ्गारों पर रख दिया करतीं और जब वह तैयार हो जाया करती तो अत्यन्त प्यार व प्रीति से भगवत् को भोग लगाया करतीं व जगन्नाथराय स्वामी पुरुषोत्तमपुरी से आयकर और अतिप्रसन्न होकर भोजन किया करते। एक वेर कोई साधु आगया वह आचारपूर्वक भोग लगाने को शिक्षा करगया लाचार कर्माबाई आचारपूर्वक भोग लगाने लगीं अब देरी भोजन में भगवत् के होने लगी। एक दिन कर्माबाईजी के गोद में बैठे खिचड़ी खाय रहे थे कि पुरुषोत्तमपुरी में राजभोग की तैयारी हुई और विना हाथ मुँह धोये वहां पहुँचे जब पण्डों ने भगवत् के हाथ और मुख में खिचड़ी लगी देखी तो चकित हुये और विनय करके पूछा तो आज्ञा हुई कि कर्माबाई हमको प्रभात ही खिचड़ी भोग लगाया करती थी और हम उसके प्रीति के वश होकर भोजन करने

जाया करते थे अब एक साधु ने उस बाई को आचारक्रिया की शिक्षा कर दी है इसकारण विलम्ब होजाताहै सो उस साधुको आज्ञा देव कि कर्मा-बाईको पहले जिस प्रकार से करती रही तैसेही करनेको शिक्षा दे आवे पुजारियों ने उस साधुको ढूंढ़कर कर्माबाईजी के घर भेजा भगवत् आज्ञा की शिक्षा दे आया कर्माबाईजी ने कि उस क्रिया आचार को बड़ी बलाय समझ रक्खा था इस हेतु कि मेरा लड़का सुकुमार और थोड़ा खानेवालाहै सो दोपहरतक भूंखा रहनेलगा जब पहली रीति की शिक्षा पाई तो ऐसी प्रसन्न हुई कि अङ्गमें न समाई अबतक जो जगन्नाथराय जीको सब भोगों से पहले खिचड़ी का भोग कर्माबाई के नाम से लगता है तो इसके दो कारण समझ में आते हैं एक यह कि गीताजी में भगवत् का वचन है कि जो कोई जिस भाव से मरता है सो उसी भाव को प्राप्त होताहै सो इस वचन के प्रमाण से कर्माबाईजी को यशोदा महारानी की पदवी मिली काहेसे कि उनको मरने के समय अपने वात्सल्यभाव में दृढ़निष्ठा थी और उसीके अनुसार कर्माबाईजी अबतक भगवत् को खिचड़ी भोग लगाती हैं दूसरा यह कि भगवत् अपने भक्तों को शिक्षा करते हैं कि मेरी प्रीति और वात्सल्यकी यह पदवीहै कि कर्माबाईजी की खिचड़ी का स्वाद अबतक मेरी जीभसे नहीं मिटा उपासक लोग और प्रेमीलोग व रसिकलोगों को मालूम रहे कि इसमें संदेह नहीं जो कर्माबाई आप आकर खिचड़ी भोग लगाती हैं किस हेतु कि हजारों प्रकार के भोजन भगवत्के वास्ते पुरुषोत्तमपुरी में तैयार होते हैं परन्तु जो स्वाद व मिठाई कर्माबाईजी की खिचड़ी में है इस प्रकार और किसी भोजन में नहीं ॥

कथा कृष्णदास की ॥

कृष्णदासजी वात्सल्यनिष्ठा में ऐसे परमभक्त हुये कि श्रीगोवर्धनधारी व्रजभूषण महाराजने अपने नित्य परम आनन्द में मिलालिया। श्री वल्लभाचार्य गुरु के वचन पर ऐसे आरूढ़ हुये कि आप भजन व सेवा के स्वरूप होगये और उनका काव्य दूषणरहित ऐसा था कि पण्डित और भक्त सब कोई जिसको धन्य कहकर समझ के दण्डवत् करते थे और अबतक विमुखों को राह धरानेवाला है व्रज की रजको अपने इष्ट-देव के सदृश जाना व सदा भगवद्भक्तों के सत्संग में रहे। एकबेर शृंगार की सामां के खरीदने वास्ते दिल्ली में आये जलेबी विमल देखकर चित्त में आया कि जो नाथजी के वास्ते यह जलेबी भेजी जावें तो

आंगन में खाते फिरते हुये और बन्दर व जानवरों को खिलाते हुये बहुत प्रसन्न होंगे और यह भी जानेंगे कि हमारे बाबाने हमारे वास्ते दिल्ली की मिठाई भेजी है और अपने सखाओं को खिलावेंगे बस उस ध्यान के स्वरूपके चिन्तनमें मग्न होकर उन जलेबियों का भोग श्रीनाथजी को लगाया और वह ऐसा अङ्गीकार हुआ कि थाल जलेबियों का उठाके दूकान से कृष्णदासजीके आगे आयगये कि उसका प्रसाद अपने सेवकों को दिया। कोई कोई ने तो न लिया और यह समझा कि पुजारी की बुद्धि में भेद आयगया है न जानें यह जलेबी किस आचार से बनी हैं और कोई कोई ने लेकर महाप्रसाद विचार किया और कृपा व आचारके वास्ते यह समझा कि बड़ों के आचरण में पकड़ करना न चाहिये उनकी आज्ञा को शिरपर रखना उचित है। वहां से आगे चले एक वारमुखी को नाचते देखकर प्रेम में मग्न होगये कि इस चन्द्रमुखी का नाच नाथजी को दिखाना चाहिये और अपने पास बुलाकर कहा कि हमारा लड़का नाचराग का बड़ा रसिया है उसके सामने नाचने को चल उसने मंजूर किया सो साथ लेकर आये और गोवर्धनजी में मानसीगङ्गा स्नानकराकर गहने व वस्त्र चमकके पहिनाये और अतर पान सुरमा इत्यादि से सँवारिके मन्दिर में लेगये वह वेश्या श्रीनाथजी का स्वरूप देखकर प्रेम के मद में मतवारी होगई और मन, कर्म, वचन से भगवतुर्की होकर देखने और दिखलाने के रसमें बेसुधिबुधि होगई। कृष्णदासजीने पूछा कि हमारे साहिबज़ादे को देखा? वेश्या ने उत्तर दिया कि देखा और मेरे मन व नयनों में समागया फिर उसने नाचना गाना प्रारम्भ किया और ऐसी २ भावना अपने मुसकान व चितवन व बतलाने इत्यादि की बनाई और दिखलाई कि उस परमरिझवार को अपने रूप, नाच, राग और भावके वश में करलिया फिर तदाकाररूप होकर और तन को छोड़कर नित्य विहार में जामिली। भगवद्भक्तों को करोड़ों दण्डवत् हैं कि एक क्षणमें परम पातकी और अधर्मी को कि जिन्हों ने कबहीं नामतक मुखसे न उच्चारण किया था उनको उस पदवी को पहुँचाय देते हैं कि आप वह अनन्त ब्रह्माण्डों का उत्पन्न करनेवाला होजाता है। कृष्णदासजीने प्रेमरसरास ग्रन्थ बनाया कि उसको आप श्रीनाथजी ने अङ्गीकार किया और सब भक्तों को उसमें प्रेम व प्रमाण है मिलने के समय सूरदासजी ने कृष्णदासजी से कहा कि कोई पद अपना बनाया ऐसा पढ़ो कि जिसमें मेरे बनाये

पदों का भाव न होय कृष्णदासजी ने दशपांच पद सुनाये परन्तु सूरदास जीने सबमें अपने बनाये हुये भावको ठहराया व पद पढ़दिया कृष्णदास जीने कहा कि तुम्हारे कहने अनुसार पद कल्ह सुनावेंगे और चिन्ता में हुये व श्रीनाथजी महाराज परमकृपालुने जो चिन्ता अपने भक्तकी देखी तो आप एक पद बनाय के उनके तकिया के नीचे रखदिया कृष्णदासजी ने जो प्रभात को उठकर देखा तो भगवत् कृपासे आनन्द हुये और सूरदासजी को वह पद सुनाया सो सूरदासजी भी परमभक्त थे जानिगये और कहा कि यह करतूति तुम्हारे कौतुकी की है कि अपने बाबा की हिमायत की और दोनों भगवत् प्रेममें बेसुधिबुधि होगये ॥ पहिला तुक भगवत् के बनाये हुये पदका यह है (आवत बने कान्ह गोपबालक सँग बच्छ की खुररेणु छुरित अलकावली) मालूम रहे कि कृष्णदासजी और सूरदासजी दोनों गुरुभाई वल्लभाचार्यजी के चेले हैं कृष्णदासजी नित्य मथुराजी से विश्रान्तघाट का जल भगवत् स्नान के निमित्त लेआया करते थे गोवर्धनजी से नव कोस है भगवत् ने मना किया कि इतने परिश्रम का कुछ प्रयोजन नहीं परन्तु जब कृष्णदासजी ने न माना तो श्रीनाथजी ने अपने शिर में चिह्न लेआने कलश जल का दिखलाया कृष्णदासजी लाचार होकर कूप के जल से स्नान करानेलगे एक दिन पांवके कँपने से कूप में गिरपड़े और भगवत् के नित्य लीलाविहार में जायमिले रसिकलोगों को एक तो दुःख उनके वियोग का दूसरे कुएँ में गिरकर मरने का हुआ श्रीनाथजी महाराज उस निन्दा को न सहिसके कृष्णदासजी को नित्य विहार में मिलने की सबको परीक्षा दी यह कि कृष्णदासजी एक ग्वाल को गोवर्धनजी के निकट मिले और उस ग्वालसे यह बात कही कि गोसाईं बिट्ठलनाथजी से दण्डवत् करके विनय करना कि इस घड़ी वह कौतुकी और ढीठ गोवर्धन की ओर अकेला चला गया है उसके ढूंढ़ने को जाता हूं इस हेतु आय नहीं सक्ता और मेरे शयन स्थान में साठ हज़ार रुपया गड़ा है तुम उसको निकलवा कर आधे का आभूषण व शृङ्गार श्रीनाथजी का और आधा साधु सेवा में लगादेव बिट्ठलनाथजी ने जो कहने के पते पर ढूँढ़ा तो उतनाही रुपया निकला और सबको विश्वास हुआ ॥

कथा गोकुलनाथ की ॥

गोसाईं गोकुलनाथजी बिट्ठलनाथ के पुत्र वल्लभाचार्य के पोते भक्ति

और सब गुणों के समुद्र व बुद्धिमान् व सुन्दर धीर सहिष्णु मितभाषी श्री गिरिधर महाराज के भजन में दृढ़हुये भक्ति के प्रताप से जिनके चरणों को सब राजा दण्डवत् करते थे भीतर बाहर एक भांति और मन सब संसा-रियों के लाभ के हेतु सावधान रहता था उनकी सेवा में एक कोई बड़ा धनवान् सेवक होने के वास्ते आया और लाखों रुपया भेंट करने के वास्ते लेआया गोसाईंजी ने उससे पूछा कि तुम्हारी प्रीति हृदय की किस वस्तु में है उसने उत्तर दिया कि किसी वस्तु में नहीं गोसाईंजी ने कहा कि तुम किसी और गुरु को ढूँढ़ो जो तुमको किसी ओर की प्रीति होती तो होसक्ता कि उस ओर से मनको हटाकर भगवत् की ओर लगा दिया जाता और जब कि स्नेह का बीजही नहीं तो भक्ति का वृक्ष कब उत्पन्न होगा सो सत्य है कि जो मन स्नेह व चाह रहित हैं सो तीक्ष्ण पत्थर के सदृश हैं ॥ कान्हा भंगी सदा नाथजी के मन्दिर में झाड़ू देने के वास्ते आया करता था और रूप अनूप भगवत् का दर्शन करके उसके रस और प्रेम में मग्न रहता था गोसाईंजी ने सब की नज़र का पड़ना श्री नाथजी पर अच्छा नहीं जानकर एक आवरण की दीवार खिंचवाई और कान्हा को भगवत् के दर्शन होने में विक्षेप पड़ा । भगवद्भक्तवत्सल को उसका दर्शन बन्द होना पसन्द न हुआ और रात को स्वप्न में उस कान्हा को आज्ञा दी कि गोसाईं गोकुलनाथजी से विनय कर देना कि नई दीवार गिरवाय दें हमारे दूरतक के अवलोकनमें बाधा करती है कान्हा ने मनमें विचारा कि गोसाईं तक पहुँचने की हमको कहां गति है जो जाता हूँ तो द्वारपाल ढिठाई समझकर पीटेंगे लालजी महाराज बिन प्रयोजन मुझको प्रेरणा करते हैं यह समझकर चुप होरहा श्रीनाथजी महाराज ने तीन दिन तक बराबर उसी आज्ञा को किया लाचार होकर गया डेवढ़ी-दारों से कहा किसी ने गोसाईंजी से न कहा परन्तु किसी और आदमी ने वार्तालाप होतेमें जनायदिया गोसाईंजी ने उसी घड़ी बुलवाया और उसके विनय के अनुसार एकान्त में पूछा कान्हा ने भगवत् का संदेश सुनाया और यहभी कहा कि तीन दिन से बराबर दृढ़ायके आज्ञा है गोसाईंजी ने पूछा कि क्या मेरा नाम धरकर नाथजी ने आज्ञा किया है उत्तर दिया कि आपही का नाम लेकर कहा है कि दीवार गिरवाय दें सो गोसाईंजी को भी कुछ इस बात की इंगित मालूम हुई थी बात कान्हा की ठीक समझकर बे सुधि होगये और कान्हा को

दौड़कर छाती से लगा लिया और भगवत् की आज्ञा पालन करी ॥

कथा गुञ्जामाली की ॥

गुञ्जामालीनाम विख्यात होनेका कारण यह है कि गुञ्जा जो घुंघुची उसकी माला बहुत पहिरते थे इसहेतु कि व्रजभूषण महाराज को उसकी माला प्यारी है इसीहेतु गुञ्जामाली नाम विख्यात हुआ नाम का अर्थ यह कि गुञ्जा की मालावाला लाहौर के रहनेवाले थे बेटा उनका मर गया बहू से कहा कि धन सम्पत्ति घरबार सब तेरा है और गोपालजी महाराज मालिक और स्वामी हैं जो तुझको इच्छा हो सो लेकर भगवद्भजन कियाकर सो वह बहू उनकी भगवद्भक्ता थी उसने कहा कि मुझ को कुछ चाहना नहीं गोपालजी महाराज की मूर्ति सेवा के हेतु मुझ को देव और भगवत् सेवा के हेतु अतिविनय व प्रार्थना करती भई गुञ्जामालीजी ने भगवत् सेवा तो उस बहू को सौंपी और माल असबाव स्त्री को देकर आप श्रीवृन्दावन आये और व्रजवल्लभ महाराज के भजन कीर्तन में लगे और बहू वह बड़भागिनी सेवा करनेलगी ऐसी भगवत् सेवा में लवलीन हुई कि कोई घड़ी भजन व सेवा विना व्यतिरिक्त न जाय और जहां भगवत् मूर्ति विराजमान थी तहां दूसरों के लड़के उस बहू की चाहना और भावना से खेला करते थे एक दिन ईंटों की धूलि उन लड़कों ने भगवत् के ऊपर डालदी उस बहूने उन पर बहुत रिस की और आना उनका बन्द करादिया जब भोजन तैयार करके भोग धरा तो भगवत् ने भोजन न किया और अनमने होकर कहा कि हमारे सखाओं को आनेसे मना कर दिया हम तेरी रोटी भी नहीं खाते बहूजी ने बहुत मनाया दुलराया परन्तु एक न सुनी तब तो रिस करके कहा कि हमारी क्या बिगड़ती है तुम्हारी ही पोशाक बिगड़ती है सो मैं जितनी धूलि मिट्टी कहोगे प्रभात को डलवाओंगी अब भोजन करलेव भगवत् विना अपने सखाओं के राजी न हुये लाचार उन लड़कों को मिठाई देने को कहकर फुसलाकर लेआई तब भगवत् ने भोजन किया धन्य है भगवत् की कृपालुता व दयालुता कि अपने भक्तों की प्रीति का ऐसा निर्वाह करते हैं ॥

कथा गिरिधर की ॥

गिरिधरजी महाराज बेटे बिट्ठलनाथजी के और पोते वल्लभाचार्यजी के कल्पवृक्ष के सदृश हुये बरु कल्पवृक्ष से भी अधिक हुये क्योंकि कल्पवृ-

वृक्ष तो केवल सांसारिक पदार्थ देता है सो भी कामना करने से और गिरिधर महाराज अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और भगवद्भक्ति विना चाहना देनेवाले हुये सब शास्त्रों का सार और वेद का मुख्य तात्पर्य जो भगवत् ज्ञान है उसको अच्छे प्रकार समझा और व्रजराजकुँवर महाराज की सेवा में वात्सल्यभाव से प्रेम लगाया केवल उनके दर्शनों से लोग पवित्र होते थे और जिस सभा में बैठते थे वहां भगवत् प्रेम का अमृत वरसता था उनके गुण भाव का वर्णन कहांतक कोई करे॥

कथा त्रिपुरदास की॥

त्रिपुरदासजी जाति के कायस्थ रहनेवाले शेरगढ़ के वात्सल्यभाव से प्रेम और भक्ति के स्वरूप हुये हरसाल जाड़े के दिनों में यह नियम था कि श्रीनाथजी महाराज के वास्ते पोशाक ज़रदोज़ीकी या और किसी अतिसुन्दर प्रकार की तैयार करके भेजा करते थे। संयोगवश राजा ने सब धन सम्पत्ति उनका निरोध करलिया कुछ पास न रहा शोचनेलगे कुछ उपाय न वनपड़ा अधिक हुआ तो यह शोच हुआ कि उस सुकुमार को जाड़ा लगता होगा विकल होकर रोनेलगे और घर में जाकर बहुत ढूंढ़ा तो एक दवात हाथ लगी एक रुपया पर बेंचकर एक थान गुन्दा मोल लेकर कुसुम्भी रँगाकर भेजने के उपाय में लगे परन्तु उस कपड़े को देख देख यह शोचा करते कि उस परम मनोहर शोभायमान और अतिसुकुमारके वास्ते हाय ऐसा मोटा कपड़ा भेजना चाहिये और इसी विचार में वेसुधि और विह्वल होजाते कोई भगवद्भक्त व्रजको जानेलगा उसको वह कपड़ा देकरके वड़ी अधीनता से विनय किया कि इस कपड़े का समाचार गोसाईंजीको न पहुँचे काहेसे कि उनकी दासियों की दासी के योग्य भी नहीं है भण्डार में डालदेना वह आदमी आया भण्डारी को देदिया भण्डारी ने वेमर्यादसे कपड़ों के नीचे डालदिया श्रीनाथजी को कि वह रज़ाई भेजी हुई नन्दस्वरूप अपने वावा की तोशेखाने में पहुँचने परभी न पाई तो जाड़ेसे कांपनेलगे गोसाईंजी ने लिहाफ़ और रज़ाई ज़रवफ़्त और कीमख़ाब इत्यादि की उढ़ाई परन्तु जाड़ा न गया फिर दुशाले व रूमाल इत्यादि उढ़ाये तवभी जाड़ा वैसाही रहा आग की अंगीठी लाये दरवाज़े सब बन्द करदिये परन्तु क्या वात कि जाड़ा तनक भी हटै गोसाईंजीने विचार करके भण्डारी और कारवारियों से कहा कि भाई यह शीत नहीं किसी की प्रीति है सो कहो किस किस भक्त ने क्या२

जड़ावर भेजी है उन लोगों ने जिस २ राजा और उमराव और दूसरे लोगों की भेजी जड़ावर थी सो विनय की और उढ़ाई गई कुछ कार्य सिद्ध न हुआ तब भण्डारी को स्मरण हुआ और गोसाईंजी से वर्णन किया कि त्रिपुरदास कङ्गाल होगया है उसने एक थान बहुत मोटा भेजा है वह भगवत् की पोशाक के बांधनेवास्ते भण्डार में रक्खा है गोसाईं जीने कहा कि शीघ्र ले आवो सो आया और उसका चोलनासा तैयार करके पहिनाया कि तुरन्त जाड़ा छूट गया और हठभी छूटा। तिलककार भक्तमाल शिक्षा कराते हैं कि इस प्रीति और भक्तवत्सलता की ओर विचार करके मन लगाना चाहिये सो सत्यकरके है जो इस भगवत्कृपालुता को विचार करके और पढ़ सुनके मन अभागा भगवत् में न लगे तो निस्संदेह पत्थर से भी अतिकठोर है वरु वज्र समझना चाहिये॥

बीसवीं निष्ठा॥

जिसमें वृत्तान्त छः भक्तों व इस निष्ठा के उपासकों व सौहार्द महिमा का वर्णन है॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की अष्टकोणरेखा को दण्डवत् करके कल्की अवतार कि जिसको निष्कलङ्क कहते हैं प्रणाम करताहूं और वह अवतार कलियुग के अन्तसमय सम्हलदेश में धारण करेंगे और नाम कलियुग का व पापों का पुञ्ज संसार से उठायदेंगे प्रत्यक्ष है कि जितने सम्बन्ध संसार में प्रवर्तमान हैं सो नव प्रकार के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं एक शेष शेषी १ अंश अंशी २ शरीर शरीरी ३ पति पत्नी ४ पूज्य पूजक ५ सेव्य सेवक ६ रक्ष्य रक्षक ७ जनक जन्य ८ गुरु शिष्य ९॥ सो सब सम्बन्धों पर अच्छी प्रकार विचार कियाजाता है तो अन्त की पदवी सब सम्बन्धों की ईश्वर प्राप्ति व युक्त होती हैं व इस ओर जीवपर प्राप्त होती है सो विस्तार करके सेवानिष्ठा में शेष व शेषीभाव के वर्णन में जीव व ईश्वर पर लिखाहै थोड़ा यहां भी लिखता हूं तात्पर्य यह कि अंशी, पति, पूज्य, सेव्य, रक्षक, पिता, गुरु अथवा कोई सम्बन्धवाला जो सब में बड़ा, पुराना और आगे परभी सदा रहनेवाला पहले था और उस सम्बन्ध की रीति का जाननेवाला और निर्वाह करदेनेवाला जो ढूंढ़ाजाय तो भगवत् से अधिक और अच्छा कोई नहीं और इसी वास्ते अंशी, रक्षक व पति इत्यादि नाम भगवत् के विष्णुसहस्रनाम और दूसरे सहस्रनामों व स्तोत्रों में लिखे गये और इसी प्रकार पूजा करनेवाला और सेवा करनेवाला व रक्षा चाहनेवाला इत्यादि जो ढूंढ़ा

जाय तो जीवपर युक्त व योग्यता होती है कि जीव से अच्छा उन सम्बन्धों में दूसरा कोई नहीं तिसमें भी मनुष्यशरीर तो मुख्यसम्बन्धों अर्थात् नातेदारी ईश्वर और जीव पर समाप्त हुई और यह नाता अनादि और पुराना अर्थात् उस दिन से है कि जिस दिनसे इस जीवने ईश्वर अंश से प्रकट होकर जीव नाम धराया और विशेषता यह कि आगे पर भी बनारहेगा तो भला जब कि ऐसा नाता पुराना जीव और ईश्वर का दृढ़ है तो अत्यन्त उचित व योग्य है कि नातेदारी जो संसारी हैं सो भी भगवत् ही के साथ लगाई जावें और इस बात में आप निज भगवत् ने कहा है कि जो मुझको अपना नातेदार जानकर सेवन करता है सो मुझ को प्राप्त होता है भागवत व महाभारत के बहुत वचन इस बात के निश्चय करनेवाले हैं फिर गीताजी और एकादश और शान्तिपर्व महाभारत में बारम्बार यह वार्ता आई है कि जो जिस भाव से भगवत् का आराधन करता है भगवत् उसीभाव से उसपर प्रसन्न होता है और सैकड़ों हज़ारों कथा पुराण व भक्तमाल की इस बात की साक्षी हैं नहीं तो कहां वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन कि जिसको वेद नेतिनेति कहते हैं और जिसके स्वरूप ज्ञान और महिमा के वर्णन में ब्रह्मा, शिव, शेष व शारदा के ज्ञान का दीपक ठंढा है और कहां राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन इत्यादि अवतार धारण करके सब भक्तों के भाव और चाह को पूर्ण करना तात्पर्य इस कहने का यह है कि संसार में नाते की धग्गी ऐसी बराबर है कि उसके अवलम्बसे बरबस स्नेह व प्रीति सबको अपने नातेदारों के साथ होती है जो भगवत् में सौहार्दभाव के अवलम्ब से मन लगाया जाय तो भगवत् के मिलने में क्या संदेह व भ्रम है बरु निश्चय करके और शीघ्र मिलेगा जो यह बाद कोई करे कि भगवत् को भाई, बाप, दामाद, भतीजा अथवा देवर व जेठ इत्यादि नातेदार कहना कहां योग्य है और कब बुद्धि में यह बात आय सक्ती है उत्तर यह है कि जो यह बात अङ्गीकार कीजाय तो दास्य व शृङ्गार व वात्सल्य इत्यादि उपासना सब त्याज्य होजायँगी काहे से कि जिन प्रमाणों से नातेदारी त्याज्य होंगी सोई वास्ते लोप करने दास्य इत्यादि निष्ठाके भी समर्थ हैं कि भगवत् स्वामी, मित्र, बेटा व पति नहीं होसक्ता और जिन वचनों के प्रमाणसे दास्य इत्यादि निष्ठा अङ्गीकारयोग्य हैं उन्हीं प्रमाणों से यह सौहार्दनिष्ठा भी सत्य व युक्त है कि जैसी आज्ञा शास्त्रों की उन

निष्ठाओं के वास्ते हैं वैसीही इस निष्ठा के वास्ते भी है सिवाय इसके गवाही युधिष्ठिर, कुन्ती, द्रौपदी, उग्रसेन, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, बलदेव जी, लव, कुश, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व जनक इत्यादि हज़ारों भक्तों की प्रकट है और एक बात यह भी सब शास्त्रों में लिखी है कि सब नातेदारों को भगवत् के नाते से मानना चाहिये अर्थात् बेटा, पोता, भाई, भतीजा और दूसरों को किसी को किंकर, किसीको जल भरनेवाला, किसीको रसोइया, किसी को चौका देनेवाला और किसी को सेवा करनेवाला जाने संसारीनातों को मुख्य न समझे और उनमें कोई भगवत् विमुख हो तिसका त्याग उचित है कि प्रह्लाद ने पिता को त्यागदिया और विभीषणने भाई को और भरतजी ने माता को, राजा बलि ने गुरु को और गोपिकाओं ने पतिन को और उस त्याग करने में यह नहीं हुआ कि किसी की कुछ हानि हुई हो बरु ऐसी हुई कि उनका नाम जगत् के आनन्द और मङ्गल को देता है तो जब कि दूसरे नातेदारों को भगवत् के नाते से मानना लिखा है तो आपसे आप उचित व आवश्यक करना ही हुआ कि निज अपना नाता भी स्थिर करले और वह नाता आरोपण करना योग्य है कि जैसी मन की रुचि और गहरी प्रीति होय और मुख्य अभिप्राय सब शास्त्रों का यह है कि भगवत् का किसी प्रकार और किसी रूप में और किसी रीति से आराधन हो अद्वैतता और ईश्वरता भगवत् की निश्चय समझकर दृढ़ विश्वास करलेना चाहिये। यह कदापि नहीं कि भगवत् न मिले और जबतक कि अद्वैतता और ईश्वरता का ज्ञान व विश्वास न हो तबतक कुछ प्राप्त नहीं होता इस सौहार्दनिष्ठा की महिमा व बड़ाई कौन कहसक्ता है और ऐसा प्रताप इस निष्ठा का है कि अपने आप मन भगवत् में लगता है और क्यों नहीं ऐसा प्रताप इस निष्ठा का होय कि पूर्णब्रह्म अन्तर्यामी और व्यापक साक्षात् होकर सब प्रकार से मनभाया व चित चाहा इस निष्ठा के उपासकों का करता है और करता रहा और आगे पर करेगा कारण ऐसा प्रताप होने इस निष्ठा का यह है कि दूसरी निष्ठा तो ऐसी प्रसिद्ध हैं कि सब कोई अपने आपको दास व सिरजा हुआ भगवत् का कह सक्ता है अथवा कोई बात अपने मतमतान्तर की जानता हो कै न जानता हो और इस निष्ठा में उसीका मन लगेगा कि जो कुछ जाननेवाला भगवत् के सिद्धान्त और शास्त्र व ईश्वरता व चरित्रों का होगा और जब कि शास्त्रों के सब अभि-

प्राय जानने के पीछे मन भगवत् में लगा तो भगवत् बहुत शीघ्र मिल सक्ता है इस निष्ठा के उपासकों को उचित है कि जिस नाते से भगवत् का आराधन करें उस नाते को अच्छे प्रकार रीति भांति जैसी कि भाई व दामाद अथवा भतीजे आदि के साथ रखते हैं भगवत् के साथ दृढ़ विश्वास व सच्ची भावना से पक्की दशा को पहुँचा देवें और जिस नाते की जो रीति है सो सब भगवत् के साथ ऐसी निबाहैं कि तनक कोई बात बाक़ी न रहे। थोड़े दिन हुये कि स्वामी रामप्रसाद जनकपुर के रहनेवाले श्रीरघुनन्दन महाराज को अपना दामाद मानते थे जब दर्शन करने को अयोध्याजी में आये तो अयोध्याजी के देश का पानी तक पीना छोड़ दिया जब दर्शन को श्रीरघुनन्दन महाराज के गये तो उनके भाव के पूर्ण करने को और भक्ति के प्रताप को प्रकट दिखाने के निमित्त भगवत् की मूर्ति रत्नसिंहासन से उठकर कई डग उनकी अगवानी को आई और जो रीति मर्याद राजाजनक के वास्ते होना उचित था सो सब उनके वास्ते हुई यह बात विख्यात है और स्वामी रामप्रसादजी के सेवक अब तक उस देश में बने हैं। कहने का अभिप्राय यह कि निष्ठा में पकता होय कि तुरन्त बेड़ापार है। एक वैष्णव रघुनन्दनस्वामी को अपना बहनोई जानते थे और कोई घड़ी भजन विना नहीं बीतती थी व जिस घड़ी अपनी निष्ठा और विश्वास की वार्ता लाया करते थे तो सुननेवाले प्रेममें मग्न होजाते थे और उनकी दशा क्या कही जाय॥ ब्रज में बरसाना जो लाड़िलीजी का मैका है वहां की ब्रजवासिनियों की बोलचाल यात्रियों के साथ जो होती है और उस समाज में जो दशा भगवद्भक्तों की होती है सब किसीको मिले तात्पर्य यह कि इस निष्ठावालों की बोलचाल सुन कर सुननेवालों को बरबस स्नेह व प्रीति भगवत् में होती है उनके प्रेम का क्या वर्णन कियाजाय हे श्रीकृष्णस्वामी! हे दीनवत्सल! हे पतित-पावन! कोई ऐसी अच्छी घड़ी मेरेवास्ते भी आवेगी कि जितने इस संसार में नाते व स्नेह व मित्रताहैं सो सब आपके चरणकमलों में विचार किया करूंगा और कबहीं वह दिन भी होगा कि दूसरे सब अवलम्ब व विश्वासों को छोड़कर केवल उन चरणकमलों का आसरा व विश्वास-युक्त हूंगा कि जो शिव ब्रह्मा इत्यादि परम योगियों के इष्टदेव हैं और नारद, प्रह्लाद, सनकादिक भक्तों के स्वामी और ध्यान जिनका परमपद का देनेवाला है और इस संसारसमुद्र के उतरने को हम सबका जहाज़ है॥

कथा राजाजनक की ॥

राजा जनक महाराज की महिमा शास्त्रों में लिखी है जिनका ज्ञान सूर्य के सदृश ऐसा प्रकाशित हुआ कि शुकदेवजी इत्यादि ऋषीश्वर ज्ञानवान् और वैराग्यवानों के मनको कमल की भांति प्रफुल्लित कर दिया और आवागमन के अन्धकार को दूर किया । सीता महारानी सर्व ब्रह्माण्डेश्वरों की माता और श्रीरघुनन्दन स्वामी की परमप्रिया ने जिन जनक महाराज के घर अवतार धारण करके परमपवित्र चरित्र किये ऐसे महाराज की महिमा का वर्णन कौनसे होसक्ता है जब रघुनन्दन महाराज जानकीजी के स्वयम्बर में विश्वामित्रजी के साथ जनकपुर में गये और राजाजनक मिलने के वास्ते आये तो श्रीरघुनन्दन महाराज को देखा और उसी घड़ी ज्ञान वैराग्य को विदा करके परनमनोहर और अनूपरूप माधुरी के प्रेम में विह्वल होगये और जब अपनी प्रतिज्ञा पर चित्त गया कि जो कोई शिवजी का धनुप तोड़ेगा उसको ही सीता मिलेगी तो अतिविकल हुये कबहीं तो अपनी बुद्धि पर शोच करते थे कि क्यों ऐसी प्रतिज्ञा की और कबहीं कर्मों से उदास होकर कहते कि तुमने प्रतिज्ञा किस वास्ते कराई कबहीं देवताओं का ध्यान मन में करके यह मांगते कि यह श्यामसुन्दर वर सीता को मिले और कबहीं अपने ज्ञान, वैराग्य व कर्मों का फल वास्ते पूर्ण होने अपने मनोरथ के मनमें संकल्प करते नितान्त जब किसीप्रकार मन की विकलता न मिटी तो रघुनन्दन महाराज के चरणकमलों की शरण गही और दृढ़विश्वास अपने मनोरथ पूर्ण होनेका करलिया । श्रीरघुनन्दन महाराज ने जो जनक महाराज की भक्ति और भाव को देखा और फिर जनकपुरवासियों की चाहना कि राजा जनक से सौगुणी कामना टूटने धनुप की रघुनन्दन के हाथसे रही देखी और जानकी महारानी का वह प्रेम अपार पाया कि सब ब्रह्माण्डों का प्रेम जिनके करोड़वें भाग प्रेम की छाया है तो धनुष को तोड़ा और सीता महारानी ने जयमाल को राजसभा में श्रीरघुनन्दन महाराज को पहिराया उस समय छवि अनूप सीता और दशरथनन्दन की जनक महाराजने जो देखी तो अपने भाग्य की बड़ाई करते हुये भगवत् कृपा के समुद्र में ग़ोता लगा के बेसुधि बुधि होगये व जिस घड़ी विवाह व भांवरि होने पीछे सीताजी व रघुनन्दन महाराज एक सिंहासन पर विराजमान हुये उस समय की शोभा व दशा का वर्णन किसीसे नहीं हो

सक्ता ब्रह्मानन्द का परमानन्द भी उस आनन्द के सम्मुख फीका है। राजा जनक की यह दशा हुई कि अङ्ग अङ्गसे थकित होकर आंखों से एक-टक रहिगये सत्य करके विदेह नाम उसी समय हुआ और राजा जनक व सुनयना उनकी रानी का प्रेम अलग रहा जनकपुरवासियों के प्रेम की दशा लिखी जाय तो अगणित शेष व शारदा भी नहीं लिखसके तो मैं मतिमन्द क्या लिखसक्ता हूं? रनिवास की प्रीति और बोलचाल और हँसी इत्यादि ऐसे आनन्द का देनेवाला रस है कि जिसको पान करके सुधि बुधि सब बिसरजाती है तो फिर वर्णन कौन करिसके गूंगे का गुड़ है कि मनहीं मन स्वाद को लेता है और विश्वामित्रजी को राजा जनक के प्रेम व भक्ति का वृत्तान्त कुछ कुछ धनुष टूटनेपर और कुछ कुछ विवाह होलेने पर खुलि गया था परन्तु अच्छीतरह उस घड़ी मालूम हुआ कि जब जानकी महारानी को पालकी पर सवार कराकर श्रीदशरथनन्दन महाराज से बिदा हुये॥

कथा वृषभानु व कीर्तिजी की॥

महिमा और भक्ति और यश वृषभानु महाराज और कीर्तिदा महा-रानी उनकी धर्मपत्नी की कैसे मुखसे वर्णन होसके जिनके घर श्रीराधिका महारानी सर्वेश्वरी श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया ने अवतार धारण करके तीनों लोक को पवित्र किया। रसिकलोगों को मालूम है कि श्रीराधिका महारानी में उपासकलोग दो प्रकार के भाव रखते हैं निम्बार्क संप्रदायवालों का तो यह निश्चय है कि राधिका महारानी और नन्दकिशोर महाराज का विवाह हुआ और विष्णुस्वामी संप्रदायवालों का उनके निश्चय पर अपना निश्चय भी रखते हैं और उस भाव का नाम स्वकीया है। माध्व-संप्रदाय और हितहरिवंश संप्रदायवाले परकीयाभाव का निश्चय और विलक्षण भावभी रखते हैं अर्थात् विवाह नहीं हुआ प्रिया प्रियतम महा-राज का अन्योन्य प्रीति का होना वर्णन करते हैं और दोनों स्वरूप को एक जानते हैं सो पुराणादिक के वचनों के प्रमाण से दोनों भाव में से एक भाव को जो दृढ़ कियाजाय तो दूसरे की अनरुचि होगी इसहेतु इसके नि-र्णय का कुछ प्रयोजन नहीं समझकर यही निश्चय हुआ कि दोनों भावसे वृषभानु महाराज श्वशुर व कीर्तिदा महारानी सासु श्रीव्रजचन्द महाराज की हैं और यहभी जाने रहो कि अबतक बरसाने की सब जाति नन्दगांव-वालों को अपनी बेटी विवाह में देते हैं व नन्दगांव की बेटी नहीं लेते हैं

सिवाय इसके वल्लभाचार्य के कुलमें वात्सल्य निष्ठा है अर्थात् पुत्रभाव रखते हैं कि इसका वर्णन वल्लभाचार्य की कथा और वात्सल्यनिष्ठा में अच्छेप्रकार हुआ उनकी यह रीति है कि व्रजयात्रा के समय जब किसी मन्दिर में दर्शन को जाते हैं तो आपही मन्दिर के भीतर जाकर पूजा इत्यादि किया करते हैं सो जब बरसाने में आते हैं और लाड़िलीजी के दर्शनों को जाते हैं तो बरसानेवाले उनको मन्दिर के भीतर नहीं जाने देते भाव इसमें यह है कि समधी को कैसे महल में जाने देवें बाप के घर में कोई लड़की अपने ससुरालवालों के सामने नहीं जाती ऐसे ऐसे विमलभाव व्रजवासियों के हैं रसिकलोग विचार करके अपने अपने भाव और विश्वास के अनुसार वृषभानु और कीर्तिजी में भाव राखें सब प्रकार भक्ति और भाव परमआनन्द वा प्रेम की खानि हैं वृषभानु व कीर्तिजी का यश चन्द्रमा से भी अतिनिर्मल है जिसने उस यश का शरण लिया संसार के ताप से छूटा ॥

कथा उग्रसेन की ॥

उग्रसेनजी कंस के बाप नाना श्रीकृष्ण महाराज के थे और उनकी भक्ति का भाव ऐसा अलौकिक हुआ कि भगवद्भक्ति का उत्पन्न करनेवाला है श्रीकृष्ण महाराज को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन मानते थे और दौहिता अपना जानकर वैसेही प्रेम निबाहते थे और भगवत् ने कंसादिक आठ बेटे उनके मारे परन्तु भगवद्दर्शन का सुख ऐसा माना कि उनके वध का दुःख कबहीं निकट न आया और भगवत् उस भक्ति और भाव के आधीन होकर ऐसे वशीभूत होगये कि ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, यम, काल व वरुण इत्यादि सब जिसकी माया से भयभीत होकर सदा प्रसन्नता की आशा करते हैं उस अपनी ईश्वरता पर कुछ विचार न किया और आप श्रीहस्त से छत्र व चमर लेकर सेवकों के सदृश सेवा को किया सत्य करके भक्तिही भगवत् को वशीभूत करती है गुण नहीं अर्थात् यह विचार करना चाहिये कि सुदामा को कौन धन और गजराज को कौन विद्या, उग्रसेनजी को कौन पौरुष व बल व कुब्जा को कौन सुन्दरता, व्याधका कौन पुण्य आचरण व विदुरजी का कौन उत्तमकुल और ध्रुव का क्या वयक्रम सो निश्चय करके भगवद्भक्ति ही सार पदार्थ है ॥

कथा कुन्तीजी की ॥

कुन्तीजी परमभक्त भगवत् की हुईं भगवत् श्रीकृष्ण महाराज को भतीजा अपना जानती रहीं और ऐसी प्रीति भगवत् से थी कि हरघड़ी भगवत्मूर्ति साक्षात् अथवा ध्यान में आँखों के आगे रहती थी। दुर्योधन को जीतने पीछे जब राज्य राजा युधिष्ठिर को प्राप्त हुआ तो भगवत् ने विचार द्वारका जाने का किया कुन्तीजी ने जाने न दिया पीछे उसके जब कबहीं विचार जाने का करते तो कुन्तीजी व्याकुल व दुःखित होकर कहतीं कि इस राज और सुखसे तो वनवास ही अच्छा था कि सदा श्रीकृष्ण संग रहा करते थे और भगवत् से कहा करतीं कि हे श्रीकृष्ण! हमको वह वन और वनवास ही अच्छा है अब भी वही देना चाहिये जिसमें तुम्हारे दर्शन होते रहें। एक दिन भगवत् ने दृढ़ विचार जाने का किया और रथपर सवार होगये कुन्तीजी गईं उनकी दशा देखकर भगवत् को निश्चय होगया कि जो अब जाते हैं तो कुन्तीजी तन छोड़ देंगी न गये कुन्तीजी रथ से उतार ले आईं और अन्त समय में कुन्तीजी ने भगवत् के अन्तर्धान होने के समाचार सुनतेही तुरन्त अपनी देह को छोड़ दिया और जहां भगवत् रहे तहां पहुँचीं ॥

कथा युधिष्ठिरादि की ॥

पांचों पाण्डवन में से अर्जुन की कथा सखानिष्ठा में लिखी जायगी व राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल व सहदेव की कथा यहां लिखी जाती है। पाण्डव लोग भगवत् को ममेरे भाई जानते थे और पूर्णब्रह्म व स्वामी भी जानते रहे और भगवत् भी वह भाव उनका अपनी कृपालुता और भक्तवत्सलता से पूर्ण करते थे अर्थात् नित प्रभात के समय ऊपरके भावसे युधिष्ठिर व भीमसेन जो वयक्रममें भगवत्से बड़ेथे प्रणाम किया करते थे और नकुल व सहदेव कि वे छोटे थे वन्दना किया करते थे और कबहीं अपनी ईश्वरता का प्रकाश उनको ऐसा दिखला दिया करते थे कि वह भाव ईश्वरता का भी सदा उनको बना रहता था और जितनी मर्याद व संकोच राजा युधिष्ठिर के साथ रही तितनी भीमसेनके साथ नहीं बरु हँसीठट्ठा भाईचारों का हुआ करता था विशेष करके बहुत भोजन करने व स्थूलता व लम्बे डील पर भीमसेन को हँसा करते थे व भीमसेनजी भी जो मन में आता सो कहते थे। वृत्तान्त बोलन व चालन इत्यादि भगवत् व चारों भाइयों का वर्णन नहीं होसक्ता व्यासजी महाराज

ने कुछ थोड़ा सा महाभारत में लिखा है कि उन चरित्रों को सुनकर अ-संख्य पापी जन्म मरण के दुःखसे छूटगये और छूटेंगे युधिष्ठिर महाराज धर्म का अवतार व भीमसेनजी पवन का और नकुल सहदेव अश्विनी-कुमार देवताओं के वैद्यसे हुये जो जो संकट दुर्योधनकी शत्रुता करके उन पर आनपड़ा भगवत्ने कृपा करके सबसे रक्षा किया। पहिले तो दुर्योधन ने भीमसेन को विष दिलवाया और हाथ पांव बांधकर नदी में डालदिया भगवत् ने यह कृपा की कि भीमसेनको नदी में से वरुणदेवता अपने गृह में लेगये वहां उनको अमृत व दशहज़ार हाथी का बल मिला पीछे उस के लाक्षागृह में जलाने का उपाय दुर्योधन ने किया तहां भी कुछ न हुआ बरु अधिक ऐश्वर्य्य व मर्याद व ख्याति का कारण पाण्डवों को हुआ अर्थात् हज़ारों राजों की सभामें से द्रौपदी को जीतकर लाये पीछे उसके हास्तिनापुर जो दिल्ली है तहां आयके धरती पर जितने राजा हैं तिनसे वि-जय कराय के भगवत् ने राजसूययज्ञ पूर्ण कराया उस यज्ञमें जब दुर्योधन की हँसी हुई उसने जुयेमें छलसे सब धन सम्पत्ति इत्यादिको जीतलिया और द्रौपदी को राजसभा में नग्न करने को चाहा तो भगवत् ने रक्षा की और जब पाण्डव दुर्योधनसे बचन हारने के कारण तेरहवर्ष वनमें रहे तो बहुत गन्धर्व व राक्षसों को विजय किया व अनेक प्रकार का लाभ उनको ऋषीश्वरों व शिवजी व इन्द्रादि देवताओं से हुआ और भगवत् ने दु-र्वासाके शाप से बचाया और महाभारत युद्ध के समय दुर्योधन की ओर ग्यारह अक्षौहिणी दल था और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, सोमदत्त, जयद्रथ व विकर्ण आदि ऐसे २ शूरवीर थे कि सब कोई पाण्डवों के जीतने का अहंकार रखते थे और दुर्योधन का अङ्ग अष्टधातु के सदृश था व दुःशासन दशहज़ार हाथियों के बलवाला व दूसरे अट्ठानबे भाई दुर्योधन के सब बलवान् व शूरवीर थे और पाण्डवों की ओर पांचोंभाई पाण्डव आप और दो चार राजे दूसरे व सात अक्षौहिणी दल था भगवत् ने उस लड़ाई की घोर नदी से आप कैवर्त्तक होकर पाण्डवों को पार उतारा व दुर्योधनादिक को सेना व शूरवीरों समेत भग्न व नाश करदिया। पीछे राजा युधिष्ठिर राज-सिंहासन पर विराजमान हुये तो न्याय व धर्मपूर्वक प्रजापालन किया जब परमस्नेही भाई अर्थात् भगवत् के अन्तर्धान होने का वृत्तान्त सुना तो उसी घड़ी राज्य को छोड़दिया और उत्तर दिशा में सुमेरुपर्वत के

निकट बरसाने में जाकर परमधाम को गये सो कथा पाण्डवों की वि-ख्यात और महाभारत आदि में विस्तार से लिखी गई है इस हेतु नाम-मात्र थोड़ा लिखागया ॥

कथा द्रौपदीजी की ॥

द्रौपदीजी परमसती की भक्ति और भाव की महिमा ऐसा कौन है जो वर्णन करसके उस भगवत् ने कि जिसको वेद और ब्रह्मा भी वर्णन नहीं करसक्के उसके मनोरथ को पूर्ण किया अर्थात् जब द्रौपदीजी ने स्मरण किया तब तुरन्त आये और अपनी ईश्वरता को छोड़कर उनकी चाहको मुख्य जाना । द्रौपदीजी भगवत् श्रीकृष्णस्वामी को यद्यपि मनमें पूर्णब्रह्म परमात्मा मानती थीं परन्तु भाव देवरका रखती थीं उस भावमें रस व परम आनन्द अपार है चरित्र द्रौपदीजी का और वृत्तान्त उनके जन्म का पा-ण्डवों की कथा के साथ विस्तार करके महाभारत व दूसरे पुराणों में लिखा है यहां भी दो एक कथा लिखी जाती हैं। जब राजा युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण राज्य द्रौपदी समेत आप व भाइयों ने जुये में दुर्योधन के हाथ हारदिया तो दुर्योधन ने पाण्डवों को बेमर्याद करना विचारा व राजसभा में जहां युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल व सहदेव भी बैठे थे द्रौपदी को बुलाकर दुःशासन को नग्न करने के वास्ते आज्ञा दी व भीष्मपितामह व द्रोणाचार्य इत्यादि इस विचार से कि द्रौपदीजी भगवद्भक्त हैं दुष्टता व अनीति दुष्टों की नहीं चलसकेगी अथवा दुर्योधन के डरसे कुछ मना न करसके और युधिष्ठिर आदि धर्म को विचारिके न बोले और द्रौपदीजी उस समय स्त्रीधर्म के कारण केवल एक सारी पहिने हुये थीं दुःशासन दुष्ट वस्त्र खींचने को जब तैयार हुआ तब द्रौपदीजी नें भक्तवत्सल, दीनबन्धु, प्रणतार्तिभञ्जन, कृपासिन्धु अपने देवर का स्मरण किया और लज्जा रखनेवाले महाराज कि सदा सर्वकाल अपने भक्तों के सहाय के हेतु समीपही बने रहते हैं आन पहुँचे व द्रौपदी की सारी वामन महा-राज के शरीर के सदृश अथवा कुरुक्षेत्र के तुलादान के सदृश अथवा भगवत् अर्पित कर्म के सदृश अथवा नारायण के नाभिनाल के सदृश बढ़नेलगी इतनी बढ़ी कि दुःशासन जो दशहजार हाथियों का बल रखता था खींचते खींचते हारगया व एक नख भी द्रौपदी का नग्न न हुआ । सब दुष्ट लज्जित होरहे और उसी समय उन पापियों से राज्य, धर्म, बुद्धि, बड़ाई, आयु व सम्पत्ति इत्यादि ने बिदा मांगी ॥

दो० कहा करै बैरी प्रबल, जो सहाय यदुवीर।
दशसहस्र गज बल घट्यो, घट्यो न दशगज चीर ॥ १ ॥

कवित्त।

दुर्जन दुःशासन दुकूल गह्यो दीनबन्धु, दीन ह्वैके द्रुपददुलारी यों पुकारी है
आपनो सबल छांड़ि ठाढ़ पतिपारथ से, भीम महा भीम ग्रीवा नीचेकरिडारी है
अम्बरलौं अम्बर पहाड़ कीन्हों शेषकवि, भीषमकरणद्रोण सबी योंविचारीहै
सारीमध्यनारीहैकिनारीमध्यसारीहैकि, सारीहैकिनारीहैकिनारीहैकिसारी है

यहां एक शंका यह है कि भगवत् विना पुकारे आप से आप सहाय करते उन्होंने किसहेतु धैर्य को छोड़कर भगवत् से सहाय चाही सो एक उत्तर तो प्रेम से भरा यह है कि भगवत् से और द्रौपदीजी से जब हँसी की बातें व छेड़छाड़ होती थीं तो कबहीं भगवत् निरुत्तर होजाते थे और कबहीं द्रौपदीजी जब यह संकट आनिपड़ा तो द्रौपदीजी ने इस हेतु श्रीकृष्णस्वामी को स्मरण किया कि जो आप से आप विना स्मरण व पुकारे भगवत् की सहाय हुई तो मेरा परमस्नेही देवर सदा मेरे व्यंग वचन से निरुत्तर होजाया करेगा कि दुःशासन वस्त्र खींचता था तब सहाय को नहीं आये थे तो उसी को पुकारना चाहिये कि जिस में वह निरुत्तर न हो और मुझीको अपने उपकारसे संकुचित करके व्यंग्य वचन बोलाकरे कि राजसभामें कैसी भई दूसरे यह कि द्रौपदीजी भगवत् को स्मरण करके वचन मारती हैं कि तुम अपने राज्य व बड़ाईकी बड़ाई करके हमको वचन मारते रहे अब देखो कि तुम्हारी भावज को दुष्ट लोग किस प्रकार से बेवस्त्र किया चाहते हैं, तीसरे यह कि द्रौपदीजी भगवत् का स्मरण करके सब भक्तों को शिक्षा करती हैं कि भगवत् के स्मरण करने से वस्त्र जो जड़ पदार्थ है अनन्त हो जाता है तो जीव उस के स्मरण से अनन्त व अच्युत क्यों न होजायगा, चौथे अपने पतिन को धैर्य देती हैं कि भगवत् के स्मरण से कौन ऐसा संकट है कि दूर न होगा पीछे दुर्योधन ने पाण्डवों के बारहवर्ष का वनवास और फिर एक वर्ष गुप्त रहने को निश्चय विचार किया सो वन को चले सिवाय शस्त्रों के दूसरी सामग्री कुछ खाने पीने की पास न थी सूर्यनारायण ने एक टोकनी को प्रसन्न होकर दिया चमत्कार उसका यह था कि जबतक द्रौपदीजी भोजन न करलेती थीं तबतक सब प्रकार की सामग्री भोजन की जो चाहना होती उसमें से निकलती थी और जब द्रौपदीजी भोजन कर

चुकती थीं तब बन्द होजाती थी एक दिन दुर्वासाजी दशहज़ार चेलों समेत दुर्योधन के कहने से ऐसे समय पर आये कि द्रौपदीजी भोजन करचुकी थीं युधिष्ठिर महाराज ने भोजन के वास्ते विनय किया दुर्वासा जी ने कहा कि स्नान करआवें तब भोजन करेंगे यह कहकर स्नान करने को गये व राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदीजी से कहा कि तुम भोजन न करना दुर्वासाजी का शिष्टाचार है द्रौपदीजी ने विनय किया कि मैंने तो भोजन करलिया राजा युधिष्ठिर यह वचन सुनतेही अचेत व बेसुधि होगये और रोदन करने लगे कि अब किस प्रकार मर्याद रहेगी और दुर्वासाके शाप से कैसे बचेंगे? द्रौपदीजी ने जो यह दशा राजा की और भीम व अर्जुन आदि की देखी तो अतिदृढ़ विश्वास व भक्ति से कहने लगीं कि तुम क्यों ऐसे दीन व अधीर होते हो वह श्रीकृष्ण तुम्हारा भाई परमस्नेही क्या कहीं दूरहै कि इस समय सहाय न करेगा और यह कहकर द्रौपदीजी ने श्रीकृष्ण स्वामी को स्मरण किया भगवत् तुरन्त द्वारका से रुक्मिणीजी को छोड़कर आनपहुँचे मानो उसी जगह थे सबसे मिलने पीछे द्रौपदीजी की ओर देखकर कहा कि भूख लगी है कुछ भोजन को लावो? द्रौपदीजी ने कहा कि यहां पहले से एक के वास्ते सब शोच में पड़े हैं यह दूसरे नये भूखे आकर पधारे मेरे घर कुछ खाने पीने को नहीं है भगवत् ने कहा कुछ थोड़ासा लेआवो। द्रौपदीजी ने कहा कुछ नहीं है बड़ी बेरसे टोकनी मांज धोकर रक्खी है। भगवत् ने युधिष्ठिर की ओर देखकर कहा कि यह पुर्वियेकी बेटी भूखे घर की ऐसी भूखी मिलगई है कि जब हम भोजन मांगते हैं बिना नहीं किये कबहीं नहीं देती है अच्छा वह टोकनी उठाय लेआवो हम आप ढूंढ़लेंगे। द्रौपदीजी टोकनी उठाय ले आईं और भगवत् के सामने रखकर कहा कि जो आपही ढूँढ़ लेवेंगे तो यहां किसका निहोरा है। भगवत् ने एक पत्ता साग का उसमें कहीं लगाहुआ पाया उसको निकाल द्रौपदीजी को दिखाया कि देखो यह क्या है द्रौपदीजी बहुत हँसीं और कहा कि यह कृष्ण साग इत्यादि से रुचि मानरहा सोई ढूँढ़लिया। भगवत् उस साग के पत्ते को अपनी हथेलीपर रखकर भोजन करगये और थोड़ासा जल पिया कि उसी क्षण त्रिलोकी तुष्ट व तृप्त होगई और दुर्वासाजी की तो यह दशा भई कि पेटके भरने से उठने की सामर्थ्य न रही और फिर जो विचार किया कि क्या कारण इस भांति पेटके अफरने का है तो भगवद्भक्तों का प्रताप

अपने मनमें समझकर और राजा अम्बरीषके कारण जो कष्ट उठाया उसको स्मरण करके राजा युधिष्ठिर से विना कहे छिपकर भाग गये भीमसेन ढूँढ़आये कहीं पता न लगा ऐसे चरित्र द्रौपदीजी के अनेक हैं क्या सामर्थ्य किसीको है जो लिख सके ॥

इक्कीसवीं निष्ठा ॥

जिसमें महिमा शरणागति व आत्मनिवेदन और दश भक्तों की कथा वर्णन है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की छत्र चमर रेखाको दण्डवत् करके मन्वन्तर अवतारकी वन्दना करता हूं कि बिठूरमें वह अवतार धारण करके सबधर्मोंका प्रकाश किया शरणागति व आत्मनिवेदन की महिमा के पहले एक बात यह लिखनेके योग्य है कि जो भक्त वन्दननिष्ठा के उपासक हैं सो भी इस निष्ठामें लिखेजायँगे हेतु यह है कि वास्तव करके वन्दन से अभिप्राय वारिजाने अर्थात् निछावर होनेका है और वन्दन और शरणागति में केवल इतना ही भेद है कि वन्दन तो बाहर निछावर और अर्पण होनेको कहते हैं और शरणागति बाहर व भीतर दोनों अर्पण और भेंट करने का नाम है जिस प्रकार कीर्तन व स्मरण कि कीर्तन तो उसको कहते हैं कि जो भगवत् का नाम और भजन केवल मुखसे होय और स्मरण उसका नाम है कि जो मनसे होय वास्तवमें दोनों बात का तात्पर्य एकही है मनसे होय अथवा वचन से सुरति बनीरहे इस हेतु स्मरण भी कीर्तननिष्ठा में मिलायके लिखागया है इसी प्रकार वन्दननिष्ठा को भी शरणागति से मेल कियागया और यह भी मालूम रहे कि शरणागति और आत्मनिवेदन एक बात है कि इसका वर्णन इसी निष्ठा में विस्तार करके होगा कोई उपासकलोग विशेष करके रामानुज संप्रदायवाले भगवत् के प्राप्त होने का हेतु मुख्य शरणागति को मानते हैं और कहते हैं कि भगवत् दो प्रकार से मिलता है एक तो भक्ति से दूसरे शरणागतिसे सो भक्तिके योग्य तो वे लोग हैं कि जिनको अपने परिश्रम व उपाय का भरोसा दृढ़ होय कि इस जन्म में अथवा दश के पचास जन्ममें अपने पुरुषार्थ अर्थात् भगवत् आराधन इत्यादि से निश्चय भगवत् को प्राप्त होंगे और भजन के विश्वास से यमराज इत्यादि का कुछ भय नहीं रखते और जो इस जन्म में उनका मनोरथ पूर्ण न हो तो होनेवाले जन्मों से आगे को यह भय नहीं कि हमको भगवद्भक्ति न होगी भगवद्गीता के वचन के अनुसार कि अनेक जन्ममें सिद्धि को प्राप्त होकर परमगतिको

जाता है दूसरा वचन यह कि हे अर्जुन ! मेरे भक्त का नाश कहीं नहीं होता ऐसे २ वचन सैकड़ों व हज़ारों भागवत व गीता व दूसरे पुराणों के हैं व शरणागति वह वस्तु है कि जिस समय भगवत् में दृढ़ विश्वास करके शरण हुआ और इसलोक व परलोक का बोझ भार भगवत् पर डाल दिया उसी घड़ी से उस जन को न किसी उपाय का प्रयोजन है न पुरुषार्थ का और जो कुछ पुरुषार्थ और उपाय का भरोसा रहा तो उस के शरण होनेमें कचाई है बरु उसका नाम शरणागति नहीं व न शरणागति का फल उसको मिलता है जिस प्रकार हनुमान्‌जी को इन्द्रजीत रावणके बेटे ने ब्रह्मफांस में कि वह एक पतरी रस्सी थी बांधलिया तो और कुछ उपाय न किया और उसको विश्वास रहा कि इस ब्रह्मफांस से कबहीं न छूटेगा उसके विश्वास के अनुसार हनुमान्‌जी बँधे रहे जब वह विश्वास छूटगया अर्थात् मोटे २ रस्सों से हनुमान्‌जी को बांधा तो हनुमान्‌जी उस ब्रह्मफांस और रस्सों को तोड़कर निकलगये इसी प्रकार भगवत् शरण होकर कुछ और भी विश्वास मुक्ति के हेतु समझा तो शरणागति का रूप कहां बाकी रहा॥ भक्तिमार्ग के चलनेवालों का यह सिद्धान्त है कि श्रवण कीर्तन इत्यादि जो भगवद्भक्ति है उनमें प्रेम व स्नेह का होना विशेष चाहिये जब वह प्रेम परिपक्व और दृढ़ता को पहुँचजायगा सोई फल है उससे आगे पर कुछ कर्तव्य शेष नहीं रहता व न किसी साधन का प्रयोजन॥ अब निर्णय इस बात का उचित हुआ कि शरणागति व आत्मनिवेदन में क्या भेद है ? जो कुछ भेद नहीं तो शरणागति व भक्तिमार्गवालों को आपस में बोलचाल क्या है ? सो जानेरहो शरणागति और आत्मनिवेदन एक बात है और उसी को प्रपत्ति व न्यास और त्याग कहते हैं जिस प्रकार घड़े के कई नाम कलश व कुम्भ व घट हैं इसीभांति उस शरणागतिके कईनाम जो ऊपर लिखे हैं सो हैं केवल एक वचन का भेद उनमें यह है कि भक्तिमार्गवालों ने तो शरणागति को एक अङ्ग भक्ति का समझा अर्थात् यह कहते हैं कि भगवत् शरण होकर दास्य, वात्सल्य, शृङ्गार अथवा श्रवण के कीर्तन इत्यादि भक्ति का करना योग्य है कि उस भक्ति से उद्धार होगा और शरणागति के उपासकों में शरणागति ही को उद्धार के हेतु मुख्य समझा और कहते हैं कि शरणागति के ऊपर प्रयोजन और किसी बात का नहीं शरणागति ही सबकाम दोनों लोक का करदेती है सो यह

सिद्धान्त दोनों मार्गवालों के निश्चय का लिखागया परन्तु जब कि शरणागति के उपासनावालों को विना सेवा, पूजा, श्रवण, कीर्तन इत्यादि के शोभा नहीं व न श्रवण न कीर्तन के उपासकों को विना शरणागति के दूसरा कुछ उपाय है इससे बोलने का भेद जो ऊपर लिखा सो भेद नाम मात्र व विश्वास के बढ़ावने के वास्ते है महिमा बड़ाई शरणागतिनिष्ठा की किससे लिखीजाय कि सबप्रकार की भक्ति का सार मेरी शरणागति है भगवत् ने चौथे स्कन्ध पुरञ्जन की कथा में कहा है किसख्य व आत्मनिवेदन को मैं आप शिक्षा करता हूं इससे निश्चय हुआ कि सब प्रकार की भक्ति का सार व फल शरणागति अर्थात् आत्मनिवेदन है जहांतक जो मन्त्र देखने में आते हैं सबमें शरणागति को मुख्य रक्खा है विवरण उसका यह है कि कोई मन्त्रों में तो खुला हुआ पद शरणागति का लिखा है कि मैं श्रीकृष्ण की नारायण की रामचन्द्र की शरणहूं और कोई मन्त्रों में नमः पद लिखाहै और नमः के अर्थ दण्डवत् और वन्दन करने के हैं और वन्दना का तात्पर्य अर्पण अथवा भेंटको निवेदन करना शरीरसे है कि जिसको वारिजाना व निछावर होना कहते हैं तो जब कि दण्डवत् करना और शरणागति व आत्मनिवेदन एकही बात है और एकही परिमाण है तो निश्चय होगया कि सब मन्त्र भगवत् शरणागति को वर्णन करते हैं और शरणागति ही सर्वत्र मुख्य करीगई और जब कि सब प्रकार की भक्ति और उपासना का निश्चय केवल मन्त्र के ऊपर है और मन्त्रों से शरणागति की बड़ाई दृढ़ हुई तो शरणागति को सब उपासना और सब भक्तिमार्गों में मुख्यतर होने में क्या संदेह रहा और सब उपासना और निष्ठाओं में शरणागति की बड़ाई इससे भी दृढ़ हुई कि भगवत् ने गीताजी में कहा है कि जो मेरे शरण होते हैं सो मेरी माया को तरते हैं जब भगवत् श्रीकृष्णस्वामी ज्ञान और भक्ति व वैराग्य व योग व कर्म का उपदेश अर्जुन को कर चुके तो आज्ञा की कि जो सबसे अत्यन्त गुप्ततम बात है सो परम वचन मेरा सुन तुझसे कहताहूं काहेसे कि तू मेरा प्यारा सखा और बुद्धिमान् है सब धर्मों को छोड़कर मेरे एकके शरण हो मैं तुझको सब पापों से तुरन्त छुड़ादूंगा शोच मत करे और इस शरणागति उपदेश के पीछे और कोई उपदेश नहीं किया तो प्रतीति हो गई कि सब धर्मों का परिमाण पदवी व तात्पर्य शरणागति है इसके आगे अब और कोई भागवत धर्म नहीं और सब भक्ति आपसे आप शरणा-

गति से प्राप्त होजाती हैं अथवा उसके अङ्ग हैं ॥ जब विभीषण भगवत् शरणआया तो सुग्रीव आदि ने उसको बन्दी में डालने का सम्मत किया भगवत् ने कहा कि जो कोई मेरी शरण होकर यह कहता है कि तेरा हूं उस को सम्पूर्ण लोकनसे निर्भय करदेताहूं यह प्रतिज्ञा मेरी है यह अर्थ बाल्मीकीयरामायण के श्लोकका है और यह दोनों श्लोक अर्थात् गीताजी के अन्त के और बाल्मीकीयरामायण के मन्त्रों में भी गिनेजाते हैं सो इन भगवद्वचनों से अच्छे प्रकार सिद्धान्त होगया कि शरणागति ही उद्धार के वास्ते समर्थ है इसके सिवाय शास्त्रों से प्रसिद्ध है कि गज और विभीषण ने कोई साधन नहीं किया केवल भगवच्छरण हुये थे कि उसके प्रभाव करके दोनों लोक के अर्थ को प्राप्त हुये ॥ जगत्में प्रसिद्ध चाल देखने में आती है कि कैसेहूं पापी और नीच किसीकी शरण जाता है तो उसके अवगुण और अन्याय पर कदापि दृष्टि नहीं जाती सबसे पहले उसके कार्य सिद्ध होने पर दृष्टि होती है इसी प्रकार यह जीव सब भरोसे को छोड़कर जो भगवत्शरण होगा तो वह परमात्मा कि जो सब रीतों का जाननेवाला है क्यों नहीं दोनों लोकका मनोरथ पूर्ण करेगा सो विचार व दृष्टान्त व रीति व प्रमाण से अच्छे प्रकार निश्चय होगया कि भगवत् शरणागति उद्धारके वास्ते आप समर्थ व स्वतन्त्र हैं दूसरे किसी साधन का प्रयोजन नहीं सो उस शरणागति का वास्तवरूप तो यह है कि दोनों लोक की प्राप्ति की चिन्ता व शोच अपने शरीर से दूर करके और सब बोझ व भार अपना भगवत् के ऊपर डालकर अपने आपको भगवत् के समर्पण करदेना और हरघड़ी यह विश्वास दृढ़ बनारहना कि भगवत् शरणागति से इसलोक और परलोक के सब काम आप से आप होजायँगे मेरी चिन्ता आप भगवत् को है और जिस समय जो भगवत्शरण होता है अनेक जन्मों के पाप उसी समय दूर होजाते हैं परन्तु कोई इस शरणागति में छःप्रकार के विवरण करते हैं ॥ प्रथम यह कि शरणागति के समय से जो भागवतधर्म शास्त्रों में लिखे हैं उनका आचरण करना दूसरे जो भागवतधर्म से विरुद्ध धर्म हैं और शास्त्रों में उनका निषेध लिखाहै उनका त्याग करना और भगवद्भक्तों में प्रीति और सेवा का होना ॥ तीसरे यह विश्वास दृढ़ रखना कि मैं जो भगवत् के शरणागत हूं भगवत् मेरे सब अपराधों को अवलोकन न करके निश्चय क्षमा करेंगे चौथे यह कि सिवाय एक भगवत् के दोनों लोक में किसी को रक्षा व कल्याण के वास्ते स्वप्न में

भी न समझना ॥ पांचवां यह कि भगवत् की मूर्ति जैसे शालग्राम इत्यादि अथवा मानसी स्वरूप भगवत् के आगे खड़ा होकर अपनी दीनता और अपराध वर्णन करना कि हे प्रभो! मैं अपराधी व दीन हूं सिवाय आपके मेरा कुछ ठिकाना और आसरा नहीं सो आप पतितपावन दीनवत्सल हैं तो यह एक सम्बन्ध भी आप से रखता हूं कि मेरे से अधिक पतित और दीन कोई नहीं मेरा उद्धार आप से होगा ॥ छठवां अपने आत्मा अर्थात् अन्तर व बाहर की ममता सब भगवत् समर्पण करदेना सो इसप्रकार की शरणागति निस्संदेह विना दूसरे किसी साधन के इस संसारसमुद्र से एक क्षण में पार उतार देवेगी ॥ हे श्रीकृष्णस्वामी, हे दीनवत्सल, हे पतितपावन, हे अधमउद्धारण, महाराज! जैसाहूं आपकाहूं मेरे ऊपर भी कृपा की दृष्टि होय कि आपका चिन्तवन दिन रात करता रहूं जो स्वरूप वैकुण्ठ का धामनिष्ठा में लिखा है उसके मध्य में निजधाम भगवत् के विहार का है कि हज़ार खम्भ उसके हैं और सब द्वार व दीवार उसके प्रकाशरूप दिव्य मणिन से जड़े हुये हैं उसके बीच में सहस्रदल कमल और सब दल मन्त्ररूप हैं अर्थात् जितने देवताओं के मन्त्र उन दलों पर चिह्नित व अङ्कित हैं उनके ऊपर शेषजी महाराज मसनँद की भांति हैं और शेषजी के ऊपर श्रीलक्ष्मीनारायण परमशोभा और माधुर्य के धाम विराजमान हैं भगवत् के स्वरूप और प्रकाश परम देदीप्यमान के आगे करोड़ों सूर्य व चन्द्रमा जो एकसंग उदय होकर एकबेर प्रकाश करें तो करोड़वां अंश को नहीं पहुँचैं चरणकमलों के नख कि जिनका शिव और ब्रह्मादिक ध्यान करके कृतार्थ होते हैं और उनको मुक्तिका स्थान शास्त्रों ने लिखा है ऐसे प्रकाश करनेवाले हैं कि मानों भक्तों के हृदय को प्रकाश करने के निमित्त कोटिन महामणिके पुञ्ज हैं और चरणतलसे उन चरणों की ऐसी लाली है कि जितनी ज्योति और शोभा सब ब्रह्माण्डों में है उसीसे प्रकट हुई है और ऊपरसे ऐसी मनोहर शोभा उन चरणों की है कि सब शोभा उसी सम्बन्ध से है कड़े और घुंघुरू विराजमान पीताम्बर धारण किये हुये उसपर क्षुद्रघण्टिका यज्ञोपवीत शोभायमान मणिगण और तुलसी मञ्जरी और फूलों की माला कौस्तुभमणि कण्ठ में ऊपर भँवर गूंज रहेहैं चारों भुजन में कड़े, पहुंची, बाजूबन्द आदि आभूषण व शंख, चक्र, गदा, पद्म शोभायमान मुखारविन्द देदीप्यमान और भालपर तिलक शोभित,

मकराकृत कुण्डल कानोंमें, शिरपर किरीट, मुकुट, पीताम्बर आदि की मनमोहनी पहिरन, श्रीवत्सचिह्न वक्षस्स्थलपर और आप लक्ष्मीजी वामभाग में वैसीही शोभा से विराजमान चरणसेवा में और विष्वक्सेन आदि पार्षद कैंकर्य में तत्पर ॥

कथा अक्रूर की ॥

अक्रूरजी को शास्त्रोंने वन्दननिष्ठा के उपासकों में लिखा है यदुवंशियों में सुफलकके पवित्र पुत्र थे यद्यपि उनके रहने का संयोग महाकुसंग अर्थात् कंस के राजकाज में था परन्तु वे भगवच्चरणों में विश्वास दृढ़ रखते थे इसहेतु वह कुसंग कुछ हानि नहीं करसक्ता था बरु उन कुसंगियों को अक्रूरजी का चरण श्री व आयुर्बलका कारण था जब कंसने श्री व्रजचन्द्र महाराज के लेआने के हेतु अक्रूरजी को भेजा तो अतिआनन्द से तनमें न समाये इस आशा से कि इस बहाने से उन चरणकमलों को देखूंगा कि जो शिव और ब्रह्मादिक के स्वामी और नायक हैं और उस चन्द्रमुख को देखकर मेरी आंखें शीतल और सफल होंगी कि जिसके हेतु सब व्रजसुन्दरी चकोर सी होकर अनूपरूप सुधा के पान से तृप्त नहीं होतीं और जब दण्डवत् करूंगा तो उन हस्तकमलों से मुझको उठाकर हृदय से लगावेंगे कि जिनकी छाया कल्पवृक्ष के सदृश सदा भक्तों के शिरपर रही है ऐसे मनोरथ करतेहुये जब श्रीवृन्दावन के निकट पहुँचे तो व्रजभूषण महाराज के चरणकमलों के चिह्न को पहिचानकर प्रेम व स्नेह के आनन्द से अत्यन्त बेसुधि होगये और उन चिह्नों को अपना स्वामी व इष्टदेव जानकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया उसी प्रेम और उमंग में भरेहुये जहां जहां चरणचिह्न देखे तहां तहां दण्डवत् की और प्रेम के मद में छकेहुये श्रीनन्दजी के घर पहुँचे श्रीभक्तवत्सल महाराज ने उनके हृदय की प्रीति पहिचानकर उनकी चाहना पूर्ण करी और अति भाव से बलदेवजी सहित उनसे मिले जब प्रभात को नन्दजी महाराज और बाल गोपालों समेत चलकर श्रीयमुनाजी पर पहुँचे तो अक्रूरजी को प्रेमवश यह संदेह हुआ कि श्रीकृष्ण महाराज और बलदेवजी परम सुकुमार और शोभायमान बालक हैं मैं बड़ी मूर्खता करताहूं कि निर्दय व महाबलवान् मल्लों के झुण्ड में कंस की सभा में लेजाता हूं श्रीज्ञानराय महाराज को यह संदेह दूर करना उचित मालूम हुआ और जब अक्रूरजी स्नान करनेलगे तो यह चरित्र देखा कि कई बेर भगवत् को

बलदेवजी और सब समाजसहित यमुना में और बाहर रथपर देखा और फिर यह देखा कि आप भगवत् शेषशय्यापर श्यामसुन्दर स्वरूप किरीट मुकुट मकराकृत कुण्डल व सब आभूषण सब अङ्गन में कौस्तुभमणि और पीताम्बर पहिने हुये शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथों में लिये विराजमान हैं ब्रह्मा, शिव, यम, काल, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि भय व त्रासयुक्त चारोंओर खड़े स्तुति करते हैं और वह देखा जो कबहीं न सुनाथा अक्रूरजी का संदेह तुरन्त दूर होगया और यमुनाजी से बाहर आकर अतिप्रेम से दण्डवत् किया और मथुरा को चले। कंस के वध होने पीछे आप भगवत् ने उनके घर चरण ले जायके और भक्ति का वर देकर कुलपरिवार के समेत कृतार्थ करदिया जब भगवत् द्वारका को पधारे तो यादवों को अक्रूरजी के प्रताप और भक्ति के न जानने के कारण से वे विश्वासी और शत्रुता होगई और स्यमन्तकमणि के वृत्तान्त में भगवत् की आज्ञानुसार अक्रूरजी काशी को चलेगये उसी घड़ी द्वारका में ऐसा उपद्रव उठा और दुर्भिक्ष पड़ा कि सब दीन होगये और जब अक्रूरजी आये तब सब उपद्रव शान्त हुआ एक और भक्ति का प्रताप विचारने व लिखने के योग्य है कि स्यमन्तकमणि ऐसा था कि आठभार सोना नित्य आपसे आप जहां रहे तहां जमा होजाय और दरिद्रता आदि कोई उपद्रव तहां निकट नहीं आता परन्तु दोष भी उसमें ऐसा था कि जहां रहा तिसकी हानि को किया अर्थात् पहले सत्राजित मारागया जब उसका भाई लेकर भागगया तो वह भी मरा जब जाम्बवान् के पास गया तो वहां भी यद्यपि भक्त होने के कारण से जाम्बवान् से बहुत उपद्रव न करसका तौ भी जाम्बवान् को पराजय प्राप्तहुई तब आप भगवत् के पास गया तो भगवत् से बलदेवजी को संदेह उत्पन्न होगया जब अक्रूरजी के पास गया तो उसका सब दोष दूर होगया और पूर्णफल मङ्गल हुआ ऐसे चरित्रों से भगवत् अपनी भक्ति का प्रताप दिखाते हैं नहीं तो सब कोई जानता है कि भगवत् एक निमिष में कोटिन ब्रह्माण्ड प्रकट करके फिर नाश करता है तिसको गुण दोष से क्या प्रयोजन ॥

कथा विंध्यावली की ॥

विंध्यावली राजाबलि की पटरानी परमभक्त और पतिव्रता हुई जिस घड़ी राजाबलि से वामनजी ने तीन डग धरती की याचना करी और शुक्र

जी ने समझाया कि ये विष्णु नारायण हैं उस घड़ी यह रानी निर्भर प्रेम में मग्न होगई और अपने और राजा के भाग्य की बड़ाई करती हुई लोटा का जल लेकर बारबार राजा से कहनेलगी कि संकल्प करो करो और कारण कहने का यह था कि ऐसा न हो कहीं शुक्रजी के कहने से राजा का मन दान से फिरजाय संकल्प होनेके पीछे जब भगवत् ने दो डग से दोनोंलोक नापलिये तो तीसरे डग के हेतु राजा को बांधा रानी को उस घड़ी राजा के बँधने का शोच व दुःख तनक न हुआ बरु यह आनन्द हुआ कि राजा बड़ा भाग्यवान् है कि उसको भगवत् के चरणों और हाथों का स्पर्श हुआ और फिर भगवत् से विनय करनेलगी कि हे नाथ ! हे कृपासिन्धो ! आपने दया व करुणा जो कुछ इस राजा पर करी सो किसप्रकार वर्णन होसके कि एक राज्य व धन के अभिमानी को आप निज पधार के दर्शन दिया और कुलपरिवार समेत पवित्र कर दिया पीछे रानी ने विचारा कि राजा का राज्य व धनभगवत् भेंट होकर सफल होगया परन्तु मुझको और राजा को देह अभिमान बाकी है सो यह भी जो भगवत् अर्पण होजावे तो आगे परके देहके होनेका बखेड़ा मिटजावे इसहेतु जब राजा ने अपने शरीर के नाप लेने वास्ते कहा तो रानी ने भी विनय किया कि महाराज मेरा अङ्ग शास्त्र वचन के अनु. सार आधा अङ्ग राजा का है सो राजा का व मेरा शरीर एक डग के बदले में नाप लीजिये भगवत् ने जब यह प्रेम रानी का आत्मनिवेदन में देखा और राजा के दृढ़ विश्वास पर निगाह को किया तो उस कृपा को किया कि जिसका वर्णन नहीं होसक्ता कि उसका थोड़ासा वृत्तान्त राजाबलि की कथा में लिखागया कि वह कृपा भगवत् की रानी की परम भक्ति और आत्मनिवेदन के कारण से हुई ॥

कथा विभीषण की ॥

विभीषणजी विश्वश्रवा के बेटे पुलस्ति के पोते ऐसे परमभक्त हुये कि शास्त्रों में परम भागवत लिखे गये और प्रभातही उनके नाम लेने से मङ्गल व कुशल होता है बाल्य अवस्थाही से भगवच्चरणों में प्रीति रही जब अपने भाई रावण व कुम्भकर्ण के साथ तप किया तो वरदान के समय ब्रह्मा और शिवजी से भगवद्भक्ति को मांगा जिनका चरण लङ्का में रावणादि राक्षसों की सम्पत्ति व आयुर्बल का कारण था सो रावण को जब विभीषणजी ने त्याग किया तबहीं तुरन्त लङ्कापर विध्वंस आन

पहुँची और रावण आदि सब राक्षस मृत्यु के ग्रास हुये। सूक्ष्म वृत्तान्त यह है कि जब रघुनन्दन महाराज की सेना समुद्र के किनारे पर पहुँची तो रावण ने अपने सब मन्त्रियों से मन्त्र पूछा, विभीषणजी ने जो धर्म और नीति के ज्ञाता थे कहा कि कुशल तो इसी में है कि सीताजी को भगवत् के समर्पण करो और विनय और प्रार्थना सहित चरण गहो व संधि करो नहीं तो विग्रह बढ़ने से लङ्काकी और तुम्हारी और सब राक्षसों की कुशल नहीं है। रावण को यह मन्त्र अच्छा न लगा और क्रोध करके राजसभा में एकलात मारी और कहा कि जिसकी वर्ग व पक्ष तू करता है उसीके पास जा। विभीषणजी ने फिरभी साधुताकी रीति से उसके कल्याण की शिक्षा करी परन्तु जब सब प्रकार भगवत् से विमुख निश्चय करलिया तब उसका त्याग करके भगवच्चरणों के शरण में चले राह में यह मनोरथ करते आते थे कि आज मैं उन चरणकमलों को दण्डवत् करूंगा कि जो शिव और ब्रह्मादिक के भी इष्ट देव हैं और उसरूप अनूप को देखूंगा कि जिसको योगीजन समाधि लगाकर ध्यान करते हैं जब समुद्र के इसपार आये तो श्रीरघुनन्दन स्वामी को समाचार पहुँचे विनय निवेदन होने पर आनेकी आज्ञा दी सुग्रीव ने विनय किया कि शत्रु का भाई है न जानें उसके मनमें क्या है? अच्छा यह है कि बांधि लियाजाय रघुनन्दन स्वामी ने हँसके कहा यद्यपि तुमने राजनीति की बात कही परन्तु मेरा प्रण शरणागत के भय को दूरकरने का है जो कोई दोनोंलोक के सबपापों में फँसा है और भयभीत होकर मेरे शरण आकर एक बेर यह कहता है कि मैं तुम्हारा हूं उसी घड़ी दोनों लोककी भयसे निर्भय करदेताहूं तो जो शरण आया है और बांधा जाय तो मेरे प्रण में भङ्ग होगा और जो कपट करके आया है तो तौभी कुछ चिन्ता नहीं कि लक्ष्मणजी एकक्षण में सारे संसार के राक्षसों का संहार कर सक्तेहैं सो हर प्रकार से उसका आना उचित है यह सुनकर हनुमान् व अङ्गद व जाम्बवन्त आदि दौड़े और बड़ी रीति व मर्याद से लेआये विभीषणजी ने दूरसेही धनुषबाणधारी के शोभायमान मुख की शोभा देखकरके दोनों लोक के दुःख व पीड़ा को बिदा किया और साष्टाङ्ग दण्डवत् करके अतिदीनता से पुकारकर यह शब्द कहा कि, हे शरणागतवत्सल! शरण हूं। शरणपाल महाराज उस शब्द के सुनतेही उठे और छाती से लगा लिया और वार्तालाप होनेपर यद्यपि भगवद्दर्शन प्राप्त

होनेसे विभीषणजी को कुछ कामना संसारके विषय की नहीं रही परन्तु दर्शन करने के आगे जो कुछ चाहना उनके मन में रही उसका पूर्णकारण भगवत् ने निश्चय समझा इसहेतु वह राज्य लङ्का का कि जिसको रावण ने हजारों बार अपने मस्तक को भेंट कर करके शिवजी से पाया था उसी घड़ी विभीषण को प्रसन्न होकर देदिया और समुद्र का जल मँगाकर राज्यतिलक करदिया रावण के वध होने पीछे जब विभीषणजी राज्य लङ्का का करनेलगे तो वही लङ्का जो पहले पाप और अपराधों से भरी हुई थी सो धर्म और भक्तिका रूप होगई विभीषणजी को रामनाम में इतना विश्वास था कि थोड़ासा वृत्तान्त उसका यह है कि एक जहाज किसी सौदागर का समुद्र में चलने से रुकगया जहाज के मालिकने अपने मन्त्रियों के कहने से एक आदमी को समुद्रकी भेंट करके समुद्र में डालदिया वह विचारा डूबता उतराता बहता लङ्का के किनारे जालगा वहांके लोग विभीषणजी के पास उसको लेगये कि विभीषणजी इस विश्वाससे कि ऐसेही आकार और स्वरूप मेरे स्वामी के हैं उसको भगवद्रूप जाना और प्रेमसे सेवा पूजा करके सिंहासन पर बैठाला बड़ी मर्याद से रक्खा वह आदमी राक्षसों के सङ्गसे डरकर नित्य बिदा मांगे तब विभीषणजी ने उसको बहुत रत्न देकर बिदा किया और समुद्र से पार होने के वास्ते उसके भाल में रामनाम लिखदिया वह मनुष्य उसी रामनाम की नौका पर समुद्र में ऐसे सुख से चला कि जहाज में भी ऐसा सुख न था संयोगवश उसी जहाजके निकट पहुँचा और जहाजवालों ने चढ़ालिया उसने सब वृत्तान्त और भक्ति विभीषणजी की और रामनाम की महिमा को जहाजवालों से वर्णन किया वे लोग सब विश्वासयुक्त हुये और उस नाम को जपकर कृतार्थ हो गये निश्चय करके यह नाम मङ्गल रघुनन्दन स्वामी का वह है कि जिसके प्रभाव से शिला समुद्र पै उतरगई पापी और पातकी जितने इस संसारसे उतरे हैं उनकी तो कुछ गिनती ही नहीं और विभीषणजी ने भी यही समझकर उसके भालपर रामनाम लिख दिया कि करोड़ों महापातकी संसार घोरसमुद्रको उतर गये तो एक मनुष्य का छोटा सा समुद्र उतरना क्या बात है॥

कथा गजराज की॥

महाभारत व भागवत और दूसरे पुराणों में कथा विस्तार से लिखी है कि गज व ग्राह दोनों पहले जन्मों में ब्राह्मण भगवद्भक्त थे। ऋषीश्वर

के शापसे एकने शरीर हाथीका दूसरेने शरीर ग्राहका पाया व पहले जन्म की शत्रुतासे इस जन्म में भी संयोग लड़ाई का पहुँचा इसप्रकार कि एक दिन वह गजराज पानी पीने के वास्ते गण्डकी नदी में जहां वह ग्राह रहता था गया और ग्राह ने गज का पांव पकड़लिया ग्राह अपनी ओर जल में खींचताथा और गज अपनी ओर इसी भांति एकहज़ार वर्षतक दोनों लड़ते रहे अन्त को ग्राह प्रबल पड़ा और गजको नदी में लेचला सूंड़-मात्र थोड़ा सा डूबने को बाक़ी था कि गज ने भगवत्‌की शरण ली अर्थात् एक कमल नदी में से तोड़कर अपनी सूंड़ में लेकर भगवत् भेंट किया और पुकारा कि हे हरे! मैं तुम्हारी शरणहूं, अहो शरणागतवत्सल, दीन-दुःखभञ्जन, महाराज! दुःख से भरीहुई टेर सुनतेही विकल होकर गरुड़ पर सवार चक्र फिराते हुये वैकुण्ठ से दौड़े और शीघ्र पहुँचने के हेतु ऐसी विकलता हुई कि जो गरुड़ का वेग मन के बराबर है उसको भी बल-हीन समझकर छोड़दिया और पियादे पाँयन धाये गज की सूंड़ ज्यों की त्यों बाहर थी कि आनपहुँचे और ग्राह के मुँहपर चक्र मारा कि मुँह उसका कटगया और गज उसकी फांसी से छूटा॥ एक शंका यह है कि भगवत् सर्वत्र व्यापक हैं सो क्या कारण कि वैकुण्ठ से अवतार धारण करके आये उसी जगह से क्यों न प्रकट हुये सो हेतु यह है कि उस समय गजने वैकुण्ठनाथ का ध्यान मन में करके पुकार किया था इसी कारण से रीति के अनुसार भक्त की चाहना के अनुकूल वैकुण्ठ से आये और दूसरा यह कि यह चरित्र अपनी अधिक विकलता का कि अपने शरणागत के छुड़ाने के वास्ते दूसरे भक्तों के भाव बढ़ाने के निमित्त वि-ख्यात करना उचित समझा इसहेतु वैकुण्ठ से आये भगवत् के शीघ्र पहुँचने के वर्णन में हज़ारों श्लोक व कवित्त कविलोगों ने रचना किये हैं उनमें से दोचार का भाव सूक्ष्म करके यह है॥ हाइ न मिटन पाइ आये हरि आतुर हुये॥ अर्थात् पुकार की झनक न मिटी थी तबतक विकल हुये आय पहुँचे॥ दूसरा-रा-कह्यो कदनमाहिं मा कह्यो मगन में॥ अर्थात् गज ने रामपुकारा तो ऐसी शीघ्रता से आये व रक्षाकरी कि-रा-शब्द तो पीड़ा व रोते में मुख से निकला और-मा-शब्द आनन्द में मुख से निकला॥ तीसरा पानी में प्रकट्यो कैधों बानी में गयन्द के॥ अर्थ खुला है॥ चौथा आयो चढ़ि वाहीके मनोरथ महारथी॥ अर्थात् उसीकी चाहना पर चढ़कर आये ऐसी लाघवता करी॥ पीछे गज ने भगवत् की स्तुतिकरी कि गजेन्द्र-

मोक्ष स्तोत्र में लिखा है कि जो कोई उसका पाठ करता है भगवद्धाम को जाता है भगवत् ने प्रसन्न होकर अपना परमपद गजराज को दिया और भगवद्दर्शन व चक्र के स्पर्श होने से ग्राह को भी परमपद मिला ॥

कथा ध्रुवजी की।

ध्रुवजीकी कथा बहुतसे पुराणों में लिखी है और सबलोग जानते हैं इसहेतु थोड़ीसी मैं लिखताहूं जन्म उनका राजा उत्तानपाद व रानी सुनीति से हुआ एकदिन राजा ने दूसरी रानी का बेटा उत्तम नामी को गोद में बैठाया था ध्रुवजी ने भी गोद में बैठनेकी इच्छा की सुरुचि रानी जो दूसरी थी तिसने कहा कि तू जो मेरे उदर से जन्मलेता तो राजा की गोद में बैठने योग्य होता यह कहकर बैठने न दिया। ध्रुवजी ने लज्जा व हीनताई से उसी घड़ी भगवत् शरण ली कि सिवाय भगवत् शरणागत के दूसरा शरण दिखलाई न पड़ा अपनी माता से आज्ञा लेकर भगवद्भजन करने घरसे चले राह में नारदजी ने समझाया न फिरे तब द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश करदिया। ध्रुवजी मथुरा में आये मन्त्र जप करके भगवत् को प्रसन्न किया सो शरणागतवत्सल दीनबन्धु महाराज आये अपना हस्तकमल ध्रुवजी के माथेपर रखकर भक्ति वरदान देकर कहा कि छत्तीसहज़ार वर्ष इस पृथ्वी का राज्य करके फिर अटललोक का राज्य करोगे। अब तुम अपने घरजाव ध्रुवजी अपने घर को आये पिता उनका नारदजी की आज्ञा व समझाने से ध्रुवजी को आगे जायके बड़ी रीति मर्याद से लेआया और ध्रुवजी को राज्यतिलक देकर आप भगवद्भजन करने वनको चलागया। ध्रुवजी ने छत्तीसहज़ार वर्ष न्याय धर्मपूर्वक राज्य किया और भगवद्धर्म को सारे संसार में फैलाया उत्तम नामी ध्रुवजी का भाई था उसको कुबेर के अनुचरों ने मारडाला। ध्रुवजी कुबेर पर चढ़ गये एकलाख अस्सीहज़ार कुबेर के अनुचरों को वध किया। स्वायंभूमनु आये कुबेर का अपराध क्षमा कराया पीछे उसके ध्रुवजी अपने दोनों माता पिता समेत ध्रुवलोक को गये और जब महाप्रलय होगी तब भगवत् के परमपद को जायँगे ॥

कथा जटायु की ॥

सब रामायणों में कथा विस्तार से लिखीहै कि जटायु पक्षियों का राजा परमभक्त भगवत्का हुआ और अपने शरीर को भी भगवत् पर निछावर कर दिया। जब रघुनन्दनमहाराज दण्डक वन में आये और पञ्चवटी

से सीताजी को रावण चुराकर लेगया तो सीताजी भगवत् विरहसे व्याकुल होकर महाविलाप करती जाती थीं जटायु ने जानकीजी को पहिंचान कर रावण के प्रताप व बल का कुछ भय न किया अधीर होकर दौड़ा व अपनी चोंच व पंजों से रावण को मारकर गिरादिया । सीता महारानी को छुड़ालिया और एकजगह बैठाल कर रावणसे लड़ने को सन्नद्ध हुआ ऐसा लड़ा कि जिस रावण ने सारे देवता व राजाओं को विना परिश्रम जीतलिया था उसको बेसुधि मृतक की नाईं कर दिया । रावण चकित व क्रोधवान् हुआ तरवार से पंख काटदिये यद्यपि ऐसी दशा में भी बल व पराक्रम बहुत किया परन्तु जब कि पक्षी विना पक्षके मृतक के सदृश हैं वह परिश्रम कुछ काम न आया रावण दो चार कारीघाव देकर चलागया। सीताजीको ढूँढ़तेहुये रघुनन्दन महाराज और लक्ष्मणजी जटायु के पास पहुँचे उसी घड़ीतक प्राण जटायु का शरीर में था रघुनन्दन महाराज के दर्शन करके सब दुःख, सुख, शत्रु, मित्र, साधु, असाधु मनसे दूरहुये सिवाय रूप अनूप भगवत् के भीतर बाहर कुछ न रहा पीछे रघुनन्दन महाराज से सब वृत्तान्त कहकर प्राणों की विदामांगी । श्रीकरुणाकर कृतज्ञ ने जटायु को अपनी गोद में रखकर शरीर पर हस्तकमल फेरा उस समय के चरित्र में एक सवैया तुलसी के पिता का कहाहुआ लिखता हूँ ॥

सवैया ॥

दीनमलीन अधीन है अङ्ग विहङ्ग पर्यो छिति छिन्न दुखारी ।
राघव दीनदयाल कृपाल को देखि दुखी करुणा भइ भारी ॥
गीधको गोद में राखि कृपानिधि नैन सरोजन में भरि बारी ।
बारहिबार सुधारत पंख जटायु कि धूरि जटान सों झारी ॥ १ ॥

और शोक के दुःख से विकल होकर आंखों में आंसू भर कहा कि तनका छोड़ना क्या प्रयोजन अटल और निश्चय कर सक्ता हूँ । जटायु ने कहा कि जिसका नाम करोड़ों जन्म के पातकों को दूर करके परम आनन्द को पहुँचा देता है सो पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन मुझको अपनी गोद में लेकर मेरे शिरपर हाथ फेरता है और प्यार करता है और मैं उस स्वरूप को कि जो शिवजी के भी ध्यान में कबहीं बहुत कष्ट से आता है तिसको देखकर आनन्द में मग्न हूं तो इस घड़ी से सिवाय और कौन सी घड़ी अच्छी होगी कि इस अनित्य शरीर को छोड़ूंगा यह कहकर भगवच्चरणों का चिन्तन करता हुआ तनको छोड़कर स्वरूप

मुक्ति को प्राप्त हुआ भगवत् की स्तुति करके परम शोभायमान विमान पर आरूढ़ होकर परमधाम को गया । भगवत् ने उसके शरीर की दाहादिक क्रिया को आप किया और जिस प्रकार दशरथमहाराज को तिलाञ्जलि दी थी उसी प्रकार जटायु को भी दी धन्य है इस कृपालुता व दीनवत्सलता को भगवत् की कि कैसे २ तुच्छ किस पदवी को पहुँचाते हैं कि जहां मन व बुद्धि का प्रवेश नहीं ॥

कथा मामूं भानजे की ॥

मामूं भानजे दोनों ऐसे परमभक्त हुये कि भगवत् को अपनी सेवा से प्रसन्न किया और प्राणतक भगवत् की निछावर करदिया पहले जब भगवत् शरण हुये तो घरबार सब त्याग करके तीर्थयात्रा करते हुये फिरने लगे पण्डित और ज्ञानवान् थे यात्रा करते में किसी वन में देखा कि परम शोभायमान भगवत् की मूर्ति है परन्तु मन्दिर नहीं सो मन्दिर बनवाने का विचार करके द्रव्य के अन्वेषण में फिरनेलगे कहीं कुछ न मिला किसी नगर में सेवड़ों के देवता की प्रतिमा पारस पाषाण की सुनी प्रसन्न हुये कि अब मन्दिर मनमाना बन जायगा परन्तु शङ्का यह हुई कि सरावगियों के चौताले में जाना मना है कैसे जावें फिर यह विचारा और निश्चय किया कि यह शरीर भगवत् शरण है भगवत् जिस बात में प्रसन्न हों सो बात करनी चाहिये और भगवत् शरणागतों ने जो नरकादिक का भय किया तो शरणागती की दृढ़ता नहीं नितान्त सेवड़ों के मन्दिर में जाकर चेले होगये और ऐसी सेवा उस मन्दिर और सेवड़ों की करी कि सबने बुद्धिहीनता करके सब कारबार मन्दिर का उनको सौंप दिया जब देखा कि सब कारबार अपने वश में आगया तो मूर्ति के लेजाने की चिन्ता की परन्तु राह निकालने की न मिली द्वार संकीर्ण था कारीगर ने जो मन्दिर बनाया था उनसे युक्तिही युक्ति भेद लिया कि गुम्मज के ऊपर जो कलश है पेच लगाकर दृढ़ किया गया है और वह पेच खुल सक्ता है और वहीं मूर्ति के आने जाने की राह है रात को दोनों ने आपस में मन्त्रणा करके पहले उस कलश को उतारा फिर भानजा उस राह से निकलकर गुम्मज पर चढ़ गया मामूं ने मन्दिर के भीतर बैठकर उस मूर्ति को अच्छे प्रकार दृढ़ रस्सी से बांधा व भानजे ने ऊपर खींच लिया जब मूर्ति के मिलने से मन स्थिर होगया तो मामूं ने भी उसी राह से निकलने को चाहा परन्तु

अति हर्ष होने के कारण से शरीर ऐसा मोटा होगया कि उस राह से न निकल सका उसीमें फँसगया कितनेही उपाय किये परन्तु कुछ वस न चला । मामूं ने अपने भानजे से कहा कि जो मेरा शरीर यहां रहा तो कुछ चिन्ता नहीं व न कोई बात दुःख की है मनोरथ जो था सो सिद्ध हो गया उचित यह है कि तुम जाकर भगवत्मन्दिर जैसी कांक्षा है बन-वाओ मेरा शिर काट कर कहीं डालदेव कि मेरे कानों में साधुभेष की निन्दा के शब्द सेवड़ों के मुख से पड़ने न पावें क्योंकि साधुभेष वास्तव करके भगवत्भेष है । भानजे ने शोक से दुःखित होकर मामूं के कहने के अनुसार किया अर्थात् उसका शिर काटलिया और मूर्ति को लेकर चला यद्यपि ज्ञान व भगवत्शरणागती की दृढ़ता से कुछ शोच अपने मामूं के मरजाने से नहीं ले आया परन्तु सत्सङ्ग को समझ कर व परम भागवत के विछुड़ने से ऐसा शोकसमुद्र में पड़ा कि किसी भांति चित्त को चैन नहीं सो कबहीं शोक में दुःखित कबहीं मूर्ति के मिलने के आ-नन्द में मग्न होता जहां मन्दिर बनवाने का विचार किया था तहां प-हुँचा दूर से देखा कि कोई मन्दिर के बनवाने की तैयारी में तत्पर है अपने मनमें जाना कि कोई दूसरे मनुष्यने मन्दिर के बनवाने का कार लगाया है दुःखित हुये जब और समीप पहुँचे तो देखा कि मामूं खड़ा है और मन्दिर बनवाने के काम में तत्पर है अति आनन्द से दौड़कर दोनों मामूं भानजे मिले और मन्दिर रङ्गनाथस्वामी का ऐसी शोभा व तैयारी से बनवाया कि वैसा दूसरा संसार में नहीं ॥

कथा राघवानन्दकी ॥

राघवानन्दजी रामानुजस्वामी की संप्रदाय में परमभक्त और हरि-भक्तों को आनन्द के देनेवाले हुये जिस देशमें रहते थे उसको काशीजी के सदृश करादिया चारो वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चारो आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यस्त को भगव-द्भक्ति में दृढ़ करादिया रामानन्दजी को मृत्यु के मुख से निकालकर साढ़े सातसौ वर्ष की आयुर्बल को देदिया कि रामानन्दजी की कथा में वृत्तान्त लिखागया है ऐसे ऐसे प्रभाव उनके बहुत हैं महिमा उनकी कौन लिख सक्ता है ॥

कथा जगन्नाथ की ॥

जगन्नाथ बेटे रामदासजी के पारीक ब्राह्मण कान्हड़ाकुल में धर्म और

भक्ति के मर्याद हुये श्रीरामानुज संप्रदाय के अनुकूल भगवत्शरण होकर मनको लगाया और उपासना के शास्त्र अच्छे प्रकार निज अभिप्राय उपासना का भलीप्रकार सब समझा सार और असार को ऐसा न्यारा २ करदिया कि जिस प्रकार हंस दूध और पानी को अलग २ कर देता है मुनीश्वरों की भांति आचार व धर्म का आचरण करते थे और अनन्य शरणागती व दश प्रकार की भक्ति के करनेवाले दृढ़ हुये पुरुषोत्तम अपने गुरुके प्रताप से दोनों अङ्ग में कवच जिसको बख़्तर कहते हैं पहिना था इसके अर्थ कई भांति के हैं प्रथम यह कि ये महाराज पुरोहित राजा के थे और शूरता वीरता में विख्यात सो एक जो शरीर है उसमें बख़्तर पहिना करते थे जैसा सिपाही लोग पहिनते हैं और दूसरा अङ्ग जो मन है तिसमें सहिष्णुता व क्षमा का बख़्तर धारण था कि किसीकी कठोर वाणीरूपी शस्त्र न लगे दूसरा यह कि दोनों अङ्ग जो दोनों भुजा तिसपर शंख और चक्र के चिह्न धारण करके कलियुग के पाप जो तीर व तरवार के सदृश हैं उनसेशरीर की रक्षा किया तीसरा यह कि प्रकट अङ्ग में भगवत्सेवा का ऐसा कवच पहिना था कि संसारी कार्य जो तीर व तरवारसे भी अतितीक्ष्ण हैं कदापि नहीं काम करसक्के थे और हृदय में भगवत् चिन्तवनरूपी कवच पहिनाथा कि जिस करके दूसरी चिन्तारूपी शस्त्र स्पर्श नहीं करसका था ॥

कथा लक्ष्मणभट्ट की ॥

लक्ष्मणभट्टजी रामानुज संप्रदाय में परमभक्त शरणागती मार्ग के हुये भक्ति का आचरण मुनीश्वरों के अनुसार करते थे और भाव व भगवद्धर्म और भगवद्भक्तों की सेवा और दशप्रकार की भक्ति में विख्यात हुये सन्तोष व क्षमा व प्रेमकी मूर्ति थे और मन कबहीं स्वप्नमें भी संसारी कार्य के सिद्ध के अर्थ नहीं सावधान होता था परमधर्म जो शरणागति है उसका प्रतिपालन करके सब लोगोंको उपदेश किया और श्रीमद्भागवतको विचारकर सार और असार को अलग २ करदिया भगवत्कीर्तनमें अद्वैत और भजन सुमिरण में वैसे ही थे ॥

निष्ठा बाईसवीं ॥

तिसमें महिमा सख्याभाव व वर्णन कथा पांचभक्त उपासकों की ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की मुकुटरेखा को दण्डवत् करके ध्रुव अवतार को दण्डवत् प्रणाम करता हूं कि बिठ्ठौर में अवतार धार

करके भगवद्भक्ति और शरणागती के स्वरूप को जगत् में प्रकट किया जानेरहो कि कोई २ पुराणों में ध्रुव अवतार के स्थान नारदजी का अवतार लिखा है सखाभाव के उपासकों का यह सिद्धान्त है कि ईश्वर और जीव दोनों परस्पर सखा अर्थात् मित्र हैं और ऐसी मित्रता व स्नेह दृढ़ है कि ईश्वर को जीव विना ईश्वरता न हो और न जीव ईश्वर विना होसक्ता है अर्थात् जो जीव न हो तो ईश्वर को कोई नहीं जानता और जो केवल जीव हो और ईश्वर न हो यह वात होनेकी नहीं क्योंकि विना ईश्वर जीव नहीं होसक्ता जो कदाचित् यह वाद कोई करै कि मित्रता दोनों की आपस में बराबर के हों तब होती है सो कहां तो जीव कि हज़ारों प्रकार की पीड़ा जन्म मरण व पाप पुण्य में फँसा है और कहां वह ईश्वर जिसका स्वरूप मन व बुद्धि में न आयसके और वेद जिसको नेति नेति कहते हैं और माया के गुणों से अलग, नित्य, निरीह, निर्विकार, अच्युत, अनन्त, पूर्णब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानन्दघन है इस विवाद का उत्तर प्रकट दृष्टान्त से समझ लेना चाहिये कि पहले तो मित्रता के व्यवहार में कुल, ढंग, मर्याद, बुद्धि, चतुराई, सुन्दरताई, वस्त्र की पहिरन व आभूषण की सजावट इत्यादि सव सामां सव तुल्य व बरावर होना योग्य होता है तिसके पीछे अपना २ भाग्य है कि एक वादशाह हो जाय और दूसरा दरिद्र सो ऐसाही वृत्तान्त जीव और ईश्वर की मित्रता का है अर्थात् जैसा ईश्वर निर्विकार प्रकाशवान् ज्ञानानन्द स्वरूप है वैसाही दो एक बातों के न्यून विशेष करके जीव है कुछ भेद नहीं दोनों के बीच में माया के स्वरूप का आवरण जंजाल हुआ सो जीव तो अणु अर्थात् छोटा व अल्पज्ञ था इस कारण करके वह तो माया को देखकर मोहित होगया और उसके जाल में फँसगया और ईश्वर कि जो अनन्त व सर्वज्ञ था वह माया से ज्यों का त्यों अलग व परे रहा यद्यपि ईश्वर ने अपने मित्र के छूटने के हेतु वेद व शास्त्र के द्वारा उस मित्र को अपना और उसका स्वरूप बतलाया और अपने नाम को प्रकट किया और सैकड़ों हज़ारों उपाय जैसे मंत्र जप, यज्ञ, दान, दया, कर्म, ज्ञान, वैराग्य व नवधाभक्ति इत्यादि की प्रवृत्ति करी परन्तु वह जीव उस माया के मोहमें ऐसा फँसा कि कुछ न समझा और अपना और अपने मित्र का स्वरूप सम्पूर्ण भूल गया सो जब अपने और ईश्वर और माया के स्वरूप को जानकर छूटने के निमित्त उपाय

करै तब फिर अपने मित्रका मिलन और परम आनन्द को प्राप्त होय अब बड़ी शंका यह उत्पन्न हुई कि जब ईश्वर और जीव मित्र हैं और वह ईश्वर कि जिसकी माया में यह जीव फँसा हुआ है उसके छुटाने को चाहता है तो फिर कौन हेतु यह जीव माया में बँधा है आप ईश्वर क्यों नहीं छुड़ालेता सो यह शंका नई नहीं है वही बात है कि जो शास्त्रों में ईश्वरकी दयालुता व कृपालुता जीवपर वर्णन करी है और संसारके सृष्टि की परम्परा के बने रहने के हेतु कर्मकी विशेषता प्रकट करके मुक्ति का होना ज्ञानसे अर्थात् पाप पुण्य ये दोनों कर्मों के दूर होनेपर वर्णन किया है सो जो उत्तर इस शंका के समाधान के हेतु शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार वहां निश्चय हुआ है सोई यहां समझलेना चाहिये और जो सखाभावकी रीति के उत्तर की चाहना होय तो यहहै कि संसारी व पारलौकिक सब कार्यों की रीति व पद्धतिका जाननेवाला ईश्वर से अधिक दूसरा कोई नहीं इसी प्रकार मित्रताकी रीति भी भगवत्से अच्छा दूसरा कोई नहीं जानता और मित्रता की रीतिमें दोनों मित्र बराबर आचरण करते हैं जो एक मित्रने शिष्टाचार किया तो उसके बदले में दूसरा मित्र उससे अच्छा शिष्टाचार करदेता है और विवाहादि में जो एक मित्र ने सौ रुपया उठाये तो दूसरा मित्र भी उसके विवाहादिमें उतनाही उठाता है सो इस बराबरी की रीति के अनुसार जो ईश्वर विना सम्मुख भये जीव की मायाको दूर करके मिलनेके वास्ते आवै तो रीति और मूल मित्रता की विपरीत होजाय जो यह कहिये कि जीव के सम्मुख होनेपर प्रबन्ध था आप ईश्वरने अपने मित्रके मिलनेके हेतु अगुताई क्यों न की कि मित्रता में मित्र का अपने घर आना अथवा आप उसके घर जाना दोनों बात बराबर हैं सो जानेरहो कि भगवत्की ओरसे अगुताई व हठ अच्छे प्रकारसे हुई और कदापि कोई रीति में चूक न हुई अर्थात् अपना और उस मित्रका स्वरूप वर्णन करके और वेद व शास्त्रों को सन्देशा पहुँचानेवाले के भांति भेजकर मिलने के वास्ते सन्देशा भेजा और अपना नाम और लक्षण प्रकट किया तिसके पीछे मिलने का उपाय बतलाया और अबतक सर्वकाल सब जगह मिलने के वास्ते सम्मुख व प्राप्त है तो ईश्वरकी ओर से कौन चूक है सब चूक इस जीवकी है कि कदापि उससे मिलना नहीं चाहता व न सम्मुख होताहै यहां जो कोई सन्देह करै कि बात तो मायासे छुड़ाने की पड़ी है तुम मिलने की बात

लिखते हो प्रश्न और उत्तर और सो सन्देह कुछ नहीं है मायासे छूटने का तात्पर्य ईश्वर से मिलनेका है और ईश्वरसे मिलनेका अभिप्राय माया से छूटनेकाहै बात एकही है केवल बात के कहनेका हेरफेरहै ॥ अब यह निश्चय कैसे होयकि जीव और ईश्वर पुराने मित्रहैं सो वेद श्रुतिमें स्पष्ट यही बात लिखी है और श्रीमद्भागवत के चौथेस्कंध पुरञ्जनकी कथा में विस्तारसे निर्णय करके लिखी है कि जीव और ईश्वर दोनों आपस में मित्रहैं इसके सिवाय जहां नवधाभक्तिका वेद और शास्त्रोंने वर्णन किया है तो वहां सखाभावकी भी भक्ति लिखीहै तो जो जीव और ईश्वर आपस में मित्र नहीं होते तो सखाभाव की भक्ति और उसकी रीति वेद और शास्त्रमें क्यों लिखीजाती और सखाभाव के आराधनकी रीति दूसरी निष्ठाओंकी रीतिके अनुसार है केवल इतना भेद है कि दूसरी निष्ठाओंमें स्वामी इत्यादि जानिके सेवापूजा करतेहैं और इस निष्ठा में मित्र व बराबर समझकर सेवा होती है और भगवत्‌ने चौथेस्कंध पुरञ्जन उपाख्यान में कहाहै कि दूसरी भक्ति तो गुरुके उपदेशसे मिलतीहै और सखाभाव व आत्मनिवेदन को मैं आप उपदेश व शिक्षा करताहूं इस भांति से सखाभावमें जिस घड़ी भक्तका मन लीन होताहै उस घड़ी आप भगवत् उसके हृदय में प्रवेश व प्रकाश करताहै यह रस जिस किसीने पान किया तुरंत मतवारा व बेसुधि होगया सब सखाभाववालों के मनका लाभ भगवच्चरित्रों में अपने मनकी रुचिके अनुसार है जैसे कि बदरिकाश्रम में नर-नारायण सखाहैं उनकी प्रीति तप और ज्ञान के चरित्रों में है ॥ अर्जुन और श्रीकृष्णमहाराज की प्रीति महाराजों के सदृश और व्रजगोपकुमारों की खेल और हँसी गोपकुमारों के सदृश और अयोध्याके राजकुमारों की प्रीति भगवच्चरित्रों में महाराजकुमारों की हँसी खेलके सदृश हुई और इसीप्रकार सबके भाव अलग अलगहैं जिसओर जिस किसी की चाह है उसी भांति की तैयारी से सेवा और भगवत् आराधन किया करता है व आराधन सेवा पूजा जो नव अथवा सात बेर नित्य न होसके तो तीनबेर से कम न हो स्तोत्रपाठ और नाम व मन्त्रजप अलग रहा व हरघड़ी मनसे ध्यान उस ओर लगारहना नित्यनियम की सेवा पूजा से अलग बात है कि सब सेवापूजा व उपासना उसीके हेतुहै यह उचित व परम सिद्धान्त है इसकाल में उपासना इस सखाभाव की माधुर्य व शृङ्गार के विचार से विशेष करके प्रवृत्त है कै रामउपासक हों अथवा

कृष्णउपासक और सिद्धान्तविचार से भी जितनी प्रीति की दृढ़ता व वृद्धि माधुर्यभाव में शीघ्र होती है और दूसरे किसी भाव में इतनी शीघ्र नहीं होती है थोड़े दिन बीते होंगे कि अयोध्याजी में रामसखे महाराज और उनके चेले प्रेमसखेजी सखाभाव की ध्वजा और भक्ति के देश के राजा हुये रामसखेजी का एकग्रन्थ इस भाव का है उसमें माधुर्य को मुख्य करके रक्खा है और व्रज में जो निर्णय इस बात की करी गई तो वहां विशेष करके प्राधान्यता माधुर्य की सर्वावस्था में उचित व योग्य ठहरी कि व्रज में चरित्र भगवत् के सब शृङ्गार और माधुर्य के स्वरूपही हैं अनन्यभाव भगवत् में और यह बात कि उपासक को भूलकर भी अपने उद्धार व मुक्ति के वास्ते दूसरे देवता का चिन्तवन न होवे जैसे अनन्यता सब निष्ठाओं में सिद्धान्त है इसीप्रकार इस निष्ठा में ज्यों की त्यों है महिमा इस निष्ठा और उपासकों की वर्णन नहीं हो सकी क्योंकि इस निष्ठा और भगवत् व इस निष्ठा के उपासकों में बार बराबर भी भेद नहीं सब एक हैं॥ भगवत्उपासक लोगों ने इस सखानिष्ठा को पांचों रसों में एक रस वर्णन किया सो उस रीति के अनुसार भगवत् श्रीकृष्ण अथवा श्रीराम के विष्णु चतुराई में व चोज व कटाक्ष लेके बोलने व शीघ्र समझने व हाव भाव व झटिति उत्तर देने में प्रवीण व प्रगल्भ व नवयौवन परम शोभायमान कि जिसके मुख के सम्मुख सब शोभा व सुन्दरता धूलि हैं वस्त्र व आभूषण जैसा जहां चाहिये सब अङ्गन में पहिने हुये विषयालम्बन हैं अर्जुन, सुदामा व श्रीदामा आदि व्रजग्वाल व दूसरे भक्त सखाभाव के आश्रयालम्बन हैं व सामग्री शृङ्गार, माधुर्य, हँसी ठट्ठा व आपस में खेलना, एक साथ भोजन करना, एक संग शयन करना, एक साथ बैठना, एक साथ रहना, एकही साथ उपवन पुष्पवाटिका आदि में विहार को जाना, आपस में शृङ्गार व छवि की सजावट करना ऐसे ऐसे हजारों भाव सामग्री प्रथम व द्वितीय अर्थात् विभाव अनुभाव की सामां है व सामां तीसरी अर्थात् आठों सात्त्विक सब इस रस में अपनी प्रवृत्ति करते हैं और यह सख्य रस शृङ्गारसे मिश्रित हैं इस हेतु तेंतीसों प्रकार के व्यभिचारी अर्थात् सामां चौथी इस रसमें वर्तमान होते हैं स्थायीभाव इस रसका वह है कि उस परम मनोहर मित्र के स्नेह में इतनी दृढ़ता व पकता होय कि कदापि तनक स्वप्न व ध्यान में मन की लगन दूसरी ओर न जाय और

अचल चित्त की वृत्ति उस मित्र मनोहर के प्रेम में मग्न रहे ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे दीनवत्सल ! हे प्रणतार्त्तिभञ्जन, महाराज ! मैंने सुना है कि आपके न्याय व रक्षा से कोई बली किसी दुर्बल को सता नहीं सक्ता और दीन व दुखी न्याय पावते हैं सो कृपासिन्धु महाराज मेरे वास्ते न जाने वह न्याय व कृपा कहां गई कि यह महामोह दिन राति भांति २ के उपद्रव करता है व अनेक जन्मों से दुःखी व दीन कररक्खा है सो आपकी कृपा व न्याय में कुछ संदेह नहीं परन्तु मेरी अभाग्य दशा है कि उस पापी के पंजे से छूटने नहीं पावता अब आपके श्रीद्वार पर दीन होकर पुकारता हूं कि एक बेर किसी प्रकार उसके उपद्रव व उपाधि से छुड़ाकर मेरे मन को अपने रूप अनूप के चिन्तवन में लगा दीजिये कि जो सब वेद और शास्त्रोंका सार और एकान्त निज भक्तों का जीवन आधार है ॥

स० कर कञ्जन मञ्जु बनी पहुँची धनुहीं शर पङ्कज पानि लिये ।
लरिका सँग डोलत खेलत हैं सरयू तट चौहट हार हिये ॥
तुलसी अस बालकसों नहिं नेह कहा जप योग समाधि किये ।
नर सो खर शूकर श्वान समान कहो जगमें फल कौन जिये ॥

मूल ॥

बिनगुन मालवारे चलन मरालवारे, अधरन लालवारे शोभामदभारे हैं ।
तिलकन भालवारे जलजतमालवारे, मूरतिविशालवारे दृग अनियारे हैं ॥
पीतपटवारे लटवारे नटवारे पूषी, कारीलटवारे तूतो मोहनी मनडारे हैं ।
चोर पर वारे चितचोर पर वारे सुन, मोरपरवारे तेरी मोर पर वारे हैं ॥

तिलक ॥

विना धागेकी माला पहिरे हुये अभिप्राय यह कि वह सखी जिसके यहां रात को रहे सो जो माला पहिने थी उसका साट छातीपर शोभायमान है ॥ हंसकी गति का तात्पर्य यह है कि रात के जगने से मतवारी चाल है ॥ अधरन पद बहु वचन अर्थात् दोनों होठ कई बेरके पान खाने और सखी के लाल होठों की लाली भी लगजाने से अत्यन्त लाल हो रहे हैं अथवा अधरके आगे जो नकार है सो लाली को नहीं कहता है अर्थात् यह कि सखी ने अधरामृत पान किया है इस कारण से होठों की लाली जाती रही और शोभा व छबि चढ़के है हेतु यह कि बहुत अच्छी भांति शृङ्गार करके ठटिकर गये थे ॥ तिलक पद के आगे नकार सो एक अर्थ तो बहुवचन सूचित करता है अर्थात् सखी के

भालके तिलकके चिह्न होने से बहुत से तिलक होगये हैं दूसरा अर्थ नकार का नहीं रहने तिलक के है अर्थात् मिलने व आलिङ्गन गाढ़ करने से भालपर तिलक न रहा दलमल गया जलज जो कमल व तमाल जो वृक्ष सुन्दर होताहै तैसे सुकुमार व श्याम व शोभायमान अथवा कमल दिन में शोभित होताहै परन्तु तुमने यह आश्चर्य किया कि तमाल अर्थात् सघन अँधेरी में कमल की भांति आप प्रफुल्लित हुये और दूसरे को प्रफुल्लित किया मूरति विशालवाले कहने का यह हेतु है कि तुम ऐसेही कोमल अङ्ग और छोटे से स्वरूपवाले नहीं युवालोगों का काम करते हो और अनियारे आंखों से यह अभिप्राय है कि रात की उनींदी हैं तिस करके हृदय में चुभती हैं अथवा काजर की तीक्ष्णरेखा से बरबस कलेजे को बेधती हैं ॥ पीताम्बरवाला कहने से छवि सँवार कर जाने का है और लटवाला कहने से हेतु यह है कि केश कहां गुँधवाये और नटवाला कहने से अभिप्राय स्फूर्ति व चपलता के जताने का है और यमुना किनारेवाला कहने से तात्पर्य व कटाक्ष यह है कि रात को वनके कुञ्ज में रहे और मनका मोहलेनेवाला कहने का यह हेतु है कि वह ऐसी दशा देनेवाली सखी है कि तुमको भी मोहित करलिया ॥ चोर अर्थात् माखन चोरीका स्वभाव तो पहलेही से था परन्तु अब चित्त के चुरानेका भी स्वभाव वैसाही हुआ सुनते मोरपङ्ख के मुकुटवारे तेरी मोर अर्थात् त्रिभङ्गी लचकनपर मैं बलिहारी होगई अर्थात् तेरा मन दूसरी ओर लगै तो लगै परन्तु हमको सिवाय तेरे दूसरा प्राण अधार नहीं ॥ यद्यपि यह कवित्त धीराखण्डिता का है परन्तु इसके सब पद प्रेम और रस और व्रजराज महाराज के ध्यान और शोभा और माधुर्य को प्रकाशित करते हैं इस हेतु इसका लिखना उचित जानकर लिखा ॥

कथा अर्जुन की ॥

अर्जुन महाराज के सखाभाव का वर्णन कौन से होसक्ता है जिनके भावना और भक्ति के वश होकर वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जो मन व बुद्धि में नहीं आयसक्ता सो रथवान् उनका हुआ यद्यपि अर्जुन महाराज फुफेरे भाई श्रीकृष्णस्वामीके थे परन्तु सखाभाव मुख्य था बैठना उठना, खाना पीना, लीला विहार, हँसना बोलना व मिलना मित्रवत् था युधिष्ठिर व भीमसेन आदि के सदृश भाईचारे की रीति न थी जो २ भगवत्‌ने कृपा सहायता की विस्तार करके सो कथा महाभारत में लिखी

है उसका वर्णन इस कथामें प्रयोजन नहीं समझा क्योंकि मित्रता में जिस किसीसे जो कुछ भलाई आपस में होय सब योग्य है। एक वृत्तान्त निष्कपटता का लिखा जाता है। अर्जुन महाराज जब सुभद्राजी की शोभा व सुन्दरता को देखकर हज़ार जीव से आसक्त होगये तब सच्ची मिताई के विचार से प्रसन्नता व उदासी का कुछ शोच न किया अपनी प्रीति व विकलता का वृत्तान्त सत्य २ श्रीकृष्णस्वामी से कह दिया व श्रीमहाराज की सुभद्राजी यद्यपि बहिन थी परन्तु रुचि रखना व मनोरथ पूर्ण करना अपने मित्र परमप्रेमी का इतना चित्तमें बसा कि जगत् के उपहास्य व निन्दा पर कुछ दृष्टि न करके यह गुप्तमन्त्र अर्जुनजी को दिया कि जो विवाह कर देने वास्ते वसुदेवजी व बलदेवजी से कहता हूं तो न जानें अङ्गीकार करें कि न करें सो तुम संन्यासी का वेष धारण करके द्वारका में जाय बल से अपने लेआओ पीछे वसुदेवजी व बलदेवजी को समझाकर प्रसन्न करलिया जायगा सो अर्जुनने वैसाही किया और जब बलदेवजी ने अर्जुनके मारडालनेकी तैयारी को किया तो आप श्रीकृष्ण महाराज ने समझाकर उनका क्रोध शान्त किया॥ एकबेर अर्जुन महाराज सुभद्राजी से आनन्द व विलास में रत रहे श्रीकृष्णस्वामी ने उन को बैठककी जगह नहीं देखा तो विकल होकर लज्जा छोड़के सुभद्राजी के महलमें चले गये मित्रता की हँसी ठट्ठे में लीन हुये और अतिशय करके स्नेह को दृढ़ किया॥ भगवत् की कृपालुता व दीनवत्सलता पर विचार करना चाहिये कि आप मित्र शत्रु, सुख दुःख व पुण्य पाप इत्यादि माया के प्रपञ्च से जहांतक भीतर बाहर की आंखें पहुँचें न्यारा व निर्लेप हैं सो ऐसा होकर जो ऐसे चरित्र किये तो भक्तों को बोध और दूसरे लोगों को भक्तिके हेतु शिक्षा देताहै कि जो कोई जिस भाव से मेरा भजन करता है मैं उसी भाव से प्रकट होकर भक्त की भावना पूर्ण करता हूं कि गीताजी में इस बात का प्रण दृढ़ किया है॥

कथा सुदामा की॥

कथा सुदामाजी की भागवत व विष्णुपुराणमें विस्तार करके लिखी है और भाषा में कविलोगोंने सुदामाचरित्र कई एक बनाये हैं इस हेतु थोड़े में लिखता हूं सान्दीपन गुरुके पास जब श्रीकृष्णस्वामीने वेद और दूसरी विद्या सब पढ़ी उस समय की मिताई सुदामाजीसे थी जब पढ़चुके तब विश्लेष हुआ सुदामाजी दरिद्री ऐसे थे कि न घर में कुछ अन्नदाना

न तनपर वस्त्र था। एकदिन उनकी स्त्री सुशीला ने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जिसका मीत लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण महाराज हो सो ऐसा दीन व दरिद्री होवे सो अब तुम उनके पास जाव। सुदामाजीने बहुत संदेह व नाहीं नाहीं किया परन्तु सुशीला ने ऐसे उत्तर दिये कि हरि के समीप जाने का निश्चय किया। सुशीला थोड़ेसे चावल सांठी के कहींसे मांगिलाई और सुदामाजी को देके कहा कि भगवत् की भेंट करना। सुदामाजी भगवत् दर्शन को प्रेम में भरेहुये चले रात को किसी गांव में टिके वहां भगवत् को अपने मित्र से मिलने का प्रेम उमँगा और रातोंरात सुदामाजी को द्वारका के समीप बुलालिया। प्रभात को सुदामाजी जब थोड़ी दूर चले तो एक नगर दिखाई पड़ा और जो नाम पूछा तो द्वारका सुनकर हर्षित हुये स्नान पूजा करके पूछते पूछते श्रीकृष्णमहाराज की राजधानी पर आये द्वारपालों ने दण्डवत् करके श्रीकृष्णस्वामी को निवेदन किया कि एक ब्राह्मण छोटी धोती फटी चादर पहिने नङ्गे पांव दरिद्री सा आपका स्थान पूछता है और सुदामानाम है सुनतेही उस नाम के बेसुधि दौड़े पहले चरण पकड़ छाती से लगालिया और बहुत दिनपर जो दोनों मित्र मिले थे इसहेतु बड़ी देरतक ऐसे मिलेरहे कि मानों एकतन होगये पीछे भगवत् हाथ में हाथ लेकर रङ्गमहल में लाये और दिव्य पलँग पर बैठालकर कुशल प्रश्नादिक पूछने लगे इतने में रुक्मिणीजी पूजा की सामा ले आईं और आप भगवत् और रुक्मिणीजी चरण धोने लगे उस समय का एक सवैया नरोत्तम कवि का कहा लिखता हूं॥

सवैया॥

ऐसे बेहाल बेवाँयन सों भये कण्टक जाल गुँधे पग जोये।
हाय सखा दुख पाये महा तुम आये इतै न किते दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करिकै करुणामय रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जलसों पग धोये॥

पायँधोये पीछे भगवत् ने अपने पीताम्बार सों पोंछकर जैसी पूजाकी विधि है पूजा की तब पूछा कि हमारी भाभीने कुछ हमारे वास्ते भी दिया है और तुम्हारा स्वभाव और भांति का है ऐसा न हो तुमहीं पचाय जाव और हम देखतेही रहें। सुदामाजी जो सांठी के चावल कुक्षि में थे छिपानेलगे भगवत्ने जाना कि कुछ सौगात बगलमें है इधर तो भगवत् उसके लेनेके दांव घात में हुये और उधर सुदामाजी लज्जा के हेतु

छिपानेके विचार में इतनेमें कपड़ा बहुत जीर्ण था फटगया और चावल धरती में गिरगये । भगवत् ने उनमें से एक मूठी लेकर तुरन्त और जल्दी से मुँह में डालली और दूसरी मूठी के वास्ते भी वैसाही चतुराई थी कि रुक्मिणीजी ने हाथ पकड़लिया सो कोई २ भक्त व तिलककार लोगों ने हाथ पकड़ लेने का हेतु यह लिखा है कि एक मूठी चावलसे तो दोनों लोक की सम्पत्ति सुदामा को देदी दूसरी मूठी में कौन वस्तु देवेंगे और किसीने यह लिखा कि रुक्मिणीजी को भय हुआ कि मैं लक्ष्मी का स्वरूप हूं ऐसा न हो कि भगवत् दूसरी मूठी के बदले में हमको देदेवें और किसी का यह कहाहै कि रुक्मिणीजी को भगवत् की सुकुमारता, स्वल्प आहार, कोमल, मधुर पदार्थों के भोजनका स्वभाव शोचकर यह चिन्ता हुई कि कच्चे चावलों के भोजन से कुछ अवगुण न करें परन्तु निज अभिप्राय रुक्मिणीजी का हाथ पकड़लेने से यह है कि महाराज यह सौग़ात तुम्हारे मित्रके घरकी है ऐसा मीठा पदार्थ अकेले आपही आप खायलेना उचित नहीं इसमें हमारा भी भाग है और जो यह कहोगे कि हमारे मित्र की लाई हुई सौग़ात में तेरा क्या वखरा है तो आपके मित्र भूखे वंगाली व उपासमस्त होते हैं उनको किसी सौग़ात के जुहावने की क्या सामर्थ्य है यह सौग़ात मेरी जेठानी के व्यवसाय से तुमको जुरी है निश्चय करके भागी हूं इस चरित्रके होने पीछे सेवक लोगों ने जेवनार के तैयार होने का संदेश निवेदन किया दोनों मित्रोंने एकसंग भोजनकिया इसीप्रकार सातदिन सुख आनन्द में वीते पीछे सुदामाजी ने वहुत कहा तव विदा हुये भगवत् दूरतक पहुँचाने के हेतुगये और विदा के समय सुदामा को कुछ न दिया । सुदामाजी अपने मनमें कहनेलगे कि आखिर तो ग्वालियों के घर पले हो क्या हुआ कि अव राज्य व वड़ा ऐश्वर्य मिला जो हमको कुछ देते तो क्या ख़ज़ाने का टोटा थाया कि कम होजाता था और वहुत अच्छा हुआ कि कुछ न दिया अव उस स्त्री से कि जिसने वलात्कार करके भेजा था कहूंगा कि धनको अच्छीप्रकार से यत्न करके धर कि वहुत ख़ज़ाना मिला है फिर मनमें कहने लगे कि जानें भगवत् ने इस विचार से कुछ न दिया कि धनके पावने से भगवद्भजन में वाधा न पड़ जावे ऐसेही ऐसे शोचते विचारते अपने गांवके समीप पहुँचे देखा कि द्वारका से भी सहस्रगुण अच्छी सोने व मणिगणों की महलात खड़ी हैं ऐसे कि कभी न देखी थीं न सुनी थीं लोगों से पूछा कि किसका नगर है और

क्या नाम है उत्तर दिया कि आपही का नगरहै और सुदामापुर नाम है यही कहते सुनते थे कि तबतक दासदासी दौड़े हाथों हाथ सुदामाजी को महलों में लेगये सुशीला आकर चरणों में पड़ी और सुदामाजी इस भगवत्कृपा को देखकर जो वचन भगवत् को व्यंग वितर्क कहे थे उनका शोच व पश्चात्ताप करनेलगे ऐश्वर्य के सुखमें कबहीं भजन और आराधन न भूले बरु अधिक करके तत्पर हुये भगवत् की ईश्वरता कि अच्युत अनन्त व सच्चिदानन्दघन परमात्मा पूर्णब्रह्म हैं विचार करके फिर इस दयालुता, कृपालुता, भक्तवत्सलता और मित्रभाव के निबाहने की भाव पढ़ सुनकर जो निर्भर आनन्द में मग्न नहीं होते उस ने व्यर्थ जन्म लेकर अपने माताके यौवन का नाश किया और जिसकी आंखों से प्रेम का जल नहीं उमँगता तो वे आंखों से अन्धी अच्छी ॥

कथा व्रजके ग्वालवालों की ॥

श्रीनन्दनन्दन महाराज के असंख्य ग्वालबाल सखा हैं उनमें–श्रीदामा, मधु, मङ्गल, सुबल, सुबाहु, भोज, अर्जुन, मण्डल ये आठ सखा परममित्र और हरघड़ी पास रहनेवाले व दूसरे सब सखाओं के नायक हैं जिस प्रकार श्रीराधिकाजी के साथ–ललिता, विशाखा, चित्रा, चंपकलता आदि आठ सखी हैं सिवाय असंख्य सखाओं के–रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुवर्त्त, रसाल, विशाल, प्रेमकन्द, मकरन्द, आनन्द, चन्द्रहास्य, पयद, बकुल, रसदान, शारदाबुद्धि इतने सखा यद्यपि सखाभाव रखते हैं परन्तु सेवकाई व आज्ञा पालने में भी क्या गृह में क्या वन में हरघड़ी तत्पर व हाज़िर रहते हैं। सखाभाववालों के जितने भाव अलग २ हैं उन सबमें मुख्यता व्रज के ग्वालबाल सखाओं को है किसहेतु कि उनको उस पदवी से न्यून व अधिक नहीं होती भगवत् के नित्यविहार में प्राप्त रहते हैं और सब गोलोकनिवासी हैं जब भगवत् का अवतार होताहै तब वह भी साथ आते हैं जो कोई भगवत् की महिमा अथवा भगवच्चरित्रों को लिखसके तो उनकी महिमा भी लिख सकेगा नहीं तो जैसे महिमा भगवत् की अपार है तैसेही उनकी है और उनके चरित्र और परमपवित्र कथा का यह माहात्म्य है कि जो कोई धोखे से भी उनके खेल व लीला व हँसी ठट्ठा अशङ्कता बालचरित्रों को सुनता है अथवा गान करता है तो भगवत् बलात्कार से अपनी भक्ति उसको देकर उसके आधीन होजाते हैं सखाभाव के चरित्र इतने

अगणित व अपार हैं कि शेष व शारदा भी वर्णन नहीं करसके सो एक दो चरित्र सूक्ष्म करके इस ग्रन्थ के पवित्र होने के हेतु लिखता हूँ जब वन में गऊ चराने को जाया करतेथे तो दो यूथ होकर खेलतेथे एक दिन बलदेवजी का यूथ तो जीतगया और लालजी का यूथ हारा तब हारे हुये सखाओं ने एक २-सखा जीते हुये को अपनी चढ़ी चढ़ाया श्रीदामाजी के बखरे में नन्दनन्दनजी आये व जहां पहुँचानेका प्रबन्ध था सो जगह दूर थी थोड़ी दूर चलकर सुकुमारता व सुन्दरता के कारण से नन्दनन्दन महाराज को पसीना आय गया और थकगये तो पहले श्रीदामाकी बहुत खुशामद व लल्लोपत्तो करी कि आधी दूरतक ले-जाऊँगा जब न माना तो धमकाया डरपाया कि अच्छा कलह को मैं पकड़ अच्छी प्रकार शिष्टाचारी करूँगा जब उसपर भी श्रीदामाजी ने कुछ न माना तो मचलाई करनेलगे परन्तु श्रीदामाजी ऐसे उस्ताद मिले कि एक डगभी माफ़ न किया जहांतक का प्रबन्धथा वहांही तक लेगये जब श्रीनन्दनन्दन महाराज कंसके बुलानेपर मथुराजी में गये तो मुष्टिक व चाणूरआदि मल्लोंको और कुबलयापीड़ मतवारे हाथीको विना परिश्रम एकक्षणमें मारडाला और उसी अखाड़े में जब व्रजग्वालवालों के साथ कुश्ती होनेलगी तो कभी नन्दनन्दन महाराज उनको धरतीपर गिराय देते थे और कभी ग्वालबाल आपको ऐसे पटकते थे कि शीघ्र उठने की सामर्थ्य नहीं रहती थी धन्यहै यह भक्तवत्सलता और प्रीतिकी पूर्णता। जब सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्रपर द्वारका से भगवत् आये तो सब व्रजवासी भी आये थे बहुत दिन पर आपस में मिलाप हुआ और लोग तो अपने अपने स्नेह व भाव के अनुसार मिले और भगवत् सखा उस अपने रङ्ग में रँगेहुये अपने दाँव और पेंच के लेनेको तैयार हुये और वह रङ्ग भगवत् गुणानन्त निर्विकार को भी ऐसा चढ़ा और प्रेम की नदी में ऐसा मग्न करदिया कि प्रेम का जल आंखों से बहकर चरणोंतक पहुँचा ॥

कथा गोविन्द स्वामी की ॥

गोविन्दस्वामी महाराज के सखाभाव का चरित्र भगवद्भक्तों को तो परमआनन्द का देनेवाला है और जो कोई भक्त नहीं उनको भक्ति का देनेवाला है गोविन्दस्वामी उस भावकी आराधना से थोड़ेही दिन में उस पदवी को पहुँचे कि गोवर्धननाथजी के साथ सदा खेल व क्रीड़ा में प्राप्त रहकर अपने परममित्र के रूप अनूप में मग्न रहते थे एकदिन गुल्ली

डण्डा खेल रहे थे जब दांव गोविन्दस्वामी का आया तो नटनागर महाराज भागकर मन्दिरमें आ घुसे गोविन्दस्वामी पीछे दौड़ आये और गुल्ली भगवत्मूर्ति पर मारी उधर से भगवत्के हिमायती अर्थात् पुजारीलोग मन्दिरके दौड़े और अत्यन्तढिठाई गोविन्दस्वामी की समझकर धक्के देकर मन्दिर से निकालदिया व भगवत् से विमुख जाना। गोविन्दस्वामी तड़ाग के किनारे राहपर आकर बैठरहे व गालियां देकर कहनेलगे कि अब तो हिमायत में जाबैठा भला कभी तो निकलेगा ऐसी शिष्टाचारी करूंगा कि जानेगा। नन्दकिशोर महाराजको चिन्ताहुई कि अब यह बेरङ्ग मेरे तलाश में है और मुझसे बिन वनविहार और खेलके रहा नहीं जाता जब बाहर जाऊंगा न जानें क्या करेगा सो इस शोच में कुछ न खाया और गोसाईं विट्ठलनाथजी जो परमभक्त थे उनसे कहा कि गोविन्दस्वामी के डरसे हमसे कुछ भोजन नहीं कियाजाता जो हमको कुछ भोजन कराना होय तो गोविन्दस्वामी को प्रसन्न करो यद्यपि दांव गोविन्दस्वामी का था परन्तु सुधि भूलिकै मैं मन्दिर में चलाआया अब वह मुझको वृथा गाली देता है और जब बाहर जाऊंगा न जानैं क्या करेगा सो जब उसका क्रोध शान्त होगा तब मुझको कुछ खाना पीना सुहायगा। बिट्ठलनाथजी दौड़े गये विनय प्रार्थना करके बल से गोविन्दस्वामी को मनाकर लाये और मन्दिर में भगवत् के पास भेजादिया वहां जब दोनों का आपस में बनाव होगया और दोनों यार गले लगकर मिले तब नन्दलाल महाराज ने भोग लगाया। एकबेर गोविन्दस्वामी बाह्य शङ्का को वन में गये थे जब बैठे तब आप लालजी महाराज जाकर दूर खड़े होकर आकके फल मारनेलगे और इसीप्रकार की दूसरी कुछ चपलाई को किया गोविन्दस्वामी ने उसी दशा में उठकर ऐसे आकके फल मारे कि ब्रजमोहन महाराज ने घबराकर भागने को चाहा संयोगवश गोविन्दस्वामी की माता उनको ढूँढ़ती आय गईं तब गोविन्दस्वामी धोती बांधकर घर गये और झगड़ा छूटगया एक बेर भगवत् मन्दिर को भोगके निमित्त थाल जाता था व गोविन्दस्वामी जो कि राह में प्रसाद की आशा करके बैठरहे थे पुजारी से मांगा कि पहले हमको देव तिसके पीछे नन्दनन्दन के वास्ते थाल लेगया। पुजारी ने न माना गोविन्दस्वामी उसके हाथसे थाल छीनकर सब सामग्री थाल की खायगये और चलखड़े हुये। पुजारी रिस करता हुआ गोसाईंजी के पास आया और कहा कि मैं पूजा सेवा से बाज आया गोविन्दस्वामी

भोग का थाल लूट लेगया गोविन्दस्वामी को बुलाकर पूछा कि यह क्यों ढिठाई है गोविन्दस्वामी ने उत्तर दिया कि तुम अपने लाला को अच्छे २ भोजन कराकर फिरने व खेलने व लड़ने को तैयार कर देते हो और पहले ठटिवटकर वन को चलाजाता है मुझको जो भोजन पीछे मिलता है तो उसको ढूंढ़ताहुआ सारेवन में श्रमित भ्रमता फिरता हूं तो मैं उस से पहले क्यों न तैयार हो रहूं। गोसाईंजी ने हँसकर प्रताप और भक्ति और सखाभाव गोविन्दस्वामी का पुजारी से वर्णन किया और आगेपर को ढिठादिया कि उनकी प्रसन्नता से भगवत् की प्रसन्नता जानगये गोविन्दस्वामी के पद बनाये हुये भगवत् में ऐसे शीघ्र मनको लगादेते हैं कि मानों मूलमन्त्र हैं और मालूम रहे कि कीर्तननिष्ठा में नन्ददास जी की कथा में जो अष्टछाप के नाम लिखे हैं तो उसमें दो नाम की भूल है व तुलसीशब्दार्थप्रकाश ग्रन्थ गोपालसिंह का बनाया है उसमें अष्टछाप के नाम ठीक २ लिखे हैं सो यह हैं॥ सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द, कुम्भनदास ये चारों भक्त वल्लभाचार्यके चेले थे। चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, नन्ददास, गोविन्दस्वामी ये चारों भक्त वल्लभाचार्य के पुत्र बिट्ठलनाथजी तिनके चेले थे अर्थात् ये आठोंभक्त वल्लभकुल के प्रभाव से भगवत् पदको प्राप्त हुये और उनके ग्रन्थ गोकुल व वल्लभाचार्यजी की संप्रदाय में मिलते हैं सो ये गोविन्दस्वामी भी अष्टछाप में हैं॥

कथा गङ्गग्वाल की॥

गङ्गग्वाल व्रजनाथजी के चेले सखाभाव के परमभक्त और किसी सखा का अवतार हुये जिन्होंने व्रज के चरित्र और सब सखी और भगवत् सखाओं का वर्णन विस्तार करके किया। नन्दनन्दन महाराज के साथ खेल का जो परम आनन्द उसके रस में हरघड़ी मग्न रहते थे व्रज की भूमि प्राणसे भी प्यारी थी और भगवच्चरित्रों में अत्यन्त प्रीति रखते थे और भगवत् कीर्तन अर्थात् गान्धर्वविद्या जो गानविद्या है तिस में हुये कि उससमय में उनके ऐसा गानेवाला दूसरा कोई न था। एक बेर बादशाह श्रीवृन्दावन आया और उनके गाने की बड़ाई सुनकर बुलाया बलसे आये वल्लभाचार्य भी उस घड़ी साथमें थे दोपहर का समय था तिससे सारङ्ग गाया कि बादशाह और जो कोई वहांथा सब मोहित हो गये और सब भगवत् के प्रेम में मग्न होगये। बादशाह यह प्रताप देखकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और अत्यन्त अधीनता से यह विनती

की कि मेरे साथ चलो। उत्तर दिया कि व्रजभूमि को छोड़कर नहीं जा-सक्ता जब बहुत कहा सुनी दोनों ओर से हुई तो बादशाह क़ैद करके दिल्ली में ले आया व नज़रबन्द में रक्खा। राजा हरिदास जाति तोवर राजपूत ने यह वृत्तान्त सुना सिफ़ारश करके छुड़ा दिया तुरन्त व्रज में आये और अपने परम मित्र को देखकर परम आनन्द को प्राप्त हुये। ग्वालसंज्ञा सखाभाव करके विख्यात थी॥

निष्ठा तेईसवीं॥

जिसमें महिमा शृङ्गार व माधुर्य की व कथा आठ भक्तों की है॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की त्रिकोणरेखा और श्रीकृष्ण अवतार को दण्डवत् करता हूं कि वह अवतार गोकुल में धारण करके ऐसे चरित्र पवित्र जगत् में विख्यात व प्रवर्तमान किये कि जिनके प्र-भाव से ब्रह्मानन्द व परमपद की प्राप्ति महापापी व अपराधियों को भी अतिसुलभ होगई। शृङ्गाररस को उज्ज्वल और शुक्लरस भी कहते हैं यह वह रस है कि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सब जिसके सेवक व दास हैं दूसरे धर्मों की तो क्या गिनती है इस शृङ्गाररस का वह गुण है कि एक क्षण में निविड़ प्रेम उत्पन्न करके फ़क़ीर को बादशाह व बादशाह को फ़क़ीर करदेता है इस रस अर्थात् सुन्दरता के बराबर मोहन गुण न तन्त्र में है न मन्त्र में है व राग इत्यादि तो एक बात हलकी हैं। जितने भक्त पहले हुये और आगे होंगे और अब हैं सो इस रस के अवलम्ब से अपनी मनोवाञ्छित पदवी को पहुँचे और पहुँचेंगे। महिमा इस रस की अपार व अथाह है जो कोई भगवत् की महिमा व चरित्रों का वर्णन करसके तो इस रस की भी महिमा वर्णन करदे। गोपिका एकतो स्त्री फिर गाँवकी रहनेवालीं न कुछ विद्या पढ़ीं न कुछ साधन किया व न कुछ साधक जानती थीं और जाति से भी उत्तम न थीं इस रस के प्रभाव से उस पद को पहुँचीं कि ब्रह्मा जो सब जगत् के पितामह और उत्पन्न करनेवाले ने जिनकी चरणरज को अपने शिर पर धारण किया और जिनके चरित्रों का जहाज़ संसारसमुद्र से पार उतरने को ऐसा प्रवर्तमान हुआ कि कर्म भोगरूपी आंधी का कदापि भय नहीं। शृङ्गार उपासक जो इस रस को मुख्य वर्णन करके कहते हैं कि ब्रह्मानन्द इसी रससे प्राप्त होता है व-चन उसका सत्य व ठीक है क्योंकि जब भगवत् आराधन ज्ञान अथवा भक्ति के द्वारा करके होगा तो कोई झलक सुन्दरता व माधुर्य भगवत् की

उपासक के मन में ऐसी प्रकट होगी कि उसके आनन्द से सब मिठाई व उत्तम पदार्थ तीनोंलोक के तृण के समान समझ पड़ेंगे और बेसुधि व मग्न उस झलक के दर्शन में होजावेगा और जबतक भगवत् की सुन्दरता की झलक मन में न आवेगी तबतक भगवत् की प्राप्ति कदापि नहीं तो इससे निश्चय होचुका कि ब्रह्मानन्द केवल शृङ्गाररस से प्राप्त होता है इसमें एक शङ्का यह उत्पन्न हुई कि जो शृङ्गाररस मुख्य है, तो शास्त्रों में जो दास्य सख्य वात्सल्य इत्यादि कई प्रकार की निष्ठा व भक्ति लिखी हैं उनका लिखना क्या प्रयोजनथा ? केवल शृङ्गारनिष्ठा लिखदेना बहुत था और नव प्रकार भक्ति में शृङ्गार का कहीं नाम भी नहीं है सो जानेरहो कि जितने वेद व पुराण और शास्त्र इत्यादि ग्रन्थ व आज्ञा हैं सब शृ-ङ्गारही रस का वर्णन करते हैं व शृङ्गारही मुख्य है व जो वर्णन जहां भगवत् आराधन का है वह सब शृङ्गारका अर्थ समझना चाहिये क्योंकि सुन्दरता की झलक के विना साक्षात्कार हुये भगवत् की प्राप्ति कदापि २ हो नहीं सक्री और दास्य, सख्य, वात्सल्य इत्यादि जो भक्ति के प्रकार शास्त्रों में लिखे हैं सो भी उसी शृङ्गारही के विस्तार हैं जैसे भक्ति के स्व-रूप के वर्णन में प्रथम भूमिका में लिखा है कि भक्ति एक है व जिस २ रीति से जिस किसीने मन लगाया वही एक प्रकार की भक्ति होगई ॥ इसी प्रकार भगवत् की शोभा व माधुर्य का चिन्तन सब निष्ठा दास इत्यादि में योग्य व निश्चय हुआ है जिस किसीने भगवत् को अपना स्वामी ध्यान करके सुन्दरता व स्वरूप व माधुर्य का चिन्तन उस रीति से किया सो दासनिष्ठा ठहरी और जिस किसीने मित्र जानकर उस रूप का ध्यान किया सो सख्य और जिस किसीने पुत्र जानकर चिन्तन किया सो वात्सल्य इसी प्रकार सेवा और अर्चा व शरणागत इत्यादि को विचार करलेना चाहिये तो वेद और पुराणों के प्रमाण से निश्चय होगया कि भगवत् का शृङ्गार व माधुर्य मुख्य है जो यह कोई कहे कि भगवत् की करुणा, दयालुता व भक्तवत्सलता आदि भी तो जगह २ लिखी है कि तिस कारण से भगवत् में प्रीति होती है सो पहले उत्तर तो यह है कि वह प्रीति जिसका वर्णन करते हो किस वस्तु में होती है जो किसी रूप व झलक में होती है तो उसीका नाम शृङ्गार व माधुर्य है और जो कुछ शोभा व झलक के चिन्तन में नहीं होती है किसी और बात में होती है तो मिथ्या है क्योंकि विना किसी सुन्दरता व

झलक के प्रकाश भये कदापि दृढ़ प्रेम नहीं होसक्ता। दूसरा उत्तर यह है कि जिसप्रकार संसारी प्रीति अर्थात् मनस्वी प्रीति में जिसपर आसक्त हैं तिसकी सुन्दरता का वर्णन करते हैं तो उसके बोलने व चलने व मिलने इत्यादि स्वभाव का भी वर्णन किया करते हैं। इसी प्रकार भगवत् प्रेम के वर्णन में भगवत् के रूप और माधुर्य का वर्णन करना तो मित्र की सुन्दरता के वर्णन के सदृश है और भगवत् की अद्वैतता, कृपालुता, करुणा, भक्तवत्सलता, ईश्वरता व सर्वज्ञता और दूसरे गुण जैसे अच्युत, अनन्त, व्यापक, अन्तर्यामी, पूर्णब्रह्म, परमात्मा व सच्चिदानन्दघन इत्यादिक वर्णन मित्र के स्वभाव के वर्णन के सदृश हैं अब यह शङ्का उत्पन्न हुई कि एक वचन से भक्ति व शृङ्गार एक ही भांति जनाई पड़ते हैं अर्थात् एक जगह तो दास्य, सख्य, वात्सल्य इत्यादि को भक्ति के प्रकार में लिखा और इस शृंगारनिष्ठा के वर्णन में शृंगार के अङ्ग व भेद उन दास्य इत्यादि निष्ठाओं को लिखा जब कि भक्तिदशा प्रेमासक्त की है और शृङ्गार प्रियवल्लभ की सुन्दरता को कहते हैं तो दो दशा भिन्न २ एक क्व होसक्ती हैं सो सत्य है कि दोनों प्रकार अलग २ हैं परन्तु एकसे एक का सम्बन्ध ऐसा है कि एक के विना एक का प्रकाश नहीं होता क्या हेतु कि सुन्दरता विना स्नेह कदापि नहीं होसक्ता और इसी प्रकार प्रेम विना सुन्दरता का गाहक कोई नहीं जैसे कि जगत् न रहा तब भक्त भी नहीं थे उस काल में ईश्वर को कौन जानता था और आगे पर जब प्रलय होजायगी तो तब भगवत् को कौन जानेगा व उसकी सुन्दरता पर कौन आसक्त होगा तो जब कि स्नेह व सुन्दरता ऐसे सम्बन्धी हुये तो अङ्ग सब उनके परस्पर मिश्रित होकर एकके सदृश होयँ तो कौन आश्चर्य व विरुद्ध है सिवाय इसके परिणाम में स्नेह करनेवाला व जिसमें स्नेह हुआ दोनों एक होजाते हैं अर्थात् प्रेम करनेवाला अपनी सब दशा भूलकर सब अङ्ग में अपने प्रियवल्लभ का रूप होजाता है तो इस प्रकार से भी एक लिखने में कुछ शङ्का योग्य नहीं है सिवाय इसके शृंगार व भक्ति दोनों भगवद्रूप हैं कुछ भेद नहीं इस प्रकार से भी शङ्का की समाई नहीं निश्चय करके यह शृंगार रस सब रसों में मुख्यतर है और सत्य करके भगवत् में प्राप्त करदेता है यह रस चार सामां अर्थात् विभाव, अनुभाव, सात्त्विक व व्यभिचारी करके उत्पन्न होता है पहली सामां जो विभाव तिसमें भगवत् सच्चिदानन्दघन, पूर्ण-

ब्रह्म, नवयौवन, सब शोभा व सुन्दरता का सार, श्यामसुन्दर स्वरूप, दिव्यवस्त्र व आभूषणों को सजेहुये कि जिसके सब अङ्गोंपर करोड़ों कामदेव निछावर होते हैं विषयालम्बन हैं और जिस उपासक की भगवत् के सुन्दरता व शृङ्गारपर जैसी प्रीति व चाह होय सो अपनी उपासना के अनुसार भगवत् का ध्यान जैसा कि जगह २ शास्त्रों में वर्णन किया है और इस ग्रन्थमें भी जहां तहां लिखाहुआ है विचारकर लेवे ॥ भगवद्भक्त जो कि उस सुन्दरता व शृंगार के महाआसक्त और ध्यान करनेवाले हैं इस विभाव में आश्रयालम्बन है व दूसरी सामां सब इस शृङ्गाररस की विस्तार करके इस ग्रन्थ के आरम्भ में लिखीगई है दो बार लिखना प्रयोजन नहीं शृङ्गाररस में उपासकलोग दो भेद वर्णन करते हैं एक तो शृङ्गार और दूसरा माधुर्य। शृङ्गार तो उस सुन्दरता और प्रेम से तात्पर्य है कि जो नायक व नायिका के बीच में हो और विना एक ओर नायिका व एक ओर नायक के शृङ्गार नहीं कहा जाता सो उसमें उत्तम पद स्वकीया नायिका अर्थात् व्याही स्त्री और पति के शृङ्गार का है भगवत्भक्तों में यह पदवी लक्ष्मीजी और श्रीजानकी और रुक्मिणीजी पर समाप्तहुई और किसी किसी के वचन से श्रीराधिकाजी भी स्वकीया हैं अब कोई उपासक इस पदवी का न देखा न सुना व दूसरी पदवी शृङ्गार की परकीया नायिका है सो गोपिकाओं पर समाप्त हुआ अब यह भाव किसको होसक्ता है जो कोई किसी गोपिका का अवतार लेवें तो होसक्ता है जैसे कि मीराबाईजी, करमैतीजी, नरसीजी व हरिदासजी इत्यादि लोग हुये और यह भी जानेरहो कि रीति शृङ्गार व प्रीति की इसी पदवी में विशेष बनिआती है अब जो उपासक हैं उनके यह भाव हैं कि कोई तो सख्यता की मुख्यता लिये दासीभाव रखते हैं और कोई को दासीभाव की मुख्यता सख्यता की गौणता है और कोई अपने आपको युगलकी दासी जानते हैं सख्यता से कुछ प्रयोजन नहीं और कोई अपने आपको श्री-प्रियाजीकी दासी जानकर उनकी प्रसन्नता में प्रियतमकी प्रसन्नता मानते हैं और इस अन्त पदवी के निज उपासक हितहरिवंशजी की संप्रदाय-वाले हैं। सब शृङ्गार उपासकों की यह रीति है कि युगल शृङ्गार व विहार में अपने भाव के रूप से सब समय प्राप्त रहते हैं कोई समय अन-प्राप्त व परदे की नहीं और प्रियाप्रियतम के मनकी बात जाननेवाले और संदेश में चतुर और मान के समय मनाने व मिलाने में प्रवीण ऐसे ऐसे

सैकड़ों हज़ारों भाव से सेवा व चिन्तवन करते हैं भाव बहुत बारीक व अतिकठिन है इसका विस्तार करके कहना प्रयोजन नहीं। शृङ्गार की उपासना चारोंयुग से सदा है बहुत ऋषीश्वर और योगीजन श्रीरघुनन्दन महाराजाधिराज का अपाररूप देखकर मोहित व आसक्त होगये और उस रूप व शृङ्गार के पूर्ण सुख व आनन्द की प्राप्ति श्रीमहारानीजीको देखकर मानसी दासीभाव व सख्यता से मन को लगाया॥ माधुर्य का अर्थ यद्यपि मिठाई का है परन्तु तात्पर्य सुन्दरता से है। माधुर्य के उपासकलोग अपने आपको सखीभाव नहीं मानते भगवत् के माधुर्य व सुन्दरता के आसक्त व अनुरक्त होते हैं उनमें कई भेद हैं। एक वह है कि केवल भगवत् माधुर्यके उपासक हैं प्रियाजी के ध्यानसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखते दूसरे वह हैं कि युगलस्वरूप अर्थात् प्रिया प्रियतमका चिन्तवन और ध्यान करतेहैं उनमेंभी एकयूथवाले तो भगवत्की ईश्वरता मुख्य मानते हैं और प्रियाजी को आद्या और सब ब्रह्माण्डों की माता और भगवत् आश्रयाभूत जानतेहैं दूसरे ऐसे हैं कि प्रिया प्रियतम को एक मानते हैं जिस प्रकार जल और तरङ्ग अथवा सांप और उसका कुण्डल कि वास्तव करके एकहै कहनेमात्रको दो कहेजातेहैं व तीसरे ऐसेहैं कि प्रियाजी की परत्व अधिक करते हैं व प्रियतम की न्यून इस तीसरे भाव की बात विस्तारसे आगे लिखी जायगी और माधुर्य के उपासकोंके सेवा पूजा की रीति ऊपरके लिखे भावोंसे सिवाय कई भांतिके दूसरे हैं अर्थात् कोई २ तो युगल स्वरूपकी सेवा पूजाके समय अपने आपको बालक दो चार वर्षका चिन्तन करके सब सेवा पूजा करते हैं और किसीकी यह रीति है कि आ१तो सेवा भगवत्की करते हैं और महारानीजीकी सेवाके निमित्त अपनी माता वै स्त्रीको अथवा भगिनी इत्यादिको अथवा अपने घरकी सब स्त्रियों को महारानीजीकी दासी विचार करलेतेहैं और किसी की यह रीति है कि ब्रह्माणी, भवानी व इन्द्राणी इत्यादि को महारानी जीकी सेवा करनेवाली जानकर भगवत् का सेवा पूजा आप करलेते हैं सिवाय इसके स्वकीया परकीयाभाव अलग रहा सो रामानुज संप्रदाय और राम उपासकों में तो परकीयाभाव कदापि शोभित नहीं होसक्ता स्वकीयाभाव से सेवा आराधन प्रवर्तमान है। श्रीकृष्ण उपासना में विशेष करके परकीयाभाव से आराधन योग्य है और होती है सो उसका यह भेद है कि निम्बार्क संप्रदाय में स्वकीयाभाव से सेवा पूजन

करते हैं और विवाह का होना श्रीकृष्ण व राधिका महारानी का पुराणों के प्रमाण से मानते हैं और विष्णुस्वामी की संप्रदायवाले यद्यपि उपासक केवल बालचरित्र श्रीकृष्णस्वामी के हैं परन्तु राधिकाजी को निम्बार्कसंप्रदाय के प्रमाण के अनुकूल स्वकीयाभाव से श्रीकृष्णस्वामी की परमप्रिया जानते हैं और माध्वसंप्रदाय में परकीयाभाव की रीति है और मनकी रुचि दूसरी बात है व स्मार्त मतवालों में कोई सिद्धान्त रीति का प्रबन्ध नहीं जैसे चरित्रों और भाव पर मन सन्मुख होगया वैसाही मान लेते हैं ॥ शृङ्गार और माधुर्य भाव में जो साज व शृङ्गार प्रिया प्रियतम का ध्यान में अथवा प्रत्यक्ष करना चाहिये और जो प्रिया प्रियतम आप परस्परके मिलने और देखने और दिखलाने और अपने २ सजावट रखने और विहार व आनन्द की सामां अत्यन्त मन से शोधि शोधि व बनावट से तैयारी की उमंग रखते हैं और जो खेल व हँसी व वाग्विलास व प्यार व चाह परस्पर उनमें होते हैं उनका वर्णन अगणित शेष और शारदा से करोड़ों कल्पतक कदापि नहीं होसक्ता और जिन भक्तोंकी उपासना सिद्ध होगई है और वहसामां व समाज मनमें समाय गई है उनको भी सामर्थ्य नहीं कि वर्णन करसकें मनहीं मन में उस आनन्द का अनुभव करते हैं तो मैं मतिमन्द क्या लिखसकूं वे मित्र परमप्रेमी व स्नेही कि जिनका मन आपसकी सुन्दरतापर परस्पर परम आसक्त हो और मिलने की चाह और उमङ्ग में भरेहुये त्रैलोक्य का ऐश्वर्य व सम्पत्ति से जहांतक सामां के लिये व आनन्द व सजावट की जो शास्त्रोंमें सुनते हैं व जो कुछ देखते हैं अथवा जहांतक मन पहुँचे सो सब तैयार करते हो सो सब प्रियाप्रियतमके शृङ्गार, विहार, आनन्द, सुख, शोभा व सुन्दरता की सामां के आगे ऐसे हैं कि जैसे सौकरोड़ सूर्य के सामने एक बालूकी कणहो सो इसहेतु उपासकलोग अपनी चाह व मनकी दौड़ व देखे व सुने के अनुसार जिस प्रकार जितना युगलस्वरूप का ध्यान व आराधन करसकें तितनाही अच्छा है जैसी और जिस प्रकार चिन्तवन करेंगे सोई वाञ्छितपद को पहुँचावेगा और यह भी जाने रहो कि प्रियाप्रियतम परस्पर प्रेमासक्त स्नेहियोंमें शिरोमणिहैं जो चरित्र शृङ्गार व माधुर्य के हृदय की आंखों को दिखाई पड़ें सो सब भगवत् के कियेहुये होंगे नये चरित्र कोई न होंगे सो उस रूप अनूप में जिसप्रकार मन लगे लगाना चाहिये कि परमानन्द, ब्रह्मानन्द, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य

व चारोंपदार्थ आपसे आप प्राप्त होजाते हैं ऊपर वर्णन हुआ है कि कोई २ प्रियाजी की परत्व वर्णन करते हैं और प्रियतमकी किंचित् न्यून सो जाने रहो कि चारों संप्रदाय में ऐसी रीतिको किसी ने प्रकट नहीं किया था अब चार संप्रदायों में एक किसी ने नई शाखा निकाली अर्थात् पहले से रामानुज संप्रदाय में दो मार्ग हैं एक तिङ्गल दूसरे में बड़गल तिङ्गल वे हैं कि जो निज रामानुज स्वामी की रीति के अनुकूल हैं और उनके सिद्धांत में विष्णुनारायण ईश्वर हैं और लक्ष्मीजी जीव और बड़गल वे हैं कि वेदान्ताचारी ने नई रीति चलाई कि विष्णु और लक्ष्मी को बराबर जाना और युगलस्वरूप के आराधन की परिपाटी को प्रवर्त्तमान किया अब थोड़े दिनों से अर्थात् सौ दोसौ वर्ष से वेदान्ताचारी के पन्थ में वीरराघवाचार्य ने यह शाखा निकाली कि विष्णुनारायण पर लक्ष्मीजी को अधिक लिखा और वीरराघवी मत चलाया उनका मत दुर्गाउपासकों से थोड़ा मिलता है उस मतमें थोड़े लोग हैं और मदरास से एक मंज़िल पश्चिम उनका गुरुद्वारा है ॥ शृङ्गार व माधुर्य के उपासक लोग ध्यान करने में व प्रियाप्रियतम की सुन्दरता व शृङ्गार की उपासना में एकमत हैं और आरम्भ परिणाम दोनोंका एकही भांति है इसहेतु शृङ्गार व माधुर्य के उपासक लोगों को एकही निष्ठामें लिखना उचित जाना। हे कृपासिन्धु, हे दीनवत्सल, हे करुणाकर! अब इस दीनकी ओरभी कुछ ऐसी कृपादृष्टि हो कि आपके माधुर्यका चिन्तन करता हुआ आनन्द में रहाकरूं यद्यपि मेरे कोई आचरण आपके कृपा व दया करनेके योग्य नहीं हैं परन्तु जो आपकी बिरद दीनवत्सल और प्रणतार्तिभञ्जन की ओर दृष्टि जाती है तो दृढ़ आशा होती है सो अपनी ओर व अपने बिरदकी ओर देखकर यह दृढ़ता कृपा करो ॥

कवित्त ॥

जिन जान्यो वेद तेतो वेदविद विदितही हैं, जिन जान्यो लोक लोकलीकनपर लड़मरैं ।
जिन जान्यो तप तीनों तापन सों तपत ते, पञ्चअग्नि सङ्ग लै समाधि धर धर मरैं ॥
जिन जान्यो योग तेतो योगी युग युग जिये, जिन जान्यो ज्योति सोउ ज्योतिलै जरमरैं ।
हूं तो देव नन्द के कुमार तेरी चेरी भई, मेरो उपहास कोऊ कोटिन कर मरैं ॥ १ ॥
कोउ कहो कुलटा कुलीन अकुलीन कोउ, कोउ कहो रङ्किनि कलङ्किनि कुनारी हौं ।
केशौ देवलोक परलोक त्रयलोक मैं तो, लीनीहै अलौकिक लोक लोकन ते न्यारी हौं ॥
तन जाहु धन जाहु देव गुरुजन जाहु, जीव क्यों न जाहु नेक टरत न टारी हौं ।
वृन्दावनवारी वनवारी के मुकुटवारी, पीतपटवारी वाही मूरति की वारी हौं ॥ २ ॥

माथे पै मुकुट देखि चन्द्रिका चटक देखि, छविकी लटक देखि रूपरस पीजिये ।
लोचन विशाल देखि गरे गुञ्जमाल देखि, अधररसाल देखि चित्तचोप कीजिये ॥
कुण्डल हलन देखि अलकैं वलन देखि, पलकैं चलन देखि सरवस दीजिये ।
पीताम्बर छोर देखि मुरली की घोर देखि, सांवरेकी ओर देखि देखिवोई कीजिये ॥ ३ ॥

कथा व्रजगोपियों की ॥

व्रजगोपिकाओं के चरित्र त्रैलोक्य को ऐसे पवित्र करनेवाले हैं कि जिनकी उपमा कोई नहीं देखने में आती जो गङ्गा इत्यादि तीर्थों से बराबर करीजाय तो एक २ देशमें स्थित हैं जो लोग दूर रहते हैं उनको बड़े परिश्रम से मिलते हैं और पर्व आदि के भेद से पुण्य के न्यून विशेष की बात अलग रही और यह चरित्र परमपवित्र सबको सब जगह अनायास प्राप्त हैं और चारोंपदार्थ के देनेके निमित्त सब समय बराबर हैं अपने अभाग्य से जो उसमें प्रीति न होय तो दूसरी बात है महिमा गोपिकाओं की वेद और ब्रह्मा व शेष शारदा इत्यादि भी नहीं कहसके ब्रह्माजी ने जिनकी चरणरज को अपने शिरपर धारण किया व अपना भाग सराहा तो फिर उनकी महिमा का वर्णन करनेवाला कौन है ? जो गोपिकाओं को भगवद्भक्तों के यूथ में गिनाजाय तो उसमें शङ्का होती है प्रथम यह कि जिनके चरित्र गाय करके भक्तजन भक्तनाम पायकर विख्यात होते हैं जो उनको भक्त कहाजावे तो ढिठाई है दूसरे यह कि वेद और पुराणों में कईप्रकार की भक्ति लिखी हैं उनके साधन से भक्तनाम होता है सो गोपिकाओं ने उन सबमें कौनसा साधन किया कि उनको भक्तों में गणना किया जाय व जो उनको भक्तों में न लिखा जावे तब भी शङ्का का स्थान है प्रथम यह कि किसीने विना भगवद्भक्ति भगवत् को नहीं पाया दूसरे यह कि जो वे भक्त नहीं तो इस भक्तमाल में क्यों लिखा इसहेतु उनको भगवत् की परमप्रिया और भगवद्रूप जानना चाहिये और जो महिमा उनकी वर्णन हो सो महिमा भगवत् की विचार करनी योग्य है बरु गोपिकाओं की महिमा अधिक है इस भांति कि जो प्रबल होता है सो निर्बल को अपनी ओर खींच लेता है सो गोपिकाओं ने भगवत् को गोलोक से अपनी ओर खींच लिया सिवाय इसके सारा संसार कहता है कि भगवत् इस संसार का कर्ता हर्ता और स्वामी है परन्तु इस कहने सुनने से भी किसी को विश्वास नहीं होता कि भगवत्

का भजन स्मरण करके भगवत् के रूप अनूप का चिन्तन किया करें और गोपिकाओं के चरित्र को वह प्रताप और प्रभाव है कि जो थोड़ा सा भी कोई सुनलेता है तो ऐसा कदापि नहीं होसक्ता कि भगवत् का वह स्वरूप उसके हृदय में न आजाय और भगवत् में विश्वास न होय इच्छा थी कि कुछ चरित्र गोपिकाओं के इस ग्रन्थ में लिखे जावें परन्तु उन अपार चरित्रों में से एक प्रकार के चरित्र के लिखने की भी सामर्थ्य करोड़ों जन्मतक न देखी गोपिकाओं का भाव भगवत् में अलौकिक अर्थात् जो न देखने में आवे ऐसा हुआ कि भगवद्भक्तों को परमआनन्द का देनेवाला है और दूसरे लोगों को भगवत् में लगा देनेवाला है अर्थ अलौकिकभाव का यह है कि गोपिका भगवत् को एक व सब से अलग पूर्णब्रह्म परमात्मा जानती थीं और उसीको यार दोस्त व मित्र परमस्नेही व प्राणप्रियतम समझकर मित्रता व दुलार व प्रेम के नेम की रीति सब आचरण करती थीं यद्यपि यह दोनों बात परस्पर ऐसी विरुद्ध हैं कि जैसे अन्धकार व प्रकाश को आपस में विरुद्धता होती है परन्तु सो गोपिकाओं में दोनों बनेरहे इस हेतु शास्त्रों ने उनका भाव अलौकिक कहा सो इस भाव के चरित्रों में से एकदो चरित्र नमूने के भांति लिखता हूं ॥ एक बेर व्रजभूषण महाराज रात को किसी गोपिका के घर रहे जब बड़े भोर वहां से चलने की इच्छा को किया अपने घुँघुरू इस डरसे कि शब्द सुनकर कोई जाग न पड़े उतारनेलगे उस गोपिकाने हाथ पकड़लिया और कहा कि जो मेरी उपहास होय तो चिन्ता नहीं परन्तु यह उपहास तुम्हारी होनी न चाहिये कि श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म अपने चरण से लगेहुये को अलग करदेता है ॥ एकबेर व्रजगोपिका माखन बेचने के लिये यमुनापार जाती थीं और उनको व्रजचन्द्र महाराज से हँसने बोलने व देखने की प्रीति अनुक्षण रहती थी इस हेतु उसी ओर गईं जिस ओर नटनागर महाराज थे और दर्शन परस्पर होने पीछे दधिदान का झगड़ा व रसवाद के होनेपर यमुनापार जानेकी इच्छा को किया तब व्रजकिशोर महाराजने कहा कि यह नाव तो यमुनामें है परन्तु इस समय मल्लाह नहीं है जो तुमको आवश्यक जाना है तो हम तुमको पार उतार देवेंगे सब गोपिका उस नावपर चढ़गईं और व्रजकिशोर महाराज मल्लाह बने संयोगवश वह नाव सड़ी और पुरानी थी जब बीचधारा में पहुँची उसमें पानी आनेलगा कौतुकी महाराज ने कहा कि सावधानहोजाओ नाव डूबी उन

सैंसे जो नन्दनन्दन महाराज के हँसी खेल से स्वभावकी जाननेवाली थीं उन्होंने कहा कि कुछ चिन्ता नहीं डूबने दो हम वह मतिहीन नहीं हैं कि तेरी धमकी से डरकर बात कहे सो मानलेवें और कोई २ जो थोड़ी अवस्था की थीं और नन्दनन्दन महाराज के स्वभाव से अजान व नई आई थीं वह सब घबरानी और श्यामसुन्दर शोभाधाम के निकट आकर कोई तो छाती से लिपटगईं और किसी ने हाथ पकड़लिया और कोई चरण पकड़कर बैठगईं और किसीने गले में हाथ डालदिया जब मनमोहन महाराज ने देखा कि बहुतोंसे तो मनकी भाई सिद्ध हुई परन्तु कितनी एक हमारी धमकी में नहीं आती हैं तो नाव को वोरो वरोवर पानी में मग्न करदिया तब तो सबको निश्चय होगई कि अब यह नाव डूबी और गोपकुमार जो किनारे पर खड़ेथे ताली बजाकर हँसने लगे कि यह मूर्ख गोपी सब इन नन्दलालके भरोसे से नाव पर चढ़ी थीं उन व्रजनागरियोंको अपने प्राण का तनक शोच न हुआ और कहनेलगीं कि यह गोरस और माखन सब डूबजावे तो क्या चिन्ता है और जो हमारे प्राण जाते रहैं तबभी कदापि कुछ चिन्ता व शोच का कुछ प्रयोजन नहीं है परन्तु अत्यन्त शोक व शोच इस बातका है कि सब जगत् में बात फैलेगी कि जिस नावका खेवनेवाला श्रीकृष्ण भवसागरतारक था सो नाव डूबगई॥ जब यशोदाजी महारानी ने ब्रह्मा और शिव आदिक को माया की फांसी से बांधने और छुड़ानेवाले को रसरीसे बांधा तब सब गोपिका लीला देखने को आईं और कहनेलगीं कि हे नन्दनन्दन! बहुत अच्छी बात हुई जो तुमको यशोदाजी ने ऊखल से बांधा कि अब भी तुझको दूसरे के बँधने का दुःख जानपड़े अर्थात् जीवों को मुक्ति कृपा करो॥ जब ऊधोजी भगवत् का संदेशा लेकर मथुरा से गोपिकाओं के पास आये और ज्ञान वैराग्य का राग आरम्भ किया तब व्रजसुन्दरियों ने ऐसे उत्तर दिये कि निरुत्तर होरहे संयोगवश एक भ्रमर वहां आयगया गोपिका उस भ्रमर के मिस करके ऊधो से कहती हैं कि हे भ्रमर! तू उसी निर्दयी व कपटी की स्तुति व बड़ाई करता है कि जिसने राजाबलि बिचारे से कपट व धूर्तई करके उसका राज ले लिया फिर रामावतार धारण करके पहले तो शूर्पणखा को अपने मुख की शोभा पर वशीभूत व आसक्त करलिया फिर उसीके रूप का नाश कर दिया और न जानें कि उस धूर्त बेशील को अन्तर्यामी किसवास्ते कहते हैं? जो वास्तव करके अन्तर्यामी है तो हमारी अन्तर्दशा देखकर क्यों नहीं

आता और हमारे दुःख की दशा पर दया क्यों नहीं करता सो कैतो अन्त-र्यामी नहीं है कै निर्दयी व बेशील है इस प्रकार के चरित्रों से कि अनन्त हैं गोपिकाओं का अलौकिकभाव अच्छे प्रकार प्रत्यक्ष है॥ महाभारत, भागवत, गर्गसंहिता, विष्णुपुराण और दूसरे पुराणों से प्रकट है कि गोपिका वेदश्रुतियों, ऋषीश्वरों व जनकपुरवासियों की स्त्रियों का अव-तार थीं जितना कि ज्ञान और प्रेम व भाव इत्यादि उनको हुआ सब ठीक व युक्त है प्रेम गोपिकाओं का इतना हुआ कि सब ऋषीश्वरलोग व कविलोगों ने अगले व अबके प्रेम का अन्त गोपिकाओं पर समाप्त लिखा और इस भक्तमाल में जो प्रेम की दशा प्रेमनिष्ठामें लिखी जायगी और उनके दृष्टान्त वर्णन होंगे सो करोड़ से करोड़वां भाग गोपिकाओं के प्रेम का है विचार यह किया था कि कुछ गोपिकाओं के प्रेमका वर्णन इस कथा में भी लिखाजाय परन्तु जब अपार देखा तब मौनता को अंगीकार किया शृङ्गाररस जिसका कुछ वर्णन ग्रन्थारम्भ में और कुछ शृङ्गाररस की भूमिका में हुआ उस रसके खज़ानेकी ध्वजा अथवा उस रसके देशकी सम्राट् अथवा चक्रवर्ती राजा यह व्रजगोपिका हुईं व उस रस का अन्त व्रजगोपिकाओं पर समाप्त होचुका अब थोड़ा २ जिस किसी को प्राप्त होता है तो व्रजनागरियों की कृपा से मिलताहै और जिस किसीको उसके स्वादकी चाह होवे तो गोपिकाओं के चरित्र की शरण लेवे और व्रज-गोपिका व व्रजचन्द्रमहाराज वह चरित्र सब जो शास्त्रों में लिखे हैं ज्योंके त्यों अबतक करते हैं जिनको भगवत् ने सूझनेवाली आंखें कृपा करके दी हैं सो उस चरित्र को देखते हैं व्रजचन्द्रमहाराज कबहीं व्रज छोड़कर अलग नहीं होते और भागवत् इत्यादि पुराणोंमें जो मथुरा व द्वारका का और भगवत् के जाने का वर्णन हुआ वे चरित्र भगवत् के कोई २ कार्य के प्रयोजन के हेतु हैं एकरूप ने तो सब चरित्र मथुरा आदि में किये और दूसरा निज स्वरूप पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन नन्दनन्दन महाराज का व्रज में रहा कि अबतक वे चरित्र ज्यों के त्यों होते हैं इसका सिद्धान्त वेद श्रुतियों और पुराणों से अच्छे प्रकार उपासकजनों ने निश्चय कर दियाहै उसको विस्तार करके लिखने की यहां समवाई नहीं परन्तु एक वृत्तान्त थोड़े में लिखा जाता है जब उद्धवजी ने विरह करके गोपिकाओं की अत्यन्त विकलता देखी तो आप दया से अतिविकल व बेचैन होगये और भगवत् की ओर निर्दयता व कृतघ्नता को समाप्त करनेलगे यह विचार

करतेही थे कि एक चरित्र देखा यह कि नन्दनन्दन महाराज किसी व्रजगोपिका से हँसते हैं और किसी का माखन चुराकर खाते हैं और नन्दरायजी के घर में गऊ बछड़ों की रक्षा गोदोहन इत्यादि करते हैं और वन से गऊ चराये लिये आते हैं और गोपिका भगवत् के देखने के लिये अपने २ द्वार पर खड़ी हैं ऐसेही ऐसे चरित्र जो भगवत् नित्य किया करते थे देखे और आश्चर्य में चकित होकर बेसुधि बुधि होगये तब व्रजगोपिकाओं ने समझाया कि उद्धव तू ज्ञान किसको सिखलाता है और क्या प्रयोजन इत्यादिको वर्णन करता है श्रीकृष्ण सदा यहां विराजमान रहते हैं और कबहीं व्रज से अलग नहीं होते ॥

कथा मीराबाईजी की ॥

गोपिकाओं की प्रीति और भक्तिके अनुसार कलियुग में अशङ्क व निर्भय प्रीति मीराबाईजी की हुई । संसार की लज्जा और कुल की परम्परा त्याग करके बलसे गिरिधरलालजी से प्रेम लगाया और निर्मल यश सब भगवद्भक्तों ने गाया । मेरते के राजा के घर जन्म हुआ और लड़काई से गिरिधरलालजीके रूप अनूप में प्रीति होगई कारण उस प्रीति होनेका कोई २ भगवद्भक्त यह कहते हैं कि किसी बड़े के घर बरात आई थी उस बरातकी धूमधाम के देखने के निमित्त महलकी स्त्रियां कोठेपर चढ़ीं उस समय मीराबाईजी की माता गिरिधरलालजी के दर्शन के हेतु जो महल में विराजते थे गई थी मीराबाईजी भी तीन चार वर्ष की थीं खेलती हुई अपनी माता के पास चलीगईं व अपनी माता से पूछा कि हमारा दूलह कौनहै उनकी माने हँसकर गोदमें उठालिया और गिरिधरलाल जी की ओर बतलाकर कहा कि तेरा दूलह यह है । मीराबाईजी ने अपनी माता की लज्जा से अपने दूलहसे घूँघट करलिया और उसी घड़ीसे ऐसी प्रीति गिरिधरलालजी में हुई कि एकपल विना दर्शन व चिन्तन अपने स्वामी के नहीं व्यतीत होता था । भक्तमाल के तिलककार ने लिखाहै कि मीराबाई गिरिधरलालजी की प्रीति दृढ़ होजाने के पीछे मातापिता ने चित्तौर के राना के बेटे के साथ मीराबाईजी का विवाह करादिया और बरात बड़ीभारी आई जब रानाके बेटेके साथ भांवरी होनेलगीं तो मीराबाईजी अपनी भांवरी गिरिधरलालजी के साथ करती थीं । रानाके बेटेका भान तनक न था । जब बिदा करनेकी तैयारी को माता पिताने किया तो मीराबाईजी गिरिधरलालजी के वियोग को न सहसकीं और अत्यन्त

विकल होकर रोते रोते बेसुधि होगईं। मा बापने अतिप्रेम व प्यार से कहा कि सबकुछ तैयार है जो तुमको अच्छा लगे सो लेजाव। मीराबाईजी ने उस विकलता दशा से कहा कि जो हमको जिलाना चाहो तो गिरिधर-लालजी को देव मैं तनमन से सेवा करूंगी। माता पिता को मीराबाईजी बहुत प्यारी थीं और समय बिछुड़ने की थी इसहेतु गिरिधरलालजी को मीराबाईजी को सौंपदिया। बाईजी भगवत् को अपने डोला में विराजमान करके भगवत् छविको देखतीहुईं और अपने प्राणप्रियतम के मिलने से बहुत प्रसन्न व हर्षित राना के घर पहुँचीं। सासुने डोला उतारने की रीति भांति करके तब पहले दुर्गा का पूजन अपने बेटे से करवाया और फिर मीराबाईजी से कहा। मीराबाईजीने उत्तर दिया कि यह तन गिरिधरलाल जीको भेंट करचुकी हूं उनसे सिवाय और किसीके सामने शीश कब झुका सक्ती हूं। सासु ने कहा दुर्गा के पूजन से सुहाग की बढ़ती होती है इस हेतु दुर्गापूजन उचित है मीराबाईजी ने उत्तर दिया कि इस बात में हठ करने का कुछ प्रयोजन नहीं जो कुछ मैंने पहले कही है उसके सिवाय और कुछ नहीं होगी यह सुनकर मीराबाईजी की सासु अप्रसन्न हुई और जल बलकर अपने पति के पास गई और कहा कि यह बहू किसी काम की नहीं जब कि पहलेही दिन उत्तर देकर मुझको लज्जित करदिया तो न जानें आगे क्या करेगी ? राना यह बात सुनकर महाक्रोध में भरकर मीरा-बाईजी को मारनेको उद्यत होगया परन्तु अपनी स्त्री के कहने से रुकि. रहा और अलग मकान में टिकादिया॥ यह बात जानेरहो कि गोपिका और रुक्मिणी ने जो दुर्गापूजन किया था तो श्रीकृष्ण महाराज तबतक मिले नहीं थे व मीराबाईजी को तो पहलेही श्रीकृष्ण महाराज पति मिल गये इस हेतु दुर्गापूजन का प्रयोजन न हुआ और रुक्मिणी व गोपि-काओं के दृष्टान्तसे शङ्का भी योग्य नहीं है। मीराबाईजी जब अलग स्थान में रहनेलगीं तो बहुत प्रसन्न हुईं और गिरिधरलालजी को विराजमान करके शृङ्गार और सजावट में भगवत् की ओर सत्संग में दिनरात मन लगाया। राना की बेटी जिसका उदाबाई नाम था सो मीराबाईजी को समझाने के निमित्त आई और कहनेलगी कि भाभी तू बड़े घर की बेटी है कुछ ज्ञान व विवेक सीख वैरागियों का संग छोड़ दे इसमें दोनों कुल को कलङ्क लगता है। मीराबाईजी ने उत्तर दिया कि सत्संग से करोड़ों जन्म के कलङ्क छूटते हैं जिसको सत्संग प्यारा नहीं सोई कलङ्की है और

हमारा तो सत्संगही से जीवन है जिस किसीको दुःख होय उसको तुम्हारी शिक्षा उचित है। उदाबाई फिर आई और अपने माता पिता से सब वृत्तान्त कहा कि मीराबाई भगवद्भक्ति में ऐसी दृढ़ है कि किसी का कहना नहीं मानती। राना क्रोधित हुआ और विषका कटोरा चरणामृतका नाम करके मीराबाईजी के पास भेजदिया मीराबाईजी ने भगवच्चरणामृत को शीश पर चढ़ाया और अतिआनन्द से पान करगई राना अगोरता रहा कि अब मीराबाई के मरने के समाचार पहुँचते हैं परन्तु मीराबाईजी के मुखारविन्द पर शोभा का प्रकाश क्षण २ बढ़ता था भगवत् शृङ्गार और शोभा में छकी हुई नये २ प्रकारों से सजावट करती थीं और भगवच्चरित्रों का कीर्तन करके रस और प्रेमामृत में भरती थीं उस समय मीराबाई जी ने एक विष्णुपद भगवत् के साम्हने कीर्तन किया॥ स्थायी उसका यह है॥ रानाजी जहर दियो हम जानी॥ जब मीराबाईजी को विष की ज्वाला कुछ न व्यापी तब राना ने डेवढ़ीदार रखदिया कि जिससमय मीराबाईजी साधों से बोलना बतरावना करती हो उसका वृत्तान्त पहुँचावें कि मारडालीजावे व मीराबाईजी गिरिधरलालजी के साथ हँसी व ठट्टा व खेल व बातचीत परकीया अभिमानियों व प्रियवल्लभों की जैसी होती है किया करती थीं एकदिन डेवढ़ीदार ने समाचार पहुँचाये कि इस समय मीराबाईजी किसीके साथ बोल बतराव हँसी ठट्टेकी करती हैं। राना तलवार पकड़े पहुँचा और पुकारा कि किवार खोल मीराबाईजी ने किवार खोलदिये जब भीतर गया तो कुछ न देखा बोला कि जिसके साथ बात चीत हँसी ठट्टे की होरही थी सो कहां है मीराबाईजी ने कहा कि तुम्हारे आगे विराजमान हैं आंख खोलकर देखलो कि उसकी तुम से कुछ लज्जा व ओट नहीं है। उससमय मीराबाई और भगवत् आपस में चौसर खेलते थे जब राना पहुँचा तो भगवत् ने पांसा डालने के वास्ते हाथ फैलाया था राना ने जो हाथ भगवत् का पांसा लिये फैला देखा तो लज्जित हुआ फिर आया। राना ने अपनी आंखों से यह प्रताप भी देखा परन्तु उसके मन में कुछ न व्यापा निश्चय करके जब तक भगवद्भक्तों की कृपा नहीं होती तबतक भगवत् कदापि कृपा नहीं करते राना तो मीराबाईजी के मारने के उपाय में लगा था भगवत् कृपा उसपर किस भांति से हो। एक धूर्त कपटी साधु का बेष बनाकर मीराबाईजी के सामने आया और कहा कि गिरिधरलालजी की आज्ञा है कि मीराबाईजी को पुरुष के अङ्ग सङ्ग का

सुख देव इसहेतु आया हूँ। मीराबाईजी ने कहा कि गिरिधरलालजी की आज्ञा मेरे शिर ऊपर है पहले आप भोजन प्रसाद करें तिसके पीछे मीराबाईजी ने जहां भगवद्भक्तों की समाज होरही थी उस मकान के आंगन में पलँग बिछवाया और सजिके उस धूर्तसाधु को बुलाया और कहा कि पलँग पर पधारिये लज्जा और भय किसी बात की न चाहिये क्योंकि गिरिधरलालजी की आज्ञा का पालन सर्वथा उचित है वह धूर्त सुनतेही पीला पड़गया और हृदय का अन्धकार ध्वस्त होकर प्रकाश होगया मीराबाईजीके चरणों में त्राहि त्राहि करके पड़ा। मीराबाईजी ने कृपा करके भगवत् सम्मुख करदिया ॥ अकबर बादशाह मीराबाईजी की सुन्दरता का वृत्तान्त सुनकर तानसेन के साथ दर्शन को गये और दर्शन किये पीछे भक्ति की दशा देखकर अपने भाग्य को धन्य मानकर बहुत प्रसन्न हुये तानसेन जब एक विष्णुपद भगवत् के भेंट करचुका तब फिर चला गया। मीराबाईजी दर्शन के निमित्त श्रीवृन्दावनमें आईं व जीवगोसाईं जीके दर्शन को गईं जीवगोसाईं ने कहला भेजा कि हम स्त्रियोंका दर्शन नहीं करते। मीराबाईजी ने कहा कि हमतो वृन्दावनमें सबको सखीरूप जानती थीं और पुरुष केवल गिरिधरलालजीको सो आज हमारे जानने में आया कि इस व्रजके और उस व्रजराजके और भी पट्टीदारहैं। गोसाईंजी सुनकर नांगेपायँन आये मीराबाईजी के दर्शन करके प्रेम में पूर्ण होगये पीछे मीराबाईजी सब वन व कुञ्जोंके दर्शन करके व भगवत्रूप माधुरीको हृदयमें धरके अपने देशमें आईं राना की द्वेषबुद्धि ज्यों की त्यों बनी देखकर द्वारकाजी में चलीगईं और गिरिधरलालजी की शोभा में छकी हुई भगवत् शृङ्गारके रसमें मग्न रहनेलगीं जब भगवद्भक्तोंका आवना रानाके नगर में बन्द हुआ और भांति भांतिके उपद्रव होनेलगे तब रानाने मीराबाईजी की भक्ति का प्रताप जाना और बहुतसे ब्राह्मण मीराबाईजी को फेरलाने के निमित्त भेजे ब्राह्मण द्वारका में गये और रानाकी प्रार्थना व बिनती सब सुनाई। ब्राह्मणों ने जब देखा कि मीराबाईजीका देश चलने का मन नहीं है तो सब धरने बैठे कि जब तुम चलोगी तबहीं अन्नजल करेंगे मीराबाईजी ने ब्राह्मणों से कहा कि मेरा निवास इस द्वारका में रनछोड़जी की कृपासे हुआहै उनसे बिदा होआऊं सो वहां जाकर गिरिधरलालजी के प्रेममें मग्न होकर एक विष्णुपद भगवत्भेंट किया अन्तका तुक उसका यह है ॥ मीरा के प्रभु गिरिधर नागर मिलि बिछुड़न नहिं कीजै।

भगवत् पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमप्रीति मीराबाईजी की देखकर अलग न करसके और उनको अपने अङ्ग में मिलालिया विलम्ब भये पीछे जो ब्राह्मणलोग ढूँढ़ते वहां गये तो मीराबाईजी को कहीं न देखा परन्तु सारी जो मीराबाईजी पहिने थीं सो पीताम्बर की जगह भगवत् के अङ्गपर देखी भक्तिकी निश्चय करके फिर आये व अकबर बादशाह ने चित्तौर को मीराबाईजी के चलेजाने पर युद्ध से विजय करके ध्वस्त करदिया ॥

कथा करमैतीजी की ।

करमैतीजी परशुराम रहनेवाले कण्डिले राजा शिखादत्त के प्रोहित की बेटी ऐसी परमभक्त हुई कि कलियुग जो हज़ारों कलङ्क व पीड़ासे भरा हुआहै करमैतीजी के निकट नहीं आया अनित्यपति को छोड़कर नित्य निर्विकार पति श्रीकृष्ण महाराजसे प्रीति लगाई व संसार की सब फांसें तृणके सदृश तोड़कर वृन्दावन में वास किया । निर्मलकुल जो परशुराम ब्राह्मण जो उनके पिताहैं उनके धन्य भागहैं कि जिसके घर ऐसी लड़की जन्मी जिसकी बड़ाई और भक्ति सब भक्तोंने वर्णन करी श्रीकृष्ण महाराज की छविपर करोड़ों कामदेव निछावर होते हैं ऐसा चित्तको लगाया कि उसी छवि के चिन्तन व ध्यान में मग्न रहतीं और ध्यान के सुखसे ऐसी आनन्द व स्वाद लेतीं कि शरीर में न समातीं व संसार का सब काम असार व फीका होगया । करमैतीजी का पति गवना लेने के निमित्त आया माता पिता ने गहने व कपड़े की अच्छी तैयारी करी करमैतीजीको शोच हुआ कि यह तन भगवद्भजन के हेतुहै शरीर के विषय भोग के सुख लेने के निमित्त नहीं है इस हेतु देहत्याग की इच्छा करी फिर शोचा कि भगवत् की प्रीति और भजन सब अर्थोंपर मुख्यतर अर्थ है और जगत् की प्रीति व सम्बन्ध सब अनित्य है सो विना शरीर भगवद्भजन नहीं होसक्ता इस हेतु देह का त्याग करना उचित नहीं भजन के विरोधियों का त्याग योग्य है यह विचार सिद्धान्त ठहराके जिस रातके भोर को गवना था उसी रातके आधी बीतनेपर भगवत् की छवि में छकीहुई और उसी ध्यानरूपी रूप के साथ निर्भय निराली अकेली घरसे निकलकर चल खड़ी हुई प्रभात को चारों ओर आदमी ढूँढ़ने को दौड़े उनको आते देखकर एक मरे ऊँट के कङ्कालमें घुसकर छिपगई व कलियुग की पापों की दुर्गन्ध के बराबर मरे ऊँटकी दुर्गन्ध नहीं तुलसक्ती इसीकारण से वह दुर्गन्ध जनाई न पड़ी व भगवत् के शृङ्गार के अतर इत्यादि की सुगन्ध जो मन व प्राणके

मस्तक में समाई थी उसके कारण से भी कुछ दुर्गन्ध का विकार न हुआ तीन दिन उसी कङ्काल में छिपी रहीं तीन दिन बीते उसमें से निकलकर एक मेला गङ्गा नहाने को जाता था उसके साथ गङ्गाजी पर आईं वहां स्नान करके गहने सब दान करदिये जब मथुराजी में गईं वहां स्नान और यात्रा करी तब वहां से वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड पर निवास करके भगवत् के चिन्तन और ध्यान में रहने लगीं॥ करमैतीजी का पिता परशुराम ढूंढ़ता २ मथुराजी में पहुँचा एक मथुरावासी चौबे से पता पायकर वृन्दावन में गया उन दिनों में इतनी आबादी व कुञ्ज व बाग़ इत्यादि वृन्दावन में नहीं थीं वन सघन व हरियाली बड़ी थी एक बरगद के वृक्ष पर चढ़कर देखा कि करमैतीजी भगवत्ध्यान में विराजमान हैं वृक्ष से उतरकर उनके पास आया और अत्यन्त स्नेह से रोता कलपता चरणों में लपटगया और कहनेलगा कि तुम्हारे चले आनेसे मेरी नाक कटगई कि भाईबन्धु कलङ्क लगाते हैं और सारे तेरा बोल मारते हैं अब घरको चलो अपने ससुराल में जाकर भगवद्भक्ति व सेवा पूजा किया करो यह वन है कोई जन्तु तुमको खायजायगा हमको दुःख होगा तुम्हारी माता जो मरने अटकी है तिसको जिलाओ। करमैतीजी ने उत्तर दिया कि निश्चय करके जिस २ तन में भगवद्भक्ति नहीं है वह तन मृतकप्राय है जो जीनेकी चाह है तो भगवद्भक्ति करनी चाहिये और यह जो कहतेहो कि नाक कटगई सो नाक पहलेहीसे तुम्हारे मुँहपर न थी क्योंकि मुख्य नाक भगवद्भजन व भक्ति है विना उसके हजारों नकटे कानकटे हैं शोच करो कि पचासवर्ष तुम्हारी अवस्था संसार के विषय विलास में बीत गई और कवहीं तृप्ति न हुई अब भी मोहरूपी नींद से जागो कि सब भोगविलास अनित्य व तुच्छ हैं भगवत् का भजन सार है सब बखेड़ा छोड़कर उसी ओर मन लगाओ इस थोड़ेही उपदेश से परशुराम का अज्ञान इस प्रकार दूर होगया कि जैसे सूर्य के उदय होनेसे अन्धकार का नाश होजाता है तबतक करमैतीजी ने एक भगवत्स्वरूप सेवाके निमित्त दिया व विदा किया परशुराम घर आया भगवत्मूर्ति विराजमान करके ऐसा मन लगाया कि सिवाय सेवा व भजन के दूसरी ओर तनक सुरति न रही व लोगों के यहां आना जाना सब किसीसे बोलना बतरावना भी छोड़ दिया एकदिन राजा ने लोगों से पूछा कि परशुराम ब्राह्मण बहुत दिनों से हमारे पास नहीं आता उसका क्या समाचारहै। किसी मनुष्यने सब वृत्तान्त

विस्तार से भक्ति व भजन का वर्णन किया राजा ने मनुष्य बुलानेको भेजा परशुराम ने कहा अब राजा से कुछ काम नहीं मनुष्य तन पाकर जो कार्य करना चाहिये तिसमें लगा हूं। राजा परशुराम की भक्ति और वैराग्यको विचार करके आप दर्शनों के निमित्त आया और उनकी सांची प्रीति भगवत् में देखकर और करमैतीजी की भक्ति और वैराग्यका वृत्तान्त सुनकर प्रेमसे विह्वल होगया इच्छा हुई कि करमैतीजी का दर्शन करना चाहिये जो मेरे अच्छे भाग्य हों तो क्या आश्चर्य है कि आवें और देश को पवित्र करें इस आशा से वृन्दावन को गया और करमैतीजी के दर्शन किये देखा कि नन्दनन्दन महाराज की निश्चल और दृढ़ प्रीति में करमैतीजी उस अवस्था को पहुँचगई हैं कि कुछ कहने सुनने की बेर नहीं रही उस दशा में चलनेके निमित्त अधिक बोलचाल न करसका और करमैतीजी के मने करनेपर भी एक कुञ्जकुटी करमैतीजीके रहनेके निमित्त बनवाकर चरणों को दण्डवत् करके फिर आया और भगवद्भजन में लवलीन हुआ अबतक कुटी करमैतीजी की ब्रह्मघाट पर प्रकट है ॥

कथा नरसीजी की ॥

नरसीजी महाराज का गुजरातदेश में और ऐसे कुल में कि स्मार्त धर्म के सिवाय जहां भगवद्भक्ति का निर्मूल पता न था और जो किसी को तिलक छापा धारण किये हुये देखते थे तो उसीकी निन्दा करते थे तहां जन्म हुआ और ऐसे परमभागवत हुये कि उस देश के पापों को दूर करके सबको भगवद्भक्त करदिया शृङ्गार और माधुर्यकी उपासना में ऐसे हुये कि गोपिकाओं के तुल्य कहना चाहिये जूनागढ़ के रहनेवाले थे उनके मा बाप जब मरगये तो भाई भावज के यहां रहने लगे एक दिन बाहर से खेलतेहुये घर में आये और भावज से पानी मांगा उसने अपनी दुष्ट प्रकृति के कारण से क्रोध करके उत्तर दिया कि ऐसाही कमाई करके लाया है जो पानी पिलाऊं नरसीजी को लज्जा के मारे जीना भारी होगया और शिवजी की सेवा में गये सात दिन तक विना अन्न जल शिवालय में पड़े रहे शिवजी महाराज ने विचार किया कि संसारी मनुष्य भी अपने द्वार पर पड़े हुये की रक्षा करता है और मैं जगत् का ईश्वर हूं इसहेतु साक्षात् आकर दर्शन दिये और कहा कि जो इच्छा हो सो मांग नरसीजी ने विनय किया कि मुझको मांगने नहीं आता जो कुछ आपको प्रिय होय सो दीजिये शिवजी को चिन्ता हुई कि मुझको वह प्रिय है कि जिसको वेद भी

नेतिनेति कहते हैं और जिसका भेद अपनी परमप्रिया पार्वतीजी को भी अच्छे प्रकार से नहीं बतलाया इस मनुष्यको तुरन्त कैसे बतला देवें फिर अपने वचन और इस बात को देखा कि इस मनुष्य के प्रभाव करके एकदेश कृतार्थ होजायगा इसहेतु अपना और नरसीजी का सखीरूप बनाकर वृन्दावन में आये देखा कि सब भूमि कञ्चनमयी रत्नजटित उसके बीचमें रासमण्डल व रासमण्डलमें असंख्य गोपिका और गोपिकाओं के बीच में सिंहासन और सिंहासन पर प्रियाप्रियतम विराजमान हैं शोभा की चांदनी से करोड़ों चन्द्रमा की चांदनी फीकी दिखाई पड़ती है रास-विलास होरहा है ताल देकर कबहीं आप लालजी प्रियाजीं को और कबहीं प्रियाजी प्रियतमको सांगीत की गति सिखाते हैं और कबहीं पर-स्पर गलबाहीं देकर नृत्य और कबहीं परस्पर हाथ पकड़कर गान करते हैं और कबहीं दूसरी गोपिकाओं के नृत्य व गानपर सावधान हैं और कबहीं हँसी व ठट्ठा होता है पखावज व वीणाआदि सब प्रकारके बाजे मिले ताल स्वरसे बजते हैं छहों राग रागिनियों सहित सखीरूपसे खड़े हैं नरसी-जीने जब यह समाज देखा तो कृतार्थ होगये दुःख सुख से उसी घड़ी अलग हुये और शिवजी की आज्ञा से मशाल दिखाने लगे व्रजकिशोर महाराजने प्रियाजी से कहा कि आज यह सखी कोई नई आई है प्रियाजी ने उत्तर दिया कि शिवजीके साथ है तब नटनागर महाराज ने मन्दमुसु-कान और कृपा की दृष्टिसे नरसीजी की ओर देखा और फिर प्रियाजी ने भी वचनसे सहाय किया तब आज्ञा हुई कि अब तुम जाओ और जो देखा है उसीका ध्यान और चिन्तन करते रहो जहां बुलाओगे तहां तुरन्त आऊंगा। नरसीजी भगवत् आज्ञा पाय परम आनन्दमें मग्न अपने घर को आये अलग एक घर बनाकर उसी समाज के ध्यान में रहनेलगे एक ब्राह्मणकी लड़की से विवाह होगया उसीसे एक बेटा दो लड़की उत्पन्न हुई संसारमें भगवद्भक्ति को विख्यात किया जो साधु आते उनकी सेवा अच्छेप्रकार किया करते और रातदिन भगवद्भजन के सिवाय दूसरा कार्य नहीं था यह वृत्तान्त देखकर उनके सजातीय ब्राह्मण द्वेष करके शत्रुता करनेलगे परन्तु नरसीजी तो भगवद्रूप के समुद्र में मग्न थे और भगवत् सदा उनकी रक्षा व सहाय के निमित्त प्राप्त रहते थे इस कारण से वे लोग कुछ न करसके एकबेर साधु आनि उतरे लोगोंसे पूछा कि हमको द्वारका की हुण्डी करानी है कोई साहूकार यहां है लोगोंने कुत्सा व ठट्ठेकी राहसे

नरसीजी को बतलाया और समझादिया कि जो वे न मानें तो तुम चरण पकड़लेना और बहुत विनय प्रार्थना करना । साधु आये और सातसौ रुपया नरसीजी के आगे रखकर चरण पकड़ लिये नरसीजी नाहीं करने लगे तो हाथ जोड़ २ प्रार्थना करनेलगे नरसीजी ने जाना कि किसी के बहकाने से आये हैं अथवा भगवत् ने शत्रुलोगों के हृदय में प्रेरणा करके यह खर्च भेजवाया है तुरन्त हुण्डी को लिख दिया और समझा दिया कि जिसके नाम हुण्डी है उसका नाम सांवलसाह है उसीके हाथ में देना वे साधु द्वारका में आये और उस साहूकार को ढूंढ़ा पता न मिला लाचार भूंख प्याससे विकल नगरसे बाहर आये कि भोजन प्रसाद से छुट्टी करके तब फिर साहूको ढूंढ़ेंगे सांवलसाह महाराज ने विचार किया कि बिना पक्के खोजके मेरा मिलना कठिन है परन्तु जो अधिक कष्ट ढूंढ़ने का देता हूं तो मेरी गुमास्तगरी और नरसीजी की साहूकारी में बट्टा लगता है इस कारण बड़ी पगड़ी, लम्बी धोती, नीचाजामा पहिन, कमर बांध, क़लम कानपर रख, एक बही बग़ल में दबा, साहूकाररूप बना और थैली रुपयों की कांधेपर रख जहां साधु टिके थे आये और पूछा कि नरसी-जी की हुण्डी कौन लाया है साधुलोगों के तन में मानों प्राण पड़ गया और सब एकबेरही बोले कि महाराज ! हम लाये हैं आपको ढूंढ़ते २ हारगये आपने बड़ी कृपा करी कि आये । साहूने कहा कि किस वास्ते लजवाते हो हमको तुमको ढूंढ़ते कईदिन बीतगये और नगरमें जो मेरा पता न मिला तो कारण यह है कि जो भगवत् का निज दास है सो मुझको जानता है साधों ने हुण्डीको दिया और सांवलसाह ने नक़द रुपया देकर नरसीजी के नाम जवाब लिख दिया कि चिट्ठी आई रुपया रोक दे दिये मुझको अपना गुमास्ता जानकर कामकाज लिखते रहना साधुलोग यात्रा करके फिर नरसीजी के पास आये और वह चिट्ठी दीनी नरसीजी ने पूछा कि सांवलसाहको देख आये साधोंने कहा हां महाराज ! देख आये । नरसीजी अतिप्रेम से मिले और साधों को जो यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो वे भी प्रेममें रँगिगये नरसीजी ने वह सब रुपया साधुसेवा में ख़र्च किया क्योंकि साहू का रुपया देना निश्चय है और उसके पास कोई ले-जानेवाला पहुँच नहीं सक्ता है सिवाय साधुसेवा के और कोई उपाय नहीं । नरसीजी की बड़ी लड़की के लड़का उत्पन्न हुआ और नरसीजी के घर से छूछक की सामां नहीं गई सास आदिक सब नित्य बोली मारतीं

व गालियां दिया करती थीं उस लड़की ने नरसीजी को कहला भेजा कि इस सास ने मुझको यातना में डाल रक्खा है जो तुमसे कुछ दिया जावे तो लेआवो नरसीजी एक पुरानी गाड़ी जिसके बैल अति दुर्बल व बूढ़े थे तिसपर चढ़कर उस नगर के किनारे पहुँचे लड़की ने जो कङ्गाली दशादेखी तो नरसीजी से कहा कि जो तुम्हारे पास कुछ न था तो किस हेतु आये नरसीजी ने कहा कि चिन्ता का कुछ प्रयोजन नहीं अपनी सास के पास जाकर जो कुछ सामान छूछक का चाहिये सो एक काग़ज़ पर लिखा लेआवो सास ने क्रोध करके सारे नगर के वास्ते सामां पहिरने का व गहना सब लिख दिया। जब नरसीजी की लड़की फ़र्द लेकर आई तो नरसीजी ने फेर भेजा कि जो किसी के निमित्त कुछ और बाक़ी रह गया हो तो वह भी लिखकर भेजो सास ने रिस करके लिख दिया कि दो पत्थर भी भेज देना पीछे एक पुराने व टूटे दालान में टिका दिया व न्हाने के वास्ते जल भेजा सो ऐसा उष्ण कि हाथ न लगाया जाय भगवत् इच्छा से मेह बरसा जल शीतल होगया नरसीजी ने यथेष्ट स्नान किया और उस दालान में एक कोठरी थी उसके द्वार पर परदा डालकर भगवत्-कीर्तन आरम्भ किया भगवत् आप रुक्मिणीजी के सहित सब असबाब जो काग़ज़ पर लिखा था लेकर उस कोठरी में आये और रुक्मिणीजी को साथ लाने का यह हेतु है कि पुरुषों के शृङ्गार पोशाक सामां तो मेरे आधीन है जो स्त्रियों की सामां में कुछ भेद पड़ेगा तो उसका दोष रुक्मिणीजी का समझा जायगा एक शङ्का यह उत्पन्न हुई कि नरसीजी शृङ्गार-उपासक थे उचित यह था कि उनके इष्टदेव अर्थात् नन्दनन्दन महाराज व राधिका महारानी आकर विराजमान होते रुक्मिणीजी व द्वारकानाथ महाराज क्यों आये ? उत्तर इसका यह कि नरसीजीने प्रिया प्रियतम के सुख समाज व विहार में दुचिताई डालना उचित न समझा इसहेतु द्वारकानाथ व रुक्मिणीजी का स्मरण किया दूसरे यह कि भगवत् ने विचारा कि यह कार्य शृङ्गार के सम्बन्ध का नहीं है गृहस्थीधर्म के सम्बन्ध का है इस हेतु उस रूप से चलना चाहिये कि सब कार्य विवाह गवना छूछक भात इत्यादि की जिसने किया होय सो द्वारकानाथ व रुक्मिणीजी के रूप से प्रकट हुये पीछे नगर के वासी लोगों को सामां ओढ़ने पहिरने की बँटनेलगी और ऐसे असबाब दिये कि किसी ने आंख से भी नहीं देखे थे सबसे पीछे दो पत्थर चांदी सोने के दिये सारे नगर व देश

में नरसीजी का यश ऐसा हुआ कि अबतक साधुसमाज में गायाजाता है पीछे नरसीजी अपने घरको चले एक स्त्री का नाम उस काग़ज़पर नहीं चढ़ा था छूटगया था उसको नरसीजी की लड़की अपनी पोशाक देनेलगी उसने हठ किया कि जिसके हाथ से सबने लिया है उसीके हाथ से लूंगी नरसीजी ने अपनी लड़की के संकोचसे दोहराय के भगवत् को बुलाया और उसको भी सब असबाब दिया इस देने से नरसीजी की लड़की इतनी प्रसन्न हुई कि शरीर में न समाई और अपने बाप की भक्ति देख कर अपने पति इत्यादि को त्याग कर दिया नरसीजी के साथ चलीआई भगवद्भजन में लगी। दूसरी लड़की ने अपना ब्याहही न कराया वह भी भगवद्भक्त होगई। जूनागढ़ जहां नरसीजी का घर था दो गानेवाले गाते फिरते थे कहीं एक कौड़ी उनको न मिली किसीने नरसीजी का नाम बतला दिया कि उनके घरसे कुछ अच्छीभाँति तुमको मिलेगा वे आयके नाचने गाने लगे नरसीजी ने समझादिया हम फ़क़ीर हैं हमसे क्या चाहते हो चले जाओ उन्होंने न माना नरसीजीने कहा कि यहां केवल भगवद्भक्ति साक्षात् है जो तुमको उसकी चाह होय तो मूड़ मुड़ाय के आजाओ उन्होंने तुरन्त शिर मुड़ालिया और नरसीजी की समाज में मिलगये नरसीजी की दोनों लड़की व दो गायन प्रेम और भक्ति से भगवत् का भजन और कीर्तन करके जो भाव भगवद्भक्ति और प्रेमके परमानन्द देनेवाले होते प्रकट किया करते नरसीजी का मामूं शाह लंगना में जूनागढ़ के राजा का दीवान था उसको नरसीजी का आचरण अच्छा न लगा और राजा से मिथ्या पाखण्डी ठहरायके इस बात पर सन्नद्ध किया कि दण्डी साधु और ब्राह्मणों का समाज करके नरसीजी को इस नगर और देशसे निकाल देना चाहिये कि लोगोंको पाखण्ड में भुलाता है सो चार चोबदार नरसीजी को लेआने वास्ते भेजे नरसीजी ने अपनी लड़कियों और दोनों गायनों को कहा कि तुमलोग कहीं अलग होजाओ हम राजा के पास जाते हैं उन लोगों ने कहा कि राजा का क्या डर है ? हमभी साथ हैं सो सब भगवत्कीर्तन करते हुये राजा की सभा में आये सब सभावालों के मुख की श्री नरसीजी के प्रताप से जाती रही परन्तु एक पण्डित ने पूछा कि स्त्रियों को साथ रखना किस पद्धति में लिखा है नरसीजी ने उत्तर दिया कि सब शास्त्र और पुराण और वेदों का सार भगवद्भक्ति है जिस किसीको कि भक्ति प्राप्त हुई वह परम भागवत और भगवद्रूप है क्या स्त्री होय क्या पुरुष और उस

का एक निमिष का सत्संग भगवद्भक्ति का देनेवाला है भगवत् ने श्रीमुख से आप मथुरावासिनी स्त्रियों की श्लाघा करी और उनके पति मथुरा के ब्राह्मणों ने उनके भाग्य की बड़ाई करके कहा कि यह स्त्री परम बड़भागिनी हैं कि भगवत् का दर्शन पाया और हमारी सर्वज्ञता और वेदपढ़ने पर धिक्कार है कि भगवत् से विमुख हैं भागवतमें लिखा है कि वही बड़ा है और वही मुक्ति के योग्य है और वही सत्संगी है और वही सेवा करने वाला है कि जिसको भगवद्भक्ति है फिर भगवत् का वचन है कि मैं भक्ति के वश में हूं एकादशस्कन्ध में भगवत् का वचन है कि मेरा भक्त जो श्वपच भी है तो उन बड़े कुलीनों से कि जो भगवद्भक्त न हों बड़ा है तो जिस किसी को भगवद्भक्ति लाभ हुई उसका स्त्री अथवा पुरुष अथवा छोटीजाति या बड़ीजाति कहना शास्त्रविरुद्ध है वह भागवत और भगवत् का प्यारा है शास्त्रों के सिद्धान्त और मुख्य तात्पर्य को समझकर जो भगवत् में मन को लगाये हैं सोई पण्डित व सर्वज्ञ हैं नहीं तो सब गुण व पण्डिताई तुच्छ है ऐसेही ऐसे उत्तर से सब सभा को निरुत्तर करदिया इस बोल बतराव में एक ब्राह्मण ने नरसीजी का प्रताप और हूछक के देने का वृत्तान्त राजा से वर्णन किया राजा को विश्वास हुआ और चरणों में पड़ा प्रार्थना करके विनय किया कि मेरे गृह को पवित्र करिये अर्थात् गृह में मेरे चलकर विराजमान हो कि मेरी कृतार्थता हो राजा का आश्वासन व बोध करके नरसीजी चलेआये और भगवद्भजनमें लगे। श्रीमूर्ति भगवत् की जो विराजमान थीं नित्य उस स्वरूपके सम्मुख भजन व कीर्तन किया करते थे और जिस समय राग केदारा गाते थे उस समय भगवत् प्रसन्न होकर अपने गलेकी माला दिया करते थे एकबेर साधुसेवा का प्रयोजन पड़ा केदारा रागिनी को साहूकार के यहां गिरों रखदिया कि जबतक रुपया न देंगे तबतक केदारा भगवत् को न सुनावेंगे उसी समय में शत्रु लोगों ने राजा को बहकाया कि नरसीजी की बड़ाई व श्लाघा व्यर्थ फैल रही है एक कच्चे धागे में फूलों की माला भगवत् को पहिनाय देता है और वह माला फूलोंके भार से आप टूटपड़ती है राजा परीक्षा लेने पर हुआ राजा की माता भगवद्भक्त थी उसने बहुत समझाया परन्तु कुछ न माना एक मोटे रेशम के डोरेमें माला को बनवाया और भगवत् को पहिनाकर नरसीजी से कहा कि हमभी तो देखें कि भगवत् तुमको माला किस प्रकार देते हैं नरसीजी ने कीर्तन आरम्भ किया एक केदारा छोड़ और सब राग

गाये परन्तु भगवत् प्रसन्न न हुये और न माला दीनी तब तो नरसीजी ने बोली मारना प्रारम्भ किया कि नितान्त ग्वालबाल हो एक माला के हेतु ऐसी कृपणताई को अङ्गीकार करलिया है कि छाती से लगा रक्खी है और सिवाय उस केदारा के किसीभांति प्रसन्न नहीं होते विष्णुनारायण बड़े बुद्धिमान् हैं कि सारे संसार का पालन करके अपने किंकरों की वाञ्छा पूरी करते हैं मेरे भाग्य में तुम ग्वालबाल लिखगये कि एक माला के निमित्त यह दशाहै और इस उदारताईपर विशेष यह है कि अपने से अलग भी नहीं होने देतेहो अपने मुख और अङ्गन की अनूप छवि को दिखाकर वशी व आधीन करलिया है और इस तुम्हारी कृपणता पर मेरी क्या हानि है ? तुमहीं को कलङ्क लगेगा जब आप श्रीजीने यह बोली मारना सुनलिया तो नरसीजी का रूप बनाकर और उनका रुपया लेकर उस साहूकार के घरगये वह साहूकार अभागा नींद में था उसने कहदिया कि मेरी स्त्री को रुपया देकर लिखना अपना निकलवाय लेजाव जब स्त्री के पास गये तो उसने दण्डवत् और प्रतिष्ठा किया व रुपया लेकर लिखना फेरदिया पीछे कुछ भोजन करवाकर बिदा किया साहूकारकी स्त्री को जो दर्शन हुये तो कारण यह है कि एकबेर उसस्त्रीने नरसीजीसे बहुत प्रार्थना करके विनय किया था कि भगवत् के दर्शन करादो तब नरसीजी ने वचन प्रबन्ध किया था सो नरसीजी के वचन को भगवत् ने पूरा किया इसहेतु दर्शन हुये जब भगवत्के आगे राग केदारा अलापा तो काग़ज़ नरसीजी के गोद में डालदिया नरसीजी देखकर प्रसन्न हुये और ऐसा उस रागको गाया कि और दिन तो माला भगवत् के गलेसे अलग होजाया करती थी उसदिन भगवत्मूर्ति ने अपने हाथ से नरसीजी को पहिनाई सबने जय जयकार किया और राजा दृढ़ विश्वासयुक्त होकर चरणों में पड़ा सब दुष्ट लज्जित हुये और भगवद्भक्ति का विश्वास करके भगवत्शरण होगये भगवत् ने जो बिना केदारा गाये माला कृपा न की तो कारण यह है कि पहले तो नरसीजी के मनसे बड़ाई व प्रेम उस केदारा रागिनी की जाती रहती सिवाय इसके साहूकार व और दूसरे लोगों को उस रागिनी का विश्वास न रहता और नरसीजीने माला मिलनेहेतु व दिखावने सिद्धाई के जो हठ किया तो कारण यह है कि उस देश में भक्ति का प्रचार नहीं था और यह प्रभाव सिद्धता का देखने से बहुत लोगों ने भक्ति को अङ्गीकार किया जो इस सांची भक्ति की परीक्षा में कुछ अनर्थ प्रकट होता

तो सबलोग वे विश्वास होजाते और भक्ति का प्रचार उस देश में न होता। एक ब्राह्मण लड़की के विवाह के निमित्त लड़का ढूंढ़ता जूनागढ़ में आया कोई लड़का रुचि के अनुकूल न मिला किसीने नरसीजी का पता बतलाया कि उनका लड़का बहुत सुन्दर है उस ब्राह्मण ने नरसीजी का लड़का जो देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ और तुरन्त तिलक विवाह का कर दिया नरसीजी ने कहा कि हम कङ्गाल हैं तुम किसी धनवान् के घर विवाह करो वह ब्राह्मण नरसीजी की बड़ाई व विनय करके शीघ्र अपने नगर में पहुँचा व लड़की के बाप से सब वृत्तान्त कहा वह लड़कीवाला नरसीजी का नाम सुनकर बहुत अप्रसन्न व क्रोधवन्त हुआ और उस ब्राह्मण से कहा कि यह लड़का अङ्गीकार नहीं है टीका फेरलावो ब्राह्मण ने कहा कि जिस अँगुली से विवाह का तिलक कर आया हूं उसको जो काटडालो तो कुछ चिन्ता नहीं है परन्तु सम्बन्ध नहीं फिर सकेगा वह लड़कीवाला लाचार हुआ और कहनेलगा कि लड़की के भाग्यमें जैसा है वैसा निश्चय करके होगा शोच करना प्रयोजन नहीं विवाह में ऐसा दायज देदेवेंगे कि नरसीजी को धनाढ्य करदेंगे जब विवाह का दिन निकट आया तब उसने लग्नपत्रिका भेजी नरसीजी ने उसको कहीं डाल दिया और निर्मल विवाह की चर्चा व कबहीं चिन्तन न किया ज्यों के त्यों भजन और कीर्तन में लगेरहे चारदिन जब विवाह के रहगये और नरसीजी ने कबहीं विवाह का नाम भी न लिया तो श्रीकृष्णस्वामी और रुक्मिणी महारानीजी विवाह के कार्य सँवारने के निमित्त आये रुक्मिणीजी तो स्त्रियोंके कार्य सँवारने में लगीं और आप भगवत् नरसीजी के करने योग्य कार्यों में लगे। स्त्रियों ने विवाह के गीत गाना इत्यादि आरम्भ किया व ठौर २ मिठाई व पकवान बननेलगे और नौबत बजने लगी श्रीरुक्मिणीजी ने अपने हाथ से लड़के के भालपर तिलक किया कि जिसको चित्रमुख अथवा मुखमण्डन अथवा मुरवट कहते हैं और आप शृङ्गार करके घोड़े पर चढ़ाया और जिस २ जगह जो २ नेग दान दक्षिणा का उचित था सो दशगुणा किया फिर ज्यौनार हुई असंख्य आदमी आये ब्राह्मणलोगों ने स्पर्द्धा व द्वेषके कारणसे इतनी मिठाई व पकवान लिया कि पोट बांध बांधकर घर लेगये फिर बरात की तैयारी हुई असंख्य रथ, घोड़े, हाथी व पालकी इत्यादि पर सुन्दर २ पुरुष लोग चढ़े जब बरात चली तो भगवत् ने नरसीजी का हाथ पकड़ के

आज्ञा किया तुम भी साथ चलो गुप्तमें यद्यपि हम साथ हैं परन्तु प्रकट में तुम सब कार्य करते रहो नरसीजी ने कहा कि महाराज ! आप जानें और आपका काम जाने मुझको ताल बजाना और आपका कीर्तन आता है सो यह काम जहां चाहो तहां लेलो भगवत् ने विचारा कि सिवाय भजन कीर्तन के नरसीजी से कुछ काम न होगा तो आपही सब कामों के अधिष्ठाता हुये और बरात समधी के नगरके समीप पहुँची उस समधी ने बरात के आने के पहले अपने आदमी भेजे थे कि दिन विवाह का आपहुँचा है जो लड़का और दो चार आदमी आते हों तो ले आवो उन लोगों ने जो बरात ऐसी भारी देखी तो लोगों से पूछा कि यह बरात किसकी है। बरातियों ने कही कि नरसीजी महात्मा की है वह लोग समधी के पास आये और बरात की भीड़ और शोभा का वृत्तान्त वर्णन किया समधी ने जो नरसीजी को कङ्गाल समझलिया था और कुछ सामान तैयार नहीं किया था उन लोगों से कहा कि क्या मेरी हँसी करते हो उन लोगों ने कहा हँसी नहीं सत्य कहते हैं तब तो समधी की बुद्धि उड़गई और जो ब्राह्मण टीका देआया था उसको देखने के निमित्त भेजा वह बरात को देखकर अत्यन्त प्रसन्न व आनन्द हुआ और आयके समधी से कहनेलगा कि इतनी बरात आती है कि तुम अपना सारा धन लगाने से घोड़ों को घास नहीं देसक्तेहो जिस ओर दृष्टि जाती है सिवाय बरात के कुछ नहीं देख पड़ता समधी घबराकर आप देखने को गया बरात को देखकर शोच में पड़ा, धन का अहंकार दूर हुआ, मर्याद रहनी कठिन समझी, लाचार व दीन होकर तिलक चढ़ानेवाले ब्राह्मण के चरणों में पड़ा कि अब मेरी मर्याद सिवाय तुम्हारे और किसीसे नहीं रहसक्ती वह ब्राह्मण उसको नरसीजी के पास लेगया उसने जातेही नरसीजी के चरण पकड़लिये और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि कृपा करो और मुझको और मेरी मर्याद को रखलो यह कहकर रोनेलगा व फिर चरण पकड़ लिये नरसीजी उससे मिले और भगवत् के दर्शन कराये और उसकी आश्वासन करी कि दोनों ओर की लज्जा व मर्याद इन महाराज के आधीन है यह समझाकर बिदा किया भगवत् ने आप दोनों ओर का कार्य सम्हाला और इस धूमधाम से विवाह हुआ कि वर्णन नहीं होसक्ता जब विवाह करके नरसीजी घर आये तब भगवत् द्वारका को पधारे और भगवद्भक्ति के प्रताप का यश सारे संसार में व्याप्त

हुआ यह प्रसंग नरसीजी का पढ़ सुनकर जिसको भगवत् चरणों में प्रीति उत्पन्न न होवे तो उससे अधिक भाग्यहीन और कोई नहीं क्योंकि यह चरित्र अच्छे प्रकार से बोध करता है कि भगवत् की शरण होनेसे कुछ चिन्ता संसार व परलोक की नहीं रहती आप भगवत् सब पूर्ण करते हैं ॥

कथा हरिदासजी की ।

स्वामी हरिदासजी सब शृङ्गार उपासकों के शिरमौर हुये और उपासना में दृढ़ धारणा जैसी उनको हुई उसका वर्णन नहीं होसक्ता अपने समय में अद्वैत थे सखीभावना ले अनुक्षण प्रिया प्रियतम के सुखसमाज और नित्यविहार में मिले रहते थे और प्रिया प्रियतम कुञ्जविहारी राधारमण राधाकृष्ण नाम जिह्वापर रहता था भक्ति का प्रताप यह था कि देश देश के राजा दर्शन की आशा करके द्वार पर रहते थे भगवत् भोग लगने के पीछे मयूर व बन्दर इत्यादि को देखते तो बड़ी प्रीति से भोजन करवाते इस भाव से कि नटनागर महाराज उनसे खेल व दिल्लगी करते हैं और जिनके कीर्तन और गानविद्या के सम्मुख गन्धर्व भी लज्जित थे कोई सेवक स्वामीजी के निमित्त अति उत्तम विष्णुतैल अर्थात् अतर बड़े परिश्रम से लाया उस समय स्वामीजी यमुना के पुलिन में बैठे थे शीशा लेकर सब अतर उस रेत में डालदिया उस सेवक को बड़ा दुःख व शोच हुआ और मन में कहनेलगा कि स्वामीजी ने मर्याद व गुण इस अतर का न जाना । स्वामीजी उसके मन की सब जानगये उसको कहा कि बिहारीजी महाराज के दर्शन करआवो । वह पुरुष जब मन्दिर में आया तो सारा मन्दिर सुगन्ध की लपट से भरा पाया और जब बिहारीजी के दर्शन किये तो भगवत् की पोशाक शिर से पांवतक सब अतर में भीगी देखी तब तो विश्वास हुआ और अपनी अज्ञानता से लज्जित होरहा । सब शीशा अतर भगवत् पर डालनेका हेतु यह है कि हरिदासजी ध्यान में भगवत् से होरी खेलते थे भगवत् ने हरिदासजी पर रङ्ग व गुलाल डाला स्वामीजी के हाथ में उस घड़ी यह शीशा अतर का आयगया कि रङ्गकी जगह उस शीशे को भगवत् पर डाल दिया । कोई एक पुरुष स्वामीजी के पास सेवक होनेको आया और पारसमणि भेंट की स्वामीजी ने जाना कि इसको पारसमणि बहुत प्यारी है जबतक उसमें से प्रीति न जायगी तबतक प्रिया प्रियतम में प्रीति कब होगी इस हेतुसे उसको आज्ञा दी कि यह पारसमणि यमुनाजी में डालदे उसने आज्ञा के अनुसार यमुना

में उस मणि को डालदिया परन्तु यह शोच मन में रहता था कि जो वह पारस रहता तो साधुसेवा और भगवत् के शृङ्गार की सामां की तैयारी अच्छेप्रकार होती। स्वामीजी ने देखा कि अवहीं उस पत्थर की प्रीति नहीं गई इसहेतु अपने साथ वन में लेगये और हजारों पारसपाषाण दिखलाकर कहा कि जितने त्रिलोकी के ऐश्वर्य और जितनी स्वाद की चाहना भीतर व बाहर की है सब भगवत् प्राप्ति के पन्थ के ठग हैं और जबतक सबओर से प्रीति दूर करके भगवच्चरणों में मन नहीं लगता तबतक भगवत् का परमानन्द प्राप्त नहीं होता इस हेतु सब ओर से मन को खींचकर भगवत् में लगाना चाहिये और जो पारसपाषाण प्यारा है तो जितना तुझको काम हो उठाले। वह सेवक चरणों में पड़ा और मन को एकाग्र करके भगवत् के भजन स्मरण में लवलीन हुआ। अकबर बादशाह ने तानसेन से पूछा कि तुम्हारा गुरु गानविद्या का कौन है? उसने स्वामी हरिदासजी को बतलाया। बादशाह को स्वामीजी के दर्शन की बड़ी उत्कण्ठा हुई और तानसेन के साथ तानपूरा लेकर दर्शन पाया तानसेन ने एक पद गाया और जानबूझके दो एक जगह तालस्वर में अशुद्ध किया स्वामीजी ने तानपूरा लेकर आप उस पद को गाया कि जितने लोग सुनते थे सब भगवत् स्वरूप में लय होरहे। जब बादशाह डेरे पर आया तब उसी पद के गानेकी आज्ञा तानसेन को दी जब उसने गाया तो जो रस स्वामीजी के मुख से पाया था सो न मिला कारण इसका तानसेन से पूछा उत्तर दिया कि स्वामीजी तो उसके साम्हने गाते थे कि जो सबका स्वामी और पालन करनेवाला है और मैं तुम्हारे साम्हने गाताहूं बादशाहने यह वचन उसका स्वीकार किया। विदाके समय स्वामीजी से बादशाह ने विनय किया कि कुछ सेवा की मुझको आज्ञा होय स्वामीजी ने कहा कुछ प्रयोजन नहीं जब बहुत हठ किया तो स्वामीजीने दिव्य ब्रजभूमि दिव्यनेत्र से बादशाह को दिखलाई कि वह वृत्तान्त धामनिष्ठा में लिखागया पीछे बादशाह चरणों में पड़ा व प्रार्थना की कि जो किसी सेवा के योग्य यद्यपि नहीं हूं परन्तु कुछ स्वल्पसेवा के निमित्त भी आज्ञा होय तो मैं कृतार्थ व धन्यभाग्य होजाऊं। स्वामीजी ने कहा कि पहले बन्दरों के निमित्त कुछ चना पहुँचता रहे, दूसरे ब्रजभूमि के वृक्ष और शाखा कोई काटने न पावे, तीसरे तुम फिर कबहीं हमारे पास न आना। बादशाह ने आज्ञा पालन किया॥

कथा रत्नावलीजी की।

रत्नावलीजी भगवद्भक्तों में राजी हुईं। भगवत्कथा, कीर्तन, सत्संग, उत्साह और भगवत् शृङ्गार में अनुक्षण लवलीन रहती थीं पति के स्नेह का तनक चिन्तन न था भगवत् प्रीति और भक्ति को मुख्य समझकर अपने विश्वास से चलायमान न हुईं अपने प्रेम और भक्ति को अच्छे प्रकार निबाहा सत्य करके अँधेरे घर की चांदनी हुईं। राजा मानसिंह आमेरके अधिपति तिसके छोटेभाई माधवसिंह तिसकी रानी थीं। एक सहेली भगवद्भक्ति में पगी हुई भगवत् का नाम नवलकिशोर, नन्द-किशोर, व्रजचन्द्र, मनमोहन व विहारीजी इत्यादि कहकर प्रेम से आँखों में जल भरलाती और प्रसन्न हुआ करती रानीजी ने जो भगवत्के नाम सुने तो स्नेह उत्पन्न होगया और सहेली से पूछा कि बारंबार किसका नाम लेती है जो मेरे मन को अपनी ओर बल से खींचते हैं। सहेली ने उत्तर दिया कि तुम क्या पूछती हो अपने सुख व सुहाग में लवलीन रहो भगवद्भक्तों की कृपा से यह अनमोल रत्न मुझको प्राप्त हुआ है रानी-जी को और अधिक प्रेम भगवत् का उत्पन्न हुआ और सहेली से पूछा कि किसी प्रकार वह मनमोहन महाराज मुझको भी मिलेंगे। सहेली ने जो प्रेम रानीजी का देखा तो भगवत् के चरित्र रानी को सुनाये और भगवद्भक्त जो रसिक व शृंगार उपासक हुए हैं तिनकी कथा कही। रानी जी ने उस सहेली का सेवा टहल करना छुड़ा दिया व गुरु के सदृश स-मझा और मर्याद बहुत करनेलगी और भगवच्चरित्र दिनरात सुना करती जब अच्छे प्रकार मन भगवत् के चरित्रों में लगा तो दर्शनों की चाहना हुई और सहेली से कहा कि ऐसा कुछ उपाय करना चाहिए जिसमें भगवत् के दर्शन होयँ कि प्राण सुखी रहें क्योंकि वह मनमोहन मनमें समागया है। सहेली ने कहा कि उसके दर्शन बहुत कठिन हैं हजारों ऋषीश्वर इत्यादि घरबार व राज ऐश्वर्य त्याग करके धूर में लोटते हैं और दर्शन नहीं पाते परन्तु प्रेम से वह मिलता है सो तुम भक्ति और भाव से भगवत् सेवा अङ्गीकार करो और शृंगार व रागभोग में लवलीन रहा करो। रानीजी ने नीलमणि का स्वरूप भगवत् का विराजमान किया और बड़ी भक्ति और भाव से सेवा में लीन हुईं भांति २ के शृंगार और रागभोग और नानाप्रकार के लाड़ लड़ाने को आरम्भ किया थोड़े दिन में उस पदवी को पहुँच गईं कि स्वप्न में भगवत् से बातचीत हुआ करती

निश्चयकर करोड़ों उपाय और योग यज्ञ व तप व दान इत्यादि से प्रेम की राह कुछ निराली है पीछे यह काङ्क्षा हुई कि भगवत् के साक्षात् दर्शन होवैं उसी सहेली से मन की बात कही। उसने उत्तर दिया कि अपने महल के निकट एक मकान बनवाओ और चारों ओर अपने मनुष्य सावधान करो कि जो कोई भगवद्भक्त व साधु आया करें उनको ले आकर उस मकान में टिकाया करें और भोजन इत्यादि की सेवा अच्छे प्रकार होती रहे और तुम परदे में बैठकर उनके दर्शन किया करो इस उपाय से विश्वास है कि ब्रजकिशोर महाराज के दर्शन होजावेंगे। रानीजी ने वैसाही सब किया और साधुसेवा में विरहिन व प्रेम मतवालियों की भांति दिन काटने लगीं। एकबेर निज ब्रजभूमि के रहनेवाले साधु आय गये कि युगलकिशोर महाराज के रँग में रँगे हुये थे उनके दर्शन और बोल बतरान से रानी थकित होगईं और सहेली से पूछा कि इस शरीर में वह कौन अङ्ग है कि जिसकी लज्जा से सत्संग व साधुसेवा में व्यवधान पड़ता है मेरे देखने में सब अङ्ग बराबर हैं भगवत् स्वरूप के रस से परम आनन्द के रस में मग्न होना यही सार है और सब असार और तुच्छ है यह कहकर जहां भगवद्भक्त थे तहां चली आईं उस सहेली ने मना भी किया पर न माना आयकर चरण पकड़के दण्डवत् किया और बड़ी दीनता व अधीनतापूर्वक अपने हाथ से भोजन कराने और सेवा करने का मनोरथ करके विनय किया कि जो आज्ञा होय सो करें उस समय के प्रेम की दशा रानीजी की लिखने व वर्णन करने में नहीं आय सकी और किस प्रकार वर्णन होसके कि प्रेम से नेम नहीं रहता अपने हाथ में सोने का थाल भगवत् प्रसाद को लेकर सबको भोजन कराया और पान दिया और चरणों में पड़ी। हरिभक्त यह सेवा और प्रेम रानीजी का देखकर प्रेमसे विह्वल होगये जब सब परदा व संकोच रानीजी ने उठा धरा तो नगर में शोर हुआ और लोग देखने को आये महल पर मुसद्दी तैनात था उसने राजा को सब वृत्तान्त लिखा कि रानीजी ने निर्भय होकर सब लज्जा को दूर किया और मुण्डी अर्थात् वैरागियों के साथ बैठती हैं। राजा ने जो पत्र पढ़ा और हलकारे की जबानी सब सुना तो जल बल कर भस्म होगया संयोगवश कुँवर प्रेमसिंह जो रत्नावली के पेट से जन्मा था अपने बाप को सलाम करने इस स्वरूप से आया कि भाल पर तिलक और गले में कण्ठी व माला थी जिस समय आयकर सलाम किया व

लोगों ने साधुओंके स्वरूप से कुँवरके आनेका वृत्तान्त निवेदन किया तो माधवसिंहने उस कुँवरको मुण्डी के अर्थात् वैरागिन का बेटा कहा और यह कहकर महल में चलागया। प्रेमसिंहको अपने बापके क्रोध करनेकी चिन्ता उत्पन्न हुई लोगों से कारण पूछा सब वृत्तान्त समझने पीछे विचार किया कि जो हम साधु हैं तो इससे अच्छा और क्या है भगवद्भक्ति अङ्गीकार करनी चाहिये। अपनी माता को लिख भेजा कि जो तुम्हारी प्रीति भगवच्चरणोंमें सांची है तो राजाने आज सभामें हमको मुण्डीका कहा है उसको सत्य करना चाहिये और मृत्युको शिरपर पहुँचा जानकर किसी प्रकारका शोच योग्य नहीं। रानीने वह पत्री पढ़ी और भगवद्भक्ति के रंग में रंगीन होकर उसी घड़ी शिरके केश जो अतर फुलेल से भीजे थे दूर किये और पहले साधुओंको भोजन इत्यादि सेवा करके महलोंमें चलीजाती थी उस दिनसे महल का जाना बन्द किया साधुसेवा के स्थान में रहने लगी और राजाकी ओर से जो कुछ खर्च के निमित्त बंधान था तिसका लेना छोड़ दिया और अपने पुत्र प्रेमसिंह को लिख भेजा कि आज मुण्डी होगई तुम आनन्द से रहो। प्रेमसिंह बहुत आनन्दित हुये लोगों को इनआम दिया और नौबत बजवाई। राजा माधवसिंह ने लोगों से पूछा कि आज कुँवर प्रेमसिंह को किस बात की खुशी है। लोगोंने कहा कि पहले तो रानीजी ने मुण्डी का स्वांग बना रक्खा था अब आपने जो कुँवर प्रेमसिंह को मुण्डी का कहा तो रानीजी सच्ची मुण्डी होगईं और केश शिरके दूर किये। राजा सुनकर महाक्रोध में आया और कुँवर व उसकी माता का घातक शत्रु होगया व हथियार बाँधकर फ़ौज लेकर कुँवर के मारने के निमित्त सवार हुआ। कुँवर ने जो यह वृत्तान्त सुना तो वह भी युद्धपर आरूढ़ होगया और संयोग मारकाट की निकट पहुँच गई थी कि राजमन्त्रियों ने राजा को समझाया कि बेटे पर मारने की कमर बांधनी उचित नहीं बड़ा दुर्यश सारे संसार में होगा और उधर कुँवर प्रेमसिंह को समझाया कुँवर ने उत्तर दिया कि संसार के विषय भोग के हेतु हज़ारों लाखों शरीर धारण किये फिर वे शरीर जाते रहे जो एकबेर भगवत् की राह में यह तन जाय तो इससे दूसरा क्या उत्तम है? राजमन्त्रियों ने चरण पकड़लिये और विनय व प्रार्थना की तब यह ठहरी कि जो माधवसिंह कमर खोलकर अपने मकान पर चलाजावे तो हमको भी विना प्रयोजन युद्ध करना अङ्गीकार नहीं है सो ऐसा ही हुआ। रात्रिके समय राजा माधवसिंह रानीके मारनेके

हेतु दिल्ली से कूच करके अपने नगर में आया और लोगोंसे सब वृत्तान्त सुनके अपने महल में गया। मन्त्रियों से मन्त्रणा किया कि रानी ने हमारी नाक को काटलिया ऐसी स्त्री के वध करने में कुछ पाप नहीं होता सो वध करना चाहिये। एक बुद्धिमान् ने मन्त्र दिया कि तरवार इत्यादि से मारना उचित नहीं जहां रानी रहती हैं तहां नाहर को छोड़वादो कि रानीको मार देवेगा। सबको यह मन्त्र पसंद हुआ और प्रभात को यह बात करी उस समय रानी भगवत्सेवा करके उठी थीं और भगवद्रूप के प्रेम का जल आंखों में था। उस सहेली ने कहा कि देखो नाहर आया। रानी ने देखकर कहा कि यहां नाहर का क्या काम है? नृसिंहजी पधारे हैं और अत्यन्त भक्तिभाव से सम्मुख आई दण्डवत् व विनय करके कहा कि आज धन्य मेरे भाग्य हैं जो दर्शन दिये भगवत् ने जो यह शुद्धभाव देखा तो उस नाहरही में अपना नृसिंहरूप दिखाया रानीजी ने पूजन किया और फूल व माला इत्यादि अर्पण करके आरती को किया भगवत् ने विचारा कि पूजा को तो करालिया परन्तु काम भी तो नृसिंह का करना चाहिये इस हेतु नृसिंहजी के सदृश कि हिरण्यकशिपु के मारने के समय खम्भ से भयंकर-रूप प्रकट हुये थे मन्दिर से बाहर आये और जो लोग विमुख थे उनको मारकर निकल गये। माधवसिंह को यह सब सुनने में आया और रानी का वृत्तान्त सुना कि ज्यों की त्यों भजन में आनन्द हैं तबतो विश्वास हुआ व अधीन होकर आया भूमि में गिरकर सांष्टाङ्ग दण्डवत् किया। उस सहेली ने विनय किया कि राजाजी दण्डवत् करते हैं। रानीजी ने कहा कि लालजी महाराज को दण्डवत् करें। फिर विनय किया कि एक निगाह देखनी चाहिये। उत्तर दिया कि ये आँखें एकओर लगी हैं दूसरी ओर निगाह नहीं होसक्ती। राजा ने हाथ जोड़कर विनय किया कि राज्य व खज़ाना सब आपका हैं जो मन में आवे सो करो। रानीजी ने कुछ साव-धान होकर उत्तर न दिया भगवद्भजन में लगीरहीं। एकबेर राजा मान-सिंह व माधवसिंह दोनों एक बड़ी गहिरी नदी के पार जाते थे नाव डूबने लगी और मल्लाह बेवश होगये दोनों घबराये और राजा मानसिंह ने माधवसिंह से कहा कि अब कौन उपाय करना चाहिये। माधवसिंह ने रानी की भक्ति का वृत्तान्त सब कहा और फिर ध्यान रानीजी का किया उसी घड़ी नाव किनारे पर लगि गई और दोनों का मानो नया जन्म हुआ। राजा मानसिंह को बड़ी चाह दर्शन की हुई जब आया तो पहले रानीजी

के दर्शन को गया दीन व अधीनता से बिनती करी और मन में दृढ़ विश्वासयुक्त हुआ ॥

कथा निषाद की ॥

भीलोंके राजा निषाद की कथा सब रामायणों में विस्तार करके लिखी है यहां सूक्ष्म करके लिखी जाती है। जब श्रीरघुनन्दनस्वामी दशरथ महाराज की आज्ञा से वन को गये तब शृङ्गवेरपुर में कि अब सीरौर विख्यात है वहां के राजा गुहनामा निषाद थे तहां पहुँचे। निषाद रघुनन्दन स्वामी के आगमन का समाचार सुनतेही भेंट व नज़र लेकर आये और रूप अनूप व छवि माधुरी का दर्शन करके मन व प्राण से आसक्तरूप होगये और उसी घड़ी से सिवाय उस रूप और दर्शन के कुछ सुधि अपने व बिराने की न रही जब रघुनन्दनस्वामी चित्रकूट को पधारे और निषाद को बिदा किया तो बेसुधिबुधि होकर उसी रूप के ध्यान में रहनेलगे जब भरत महाराज रघुनन्दनस्वामी से मिलने के निमित्त चित्रकूट को चले और निषाद को समाचार पहुँचे तो संदेह हुआ कि मेरे स्वामी व परम प्रियतम से लड़ने के हेतु यह सेना जाती है तब प्राण देने को उद्यत होगये और तनक भय उस सेना कटीली का न किया फिर जो वृत्तान्त भक्ति और मनकी निष्कपटता भरतजी का जाना तो भरतजी से मिले और चित्रकूटतक साथ चलेगये जब वहां से फिर आये तो भगवत् के वियोग से ऐसे विकल व बेचैन हुये कि रोते रोते आँखों से रुधिर बहने लगा और उस भगवत् ध्यान में अपने और बिराने की सुधि जातीरही फिर मन में विचार करनेलगा कि मुझसे मीन इत्यादि जन्तु जल के हज़ारगुना अच्छे हैं कि अपने प्राणप्रियतम से बिछुड़ते ही मरजाते हैं नितान्त फिर दर्शन मिलने की आशा करके रहे परन्तु यह न हुआ कि इन आँखों से सिवाय उस रूप अनूप के और भी कुछ देखना चाहिये इसहेतु आँखें बन्द करके उसी रूप के चिन्तवन और ध्यान में रहे। चौदह वर्ष पीछे जब रघुनन्दनस्वामी आये तो विश्वास न आया और कहने लगे कि ऐसे मेरे भाग्य कहां हैं कि फिर भी उस रूप को इन आँखिन से देखूं। श्रीरघुनन्दनस्वामी अपार प्रीति देखकर आप आये और उठाकर अपनी छाती से लगाया उस घड़ी निषाद ने आँखें खोलीं और अपने स्वामी परम प्रियतम के दर्शन करके दोनों लोक में कृतार्थ हुये ॥

कथा बिल्वमङ्गल की ॥

बिल्वमङ्गलजी श्रीकृष्णस्वामी की कृपा के पात्र आनन्दस्वरूप परम भागवत हुये । करुणामृत व गोविन्दमाधवग्रन्थ और स्फुट स्तोत्र संस्कृत में ऐसे रचना किये कि रसिकभक्तोंको हार और माला के सदृशहैं । चिन्तामणि के संग को पाकर व्रजसुन्दरियों के विहार व परम आनन्द को वर्णन किया । दक्षिणदेश में कृष्णबेणानदी के निकट के रहनेवाले थे और चिन्तामणिनाम वेश्याके प्रेम में ऐसे आसक्त थे कि संसार की लज्जा शरम छोड़कर दिनरात उसीके प्रेम में फँसेहुये उसीके घर रहाकरते थे । जातिके ब्राह्मण थे । पिता के श्राद्ध के दिन कर्म करते और ब्राह्मण जिमाते दिन थोड़ा रहगया विकल होकर चले वह वेश्या कि नदी के उस पार रहती थी जब नदी पर पहुँचे तो बाढ़पर देखा और नाव इत्यादि उतरने की सामां कुछ न पाई तो अत्यन्त बेचैन हुये और विना अपने प्रेमी के जीना व्यर्थ समझकर नदी में कूद पड़े कुछ सुधि अपने व बिराने की न थी उसी वेश्या के मिलने का ध्यान था जब नदी में डूबनेलगे तो एक मृतक वहां बहा जाता था उसको पकड़लिया और विचारा कि उसी महबूब ने नाव भेजीहै उस पर चढ़कर किनारे पहुँचे वहां से गिरते पड़ते बड़े वेगसे उस वेश्या के द्वारपर पहुँचे आधी रात थी व द्वार बन्द था भीतर जाने की चिन्ता में हुये संयोगवश एक सर्प लटकरहा था विचारा कि उस महबूब ने कृपा करके चढ़ने के वास्ते डोर को लटकाय दिया है उसको पकड़कर मकान की छत पर चढ़गये और वहां से जब उतरने की राह न पाई तो आंगन में कूदपड़े शब्द सुनकर वेश्या और उसके घरके लोग जगे दीपक बार कर देखा तो बिल्वमङ्गलजी हैं स्नान करवाया व सूखे वस्त्र पहिनाये पूछा कि किसप्रकार आये ? उत्तर दिया कि तुमने नदीपर नाव को भेज दिया व द्वार पर डोर लटकाय दी उसी के अवलम्ब से आया हूँ । वेश्या ने छत पर चढ़कर देखा तो अजगर लटक रहा है वह वेश्या अत्यन्त क्रोध करके कहने लगी कि जिस प्रकार मेरे शरीर पर कि केवल मांस व चमड़ा है मन को लगाया है इसी प्रकार श्यामसुन्दर सब शोभा के धाम जो व्रजनागर महाराज हैं उनसे क्यों नहीं मन को लगाता कि इस संसारसमुद्र से पार होजावे और दोनों लोक शुद्ध होयँ मैं तो प्रभातही से युगलकिशोर महाराज का स्मरण भजन करूंगी तुझको तेरे आधीन है जो चाहे सो कर । बिल्वमङ्गलजी को यह बात ऐसी लगी कि हिये की आँखैं खुलगईं और

श्रीव्रजचन्द्र की रूपमाधुरी ने तुरन्त हृदय में प्रकाश किया और उसी घड़ी रूपमाधुरी का रस ऐसा मनोवाञ्छित पाया कि परम आनन्द में मग्न होगये वह रात तो भगवच्चरित्र और वृन्दावन की कुञ्जन और शोभा के कीर्तन में व्यतीत हुई प्रभात होते दोनों अपनी २ राह को लिया। मन में परम शोभाधाम का स्वरूप और जिह्वा पर नाम और आंखों में प्रेम का जल था बिल्वमङ्गलजी माध्वसंप्रदाय में सोमगिरिनामे संन्यासी के सेवक हुए और भगवत् के रूप अनूप की चिन्तवन करते हुये हजारों श्लोक रसचरित्र व भगवत् के ध्यानके गुरुसे पढ़े और आप रचना किए एक वर्ष पर्यंत गुरु की सेवा में रहे पीछे श्रीवृन्दावन के दर्शन की चाह हुई उसी प्रेम में मतवाले चले राह में रहे एक नदी के किनारे पहुँचे वहां स्त्रियां सब स्नान कर रही थीं एक स्त्री परम सुन्दरी को देख कर आसक्त होगये और अपने वेष को भूलकर उसके पीछे हो चले वह तो अपने घर में चली गई और बिल्वमङ्गलजी देखने की चाह में द्वारपर खड़ेरहे। इस स्त्रीका पति भगवद्भक्त था एक परम भागवत को अपने द्वार पर खड़ा देखकर अपनी स्त्री से वृत्तांत पूछा उस स्त्री ने वृत्तांत आसक्त होने और साथ आने का वर्णन किया। उस भक्त ने बिल्वमङ्गलजी को हाथ जोड़कर विनय किया कि मेरे गृह में पधारिये कि चरण पड़ने से मेरा गृह पवित्र होय और सेवा करके दोनों लोक में धन्यता को प्राप्त होऊं। उसे अपने घर लेगया अटारी पर टिकायकर बड़ी प्रीति से सेवा की अपनी स्त्री से कहा कि शृङ्गार करके सब प्रकार से सेवा कर कि भगवद्भक्तों की सेवा से भगवत् बहुत शीघ्र मिलते हैं। वह स्त्री शृङ्गार करके और थाल में भगवत् प्रसाद लेकर बिल्वमङ्गलजी की सेवा में पहुँची। बिल्वमङ्गलजी ने उसको देखकर और उन की भक्ति व साधुसेवा को विचार करके अपने मन आसक्त को सावधान किया और जाना कि सब उपाधि व बखेड़े का कारण ये मेरी आंखें हैं जो ये न होतीं तो काहेको मन आसक्त होता, उस स्त्री से कहा कि दो सूई ले आओ सो वह ले आई और बिल्वमङ्गलजी ने उन दोनों सूइयों से अपनी दोनों आंखों को अंधी करलिया वह स्त्री डरी हुई और कांपती अपने पति के पास आई वृत्तांत कहा वह भक्त आया चरण पकड़ कर अत्यन्त विकल होकर बोला कि, महाराज! हमसे क्या अपराध हुआ कि जिस कारण आपको यह क्लेश हुआ। बिल्वमङ्गलजी ने उसका आश्वासन करके कहा कि तुम्हारी साधुता व भक्ति में कुछ सन्देह नहीं

हमारीही साधुता में भेद है। उसने विनय किया कि कुछ दिन आप रहें कि सेवा करके कृतार्थ होऊं। बिल्वमङ्गलजी ने कहा कि तुमने ऐसी सेवा करी है जो किसी से नहीं हो सकती अब तुम भगवद्भजन करो यह कहकर चले ऊपरकी आंखों को दूर करकें भीतर की आंखों से काम रक्खा। वृन्दावन में पहुँचे एक वृक्ष के नीचे बैठकर भगवत् के ध्यान और भजन में लवलीन हुये भगवत् ने देखा कि मेरा भक्त भूखा और प्यासा है आप आये और महाप्रसाद भोजन कराया जिस जगह बिल्वमङ्गलजी बैठे थे वहां धूप आगई भगवत् ने कहा कि चलो तुमको छांह में बैठाल देवें सो हाथ पकड़ कर घनी छाया में लेगये बिल्वमङ्गलजी महाप्रसाद के भोजन व मधुर बोलन और कोमल हाथ के स्पर्शन से जानगये कि आप हैं इस हेतु हाथ पकड़ लिया और छोड़ने को मन न चाहा। भगवत् ने छुड़ाने के हेतु बल किया तो बिल्वमङ्गलजी ने भी बल किया नितान्त भगवत् हाथ छुड़ाकर लम्बे हुए व बिल्वमङ्गलजी ने कहा कि भला इस घड़ी तो बरिआई आपकी चल निकली अब मन में पकड़ता हूँ देखूँगा कैसे भाग जाओगे सो ऐसाही किया अर्थात् सब ओर से मनको बटोर के एक श्रीव्रजचन्द्र महाराज के रूप और ध्यान में ऐसा चित्त लगाया कि जो योगियों के मनसे भी निकल जाता है सो बिल्वमङ्गल के मन में दृढ़ होकर स्थित हुआ जब अच्छेप्रकार मनको दृढ़ता होगई तो वनसे उठकर वृन्दावन में आये और चाह यह हुई कि जो आंखें होतीं तो भगवत् के कुंजमहल के विहारस्थान और भगवत् के श्रीविग्रहों का दर्शन करते। भगवत् ने उनके मन की रुचि जानकर पहले तो उस बांसुरी की ध्वनि कि जो योगमाया की भी माया है सुनाई और परमानन्द में पूर्ण किया व फिर दोनों आंखों को प्रकाशवान् करदिया जैसे सूर्य के उदय से कमल खिलजाते हैं। बिल्वमङ्गलजी ने बेलि और लता और कुञ्ज व विहारस्थान भगवत् के दर्शन किये और फिर भगवत् श्रीमूर्तियों का रूप शोभायमान् देखकर अधिक चाह व तृष्णा ध्यान के रूप माधुरी की हुई क्योंकि उस परम अनूप रूप का सुख ऐसा नहीं कि तृप्त होय बरु जितना प्रकाश हृदय में करता जावे तितना ही अधिक तृष्णा व चाह को बढ़ाता है। बिल्वमङ्गलजी ने करुणामृत रसग्रन्थ और कई स्त्रोत्र ऐसे ऐसे रचना किये कि जिनसे मन युगल स्वरूप में लगजाता है। करुणामृत ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में जो पहले नाम चिन्तामणि पीछे नाम अपने गुरुका लिखा तो इसमें दो बात जानी

जाती हैं एक तो यह कि पहले उपदेश चिन्तामणि से हुआ इस हेतु उसको प्रथम गुरु करके जाना व पहले नाम उसका लिखा दूसरे यह कि भगवद्भक्त थोड़े से उपकार को भी बहुत मानते हैं इस हेतु यद्यपि वह वेश्या थी परन्तु उसका उपकार इतना माना कि गुरुसे भी अधिक उसको विचार किया और जयपद उसके निमित्त धरे उस चिन्तामणि बड़भागिनी ने बिल्वमङ्गलजी का वृत्तान्त सुना कि भगवत् के दर्शन हुये और परमभक्त होगये हैं पहले प्रेम का नाता विचार करके वृन्दावन में आई बिल्वमङ्गलजी उसको देखकर उठे और बड़ा सत्कार व आदर भाव किया दूधभात का दोना निज प्रसाद का भोजन के निमित्त आगे धरा चिन्तामणि ने पूछा कि यह भोजन कहां से आया है। बिल्वमङ्गलजी ने कहा भगवत् कृपा करके देते हैं। चिन्तामणिने कहा कि यह महाप्रसाद भगवत् ने तुमको कृपा करके दिया है जो मुझको कृपा करके अपने हाथ से देंगे तो लेऊंगी यह कहके भगवद्भजन में लगी। भगवत् ने जो प्रीति अपार चिन्तामणि की देखी तो परमप्रीति और कृपासे आप दोना दूध व भात का चिन्तामणि के निमित्त लाये कि जिसकी ब्रह्मादिक भी बड़ी चाहना से कृपाकटाक्ष जोहते रहते हैं व दर्शन देकर कृतार्थ किया॥

कथा सूरदास मदनमोहन की॥

सूरदास मदनमोहन ब्राह्मण सूरध्वज किसी सखी का अवतार परम भक्त माध्वसंप्रदाय में हुये यद्यपि मुख्यनाम उनका सूरदास था परन्तु श्रीमदनमोहनजी महाराज में प्रेम और स्नेह अत्यन्त रखते थे इस हेतु नाम सूरदास मदनमोहन उनका विख्यात हुआ बाहर भीतर की आंखें कमल के सदृश प्रफुल्लित थीं और गानविद्या व काव्य की रचना में बहुत अभ्यास रखते थे प्रियाप्रियतम के जो गोप्य चरित्र हैं उनके परमानन्द और सुख और रसके अधिकारी हुये और नव रसों में जो शृङ्गाररस मुख्य और पहले है उसको अपनी कविताई में अच्छा वर्णन किया। कविताई उनकी तुरन्त मुखसे निकलते के साथ विख्यात होजाती थी एक दिन में चारसौ कोसतक पहुँचजाती थी मानो वह काव्यही पङ्ख उड़ने को बांधलेती थी। पूर्वके ज़िलों में बादशाह की ओरसे सन्दीले के सूबेदार थे बाज़ार में खांड़ साफ दिव्य देखी विचार में आया कि मदनमोहन महाराजके मालपुआ के योग्यहै ख़रीद करने के निमित्त आज्ञा दी सेवकों ने कहा कि इसके दामसे बीसगुणा ख़र्च किराये का पड़ेगा और वृन्दावन

तक मिश्रीसेभी अधिक महँगी पहुँचेगी सूरदासजी ने कहा कि ख़र्च का कौन वर्णन है भगवत्प्रीति पर दृष्टि चाहिये सब गाड़ियों में भरवाकर भेजा संयोगवश वृन्दावन में रात के समय पहुँची मन्दिर के पुजारियों ने भण्डारे में रखवाली कि प्रभात को भोग लगावेंगे भगवत् कि अपने भक्त के भेजे सौग़ात का बाट जोहिरहे थे भूख के कारण भोरतक धैर्य न धर-सके गोसाईंजी को स्वप्नमें आज्ञा दी कि इसीघड़ी मालपुआ बनैं सो बना और भोग लगा तब संतुष्ट होकर शयन किया धन्य है यह भक्तवत्सलता कि जिसकी माया कोटानकोट ब्रह्माण्ड को एक क्षण में ग्रास करलेती है सो ईश्वरभक्त के वश होकर क्षुधा व संतुष्टता प्रकट करता है सूरदासजी ने एक विष्णुपद के तुक में वर्णन किया कि भगवद्भक्तों की जूती का रक्षक यह पदवी मुझको मिले किसी साधु ने परीक्षा के हेतु सूरदासजी से कहा कि हम मदनमोहनजी महाराज के दर्शन करआवें हमारे जूतेकी रखवारी करते रहो। सूरदासजी ने वहुत प्रसन्न होकर साधुकी जूती को अपने हाथ में उठालिया और कहनेलगे कि आजतक तो इस कार्य में बातही की जमाख़र्च थी परन्तु आज मेरी वाञ्छा पूरी हुई कि यह सेवा मिली। गोसाईंजी ने कईबार बुलाया नहीं गये विनय कर भेजी कि साधु के चरण सेवा करें पीछे दर्शन को पहुँचूंगा। गोसाईंजी और साधु इस विश्वास पर अत्यन्त प्रसन्न हुये। संदीलेके सूबेसे तेरह लाख रुपया तहसील होकर आया सब साधुसेवा में ख़र्च करदिये और कुछ डर हिसाव व बादशाह का न किया। जब बादशाह के सेवकलोग रुपया लेने के निमित्त आये तो सन्दूक़ कंकरों से भरकर सब सन्दूक़ों में एक एक पुरजा लिखकर डाल-दिया उसमें यह लिखाथा (तेरहलाख संदीले उपजे सब साधुन मिलि गटके, सूरदास मदनमोहन आधीरात सटके) और हरएक सन्दूक़ पर अपनी मुहर करके आधीरात को भागगये जब सन्दूक़ खोली गई तो कङ्कर निकले बादशाह ने पुरजों को पढ़कर कहा कि गटक अर्थात् खाना तो अच्छा हुआ परन्तु सटक अर्थात् भागजाना अच्छा न हुआ और साधु-सेवा व उदारता को समझकर प्रसन्न हुये व एक फ़रमान क़सूर के माफ़ होनेका और हाज़िर होनेके निमित्त भेजा। सूरदासजी ने उज़र लिख-भेजा कि अब आमिली और सूबेदारी से श्रीवृन्दावन की गलियों में झाड़ूदेना सहस्रगुण बड़ाई है। टोड़रमल दीवान ने विनय किया कि जो इसी प्रकार लोग माल वाजिब सरकार का ख़र्च करके भागजावेंगे तो सब

इन्तिज़ाम जाता रहेगा उनकी गिरफ़्तारी का हुक्म जारी कराया और क़ैदखाने में भेज दिया। सूरदासजी ने एक दोहा लिखकर बादशाह के पास भेजदिया उसमें बादशाह की श्लाघा और क़ैद का दुःख और अपना हाल थोड़े में लिखा था। बादशाह ने उसी घड़ी छोड़दिया छूटे तब वृन्दावन में आकर श्रीव्रजकिशोर किशोरी के ध्यान में मग्न रहे॥

कथा अग्रदास की॥

स्वामी अग्रदासजी चेले कृष्णदास पयआहारी की तीसरी पीढ़ी में रामानन्दजी के परमभक्त हुये और उनकी संप्रदाय माधुर्य उपासक विख्यात है जो कथा से कोई चरित्र माधुर्य व शृङ्गार की नहीं जानने में आती हो इस हेतु से इस निष्ठा में लिखी ऐसे भजनानन्दी थे कि एक पल व एक क्षण भी विना भजन व चिन्तवन नहीं बीतता था प्रभात से उठकर भगवद्भक्तों की रीति जैसी होती है आचार व कृपा से श्री सीतापति अवधविहारी की सेवा व स्मरण में रहते और अपने वचन अमृत की वर्षा से सबको ऐसा आनन्द देते कि जिस प्रकार घटाकी वृष्टि सब पर बराबर होती है। सिद्ध ऐसे हुये कि नाभादास ग्रन्थकार जन्म के अन्धे तिनके नवीन नेत्र करदिये और समुद्र से डूबता हुआ जहाज़ बचाया कि यह दोनों बातें ग्रन्थ के आरम्भ में लिखी गईं। जानकी महारानी के साक्षात् दर्शन हुए। वैराग्य इतना था कि सब कारबार संसारी त्याग करके गलताजी में जोकि आमेरके निकट हैं तहां भजनमें लवलीन हुये फुलवाड़ी को अपने स्वामी का विहारस्थान समझकर आप अपने हाथों से झाड़ू देते व उज्ज्वल किया करते यद्यपि सैकड़ों बाग़वान व नाभा ऐसे २ चेले सब सेवा में थे परन्तु किसी को अपनी सेवामें साझी नहीं करते। एक दिन झाड़ू देकर पत्ते व कूड़ा टोकरी में लेकर बाहर डालने को निकले थे कि महाराजा मानसिंह आमेरके अधिपति दर्शन के निमित्त आये स्वामीजी भीड़ देखकर फुलवाड़ी में न गये बाहर एक वट के वृक्ष के नीचे बैठरहे जब विलम्ब हुआ तो नाभाजी गये और दण्डवत् करके प्रेम में भरे हुये खड़े हो रहे कुछ कह न सके। राजा ने बहुत बेर तक बाट जोही फिर उठकर जहां स्वामीजी बैठे थे तहां गया दर्शन व दण्डवत् किया फिर विदा हुआ स्वामीजी के भीतर न जाने का अभिप्राय यह था कि इस वृक्ष के नीचे छोटे बड़े सबको बराबर दर्शन होंगे और भीतर बड़े लोगों को दर्शन होंगे और छोटे लोगों को दर्शन न होंगे और यह भी विचार किया कि भीतर बैठने से राजा बहुत बेर तक

रहेगा वृक्ष के नीचे धूलि इत्यादि में बहुत बेरतक न रहेगा चला जावेगा। धनाढ्य लोगों का संग जितना ही थोड़ा हो तितनाही अच्छी बात है ॥

कथा स्वामी कील्हदास की ॥

स्वामी कील्हजी चेले कृष्णदास पयआहारी के माधुर्य और शृङ्गार उपासक परम भागवत स्वामी अग्रदासजी के गुरुभाई हुये। दिनरात श्रीरघुनन्दनस्वामी के चरण कमलों के ध्यान में मग्न रहते थे जिनका निर्मल यश अबतक सारे संसार में विख्यात है। भगवद्भजन में शूरवीर और सांख्ययोग के मुख्य तात्पर्य के जाननेवाले हुये भीष्मपितामह के सदृश मृत्यु अपनी इच्छा के आधीन किये थे ऐसी सिद्धता पर प्रेम व नम्रता का यह वृत्तांत था कि सबको आप प्रणाम किया करते। सुमेरुदेव उनके पिता गुजरात में सूबा थे जब उनका परलोक हुआ तो विमान पर चढ़कर परमधाम को चले उसी घड़ी कील्हदासजी मथुरा में राजा मानसिंह के पास बैठे थे विमान को देखकर उठे और दण्डवत् करके कहा कि अच्छा हुआ अच्छा हुआ। राजा ने पूछा कि किससे बात करते थे। कील्हदासजी ने पहिले छिपाया जब राजा ने हठ किया तो जो वृत्तांत था सो कहदिया। राजा ने हरकारा भेजकर दिन घड़ी सब समझा ठीक उतरा तो दण्डवत् किया व विश्वास दृढ़ किया। एक बेर कील्हदासजी भगवत्पूजन करते थे और पिटारी फूलों की रक्खी थी उसमें फूल लेने के निमित्त जो हाथ डाला तो सांप ने अँगुली में काटा। कील्हजी ने जाना कि सांप तृप्त नहीं हुआ उसको कहा फिर काट सो तीनबेर कटवाया तनक विष न भीना जब परमधाम जाने की इच्छा करी तो भगवद्भक्तों का समाज किया और दर्शन व सत्संग करने के पीछे दशवां द्वार अर्थात् ब्रह्माण्ड तोड़कर देह त्याग किया कि योगीजन भी यह वृत्तान्त सुनकर चकित हुये व सब भक्तों को विश्वास हुआ ॥

कथा गोपालभट्ट की ॥

गोपालभट्ट व्यङ्कटभट्ट के पुत्र श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चेले ब्राह्मण परमभागवत हुये। माधुर्य और शृङ्गार उपासना में ऐसे पगे हुये थे कि वृन्दावन में उस अमृतरस का स्वाद उन्हीं को प्राप्त हुआ जिनके प्रभाव करके सहस्रों को भगवत् की प्राप्ति हुई भागवतधर्म के प्रवृत्त करनेवाले और भगवद्भक्ति के रूप हुये कि सिवाय गुण के किसी का अवगुण दृष्टि में न आया धन सम्पत्ति सब छोड़कर वृन्दावन में वास

किया और सदा रसरास और परमशोभा में व्रजकिशोर महाराज के मग्न रहते थे। भगवद्भक्त भावना महाराज उनकी भक्ति और सेवा के वश में ऐसे थे कि अत्यन्त प्रसन्न होकर शालग्रामी मूर्ति स्वरूप अपना प्रकट किया अर्थात् सेवा के समय एकबेर उनको शालग्रामजी में यह चिन्तना हुई कि जिस प्रकार भगवत् का शृङ्गार ध्यान में कियाजाता है व प्रकट उसीप्रकार हुआ करे तो अच्छा है भगवत् ने अपने भक्त के मनोरथ पूर्ण करने के लिये शालग्राम से मूर्तिस्वरूप अपनी परम शोभायमान को वैशाखसुदी पूर्णमासी को प्रकट किया। भट्टजी ने मन्दिर में विराजमान करके राधारमण नाम विख्यात किया कि वृन्दावन में प्रसिद्ध व विख्यात है और चिह्न आधेभाग शालग्राम का चरण के नीचे और आधे का कटिपर विराजमान है इस कृपा के पश्चात् भट्टजी शृङ्गार व सेवा व राग भोग इत्यादि में लगे व सारेसंसार को हेतु सुगति के हुये॥

कथा केशवभट्ट की॥

केशवभट्ट कश्मीरी ब्राह्मण ऐसे परमभक्त हुये कि लोगों को दुःख व पापों से छुड़ाकर भगवत् सम्मुख करदिया। महिमा भट्टजी की संसार में विख्यात है कि भक्ति के कुल्हाड़े से दूसरे धर्मों के वृक्षों को काटकर भगवच्चरित्रों को जगत् में विख्यात किया। भट्टजी को निम्बार्कसंप्रदायवालों ने अपने गुरु परम्परा में लिखा है वे उनकी कथा से उपदेश होना श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु से कि माध्वसंप्रदाय में थे प्रकट है ऐसी जनाई पड़ती है कि उनको उपदेश भगवद्भक्ति का श्रीकृष्णचैतन्यसे हुआ और उस समय महाप्रभु की सातवर्षकी अवस्था थी इसकारण से उनके चेले न हुये निम्बार्कसंप्रदायवालों के सेवक हुये जिस प्रकार भगवद्भक्ति प्राप्त हुई तिसका वृत्तान्त यह है कि यह भट्टजी बड़े पण्डित थे हजारों पण्डितों को शास्त्रार्थ में निरुत्तर करदिया जब दिग्विजय करते हुये सैकड़ों पण्डित व शिष्यों के सहित नदियाशान्तिपुर में पहुँचे तो वहांके पण्डितलोग भय को प्राप्तहुये महाप्रभुजीने विचार किया कि इस पण्डितको अपनी पण्डिताई का बड़ा गर्व है सो गर्व दूर करना चाहिये इसहेतु भट्टजीके पास आये व मधुर वचन से बोले कि आपकी विद्या और यश सारे संसार में विख्यात है कुछ मुझको भी सुनाकर कृतार्थ करो भट्टजी ने उत्तर दिया कि अबहीं लड़के हो और विद्याभी प्राप्त नहीं हुई ऐसे वचन निर्भय बोलना ढिठाई है परन्तु हम तुम्हारे मधुर वचन से बहुत प्रसन्न हुये जो कुछ कहो सो सुनावें।

महाप्रभुजीने कहा कि गङ्गाजी का स्वरूप वर्णन करो। भट्टजीने कई श्लोक अपने बनाये पढ़े। महाप्रभुजी ने तुरन्त उपस्थित करलिया व पढ़के सुनायदिया और कहा कि अर्थ व गुण दोष जो उनमें हैं वर्णन करो भट्टजी ने कहा कि मेरी काव्य में दोष कब होसक्ता है। महाप्रभुजी ने कहा कि यह नहीं होसक्ता जो आज्ञा करो तो मैं गुण दोष व अर्थ वर्णन करूं सो कहना आरम्भ किया और ऐसे ऐसे अर्थ किये कि बनाने के समय भट्टजीको भी न सूझे थे और जो २ दोष व गुण थे सोभी ऐसे विस्तार से प्रकट किये कि भट्टजी को उत्तर न आया। महाप्रभुजी तो अपने स्थान को चलेआये और भट्टजी ने लज्जित होकर रात को सरस्वती का ध्यान किया सरस्वतीजी आईं भट्टजी ने विनय किया कि सारेसंसार से विजय कराकर एक लड़के से हराय दिया हमसे ऐसा कौन अपराध हुआथा। सरस्वतीजी ने उत्तर दिया कि महाप्रभुजी भगवत् अवतार और मेरे स्वामी हैं मेरी क्या सामर्थ्य है कि उनके सम्मुख बोल सकूं और तुम्हारे भाग्य धन्य हैं कि उनके दर्शन हुये यह कहकर सरस्वती तो अन्तर्धान हुईं और भट्टजी महाप्रभुजी की सेवा में आये हाथ जोड़कर विनय किया व प्रार्थना किया कि कुछ शिक्षा होय। महाप्रभुजी ने आज्ञा किया कि भगवत्भक्ति अङ्गीकार करो और आगेको किसी पण्डित के साथ वाद करना उचित नहीं। भट्टजी ने मानलिया, उस वचन को धारण किया और जो पण्डितलोग साथ थे सबको विदा करके भगवद्भक्त होगये फिर कश्मीर अपने घरमें गये और कुछ दिन वहां रहे मथुरा जी के वृत्तान्त व समाचार पहुँचे कि मुसल्मानों ने विश्रान्तघाटपर ऐसा यन्त्र लगादिया है कि जो कोई उसपर जाता है आपसे आप उसकी सुन्नत होजाती है और मुसल्मान बलात्कार उसको अपने दीनमें मिला लेतेहैं। भट्टजी यह समाचार सुनतेही कश्मीर से चले और एकहज़ार अपने चेलों सहित मथुरा जी में पहुँचे पहले विश्रान्तघाट पर गये दुष्टों ने जैसे और लोगों से दुष्टता करते थे उसी प्रकार भट्टजी से भी कहा कि नग्न होकर हमको दिखाओ। भट्टजी ने उनको अच्छी प्रकार मारा और यन्त्र को तोड़कर यमुनाजी में डालदिया मुसल्मान सब सूबा के पास फ़रयादी हुये सो सब दुष्टता उनकी सूबेकी हिमायत से थी उसने अपनी फ़ौज सहायके हेतु पठाई भट्टजी उस फ़ौजसे ऐसे लड़े कि बहुतेरों को वध किया और कितनों को यमुना में डालदिया और कुछ भाग गये। इस युद्ध का वृत्तान्त एक

कवि ने विस्तार करके लिखा है उससे जानने में आया कि भट्टजी ने चक्र सुदर्शन को आराधन करके ऐसी अग्नि बरसाई कि सब दुष्ट अशरण होगये और क़ाज़ी व सूबा आदि सब आयके चरणों में पड़े पीछे उस के यह चरित्र किया कि सब मुसल्मानों के शरीरपर चिह्न हिन्दुओं के जनाई पड़नेलगे वह लोग यह प्रभाव देखकर अधिक आधीन हुये और सबने हाथबांधके सेवकाई करनी अङ्गीकार करके रक्षा चाही त्राहि त्राहि पुकारा भट्टजी ने ब्रज के सब हिन्दुओं का बटोर किया और बहुत जगह आप गये व सबको मुसल्मानों से निर्भय करदिया और भगवद्भक्ति की प्रवृत्ति करी॥

कथा वनवारीजी की॥

वनवारीजी भगवद्भक्ति के रङ्ग में रङ्गीन और माधुर्य व शृङ्गाररस के रसिक और भजन की मूर्ति हुये अच्छे वचन के बोलने, काव्य के समझने, व्यंग्य व व्याजोक्ति में बड़े बुद्धिमान्, प्रवीण, सार व असार के विचार में परमहंसों से भी अधिक हुये। सदाचार के करनेवाले व संतोषी व सबपर दया करनेवाले अनेकन विद्याके ज्ञाता पण्डित इस प्रकार भक्ति के साधन में सावधान हुये उनके दर्शनों ही से लोग पवित्र होते थे और जो किसीसे बातचीत हुई तो उसके पवित्र और भक्त होजाने में कुछ संदेह ही न था व ब्रजभूषण महाराज सुखधाम के चरित्र के आलाप में अत्यन्त चतुर थे॥

कथा यशवन्तजी की॥

यशवन्त जाति के राजपूत राठौर भगवद्भक्ति में समाधान और भक्ति के सब धर्मों के आचरण करनेवाले हुये। भगवद्भक्तों से ऐसी सच्ची प्रीति थी कि क्लेश निकट नहीं आता था सब हाथ बांधे उदारमन से उनकी सेवा में एक पाँवसे खड़े रहते थे और अनुक्षण यह चाहना करते थे कि किसी सेवा के निमित्त आज्ञा हो। श्रीवृन्दावन में दृढ़ वास करके श्रीराधावल्लभ लाल के चरित्र और विहारीलाल में मनको लगाकर दिन रात भगवत् के शृङ्गार और माधुर्य के चिन्तन में रहते थे सब धर्मों का सार जो नवधा भक्ति है उसके धनी और सत्य के बोलनेवाले हुये और भगवत्प्रेम में ऐसे हुए कि विशेष करके बेसुधि व डूब जाते थे॥

कथा कल्याणदास की॥

भगवत् की भक्ति और भलाई और सब गुणों को सूक्ष्म समझ संसार

में कल्याणदासजी के बखरे में आये। नवलकिशोर व्रजचन्द्र महाराजके प्रेममें मग्न रहते थे व जिस प्रकार नदी का प्रवाह दिन रात प्रवर्तमान रहता है इसीप्रकार अनन्य जो दृढ़ मनकी वृत्ति अनुक्षण माधुर्य व शृ-ङ्गार के चिन्तन में रहती थी वाणी ऐसी मधुर थी कि सुननेवाले का मन बरबस मोहित होकर आधीन होजाय परोपकारी दयावान् व विवेकी हुये और नाभाजी ने जो यह वचन लिखा है कि मन क्रम वचन से रूपभक्त की चरणरज के उपासक थे इसका अर्थ यह मालूम होता है कि रूप जो भक्त हैं सनातन के भाई तिनकी चरणरज के उपासक अर्थात् उनके चेले थे अथवा रूपभक्त अर्थात् माधुर्य उपासक जो भक्त तिनके उपासक थे अथवा रूप अर्थात् माधुर्य और भगवद्भक्त दोनों के उपासक थे ॥

कथा कर्णहरिदेव विख्यात कन्हरदास की ॥

कर्णहरिदेव विख्यात कन्हरदासजी रहनेवाले योड़ियों के भगवद्भक्त अपनी आत्मा में आनन्द करनेवाले और भविष्यके जाननेवाले श्रीकृष्ण भक्ति के आरोपण करनेवाले ब्राह्मणकुल में सूर्य के सदृश सहिष्णु व दृढ़ स्वभाव सब गुणों की खानि हुये। भगवद्भक्तों को अपना सर्वस्व जानकर प्रेमसे सेवा भक्ति करते थे कपड़ा व जिन्स खाने पीने का जो कुछ जि-तना जिसको प्रयोजन होता था निर्मलमन व विश्वास से देते थे सोभू-रामजी से उनको अनुभव हुआ शृङ्गार और माधुर्य के स्वरूप थे व सब जीवों पर कृपादृष्टि बराबर रखते थे ॥

कथा लोकनाथ की ॥

लोकनाथजी को भगवत् में प्रेम व स्नेह इतना था कि जितना पार्षदों को है श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी के चेले थे और प्रियाप्रियतम के चिन्तवन और चरित्रों में अनुक्षण ऐसे मग्न रहते थे कि जो एक क्षण भी भगवत् स्वरूप का चिन्तन न करते तो विकल होजाते श्रीमद्भागवत का गान और कीर्तन प्राण से अधिक प्यारा था व जो कोई भागवत के रास-चरित्र का भजन और कीर्तन करता तो उसको अपना मित्र जानते थे और उसहीको नातेदार समझते। एकबेर राह में चले जातेथे एक मनुष्य को देखा कि भगवत् चरित्रों का कीर्तन करता है उसको रसिक और प्रेमी जानकर बेसुधि होकर उसके चरणों में पड़े और इस चरित्र से दूसरे मनुष्यों को शिक्षा भगवत् के प्रेम और भक्ति की करी ॥

कथा मानदास की ॥

मानदासजी परमभक्त परोपकारी दयावान् सुशील हुये श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरणकमलों में प्रेम और भक्ति अनन्य थी जानकीजीवन महाराज के जो चरित्र रामायण व हनुमन्नाटक और दूसरे रामायणों में गोप्य करके लिखे हैं उनको मानदासजी ने भाषा में इस सुघड़ाई व कवि-ताई से वर्णन किया कि सबको प्रिय और दोनोंलोक में लाभ देनेवाले हैं यद्यपि नवरस कि जिनका वृत्तान्त ग्रन्थ के आरम्भ में लिखागया अपने ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया परन्तु भगवत् का शृङ्गार और माधुर्य रस ऐसा लिखा कि जिसके पढ़ने सुनने से निश्चय करके मन भगवत्स्व-रूप में लगजाता है और जो रीति शृङ्गार की श्रीकृष्णचरित्र में उपासकों ने वर्णन की है उसी प्रकार रामचरित्र में मानदासजी ने वर्णन किया ॥

कथा कृष्णदासजी की ॥

कृष्णदासजी परमभक्त और पण्डित हुये श्रीगोविन्दचन्द्र महाराज के रूप माधुरी और शृङ्गार में मग्न होकर उनके रसमें रात दिन मत्त रहते थे भगवत्सेवा ऐसी प्रीति से करते कि सेवा के स्वरूप होजाते भगवद्भक्तों को भांति भांति के भोजन और प्रसाद दिया करते और जो कोई साधु उनकी संप्रदाय का होता तो उसके साथ बड़ी प्रीति से मिला करते, भगवच्चरित्रों के कीर्तन और स्वरूप के चिन्तवन और अनुभव में ऐसे आनन्द और बेसुधि रहाकरते थे कि वर्णन उसका नहीं होसक्ता ॥

निष्ठा चौबीसवीं ॥

प्रेमके वर्णन में व जिसमें सोलहभक्तों की कथा वर्णन है ॥

श्रीकृष्णस्वामी के चरणकमलों की साधुहृदरेखा को दण्डवत् करके रामावतार को दण्डवत् करता हूं कि जगत् के उद्धार के हेतु अयोध्यापुरी में धारण करके रावण इत्यादि राक्षसों को वध किया और धर्म की मर्याद को दृढ़ आरोपण करके पवित्र चरित्र जगत् में फैलाये यह प्रेमनिष्ठा भगवत्रूप है और जितनी निष्ठा इसके पूर्व वर्णन होचुकीं उन सबका सार व परिणाम यह निष्ठा है इसके आगे कोई और पदवी नहीं कि उसको साधन करनापड़े । जीवन्मुक्त जो विख्यात हैं सो इसी प्रेम के दृढ़ होनेको कहते हैं और कोई २ जो कैवल्यमुक्ति कहते हैं वह भी इसी प्रेम और उसके दृढ़ होनेको कहते हैं । अब कुछ अर्थ व विवरण उस प्रेम का लिखाजाता है । शाण्डिल्य ऋषीश्वर ने पहले भूमिका में अपने सूत्रों के यह सूत्र लिखा है ॥

अथातो भक्तिजिज्ञासा ॥

अर्थ सूक्ष्म करके इस सूत्र के तिलककार के तिलक अनुसार यह है कि भगवद्भक्ति चारों पदार्थ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की देनेवाली है इस हेतु उस भक्ति को जानना चाहिये सूत्र दूसरा ॥

सापरानुरक्तिरीश्वरे ॥

अर्थ इसका यह है कि परमअनुरक्त ईश्वर में होना उसका नाम भक्ति है और अनुरक्त अथवा राग कै प्रीति कै प्रेम कै इश्क अथवा रति अथवा मोह धृति अथवा उलफ़त अथवा स्नेह सब के एकही अर्थ हैं और जब कि भक्ति को अनुरक्ति लिखा तो भक्ति का अर्थ भी दृढ़प्रीति निश्चयभूत होगया और इसप्रकार से प्रेम और भक्ति एकही बात हुई सो नारदपञ्च-रात्र में लिखा है कि अनन्य ममता भगवत् में है उसको प्रेम कहते हैं और उसीका नाम भक्ति है। अब दो शङ्का उत्पन्न हुई एक यह कि जो प्रेम व भक्ति एकबात है तो भक्ति का वृत्तान्त ग्रन्थ के आरम्भ में लिखागया यहां अब फिर किसहेतु वर्णन होता है दूसरा यह कि जो सब निष्ठाओं का परिणाम पदवी प्रेमनिष्ठा है तो जो दूसरी निष्ठा और उनकी श्लाघा पहले लिख आये सो किस हेतु लिखे केवल यह प्रेमनिष्ठाही बहुत थी सो पहली शङ्का का उत्तर यह है कि ग्रन्थारम्भ में जो दशा भक्ति की लिखीगई वह महिमा भक्ति की और स्वरूप उस का और भक्ति का प्रकार लिखागया और इस निष्ठा में वह वृत्तान्त लिखाजाता है कि उस भक्ति के प्राप्त होने पीछे जो दशा उस भक्ति की होती है। दूसरी शङ्का का उत्तर यह है कि जो महिमा बड़ाई दूसरी निष्ठाओं की लिखी गई सो सब सत्य व योग्य है परन्तु यह प्रेमनिष्ठा जो बिचारी गई तो यह सब निष्ठाओं की परिणामदशा है जो वह सब निष्ठा बिचारी न जाती तो इस परिणामदशा की निष्ठा के लिखने का संयोग काहेको पहुँचता सिवाय इसके यद्यपि निष्ठा बहुत हैं परन्तु परिणामदशा सबकी एकही भांति है जैसे दाननिष्ठावाला अपनी उपासना पर दृढ़ होकर उस पदवी को पहुँचगया है कि कबहीं गावता है, कबहीं नाचताहै, कबहीं हँसता है, कबहीं रोताहै और कुछ सुधि अपने व बिराने की नहीं रखता जब सखा अथवा वात्सल्य व श्रवण व पूजा इत्यादि निष्ठावाला परिणामपदवी को पहुँचेगा तो उसकी भी ऐसीही दशा होगी इसहेतु सब निष्ठाओं कीपरिणामदशा एक हुई और उस परि-णामदशा का वर्णन जो सब निष्ठाओं में लिखाजाता तो ग्रन्थ के बहुत

विस्तार होनेकी बात अलगरहे एक प्रकार की दशा वृत्तान्त सब निष्ठाओं में लिखना पड़ता इसहेतु यह प्रेमनिष्ठा लिखी गई सिवाय इसके सब वस्तु का प्रारम्भ व परिणाम नियत है जो प्रेमनिष्ठा न लिखी जाती तो अन्त की पदवी जानी नहीं जाती और जानेरहो कि मुक्ति इस निष्ठा व सब वस्तुओं का फल है व सब निष्ठाओं की अन्तिम पदवी प्रेम है और यह भी जाने रहो कि यद्यपि पराभक्ति और प्रेम एकही बात है परन्तु सब शास्त्रों में उस दशा नियत को भी प्रेमही नाम धरके लिखा है कि जो प्रेम की विकलता भक्तपर बीतती है। प्रेम दो प्रकार से उत्पन्न होता है एक ईश्वर की कृपासे कि भगवत् ने एकादश में कहा है कि हे उद्धव ! गोपी न गुरुसे पढ़ीं न तप किया न यज्ञ इत्यादि कुछ किया केवल मेरी ही कृपासे मुझको पहुँचगई अथवा मीराबाई व करमैती की भांति कि आपसे आप प्रेम भगवत्कृपा से हुआ। दूसरा भाव से होता है अर्थात् भगवत् का सच्चिदानन्दस्वरूप उसके गुण सुनकर प्रेम उत्पन्न हो और उस प्रेमसे द्रवीभूत होकर तदाकार व बेसुधि होजाय जैसे विष्णुपुराण का वचन है कि भगवत् अन्तर्यामी के गुण सुनने से चित्त की वृत्ति भगवत् ओर लगाने के योग्य है और वह ऐसी हो कि जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह दिन रात प्रवर्तमान रहता है वह भाव दो प्रकारका है एक तो भगवद्भक्तों के प्रताप से होता है जिसका नारदजी ने प्रह्लाद व दक्षप्रजापति के पुत्रों को व दत्तात्रेय ने राजा सुबाहु को व भरत ने रहूगण को उपदेश किया व तुरन्त भगवत्स्वरूप साक्षात्कार होगया और अब भी विख्यात है कि कोई ऐसा सिद्ध भगवद्दास किसीको मिलगया कि एक घड़ी में भगवत्पद को दर्शाय दिया, दूसरा साधन से प्रकट होता है जैसे नारदजी ने भगवच्चरित्रों को सुना उसपर आचरण व साधन किया भगवद्भक्त और प्रेमी होगये इस भाव के चार भेद तन्त्रशास्त्र में लिखे हैं एक वह जो सदा चित्त की वृत्ति भगवत् में लगीरहे उसमें भी दो भेद हैं एक कि जिनको कबहीं संसार के विषय स्वाद की चाहना नहीं होती जैसे प्रह्लाद व सनकादिक इत्यादि दूसरे वह कि जिनको संसार के सुखों की चाह होजाती है जैसे अर्जुन इत्यादि तीसरे वह कि प्रेम के सम समाधि की दशा होती है जैसे शुकदेव इत्यादि चौथे वह कि बड़ी खैंच से मन को लगाते हैं तब प्रेम की दशा उत्पन्न होती है जैसे अक्रूरआदि पांचवें वह कि मन में शोच व पश्चात्ताप करते हैं कि हमारा मन गोपिकाओं की भांति भगवत् के प्रेम से

पूर्ण हुआ जैसे उद्धव व युधिष्ठिर इत्यादि । अब प्रेमकी दशा के प्रकारों के लिखने के पहले इस बात का निर्णय करना हुआ कि प्रेम की दो दशा हैं एक संयोग दूसरी वियोग सो भगवत्प्रेम में भी वियोग की दशा होती है कि नहीं व जो होती है तो उसका क्या वृत्तान्त है? सो जानेरहो कि निश्चय वियोग की दशा होती है परन्तु विषयी लोगोंके मनमुखी प्रेमकी भांति व संसारी विषयभोगके सम्बन्धियों के सदृश दुःखकी देनेवाली नहीं होती बरु भगवत् के प्रेम और चिन्तन की बढ़ानेवाली होती है जिस प्रकार गोपिकाओं को व्रजचन्द्र महाराजके मथुरागमन के समय विरह हुआ परन्तु वह ऐसे प्रेम का भभकानेवाला हुआ कि बेसुधि होकर भगवत् के नित्यविहार में जामिलीं । इसमें जो यह कोई कहे कि यह वृत्तान्त तो उन भक्तों के विरह का है कि साक्षात् राम कृष्ण के रहने के समय जिनको विरह हुआ परन्तु जिन लोगों को कि ध्यान से और रूप व गुण के श्रवण से भगवत् का प्रेम उत्पन्न हुआ अथवा होता है उनको भी विरह होता है कि नहीं सो जानेरहो उनको भी विरह होता है और उसके कई स्वरूप हैं एक यह कि भगवत् के ध्यान व चिन्तन के समय किसी समय गोपिकाओं अथवा दशरथ महाराज व कौसल्या महारानी अथवा नन्दजी व यशोदा महारानी अथवा दूसरे भक्तों के वियोग की चिन्तन आयगई कै उनके वियोग की कथा सुनी तो जो दशा उनपर वियोग के समय बीती थी वही इस भक्त पर बीतती है तनक भेद नहीं रहता सो कथा में किसी वियोग के चरित्र के सुनने के समय विशेष करके परीक्षा सबको होती है व जिस समय ध्यान की पकता होने लगती है उस समय अतिचिन्तन व प्रेम की झमक से ध्येयरूप की शोभा का जो विरह होता है सो दशा भी ज्योंकी त्यों प्रियवल्लभ के वियोग की दशा की भांति होती है और जब भगवत् का ध्यान व चिन्तन अनुक्षण रहनेलगा तो भगवत् के साक्षात् दर्शन होते हैं अथवा ध्यान का रूप व शोभा साक्षात् रूप के सदृश इस भक्त को होजाता है तब सब समय व प्रतिदिन दशा संयोग व वियोग की बीता करती हैं अर्थात् प्रारम्भदशासे अन्तिम दशातक संयोग व वियोग दोनों होते हैं अब यह लिखना उचित हुआ कि कोई २ लोगों ने वियोग की पदवी संयोग की पदवी से श्रेष्ठ लिखी और वास्तव करके जो कुछ स्वाद वियोग में है सो संयोग में इतना नहीं इन दोनों में बड़ाई जिसको है सो जानेरहो कि जो वाद विवाद से लिखी जाय और बड़ाई का निश्चय एक

का दूसरे पर कराजावे तो सैकड़ों पोथियों में लिखने से समवाई न होसके क्योंकि अन्तको झगड़ा व वाद विवाद वेदश्रुति और न्याय व पातञ्जल व कर्मशास्त्र व वेदान्ततक पहुँच जाती हैं और सिद्धान्त नहीं होता सो इस हेतु उस विस्तार से बचायके जो सारांश सब बातों का पाया गया वह लिखाजाता है कि प्रेम में वियोग और संयोग दोनों अन्योन्य सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि जो सदा वियोग बनारहे और आशा संयोग ध्यान में संयोग की अथवा प्रकट संयोग की न होवे तो प्रेम कबहीं न उत्पन्न होय और इसीप्रकार सदा संयोग ही की दशा बनी रहे और वियोग अथवा वियोग का भय व शोच न होय तब भी प्रेम कदापि न होय सो प्रेम नाम उसीका है कि वियोग के पीछे संयोग और संयोग के पीछे वियोग होताहै इस हेतु संयोग और वियोग दोनों का सम्बन्ध है परन्तु वियोग में स्वाद विशेषतर है और प्रेम की पकता वियोग से होती है और मुख्य अभिप्राय जो नित्य संयोग अर्थात् मुक्ति है सो भी वियोग के भाव से शीघ्र प्राप्त होती है इसहेतु कोई २ लोगों ने वियोग की बड़ाई लिखी है और जो मुख्य अभिप्राय पर दृष्टि करीजाय तो सब शास्त्र और सब साधन और भक्ति, ज्ञान, वैराग्य इत्यादि केवल संयोग के निमित्तहैं अब प्रेम की दशा व प्रकाश लिखाजाता है सब दशा का जो दृष्टान्त व उपमा लिखी जायँगी तो उनके पढ़ने से यह न हो कि वे दशा अगले समय में बीतती होंगी बरु वे सब दशा सब भक्तोंपर सदा अब बीती हैं और भक्तको जिस समय जैसी चिन्तन होती है वैसेही समाज का तदाकार व तद्रूप होजाता है वे दशा बारह हैं और कोई कोई ने उसमें से सूक्ष्मता निकालकर तीन दशा और अधिक कीं कि सब पन्द्रह होगईं सो सबका उदाहरण कियाजाता है। पहली दशा का नाम उस जब महबूब अर्थात् प्रियवल्लभ की सुन्दरता और गुणों को सुना और अत्यन्त चाह उसके मिलने की हुई और फिर वह किसी भांति दिखाई पड़ा तो सिवाय उस प्यारे के और किसी प्यारी वस्तुकी और किसीकी देखी सुनी सुन्दरताई की आंखों में न समानी और यह आशा और चाह होनी कि यह प्यारा मेरी आंखों से क्षणभर भी अलग न हो उस समय में जो दशा सच्चे आशिक अर्थात् भक्तपर बीतती है उसका नाम उस है जैसे कि जानकी महारानी की जब रघुनन्दन स्वामी जनकपुर में पहुँचे अथवा रुक्मिणीजीकी भांति अथवा गोपिकाओं की सदृश कै अक्रूरजी कै सुतीक्ष्ण की ॥

दूसरी यत ॥

कोई मिस करके दूतसे अपने प्यारे के समाचार पूछने और उस पूछनेके समय विकल व विरही आशिक़ पर जो दशा वीतती है अथवा महबूब प्यारे का वृत्तान्त सुनकर जो दशा और हर्ष होता है अथवा प्यारा आया है और जान पहिंचान नहीं है इस कारण से मिलना व वोलना वतरावना नहीं हुआ और उसीकी चर्चा होना कि यह कौन है और कहां से आया है उस समय जो दशा होती है अथवा महवूव की ओरसे कोई संदेशा लेकर आया है उसके साथ वातचीत करने के समय जो गति होती है इन सव दशाओं में से कोई एक दशा हो उसका नाम यत है और मालूम रहे कि इसके दश प्रकार हैं जल्प व प्रजल्प इत्यादि और सवमें नई २ वातें हैं ग्रन्थ के विस्तार की भय से नहीं लिखीं दृष्टान्त इस यत दशा का यह है कि जिस समय उद्धवजी श्रीव्रजकिशोर महाराज का सन्देशा लेकर व्रज में आये उस समय जो वोलना वतराना हुआ अथवा भवँरके मिस करके गोपियों ने व्रजचन्द्र महाराज की निठुरता व कृतघ्नता इत्यादिको वर्णन किया कि भवँरगीत में विस्तार सहित लिखा है अथवा जिस समय रघुनन्दन महाराज जनकपुरमें पहुँचे वहां स्त्रियां देखकर आपुस में कहती सुनती भई ॥

तीसरी ललित ॥

ललित का स्वरूप यह है कि महवूव अर्थात् प्यारे के देखने की उमंग व उसके तरंग से गुरुजनलोगों की शिक्षा व ताड़न व तर्जन को मन में न ले आना व वारवार देखलेके निमित्त चाह होनी और लज्जा को छोड़कर देखने के हेतु पीछे होलेना और जव नयनन भरि देख लिया तव गुरुजनों से व अपने साथ स्नेह करनेवालों से लज्जा होनी जिस प्रकार गोपिका कि जव व्रजमोहन महाराज वन से आते थे तो व्रजगोपिका लज्जा संकोच को छोड़कर विना भय सास ससुर इत्यादि के देखने को जाती थीं और स्वयंवर के समय धनुष तोड़ने के पहले से जो दशा जानकी महारानी पर वीती ॥

चौथी दलित ॥

दलित का रूप यह है कि महवूव प्यारा किसी कारण से आंखों के साम्हने नहीं उसके वियोग में रङ्ग का वदलजाना अर्थात् वेवर्ण होना और नींद न पड़नी व आहार घटिजाना व दुर्वलता व विकलता हो-

जानी और किसी वस्तु का न सुहाना और रोते २ बेसुधि होजाना और महबूब प्यारे का मन में ध्यान करके तन्मय होजाना और उस समय मन नवनीत के सदृश कोमल होकर जो कुछ दशा बीतती है उसको दलित कहते हैं जिस प्रकार गोपिकाओं से रास के आरम्भ में व्रजकिशोर महाराज अन्तर्धान होगये और उस समय भांति २ का विलाप गोपिकाओं ने किया और जब ढूंढ़कर हारिगईं मनमोहन न मिले तो चरित्रों का गान करके तन्मय होगईं वै श्रीजानकी महारानी के लङ्का में जाने व अशोकवाटिका में रहने के समय जो दशा बीती ॥

पांचवीं मिलित ॥

मिलित का स्वरूप यह है कि बहुत काल से जो महबूब प्रियवल्लभ से वियोग था और विश्लेषता की व्यथा के कष्ट से मन विकल व बेचैन होकर भांति २ के मनोरथ व चाह किया करता था वह प्यारा प्राणवल्लभ बहुत काल पीछे मिला उस समय जो मन की दशा होती है उसका नाम मिलित है जिस प्रकार श्रीव्रजचन्द्र नटनागर महाराज रासलीला में अन्तर्धान होगये थे और फिर अचानक गोपिकाओं से आनिमिले वै रघुनन्दन महाराज लङ्का जीतकर अयोध्या में आये और भरत इत्यादि वियोगियों को नवीन जीवन हुआ ॥

छठवीं कलित ॥

कलित का रूप यह है कि जिस समय मन संयोग के आनन्द से द्रवीभूत होकर प्यारे महबूब के प्रेम में डूबजाता है उस दशा को कलित कहते हैं वह दो प्रकार की है एक यह कि प्रियवल्लभ से साक्षात् अर्थात् प्रकट मिलकर उसके देखने अथवा वार्त्तालाप, लाड़, प्यार, भाव अथवा श्लेपनसे जो आनन्द होय दूसरा यह कि ध्यान व चिन्तन में मिलकर जो चाहना थी सो उस चिन्तन में ज्योंकी त्यों प्राप्त होय और उससे आनन्द होय वह दोनों प्रकार का सम्भोग परम आनन्द का देनेवाला है जिस प्रकार किसी गोपी को श्रीव्रजचन्द्र महाराजने वनमें अकेली पाकर अपने प्रेम व कटाक्ष भरे वचन और परस्पर प्यार व दुलार से व जो वस्तु का लेना देना दुर्लभ होवे ऐसी परस्पर आपस के माँगने से और हँसी व छेड़छाड़ और खींचाखींची इत्यादि से परमआनन्द के अन्त को पहुँचाया और उस रस में बेसुधि किया अथवा रासलीला के समय ऐसा वृत्तान्त विस्तार से पञ्चाध्यायी में लिखा है ॥

सातवीं छिलित ॥

छिलित यह कि प्यारे प्राणवल्लभ पर परम अत्यन्त स्नेह के कारण से क्रोध आजाना और प्यारे के दोष वर्णन करना और बहुत प्रेम के क्रोध से ओठों का फड़कना व शरीर कांपना और दूसरी दशा सब क्रोध कों तिससे अपने प्यारे महबूब का तदाकार होजाना उसको छिलित कहते हैं जिसभांति गोपिका भवँरगीत में अतिक्रोध से कहती हैं कि हे भवँर ! तू उसी कृष्ण की श्लाघा करता है कि जिसने रामअवतार में बाली को व्याधा की भांति होकर मारा कि जिसका मांस व चर्म कुछ प्रयोजन का न था और प्रेम से जो रावण की वहिन आई उसके रूप को बिगाड़ करके न आप रक्खा व न और के योग्य रहने दिया। वामन अवतार में राजा बलि के यज्ञ को नष्ट करदिया अथवा जिस प्रकार लक्ष्मणजी को वनवास होने के समय रघुनन्दनस्वामी पर क्रोध आया और कहा कि आप क्या ब्राह्मणों की सी बात कहते हैं कि वन में जाकर ऋषीश्वरों के दर्शन और तप करेंगे ? मैं आपका किंकर हूँ आज्ञा होवे कि शत्रुन को यमलोक में पठाय देवें और इसी प्रकार चित्रकूट पर जब भरतजी गये तब क्रोध आया ॥

आठवीं चलित ॥

चलित यह कि देह त्याग के समय अपने प्रियवल्लभ का चिन्तन करके प्रेम के कष्ट की दशा में यह मांगना कि दूसरे जन्म में भी मुझको उसका प्रेम होवे और वही मिले इसका नाम चलित है जिस प्रकार सतीजी ने दक्षप्रजापति के यज्ञ में देह त्याग के समय चाहना किया व मांगा अथवा बाली के राजा दशरथ अथवा शरभङ्ग इत्यादि ने ॥

नवीं कान्त ॥

कान्त यह कि प्यारे महबूब के चिन्तन से जो स्वरूप मन में प्रकट हुआ मनके चाहके अनुकूल शृङ्गार इत्यादि करना और हँसना, खेलना, बोलना, बैठना और अपने मन की चाह व कामना पूरी करनी और सिवाय अपने प्यारे के और किसी का वृत्तान्त सुनना न और को देखना न और किसी से बोलना ऐसी जो दशा है उसको कान्त कहते हैं जिस प्रकार कोई गोपी भगवत् के चिन्तन से बाहर की सब बात भूल गई और चिन्तन में जो परम आनन्द प्राप्त हुआ उसमें योगीजनों की भांति ज्यों की त्यों रहि गई और वियोग का जो दुःख था तनक न रहा और

बावरीसी कभी आंखें खोलती हैं और कभी बन्द करलेती हैं जाने रहो कि विरही आशिक़ अर्थात् रूपासक्त को जो माशूक़ अर्थात् प्राणवल्लभ के चिन्तन का सुख न होवे तो शोक के कष्ट से जीता न रहे और जो अनुक्षण चिन्तन में मग्न रहे तब भी थोड़े ही दिन जिये ॥

विक्रान्त ॥

विक्रान्त एक अङ्ग नवीं दशा का है इसहेतु गणना में लिखा नहीं गया जिस समय आशिक़ अर्थात् रूपासक्त भक्त भगवत् के प्रेम के प्राप्त होने से अपनी भाग्य की बड़ाई करता है अथवा अपने इष्टदेव अर्थात् भगवत् की बड़ाई और उसके मिलने का आनन्द और उस आनन्द की बड़ाई और उसके मिलने की दुस्तरता वर्णन करता है अथवा अपने इष्टदेव से जो औरों की प्रीति है उनकी श्लाघा और गुणों को कहता सुनता है अथवा अपने प्यारे के न मिलने व देखने का शोच कहता है इन दशाओं में से एक दशा प्रकट हो अथवा कई उसका नाम विक्रान्त है जिस प्रकार भरद्वाज और अत्रि और बाल्मीकि इत्यादि ऋषीश्वरों ने श्रीरघुनन्दन स्वामी के देखने के समय अपने भाग्य को सराहा अथवा ब्रह्मा व शिव और दूसरे ऋषीश्वरों ने भगवत् की महिमा वर्णन करी अथवा ब्रह्माजी ने ब्रह्मस्तुति में बड़ाई व्रज और गोपिकाओं की और दुर्लभता मिलने भगवत् के प्रेम की वर्णन करी कि वे आंखें गोपिकाओं की धन्य हैं जो नन्दनन्दन शोभाधाम को देखती हैं ॥

संक्रान्त ॥

संक्रान्त अङ्ग क्रान्त व विक्रान्त का है वर्णन करने का प्रयोजन नहीं ॥

दशवीं विहृत ॥

विहृतदशा का रूप एक श्लोक के दृष्टान्त के अनुसार है कोई गोपी कहती है कि देखो पहले जन्म में हमको श्रीकृष्ण महाराज का प्रेम न हुआ इस कारण यह देह पाई और संसार के दुःख देखनेपड़े और कैवल्य मुक्ति में जो श्रीकृष्ण के प्रेम की अधिकाई नहीं तो वह मुक्ति नहीं मानों मृत्यु हैं अभिप्राय यह है कि जो मृत्यु के समय भगवत् का प्रेम होजाय तो मृत्यु हज़ार जीवन के सदृश है और जिस मुक्ति में भगवत् का प्रेम नहीं सो मुक्ति हज़ार मृत्यु से निकृष्टतर है कोई गोपी ने श्रीकृष्ण महाराज से मान करके मनावने पर भी मान न छोड़ा जब श्रीकृष्ण महाराज चलेगये तब शोच करके वियोग की दशा से विह्वल हुई और अपने शरीर और मान

को धिक्कार करके शोक की पीड़ा व विरह से चिन्तवन में बेसुधि होगई ॥

संहृत ॥

संहृत एक अंग विहृत का है उदाहरण का प्रयोजन नहीं है ॥

ग्यारहवीं गलित ॥

यह कि प्यारे महबूब अर्थात् प्राणवल्लभ की सुन्दरता इत्यादि की चिन्तवन करके अथवा उसकी सुन्दरता देखकर गलाई चांदी सोने के सदृश मन का द्रवीभूत होजाना उसको गलित कहते हैं जिस प्रकार कोई गोपिका किसी सखी को देखकर कहती है कि देखो इसी गोपिका ने एक बेर श्रीव्रजकिशोर महाराज की शोभा व सुंदरता और बोलन चलन व भाव इत्यादि किसीसे सुना है इस हेतु से इसकी यह दशा है कि योगियों की भांति मौन होगई है न हिलती है, न डोलती है, कबहीं रोती है, कबहीं रोमाञ्चित होती है, कबहीं बकती है और कबहीं नाचती है और कबहीं गाती है और कहती है कि कब मैं उस प्यारे को देखूंगी जब कि नन्दनन्दन की सुंदरता के सुनने से यह दशा है तो न जाने मनमोहन के देख लेने पीछे कैसी दशा होगी ॥

बारहवीं संतृप्त ॥

संतृप्त यह कि सच्चिदानंदघन पूर्णब्रह्म परमात्मा छविसमुद्र शोभाधाम में ऐसा जिसका मन लगा है कि जहां तहां उसको देखती हैं और उस रूप अनूपमें ऐसी बेसुधि व मग्न हैं कि तनक भी दूसरी ओर मनकी वृत्ति नहीं जाती है दर व दीवार में वही प्यारा दिखाई पड़ता है कि जिस के निमित्त अनेक जन्म में अनेक प्रकार के योग और अभ्यास और शुभ कर्म किये थे इस दशा का नाम संतृप्त है और सब उपासना व निष्ठाओं का सार व मानों वही दशा है इसीकी बड़ाई में भगवद्गीतामें यह लिखा है कि जो वासुदेवरूप सब जगह देखता है सो महात्मा है सो दुर्लभ है इसी अवस्था व दशा के वर्णन में सब वर्णन भगवद्गीता व भागवत में लिखा है इसी पदवी को शाण्डिल्यसूत्र में परानुरक्ति अर्थात् पराभक्ति के नाम से लिखा है कि वह सूत्र ऊपर लिखागया इस भूमिका पर दृढ़ होने का नाम जीवन्मुक्त है व फल इसका मुक्त व परमपद है और जानेरहो कि जो दशा सब सात्त्विक व्यभिचारी अर्थात् समान तृतीय व चतुर्थ जो कि रसभेदके वर्णन में ग्रन्थ के आरम्भमें लिखीगई हैं सो भी प्रेमनिष्ठा की सम्बन्धी हैं सो ग्रन्थारम्भ में जो दशा रसभेदकी लिखी है और इस प्रेमनिष्ठाकी दशा

सब मिलाने पर जो किसी प्रेमासक्त की कोई नई दशा सुनने के देखने में आवे तो उसको एक अङ्ग उन दशाओं का समझ लेना चाहिये अथवा हमसे लिखते न बना नहीं तो ऐसी बात कोई नहीं कि शास्त्रने जिसका मूल न लिखा होय॥ हे श्रीकृष्णस्वामी, दीनवत्सल, पतितपावन, महाराज! जिस भांति शेषीभाव आप पर परिणाम को प्राप्त हुआ है उसी प्रकार पतितपावन और अधमउद्धारण नाम भी आप पर समाप्त हैं और जिस प्रकार शेष नाम पर शेषभाव का अन्त हुआ है उसी प्रकार अधम और पतित होनेकी पदवी मेरे ऊपर समाप्त है परन्तु ऐसी मेरी दुर्भाग्यता है कि शेषजी को तो अनुक्षण समीपता प्राप्त है और मैं इस जगत् के जं-जाल में ग्रसित रहूँ और गुण यह कि मैं तो अपने काम चतुर व चौकस हूँ अर्थात् कोई पाप व अपराध ऐसा नहीं कि न किया हो व न करताहूं और आपको कबहीं अपने नाम का स्मरण भी नहीं होता सो कुछ चिन्ता नहीं अब हमने ग्रन्थों में लिखना आरम्भ कर दिया है कबहीं तो चित्त पर च-ढ़ेगा यद्यपि इस भांति विनय करनी अनरीति है परन्तु आपकी ढिलंगी ने इस ढंग से कहलाई कि लिखाई ढिठाई क्षमा कीजाय उसके ऊपर इतना और अधिक है कि आपका दृढ़ वचन प्रबन्धक इस जगह पर है कि जो शरण आता है उसको अभय कर देता हूं सो बहुतकाल बीता कि आप के द्वारपर पड़ा हूं यद्यपि ऐसा पक्का व दृढ़ नहीं कि वाद करके ठहरायदेव परन्तु आप सब प्रकार जानते हैं कि आपके द्वार को छोड़ और किसीसे कुछ सम्बन्ध भी नहीं रखता जब जो कुछ मेरे निमित्त होगा आपसे होगा थोड़े में विनय यह है कि किसी प्रकार उस रूप अनूपके चिन्तवन में दिन रात लगारहूं जो सब रूप और शोभा का सारभूत है मेरे निमित्त वही सब कुछ है॥

कथा अम्बरीष की रानी की॥

राजा अम्बरीष की कथा में लिखीगई कि रानी का वर्णन प्रेमनिष्ठा में होगा सो उसी रानी की बात लिखी जाती है कि जब यह रानी व्याही आई और राजा से उपदेश अलग सेवा पूजा करने का पाया तो अत्यन्त प्रेम व विश्वास से भगवन्मूर्ति विराजमान करके सेवा पूजा करनेलगी और इतना प्रेम भगवत् में हुआ कि किसी समय सिवाय भगवद्भजन और आराधन के किसी काम में मन नहीं लगाती थी। राजा को भी इस वृत्तान्त का समाचार पहुँचा। रानी के महल में आया देखा कि रानी को

भगवत् में इतना प्रेम है कि साधन अवस्था से जाय के सिद्ध अवस्था के समीप अर्थात् तद्रूपता को पहुँचगई है। इस दशा को कि जब कबहीं अति चाह व उमंग से गाती है और कबहीं नाचती है और कबहीं हँसती है और कबहीं रोती है और कबहीं भगवद्ध्यान में भीति के चित्र के सदृश होजाती है। राजा यह दशा देखकर अतिप्रसन्न हुआ और अपने भाग्य की बड़ाई करता हुआ रानी के पास पहुँचा, रानी तो भगवच्छवि के अनुभव में मग्न होकर शरीर की सुधि व भान भूलगई थी पहले कुछ बात न पूछी पीछे बहुतबेर बीते कुछ सुधि हुई तो राजा को देखकर बड़ी रीति मर्याद व आदर सन्मान करके हाथ जोड़ खड़ी हुई इसहेतु कि एक तो पति, दूसरे राजा, तीसरे गुरु कि उसकेही उपदेश से भगवत्सेवा मिली, पीछे वार्त्तालाप सत्संग व भगवत् आराधन हुये पर राजा ने भगवच्चरित्रों के कीर्तन करने की आज्ञा करी सो रानी ने भगवत्कीर्तन और नृत्य आरम्भ किया और ऐसी प्रेम में मग्न होगई कि अपने व बिराने की कुछ सुधि न रही राजा ने इस कारण से कि इस प्रेमरस के आनन्द व सुख का स्वाद कबहीं पाया नहीं था अपने भाग्य को धन्य मानके नित्य व हरघड़ी उस रानी के सत्संग में रहनेलगा और रानी के प्रेम का फल यह हुआ कि सारा नगर और देश राजा का भगवद्भक्त होगया वह वृत्तान्त विस्तार करके राजा की कथा में लिखा गया॥

कथा सुतीक्ष्ण की॥

सुतीक्ष्ण ऋषीश्वर अगस्त्यजी के चेले रामोपासक बड़े प्रेमी हुये जब रघुनन्दन महाराज दण्डकवन को पधारे और सुतीक्ष्णजी के आश्रम के समीप पहुँचे तो सुतीक्ष्णजी अपने स्वामी के आगमन का समाचार सुनकर आगे लेने के हेतु चले परन्तु परमानन्द भगवत् के आगमन की और दर्शन की उमंग इतनी हुई कि सब सुधि अपने बिराने की भूलगई सिवाय उस रूप अनूप जो चिन्तन में था और कुछ भीतर व बाहर दिखाई नहीं पड़ता था और न यह कुछ भान रहा कि मैं कौन हूं और कहां हूं और किस ओर जाता हूं जब कबहीं सुधि होती तो यह मन में होती थी कि आज कौन ऐसी शुभ घड़ी और क्या मङ्गल दिन है कि जो शिव व ब्रह्मादिकों को भी दुर्लभ है तिस स्वामी का दर्शन करूंगा और कबहीं इस बात पर प्रसन्न होते थे कि मेरे बराबर और कौन बड़भागी है कि जिसको आज पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन के दर्शन होंगे बस ऐसे चिन्तवन और आनन्द

में एक डग भी न चलागया और बेवश होकर राह में बैठगये इस भांति उस ध्यान के स्वरूप में लीन व लय होगये कि जब रघुनन्दनस्वामी जानकी महारानी और लक्ष्मणजी के सहित आये तो कुछ जनाई न पड़ी और जब पुकारा तो कुछ न सुना तब तो रघुनन्दनस्वामी ने अपना रूप जो ध्यान में देखते थे तिसको अन्तर्धान करलिया और चतुर्भुजरूप उनके मन में प्रकट किया जब सुतीक्ष्ण ने वह मनोहररूप अपने स्वामी का न देखा तो विकल होकर आंखें खोलदीं और अपने मनभावन को सम्मुख देखकर और अतिप्रेम से बेसुधि होकर चरण पकड़ लिये न छोड़े भगवत् ने बल से उठाकर अपनी छाती से लगाया और आश्रम में जाकर टिके। ऋषीश्वर ने रीति अनुसार पूजा इत्यादि किया फिर भगवत्स्तुति का आरम्भ किया परन्तु मारे प्रेम के ऐसा स्वरभङ्ग हुआ कि एक अक्षर भी उच्चारण न करसके कबहीं तो आंखों से जल का प्रवाह चलता था और कबहीं कण्ठ रुकिजाता था जब भगवत् ने यह प्रेम अपार देखा तो आज्ञा की कि जो इच्छा हो सो वर मांगो कि सब कामना तुम्हारी पूर्ण होंगी। ऋषीश्वर ने विनय किया कि कौन वस्तु मांगूं हमको अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं है आपको जो अच्छी लगे सो दीजिये और जो मेरेही मांगने पर बात है तो यह मांगता हूं कि आपका रूप अनूप जानकी महारानी व लक्ष्मणजी महाराज के सहित मेरे मन में सदा निश्चल बसा रहे सो भगवत् ने यही वरदान दिया। प्रभात को जब रघुनन्दनस्वामी आगेको चलने लगे तो सुतीक्ष्णजी को वियोग का सँभार न होसका अगस्त्यजी अपने गुरु के दर्शन के बहाने से साथ चले और उसी परमानन्द के समुद्र में मग्न रहे ॥

कथा शबरी की ॥

शबरी भीलनी की महिमा किस प्रकार वर्णन होसके कि बड़े २ ऋषीश्वर जिसकी भक्ति को देखकर आधीन होगये प्रथम जब शबरी के भगवद्भक्ति हृदय में उत्पन्न हुई तो साधुसेवा को अङ्गीकार किया यह कि दण्डकारण्य में पम्पासर के समीप मतङ्ग इत्यादि ऋषीश्वरों के आश्रम में रात्रिके समय छिपकर लकड़ियों का भार डालजाती थी और रात से उठकर जिस राह से ऋषीश्वरलोग स्नान करने को आयाजाया करते थे उस राह को झाड़ बुहार कर विमल करदेती थी। मतङ्ग ऋषीश्वर अपने मन में कहा करते कि ऐसा कौन बड़भागी है कि ऐसी सेवा करता

है और हमारे तप व भजन में वखरा लेनेवाला होता है। रात को दश बीस ऋषीश्वर चुपके छिपकर लगे रहे जब शवरी आई तो पकड़ कर मतङ्गजी के पास ले गये। शवरी ऋषीश्वर के डरसे कांपने लगी और जब सम्मुख गई तो रोदन करने के दुःख से व डर से कुछ विनय न कर सकी। दूसरे ऋषीश्वरों के तो यह मन में हुआ कि यह शवरी नीचजाति है तिसकी लेआई हुई लकड़ी जो हमने काम में लगाई न मालूम किस पाप में पकड़ेजायँगे और मतङ्गऋषीश्वरजी भक्ति के प्रभाव को जानते थे अपने मन में कहने लगे कि यह शवरी ऐसी परमपवित्र व शुद्ध है कि जिसके ऊपर करोड़ों ब्राह्मणों के धर्म कर्म निछावर करना उचित है। मतङ्ग ऋषीश्वर उसको अपने आश्रम में लेआये और भगवन्मन्त्र उपदेश किया जब मतङ्गजी परमधाम को जानेलगे तो शवरी को शिक्षा किया कि श्रीरघुनन्दनस्वमी पूर्णब्रह्म यहां आवेंगे व तुझको उनके दर्शन होंगे तू इसी आश्रम में रहाकर। यद्यपि शवरी को गुरु के वियोग से अत्यन्त शोक हुआ परन्तु श्रीरघुनन्दनस्वामी के दर्शनों की आशा से प्रसन्न होकर भजन व ध्यान में रहनेलगी जिस घाटपर ऋषीश्वर स्नान के निमित्त जाया करते थे शवरी राह वुहारा करती थी एक दिन नियत समय में विलम्ब होगया और ऋषीश्वर ने शवरी को देखकर क्रोध किया और उसी क्रोध में एक ऋषीश्वर का वस्त्र जो शवरी से स्पर्श होगया तो और अधिक ऋषीश्वरों के क्रोध का कारण हुआ और शवरी को वचन दुष्ट व कठोर कहकर फिर स्नान को गये। तड़ाग जल का स्थान रुधिर से भरा देखा और बड़े २ कीड़े देखे इस बात को अपने दुर्विदग्धता से यह समझा कि शवरी की अपवित्रता से जल तड़ाग का नष्ट हो गया है कुटीपर अपने फिरगये व शवरी ऋषीश्वरों की भय से अपने स्थानपर चली आई और चिन्ता की कि श्रीरघुनन्दनस्वामी के निमित्त प्रसाद अन्वेषण करना चाहिये इस हेतु वन २ फल ढूंढ़ने को जानेलगी अच्छे अच्छे बेर तोड़कर पहले आप चाखा करती कि यह मीठे हैं कै खट्टे जो मीठे होते तो रखलिया करती और खट्टे को फेंक दिया करती और फिर राह पर जाकर जिस ओर से रघुनन्दनस्वामी पधारेंगे बाट देखा करती जब अपनी कुरूपता व जाति की नीचता को विचारती तो किसी जगह झाड़ी में छिपजाती और जब अपने गुरु के वचन और भगवत् की कृपालुता व पतितपावनता पर दृष्टि करती तो आगे लेनेके हेतु

दौड़ती इसी प्रकार भगवत् के प्रेम व चिन्तवन में दिन रात व्यतीत करती जब बहुत दिन बीते तो अधम उधारण व भक्तवत्सल महाराज पधारे और लोगों से बड़ी चाह से पूछा कि शबरी परमभक्ता का स्थान कहां है ? जब स्थान के समीप आये तो शबरी ने साष्टांग दण्डवत् करी। रघुनन्दन स्वामी ने लपककर धरती से उठालिया और सब दुःख व शोक वियोग का दूर किया। शबरी की यह दशा हुई कि भगवन्मुख चन्द्रमा की चकोर होगई और दर्शन में मग्न होकर निर्भर परमानन्द का जल आंखों से ऐसा प्रवाहमान किया कि जिसका वारपार न रहा फिर रघुनन्दन स्वामी को अपने आश्रम में लेगई और बेर जो जङ्गल से ले आती थी भोजन के निमित्त आगे धरे। भक्तभावन महाराज तो उन बेरों को भोजन करने लगे और शिव आदि उस भक्तवत्सलता व कृपालुता के प्रेम में मग्न होकर शबरी के भाग्य की बड़ाई करनेलगे। भगवत् एक बेर उठावें और मुख में डालकर उसकी मधुरता व मिठास की श्लाघा करलें कि ऐसा फल मीठा कबहीं नहीं खाया फिर दूसरा उठावें और उसीभांति गुण वर्णन करके भोजन करें जब भोजन कर चुके तो सब ऋषीश्वर आगमन सुनकर कि आप शबरी के गृह में आय के उतरे हैं अचम्भे योग में हो श्रीरघुनन्दनस्वामी के दर्शन को आये व सब गर्व अपने धर्म कर्म व कुलीनता का बिदा किया और भगवद्दर्शनों से कृतार्थ होकर परमानन्द को प्राप्त हुये। वार्त्तालाप होने पीछे ऋषीश्वरों ने तड़ाग के जल बिगड़ जाने का वृत्तान्त कहा व उसके शुद्ध व विमल होने का उपाय भगवत् से पूछा। भगवत् ने आज्ञा किया कि शबरी के चरण परमपावन जब उस तड़ाग में पड़ेंगे उसी क्षण जल निर्मल व शुद्ध होजायगा। ऋषीश्वर शबरी से विनय व प्रार्थना करके तड़ाग पर लेगये और उस परमभक्ता के चरणों के पड़तेही तड़ाग भगवद्भक्तों के मानस के सदृश विमल व शुद्ध होगया। पीछे रघुनन्दनस्वामी ने आगे जाने की बिदा शबरी से मांगी और आज्ञा किया कि जो उपदेश भक्ति का हमने किया है उसी प्रकार आगे पर आचरण करती रहना शबरी को जो वह परम मनोहररूप बाहर व भीतर की आंखों में समाय गया था वियोग न सहसकी बिदा मांगते ही अपने प्राण को निछावर करके परमधाम को गई। भगवत् ने दाहकर्म उसका आप किया। इस चरित्र से आवागमन से छुट्टी चाहनेवालों को भक्ति करने की शिक्षा करी निश्चय

करके प्रेम की अन्तवद्वी यही है कि अपने प्यारे के मिलने के अति आनन्द में अथवा वियोग के अतिशोक में आसक्त अर्थात् स्नेह करने वाले के प्राण तुरन्त जाते हैं ॥

कथा विदुर व उनकी स्त्री की ॥

विदुरजी व उनकी धर्मपत्नी परमभक्त हुये । विदुरजी धर्म के अवतार थे माण्डव्य ऋषीश्वर के शाप से मनुष्य देह पाई । कथा उनकी विस्तार से महाभारत में लिखी है । जितनी प्रीति भगवत् में विदुरजी को थी उससे अधिक उनकी धर्मपत्नी को थी जब भगवत् श्रीकृष्ण महाराज कौरव पाण्डवन के विरुद्ध मिटाने के निमित्त हस्तिनापुर में पहुँचे तो दुर्योधन ने अपने ऐश्वर्य के गर्व से सन्धि अर्थात् मेल अङ्गीकार नहीं किया परन्तु भोजन के शिष्टाचार के हेतु विनय किया । भगवत् ने आज्ञा किया कि बिराने घर भोजन तीन भांति से होता है एक तो कङ्गालता करके, दूसरे प्रेम के सम्बन्ध से, तीसरे हरिभक्त अथवा गुरु चेले आपस के घर जब जावें सो यहां इन तीनों बातों में से कोई बात नहीं यह कहके विदुरजी के घर पधारे उस समय विदुरजी घर पर नहीं रहे और उनकी स्त्री स्नान करती थी उसने जो भक्तवत्सल महाराज का आगमन सुना तो मारे हर्ष के अङ्ग में न समासकी और ऐसी प्रेम व आनन्द में मगन होगई कि बेधड़क उस नग्नदशा में उठ दौड़ी । लज्जा रखनेवाले महाराज यह दशा उसके प्रेम की देखकर चकित हुये और झट पीताम्बर श्रीअङ्ग का अपना उढ़ाय दिया सो यह समझ पड़ता है कि जाने भगवत् को उस समय यह विचार हुआ होगा कि यह मेरे तद्रूपता को पहुँच गई है केवल पीताम्बर नहीं है इस हेतु पीताम्बर भी उढ़ाय देना चाहिये अथवा यह बात हो कि जब राजा किसी अपने प्यारे सेवक पर प्रसन्न होता है तो अपनी पोशाक निज खिलअत देता है सो भगवन्महाराजाधिराजमणि ने इसके प्रेम से प्रसन्न होकर पीताम्बर खिलअत की भांति कृपाकर दिया अथवा ऐसा मन में आया होय जब कोई राजा की सेवा में जाता है तो कुछ नज़र भेंट दिया करता है सो भगवत् ने विदुरपत्नी को अपने प्रेमियों में राजा के सदृश विचार करके पीताम्बर भेंट दिया हो पीछे भगवत् को अपने घर में लेआई और परमप्रीति से सिंहासनपर बैठाकर अत्यन्त प्रेम व आनन्द में बेसुधि होगई । कृपासिन्धु महाराज ने जो उसकी यह दशा देखी तो अपनी ओर वार्त्तालाप में लगाने

के निमित्त आज्ञा किया कि भोजन कुछ तैयार होय तो लाओ। वह बड़भागी केले के फल ले आई पास बैठकर खिलानेलगी वह तो परमानन्द में पूर्ण थी गिरी को तो धरती पर गिरा दिया और छिलका भोजन के निमित्त दिया। विश्वम्भर महाराज कि केवल प्रेम के भूखे हैं छिलकों को सराहि २ खाने लगे उस समय विदुरजी आयगये और भगवत् के चरणकमलों को दण्डवत् करके स्त्री को तर्जन भर्त्सन करनेलगे कि रे मन्दबुद्धी! गिरी खिलानेको सो छिलके खिलाती है और आप भगवत् के पास बैठ कर बड़े भाव व भक्ति से गिरी निकाल २ कर खिलानेलगे। भक्तचित्तरञ्जन महाराज ने आज्ञा किया कि विदुरजी यह केलों का गूदा बड़ा मीठा है परन्तु उन छिलकों के स्वाद को नहीं पहुँचता इस वचन से भगवत् अपने भक्तों को शिक्षा करते हैं कि जिस किसीको जितनी प्रीति व भक्ति मेरे चरणकमलों में है तितना ही भोजन इत्यादि जो कुछ मेरे अर्पण व भेंट करते हैं मैं अङ्गीकार करता हूं। दूसरे यह बात जनाते हैं कि मेरे दरबार में चतुराई इत्यादि की कुछ नहीं चलती केवल प्रेम व स्नेहपर रीझ है और एक यह अर्थ भी प्राप्त होगया कि जो विदुरजी और उनकी स्त्री को छिलकों के खिलाने के कारण से लज्जा व शोच हुआ था सो सब मिटगया और दोनों परमप्रीति से भगवत् की सेवा में तत्पर रहे॥

कथा भक्तदास की॥

राजा भक्तदास कुलशेखर जिनका पद है भगवद्भक्त प्रेमी हुये कथा उनके प्रेम और भक्ति की प्रपन्नामृतग्रन्थ में विस्तार से लिखी है यहां मूल भक्तमाल में जितनी लिखी है सो लिखी जाती है। यह राजा श्रीरघुनन्दनस्वामी के उपासक थे, श्रीरघुनन्दनस्वामी की कथा चरित्र सदा सुना करते और अतिप्रेम और प्रीति से लीला और उत्साह भगवत् का नित्य नये भाव से किया करते, ब्राह्मण कथा सुनानेवाला राजा के प्रेम का वृत्तान्त जाननेवाला था जब रामायण में सीताहरण की कथा आया करती तो छोड़दिया करता था। एकबेर वह दुःखी पड़ा उसका बेटा कथा सुनाने को आया वही कथा सुनाई कि रावण आया और जानकी महारानी को चुराकर लेगया इतना वचन सुनते ही राजा तरवार खींचकर मार २ करता हुआ दौड़ा और घोड़े पर सवार होकर लङ्काकी ओर चला कि इसी घड़ी रावण को मारकर अपनी माता के दर्शन करूंगा मेरे जीते मेरी माता को कैसे लेजाय जब राह में समुद्र आन पड़ा तो निर्भय घोड़ा

समुद्र में डालदिया। भक्तभावन व भक्तमनरञ्जन महाराज जानकी महा-रानी व लक्ष्मणजी सहित प्रकट हुये और कहा कि कुलशेखर कहां जाते हो रावण को तो हमने वध किया जनकनन्दिनी सहित अयोध्या को जाते हैं राजा चरणों में पड़ा युगलस्वरूप के दर्शन करके नये प्राण पाये अपनी राजधानी में आकर प्रेम भक्ति में मग्न रहे॥

कथा विट्ठलदास की॥

विट्ठलदासजी माथुर चौबे अनहंकार व औरों को मानदेनेवाले सब प्रकार से निर्मल परोपकारी हुये। किसीके अवगुण पर दृष्टि नहीं जाती थी जो विद्या जिसमें होती थी उसका वर्णन करते थे माला और तिलक व भगवद्भक्तों की महिमा व प्रेम भगवत् के सदृश बुद्धि में समाया था व हरिगोविन्द हरिगोविन्द यह वाणी अनुक्षण जिह्वा पर रहती थी। उनके बाप दो भाई सगे राना के पुरोहित थे विट्ठलदास लड़के ही थे तबहीं वे दोनों आपस में लड़कर मरगये जब विट्ठलदासजी सयाने हुये तो भगव-द्भक्ति को अङ्गीकार किया और राना के पास आना जाना छोड़ दिया। एकदिन राना ने लोगों से पूछा कि हमारे पुरोहित का लड़का नहीं आता वह कहां है शीघ्र ले आओ। विट्ठलदासजी न गये जब दोहरायके बुलाया तब शत्रुलोगों ने कहा कि महाराज! वह तो दिन रात रागरंग व वैरागियों के संग में रहता है और अपने आपको भक्त में गिनता है। राना ने विट्ठल-दासजी को कहला भेजा कि आज जागरण हमारे यहां है सो जागरण हमारे गृह में करना। विट्ठलदासजी हरिभक्तों के समाजसहित गये रानाने सबको आदरभाव करके समाज के निमित्त तिखने मकान की छत पर फ़र्श लगवाया जिस समय भगवच्चरित्रों का कीर्तन और भजन होनेलगा विट्ठलदासजी की दशा उन चरित्रों के रस में वेसुधि होगई और अपने व बिराने को भूलकर आप कीर्तन करनेलगे और नृत्य व गान की दशा में कुछ सुधि अपने शरीर व मकान की न रही तिमंजले मकान से नीचे गिरे। राजा वह दशा देखकर बड़े शोच में हुआ और दुष्टलोगों को बहुत तर्जना भर्त्सना किया। साधुलोग विट्ठलदासजी को उठाकर घरपर ले आये व रानाने रुपया व सामग्री सब भेजी। विट्ठलदासजी को तीन दिन पीछे सुधिभई उनकी माताने सब वृत्तान्त राजा की परीक्षा लेनेका व दुष्टलोगों की दुष्टता व तिमहले पर फ़र्श होनेका कारण सब कहा। विट्ठलदासजी रात्रि को अपने घरसे चले छठीकरा गांव में कि जहां यशोदाजी ने छठी

की रीति रस्म श्रीनन्दनन्दन महाराज की करी है आयकर श्रीगरुड़-गोविन्द की सेवापूजा में लगे। राना के सेवक सब जगह २ ढूंढ़आये कहीं न मिले परन्तु उनकी माता व स्त्री ने ढूंढ़ते २ पाया घर चलने के निमित्त उनसे बहुत कहा व उपाय किया समझाया परन्तु मन बिट्ठलदासजी का सेवा व स्वरूप में श्रीगरुड़गोविन्द महाराज के लिपटगया था इस हेतु कोई उपाय ने काम न किया हारिके उनकी माता व स्त्री उसी गांव में रहनेलगे कुछ दिन बीते बहुत दुःखी पड़े भगवत् ने स्वप्न में आज्ञा की कि तुम मथुराजी में निवास करो। बिट्ठलनाथजी को गरुड़गोविन्द महाराज का वियोग अङ्गीकार न हुआ जब तीन दिनतक बराबर आज्ञा को किया तब बेवश होकर मथुराजी में आये व अपने सजातियों को देखा कि भगवद्भक्ति से विरुद्ध हैं इसहेतु एक बढ़ई साधुजी के घर उतरे उनकी स्त्री परमसती गर्भवती रही उसको खर्चपात की चिन्ता हुई। भगवत् ने मिट्टी खोदते में एक अपनी मूर्तिको बहुत धन सहित प्रकट कर दिया। बिट्ठल-दासजी वह मूर्ति व रुपया बढ़ई को देने लगे परन्तु उसने हाथ जोड़कर चरणकमल पकड़ लिया व विनय किया कि आपही भगवत् की सेवा करें और यह रुपया भी खर्च में लगावें। बिट्ठलदासजी ने ऐसी प्रीति से सेवा को आरम्भ किया कि सिवाय सेवा पूजा के और किसी कार्य से सम्बन्ध न रक्खा और थोड़े दिन में उनके भक्तिभाव की ऐसी ख्याति हुई कि बहुत लोग चेले होगये। भगवत् उत्साह और कीर्तन का ऐसा समाज रहनेलगा कि मानो भगवत् पार्षदों का समाज है संयोगवश एक नटिनी आयगई और उसने भगवत् के आगे नृत्य और गान किया। बिट्ठलदासजी भगवत्प्रेम में ऐसे बेसुधि व बेवश होगये कि जो गहने व वस्त्रादिक थे सब उसको प्रसन्न हो दान कर दिया और जब उसको भी कम जाना-तो रङ्गीराय अ-पने पुत्र को भगवत् की निछावर करके देदिया। रङ्गीरायकी चेली राना की लड़की थी उसने उस नटिनी से कहला भेजा कि जो रुपया व आभूषण तुझको चाहना होय मुझसे ले व रङ्गीराय मेरे गुरु को मुझको दे। नटिनी ने उत्तर दिया कि सम्पत्ति की तो कुछ परवाह नहीं परन्तु रीझकर तन, मन, धन सब देसक्ती हूं। राना की लड़की ने बिट्ठलदासजी से विनय व प्रा-र्थना करके फिर समाज कराया और जो गुणी और भक्तजन आये थे बहुत रुपया उनको नज़र भेंट दिया और आप भगवत् के सामने नृत्य करनेलगी कि वह नटिनी भी चकित होगई और रङ्गीरायजी का शृङ्गार

करके और डोले में बैठाकर भगवत् के सम्मुख लाई । रङ्गीरायजी उस नटिनी के कहने से नृत्य करनेलगे कि सब समाज भगवत्प्रेम में वेसुधि होगया और नटिनी ने सब धन सम्पत्ति रङ्गीरायजी सहित भगवत् भेंट किया । रङ्गीरायजी ने बिट्ठलदासजी से कहा कि आप मुझको भगवत् की निछावर करचुके हैं उचित नहीं कि फेर लेवें इस हेतु रङ्गीरायजी को तो बिट्ठलदासजी ने न लिया परन्तु राना की लड़की ने लेलिया । रङ्गीरायजी ने विचारा कि यद्यपि प्रकट जो तन है सो तो भगवत् निछावर होचुका परन्तु प्राण अबतक निछावर नहीं हुये इसहेतु पाञ्चभौतिक तनु छोड़कर भगवत् के परमधाम को प्राप्त हुये । यह चरित पवित्र भगवत् के रसिक व प्रेमियों का कि भगवद्भक्ति का देनेवाला है विचार के योग्य है ॥

कथा कृष्णदास की ॥

कृष्णदासजी भगवत् के परमभक्त हुये कि श्रीनन्दनन्दन महाराज ने निज अपने चरणकमलों का नूपुर उनको कृपा करके दिया भगवत् कीर्तन की रीतों के अच्छे ज्ञाता रहे स्वर और ताल व ग्राम और मूर्च्छना इत्यादि जो कुछ संगीतरत्नाकर आदि ग्रन्थों में लिखे हैं उनको ऐसा जाना कि उससमय में उनके सदृश कोई न था और अत्यन्तता उसकी यहांतक हुई कि राधिकावल्लभ महाराजको भी अपने प्रेम और गुण से प्रसन्न करके रिझायलिया । जाति के सुनार थे और खरगसेन उनके बाप का नाम था । एकदिन श्रीराधाकृष्ण महाराज की सेवा पूजा करके भगवत् के सामने नृत्य व गान करनेलगे और भगवत् के रूप और चरित्र के चिन्तवन व रसमें ऐसे मग्न और वेसुधि हुये कि कुछ शरीर का भान न रहा उसी दशा में एकपांव का घुंघुरू खुलकर गिरपड़ा और समां जो जम रहा था उसमें विक्षेप होनेलगा श्रीरसिकविहारी परम रिझवार उस समां के भङ्ग को ताल व बेशोभा समझकर उठे व अपने चरणकमल का नूपुर श्रीहस्त से कृष्णदासजी के चरण में पहिना दिया । कृष्णदासजी ने नृत्य और कीर्तन के पीछे जब यह वृत्तान्त जाना तो भगवत् की कृपा और अपने भाग्य को धन्य मानिके फिर आनन्द में मग्न होगये और ऐसे भगवद्भजन में लवलीन हुये कि दिनरात उसी प्रेम की दशा में वेसुधि रहनेलगे व साधुसेवी ऐसे थे कि हरिभक्तों को कबहीं भगवत् से न्यून न जाना जो किसी को शङ्का होय कि भगवत् ने अपना घुंघुरू क्यों पहिनाया वही घुंघुरू क्यों न सजि दिया सो हेतु यह है कि जो

वह घुंघुरू साजिके पहिनाते तो विलम्ब होता इस हेतु अपना घुंघुरू पहिना दिया और भक्त के मन में अपनी रिझवारता और चित्त की चाह को प्रकट कर दिया सिवाय इसके यह बात भी सूचित होती है कि भगवत् ने रीझकर यह घुंघुरू इनाम दिया ॥

कथा कात्यायिनी की ॥

कात्यायिनीजी के प्रेम और भक्ति की कथा किससे कही जाय जितना प्रेम और स्नेह व्रजगोपिकाओं को श्रीव्रजराजभूषण महाराज में हुआ तितनाही कात्यायिनीजी को था, बात कहते २ भगवत् के रूप में चिन्तवन करके बेसुधि होजाती थीं, तनक सुधि नहीं रहती थी। जगत् के जितने झगड़े व बखेड़े हैं तिनसे न्यारी और भगवत् के प्रेमकी मूर्ति थीं। सब भगवद्भक्तों का सम्मत इस बात पर है कि भगवत् का स्नेह कात्यायिनी जी पर समाप्त हुआ। यह दशा थी कि राह चलते में भगवच्चरित्रों के तन्मय होजाती थीं और कबहीं गाती थीं, कबहीं रोती थीं, कबहीं हँसती थीं। एकबेर की बात है कि भगवच्चरित्रों के कीर्तन में बेसुधि व मग्न थीं पवन तेज चलने के कारण से वृक्षों से शब्द आने लगा कात्यायिनीजी यह समझीं कि यह लोग कोई तालमृदङ्ग बजानेवाले हैं भगवत् के सम्मुख जो मैं गाती हूं तो यह बाजा बजाते हैं इस हेतु कुछ इनाम इन को देना चाहिये सो सब अपने वस्त्रों को उनको प्रसन्न हो दान करदिया और प्रियाप्रियतम के प्रेम में बेसुधि और मग्न होगईं ॥

कथा माधवदास की ॥

माधवदास रहनेवाले कधागढ़ के ऐसे भगवत् के प्रेमी भक्त हुये कि जब भगवच्चरित्रों का गान अथवा कीर्तन सुनते अथवा आप कीर्तन किया करते तो भगवत् के रूप माधुरी के चिन्तवन में बेसुधि होकर लोटने लगते और कुछ सुधि न रहती और पुत्र व पौत्रों का भगवद्भक्तों में अत्यन्त प्रेम था व दृढ़ प्रेम रखते थे और तन मन से उनकी सेवा टहल किया करते थे। नगर का अधिपति भगवत् से विमुख था दुष्टलोगों ने उसको बहँकाया कि माधवदास अपने को संसार में दिखलाने के हेतु भगवत् प्रेम के बहाने झूठमूठ धरती पर लोटा करता है। राजा अज्ञानी ने परीक्षा के निमित्त अपने स्थान पर समाज ठहराया और तिमहले पर समाजीसभा ठहरी समाज के समय माधवदासजी ने नूपुर बांधकर कीर्तन किया कि बेसुधि होकर लोटने लगे और उसी दशा से मकान की

छत से एक कड़ाह तप्तघृत कि जिसमें उत्सव के निमित्त पकवान बनता था उसी में गिरे भगवत् ने ऐसी रक्षा करी कि किसी अङ्ग में कुछ चोट न आई । इस चरित्र से राजा के हृदय की आंखें खुलगईं व भय व लज्जा से भगवद्भक्ति मान व भक्तों के आधीन होगया और भक्त हुआ ॥

कथा नारायणदास की ॥

नारायणदासजी नर्तक अर्थात् नट व भगवत् प्रेम के स्वरूप हुये यद्यपि संसार में हज़ारों नाचनेवाले होगये और हैं परन्तु जो भगवत् प्रेम को उन्होंने निबाहा दूसरे किससे होसक्ता है । विष्णुपद को अक्षर के अर्थ से भगवद्रूप में मग्न होकर भगवत् के नित्यविहार में जामिले । उनका यह नेम व प्रण था कि सिवाय भगवत् के और किसी के सामने नृत्य व गान नहीं करते थे, तीर्थ और भगवन्मन्दिरों की यात्रा करते हुये हँड़िया सराय में जो प्रयागराज से छःकोस पूर्व है पहुँचे और उनके नृत्य व गान की धूम नगर में हुई । वहां का हाकिम यवन था उसने बुलाने के हेतु अपने लोगों को भेजा । नारायणदासजी ने भगवत् सिंहासन का लेजाना यवन के सामने उचित न समझा और उसका अभिलाष भङ्ग करना भी अच्छा न जाना बेवश होकर एक विचार अपने जी में ठहरायकर गये और ऊंचे सिंहासनपर तुलसी की माला कि शास्त्र के वचन से तुलसी और भगवत् में कुछ भेद नहीं विराजमान करके नृत्य और गान करने लगे परन्तु उस हाकिम मुसल्मान की ओर जो अलग बैठा था भूलकर भी न देखा जब यह विष्णुपद मीराबाईजी का कि ध्रुवा उस का यह है । साँचो प्रीतिही को नातो । कै जानै राधिका नागरी कै मदनमोहन रँगरातो ॥ कीर्तन किया तो उसके अर्थ व भाव को समझकर प्रियाप्रियतम के चिन्तवन में बेसुधि होगये और उसी बेसुधि की दशा में उस विष्णुपद के अर्थ के अनुकूल भीतर व बाहर की आंखन में वह समाज समाया कि व्रजमोहन महाराज व वृषभानुनन्दिनी परस्पर की प्रीति व स्नेह से आनन्द में भरे खेल और विहार व नृत्य और गान में लवलीन हैं और नृत्य की दशा में तिरछा देखना और त्रिभङ्गी लटकवारे रूपै व्रजकिशोर महाराज ने और परमशोभा व शृङ्गार व्रजनागरीजी ने ऐसा छटा व समां का स्वरूप पकड़ा कि नारायणदासजी को अत्यन्त चाव से कुछ निछावर करना उचित हुआ तब निश्चय करके उस समय अपने प्राण से अच्छी और कोई वस्तु निकट न पाई बस तुरन्त युगल

स्वरूप के निछावर करके नित्यविहार और परम आनन्द में जामिले॥

कथा लीलानुकरण की॥

एक ब्राह्मण पुरुषोत्तमपुरी में ऐसे प्रेमी भक्त भये कि भगवत्रूप के अनुभव में मग्न होकर तन्मय व बेसुधि होजाते थे। एकबेर नृसिंहजी की लीला को परमपवित्र नृसिंहचतुर्दशी के दिन लोगों ने बहुत धूमधाम से तैयार किया और उस ब्राह्मण को भगवद्भक्त और प्रेमी जानकर नृसिंहजी का रूप बनाया। जब उस चरित्र का कीर्तन होने लगा कि नृसिंह जीने हिरण्यकशिपु को अपने नखों से उदर चीरकर मारडाला तो उस ब्राह्मण को अनुकरण का ध्यान रहा और जो नृसिंहजी को करना उचित था सोई किया अर्थात् जो पुरुष हिरण्यकशिपु का रूप बना था उसका उदर अपने नखों से चीरकर मारडाला और प्रह्लाद को राज दिया लोगों ने उसका वध शत्रुता के कारण से समझा और भगवद्भक्तों ने यह कहा कि शत्रुता नहीं नृसिंहजी का अंश इस ब्राह्मण में आगया था नितान्त सबका यह सम्मत ठहरा कि रामलीला के समय इस ब्राह्मण को दशरथ महाराज का अनुकरण बनाना चाहिये उस समय वृत्तान्त प्रेम और शत्रुता का खुलजायगा सो रामलीला में वैसाही किया। जिस समय वह चरित्र आया कि रघुनन्दनस्वामी जनकनन्दिनी व लक्ष्मण महाराज सहित वन को गये और सुमन्तमन्त्री ने आकर राजा दशरथ को सन्देशा रघुनन्दनस्वामी का सुनाया और राजा ने सुनतेही सन्देशे के प्राण त्याग किये तो उस ब्राह्मण ने कि वास्तव करके दशरथही होगया था रघुनन्दनस्वामी का सन्देशा सुमन्त के मुख से सुनतेही उसी घड़ी अपना प्राण भगवत् के निछावर किया और दशरथ महाराज से बढ़कर पदवी पाई। वास्तव करके प्रेम का ऐसाही प्रताप है॥

कथा मुरारिदासजी की॥

मुरारिदासजी प्रेमीभक्त श्रीरघुनन्दनस्वामी के बलबण्डा शहर में जो मारवाड़ देश में विख्यात हैं हुये। भगवत् का उत्साह और हरिभक्तों की सेवा और भण्डारा करने में अद्वितीय थे। कीर्तन करने के समय श्री रघुनन्दनस्वामी के चरित्रों में लवलीन होकर प्रेम की अन्तदशा हरिभक्तों को शिक्षा किया। एक चर्मकार भगवत्सेवा पूजा बड़ेभाव से करके बड़े उच्चस्वर से नित्य कहा करता था कि जो भगवत् के चरणामृत का अधिकारी हो सो लेजावे। मुरारिदासजी ने वह शब्द राह चलते सुना,

उसके घर गये । वह चमार डर से काँपउठा मुरारिदासजी ने उसकी बहुत आश्वासन करी और कहा कि भय किस हेतु करता है केवल चरणामृत के निमित्त आया हूं । चमार ने विनय किया कि महाराज ! मैं जातिका चमार हूं आपको कब देसक्ता हूं । मुरारिदासजी ने उत्तर दिया कि तू हमसे भी अच्छा है व जो तुझको कुछ डर है तो हम किसी से न कहेंगे यह कहकर विह्वल होगये और जल आँखों से बहने लगा । चमार ने पूछा कि महाराज ! तुम किस हेतु रोते हो ? मुरारिदासजी ने उत्तर दिया कि हमारी आँखें दुखती हैं । फिर चमार ने बड़ी विनय व पुकार से कहा कि महाराज ! आप को चरणामृत मुझ नीच से लेना न चाहिये । मुरारिदासजीने न माना और हठ करके चरणामृत लिया भगवद्भक्त को मुख्य समझा और जाति कर्म आदिपर धूलि डालदी जाने रहो मुरारिदासजी इस चरित्र से तीनों प्रकार के लोगों को शिक्षा करते हैं अर्थात् जो कोई भगवत्प्रेम और भक्तिकी सिद्धदशा को पहुँच गये हैं उनको तो यह शिक्षा है कि जाति इत्यादि का बन्धन उन लोगोंको है कि भगवत्प्रेम में दृढ़ नहीं हुये सो तुम उस दृढ़ता पर स्थिर रहना और साधकलोगों को दृढ़ निश्चय कराते हैं कि भगवद्भक्ति में और प्रेम में वह पदवी प्राप्त करनी चाहिये कि भेद और द्वैत दूर होजावे और जो भगवत् से विमुख हैं उन पर यह दशा है कि तुम से चमार अच्छे हैं जो भगवत्सेवा करते हैं । भागवत के एकादश का वचन है कि जो विप्र बारह कर्म करके युक्त है परन्तु भगवद्भक्ति नहीं रखता उस से श्वपच अच्छा है । काशीखण्ड में लिखा है कि ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय अथवा वैश्य के शूद्र और नीच जो भगवद्भक्त हैं सोई सब उत्तम लोगों में उत्तम हैं ऐसे सैकड़ों वचन इस बात के सिद्धान्त में हैं एक यह उपदेश भी इस चरित्र से दिखाई देताहै कि आगमशास्त्र के वचन के अनुकूल भक्तिमार्ग के पांच कण्टक हैं कुलमद १ विद्यामद २ धनमद ३ सौन्दर्यमद ४ बलमद ५ सो जिसने इन पांचों विरोधियों को जीत लिया सोई भक्त देश का अधिपति हुआ । मुरारिदासजी का यह वृत्तान्त सारे नगर में फैला और सबलोग प्रकट बोली मारने लगे और राजा तक समाचार पहुँचाया । राजा को भी यह बात अच्छी न लगी और मन फिर गया । एकबेर मुरारिदासजी राजा के देखने को आये तो पहिली सी भाव भक्ति राजा में न देखी वे वैराग्यवान् पुरुष थे सब त्यागकर किसी और जगह जारहे उनके जाने से भगवद्भक्तों का आना निर्मूल बन्द होगया और

राजा जो प्रतिवर्ष उत्साह करता था और देश देश के साधु भगवद्भक्त मेले में इकट्ठे होते थे कोई न आया और उपाधि उपद्रव व अकाल का आगमन दिखाई देने लगा तब तो राजा शोच व शोकयुत होकर फेर लेआने के हेतु चला और जाकर अत्यन्त दीनता व नम्रता से साष्टाङ्ग दण्डवत् किया मुरारिदासजी ने मुँह फेर लिया कि ऐसे भगवद्विमुख का मुख देखना नहीं चाहिये कि ऐसे भगवद्विमुख से गुरु की निन्दा होती है। राजा हाथ जोड़े दीनता व दुःख से लज्जा की नदी में डूबकर खड़ारहा और फिर दण्डवत् करके प्रार्थना की कि आप मेरे ऊपर दया करके जो दण्ड विचार करें उसके योग्य हूं और यह कटाक्ष का वचन भी नियत किया कि मेरे अच्छे भाग्य होने में कुछ संदेह नहीं कि आप ऐसे गुरु मुझको मिले परन्तु आपकी कृपा व दया की न्यूनता निश्चय करके है कि आपके चरणों में विश्वास न रहा। मुरारिदासजी इस कटाक्षयुक्त वचन से बहुत प्रसन्न हुये और और प्रसंग बाल्मीकि श्वपच का कि श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर के यज्ञ में सबसे ऊंचे आसन पर बिठला-कर द्रौपदीजी के हाथ से भोजन कराया और शबरी का कि ऋषीश्वरों ने जिसके चरण पकड़े और तड़ाग जिस चरण के प्रभाव से पवित्र हुआ और निषाद का कि वशिष्ठजी और भरतजी ने अपने बराबर बैठाया व हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, गज व गणिका इत्यादि का वृत्तान्त उपदेश करके राजा के हृदय के अन्धकार को दूर कर दिया और भगवद्भक्ति और भक्तों का विश्वास दृढ़ करदिया पीछे राजा के नगर में आये और वैसाही समाज भगवद्भक्तों का और सत्संग रहने लगा सब उपद्रव व उत्पात शान्त होगया व सब लोगों ने भगवद्भक्ति को अङ्गी-कार किया॥ एकबेर समाज हुआ व जो कोई कीर्तन और भजन में ज्ञाता व प्रवीण थे सब चेले हुये। भजन कीर्तन के समय भगवद्भक्तों ने मुरारिदासजी को कहा कि कुछ आपभी भजन करें उनके कहने से उठे और घुँघुरू बांधकर नृत्य करने लगे व भगवद्भक्त थे सब राग रागिनी और सातोंस्वर तीनोंग्राम व इक्कीसों मूर्च्छना आय के प्राप्त हुईं और ऐसा समाज हुआ कि किसी ने न देखा था न सुना था जब श्रीरघुनन्दनस्वामी के वन के जाने का चरित्र भगवद्भक्तों ने कीर्तन किया तो मुरारिदासजी भगवत् विरह के तन्मय होगये और चित्र के सदृश ज्यों के त्यों रह गये अथवा यह बात समझी कि उस वन व अरण्य में परमसुकुमार

रघुनन्दनस्वामी व जानकी महारानी और लक्ष्मणजी की सेवा कौन करेगा ? इस हेतु यह प्राण संग भेजना उचित है यह दशा देखकर उस समाज ने बहुत दुःख पाया व मुरारिदासजी श्रीरघुनन्दनस्वामीजी के परमपद को पहुँचे ॥

कथा गदाधरभट्टजी की ॥

गदाधरभट्टजी प्रेमभक्ति के समुद्र सुशील मधुर बोलनेवाले सहज स्वभाव निस्पृह अनन्य भगवद्भजन में आनन्द और लोगों को भगवद्भक्ति में दृढ़ करनेवाले हुये किसी से कुछ चाहना नहीं रखते थे और भगवद्भक्तों की सेवा ऐसे प्रेम से करते थे मानों इसीहेतु उनका जन्म हुआ था उनका यह विष्णुपद कि ॥ सखी हों श्याम रंग रँगी । देखि विकाय गई वह सूरति मूरति माहिं पगी ॥ जीवगोसाईंजी ने सुना व एक चिट्ठी लिखकर दो साधुओं के हाथ भेजी चिट्ठी में यह लिखा था कि तुमको बिना रैनी रङ्ग किस प्रकार चढ़गया हमको चिन्ता है इस लिखने का तात्पर्य प्रथम यह कि बिना वैराग्य अर्थात् त्याग बिना भक्ति का रंग चढ़ना अतिकठिन है सो तुमने अबतक गृह कुटुम्ब का त्याग नहीं किया जो फिर रंग में रंगीन किसप्रकार हुये ॥ दूसरे यह कि श्रीवृन्दावन भगवद्रूप के रंग की रैनी है सो वृन्दावन वास बिना रंग किस प्रकार चढ़गया । साधुलोग वह चिट्ठी ले के भट्टजी का घर जहां था तहां पहुँचे संयोगवश भट्टजी नगर से बाहर कोई कुयें पर बैठे थे उन्हींसे पूछा कि गदाधर भट्टजी कहां रहते हैं ? भट्टजी ने पूछा कि तुम कहांसे आये व कहां रहते हो? साधुओं ने कहा कि सब धामों का परमधाम श्रीवृन्दावन है वहां रहते हैं और वहांही से आये हैं । भट्टजी उस नाम परम अभिराम के सुनतेही प्रेम से बेसुधि होकर गिरगये, कुछ काल पीछे सुधि हुई तो परमआनन्द में मग्न मौन होकर चित्र की मूर्ति के सदृश भगवद्रूप के चिन्तवन में बैठ गये । किसीने साधुओं से कहा कि गदाधरजी यही महाराज हैं । साधुओं ने वह पत्री उनको दी । भट्टजीने जो पढ़ा शिरपर चढ़ाकर वृन्दावन व वृन्दावनविहारी के रूप में आनन्द होकर उसी क्षण वृन्दावन को चल खड़े हुये व आयके जीवगोसाईंजी से मिले । दोनों परमभागवतों को प्रेमकी नदी ऐसी उमड़ी कि उसमें डूब गये और आपस के सत्संग से भाग्य को धन्य मानकर भगवत् की बड़ी कृपा समझी । गदाधर भट्टजीने जीवगोसाईंजी से सब ग्रन्थ भगवच्चरित्र और रस रास और प्रिया प्रियतम के कुञ्ज-

विहार के पढ़े सुने और भगवत् के रूप रंग में रंगीन होगये भट्टजी नित्य श्रीमद्भागवत की कथा कहते थे। कल्याणसिंह नामी राजपूत रहनेवाला देरागांव का जोकि वृन्दावन के निकट है कथा सुनकर भगवत्की ओर सावधान हुआ और अपने घर का आना जाना त्याग करके भगवद्भजन में रहने लगा। उसकी स्त्री ने समझा कि भट्टजी के सत्संग से घरकी चाह व काम की वासना जाती रही सो अपने पति को बेविश्वास करने के हेतु एक स्त्री गर्भवती जोकि भिक्षा मांगती फिरती थी उसको बुलाया व बीस रुपया देने को कहकर यह बात सिखाया कि जिस समय भट्टजी कथा कहें उस समय जो मैं सिखाती हूँ अच्छे पुकारकर कह देना। अपनी दासी साथ करके गदाधरजी का स्थान उसको बतला दिया। वह स्त्री लोभ में बद्ध होकर जहां भट्टजी कथा कहते थे आई और पुकारकर कहा कि तब तो मेरे साथ तुमको वह खेल मेल था कि गर्भ रहगया अब ऐसी निठुराई है कि खर्च का देना भी बन्द कर दिया। भट्टजी ने कथा कहते ही में उत्तर दिया कि ठीक है परन्तु मेरी इसमें कौन तकसीर है तुमहीं ने दर्शन नहीं दिया। कथा में जितने लोग थे किसी को विश्वास न आया और कहने लगे कि निपट झूठ है वरु यह पापिनी दण्ड के योग्य है॥ राधावल्लभलालजी के गोसाईं को यह वृत्तान्त का समाचार पहुँचा, बहुत दुःखित हुये, उस स्त्री को बुलाकर बहुत भय त्रास दिया कि सच कहु नहीं तो जीती न छोड़ूँगा। उसने जो बात सत्य २ थी सो कहदी। उस कल्याणसिंह ने अपनी स्त्री के त्रियाचरित्र के समाचार पाये तो तलवार लेकर उसके मारने को उद्यत हुआ। भट्टजी ने दया से कहा कि कदापि स्त्री को कुछ न कहना चाहिए इतनाही दण्ड बहुत है कि उसका त्याग होगया॥ किसी देश का एक महन्त कथा में आया व भट्टजी ने सबसे आगे उसको बैठाया। उस महन्त ने देखा कि सब श्रोता प्रेम में भरे हुये भगवच्चरित्रों को सुनते हैं और प्रेम का जल आंखों से बहता है परन्तु मेरी आंखों से एक बूँद भी जल नहीं निकलता सब लोग मेरी महन्तता पर निश्चय करके व्यंग्य बोलेंगे। दूसरे दिन लाल मिरच चादर के कोने में बांधकर कथा में जा बैठे और आंखों में मिरच डाल २ कर अच्छा पानी बहाया। एक साधु ने इस बात को देख लिया था भट्टजी से सब वृत्तान्त कह दिया। भट्टजी अपने हृदय की सचाई से यह समझे कि उस महन्त ने इस हेतु अपनी आंखों में मिरच डाली हैं कि जिन आंखों से प्रेम का जल न बहे उसमें मिरच

अच्छी है सो जब कथा हो चुकी भट्टजी बहुत प्रसन्न होकर उस महन्त से मिले और यह मिलना उनका उसके हेतु ऐसा रसायन होगया कि थोड़े दिन में दूसरे प्रेमियों से अधिक हो गया॥ एक बेर गदाधरजी के स्थान में चोर आया और वस्त्रादिक वस्तु की दृढ़ पोट बांधी परन्तु भारी के कारण से उठाय न सका। भट्टजी आप आये और वह गठरी असबाब की उठवा दी चोरने शोच किया कि यह मनुष्य कौन है कि, पकड़ता नहीं है। गठरी उठाय देता है, पूछा कि तुम कौन हो? भट्टजी ने अपना नाम बतलाया चोर असबाब को छोड़कर चरणों में पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा। भट्टजी ने कहा कि निर्भय होकर ले जाओ वरु और जो चाहिये सो ले लेव और शीघ्र चले जाओ। प्रभात हो गई चोर ने हाथ जोड़कर विनय किया कि अब वह धन निरुपाधि मुझको कृपा होय कि दोनों लोक की चिन्ता से निश्चिन्त होकर बेपरवाह होजाऊँ यह कहकर रोयके फिर चरण पकड़ लिया। भट्टजीने दया करके उसको मन्त्र उपदेश किया और इस चोरी से छुड़ाकर माखनचोर से हाथ पकड़ा दिया॥ भट्टजी की यह रीति थी कि भगवत् की रसोईं की सेवा सब अपने हाथ से किया करते थे व सेवक व चाकर बहुत थे परन्तु भगवत्सेवा में किसी को प्रवृत्त होने नहीं देते। एक दिन भगवत् रसोईं का चौका देते थे कोई साहूकार अथवा राजा दर्शन करने को आया और बहुत द्रव्य भेंटके निमित्त लाया। एक सेवक ने भट्टजी से विनय किया कि चौका छोड़कर हाथ धोकर शीघ्र गद्दी पर आवें कि बड़ाभारी सेवक आता है। भट्टजी उस सेवक से बहुत अप्रसन्न हुए और कहा कि भगवत्सेवा से दूसरा मुख्य काम कौनसा है? कि जिस के हेतु सेवा छोड़ी जाय? ऐसे चरित्र गदाधरभट्टजी के बहुत और आनन्द के देनेवाले हैं॥

कथा रतवन्ती की॥

रतवन्ती बाई परमभक्ता वात्सल्य उपासक हुई। भगवद्भजन और भोग इत्यादि की सामग्री की तैयारी में सर्वकाल सदा लवलीन रहा करती थी, श्रीमद्भागवत कथा किसी जगह होती थी तो नित्य वहां जाने का नियम था, एक दिन भगवत् की रसोईं बनाती थी उसको छोड़कर कथा में जाना उचित न समझा क्योंकि सेवा की विशेषता है अपने बेटे को कथा में भेज दिया। उस दिन कथा में यह प्रसंग था कि नन्दनन्दन व्रजचन्द्र महाराज माखन को चुराकर अपने मित्रों और बन्दरों को खिला

रहे थे और उस खेल और लीला में लगरहे थे कि यशोदाजी ने यह चरित्र आप अपनी आंख से देखा और उसी दिन कितने उरहने इसी प्रकार के व्रजसुन्दरियों के भी पहुँचचुके थे इसहेतु नन्दरानीजी ने व्रजभूषण महाराज को ऊखल से बांधदिया। रतवन्तीजी के बेटे ने वह सब कथा आयकर कहिदीनी जिस समय उस लड़के के मुखसे यह बात निकली कि रस्सीसे बांध दिया तो विह्वल होगई और यह कहा कि यशोदा बड़ी कठोर है उस सुकुमार कोमल अङ्ग परमसुन्दर को रस्सी की बन्धन कैसे सहिसकीहोगी ? हाय ! वह मेरा मनोहर बालक तो ऊखल से बँधा हो और मैं सुख से बैठी रहों यह कहकर उसी घड़ी अपने प्राण निछावर किये और नित्य परमआनन्द को पहुँचकर अपने आंख की पुतली व कलेजे के टुकड़े श्यामसुन्दर को ऊखल से छुड़ाया कि जिसकी माया की फांसी में करोड़ों ब्रह्माण्ड बँधि रहे हैं॥

कथा जस्सूधर की॥

देवदासवंश में जस्सूधरजी ऐसे दृढ़ भक्त हुये कि पुत्र व स्त्री इत्यादि सब भगवत्परायण थे और जिस भाव और भक्ति से भगवत् में प्रेम और स्नेह था उसी भाव से भगवद्भक्तों की सेवा करते थे और रघुनन्दन स्वामी के चरित्रों में इतनी प्रीति थी कि चरित्रों को सुनकर भगवद्रूप में वेसुधि होजाते थे। यह चरित्र जो रामायण में लिखा है कि विश्वामित्र ऋषीश्वर आये व दशरथ महाराज से श्रीरघुनन्दनस्वामी और लक्ष्मण महाराज को मांगा व भक्तवत्सल महाराज ऋषीश्वर के साथ चलने को तैयार हुये तो इस चरित्र के वर्णन करते समय उसी समाज के तद्रूप होगये अर्थात् कहनेलगे कि महाराज ! मैं भी साथ चलताहूं। भगवत् ने साक्षात् होकर कहा कि तुम यहां रहो हम थोड़े दिन में विश्वामित्रजी का यज्ञ पूर्ण करके आते हैं सो जस्सूधरजी ने उस रूपमाधुरी को सम्मुख देख लियाथा कि जिसकी शोभा के एक कण की शोभा में कोटानकोट ब्रह्माण्डों की शोभा होती है तो वियोग कब सहा जाय रहने की आज्ञा सुनतेही अपने प्राण भगवत् शोभाधाम की निछावर करके नित्य परम आनन्द को प्राप्त हुये॥

कथा कृष्णदास की॥

कृष्णदास ब्रह्मचारी चेले सनातनजी के हुये जब श्रीमदनमोहनजी महाराज का मन्दिर तैयार हुआ और मूर्ति भगवत् की उसमें विराजमान

हुई तो सनातनजी ने कृष्णदासजी को भगवत्-सेवा में अतियोग्य जानकर भगवत् सेवा उनको सौंपदी सो ऐसे भाव व भक्ति से सेवा पूजा में तत्पर हुये कि जिसमें भगवत् व गुरु की प्रसन्नता का कारण हुआ तिसके पीछे कृष्णदासजी ने नारायणभट्ट को भक्त व प्रेमी जानकर अपना चेला किया । एक दिन कृष्णदासजी ने भगवत् का शृङ्गार किया व भगवत्छवि को देखने लगे भगवत् के रूप में बेसुधि व मग्न होगये और इतना प्रेम का तरंग व झोक बढ़ा कि उपाय करने से भी बहुत देरतक अपने व बिराने की कुछ सुधि न रही जिस स्नेह व प्रेम से शृङ्गार करते थे उसका वर्णन कब होसक्ता है ॥

सम्पूर्णता इस भाषान्तर और कुछ वृत्तान्त प्रयोजनी का वर्णन ॥

श्रीराधाकान्त वृन्दावनविहारी के चरणकमलों की बलिहारी कि मेरे ऐसे अधम व मतिमन्दों को कृपालुता व दयालुता करके अपने चरण के शरण में राखिके दोनों लोकके दुःखों से एकक्षण में निर्भय व निश्चिन्त कर देते हैं । विचार करना चाहिये कि जिसकी माया अनन्त ब्रह्माण्डों को रचकर फिर नाश करदेती है जिसको कोई सहस्रशीर्षा व सहस्राक्ष व सहस्रपाद और कोई निराकार, निर्गुण, निरवयव अर्थात् बिना अंग वाला और कोई विश्वरूप, कोई योग का परिणाम, कोई सब प्रमाणों का प्रमाण, कोई सब तत्त्वों का परमतत्त्व, कोई चिन्मात्र, कोई काल का भी काल और कोई सब कर्मों के फल का परम फल बतलाता है और जिसके चरणकमल ब्रह्मा व देवताओं के देवता हैं जिसका रूप अनूप शिवजी के मनमानस का हंस व भक्तों का आधार है मंगलरूप नाम जिसका सब नामियों के नाम का देनेवाला है व सब वेद व शास्त्रों का सार है जिसकी महिमा के वर्णन में शेष मौन व शारदा मूक हैं वेद जिसको नेति नेति कहते हैं व बुद्धि, विचार, अनुमान व तर्क से बाहर है सो कहां तो वह स्वामी और कहां मैं अपराधी व अघपुञ्ज कि जिसको नरक भी घृणा करता है सो मेरे ऊपर भी ऐसी करुणा व कृपा करी कि जिसका लेख नहीं अर्थात् जिस भक्तमाल का सुनना और पढ़ना अगले जन्मों के हजारों पुण्य व सत्कर्म के फल के उदय से प्राप्त होता है सो भक्तमालप्रदीपन जो पारसी में है तिसको अनायास पंजाब देशसे ले आकर प्राप्त करादिया व पारसी भाषा से देवनागरी में भाषान्तर करके हृदय में प्रेरणा किया कि उस भाषान्तर करने से एक २ अक्षर

की चिन्तना व पद २ का अर्थ समझाना और फिर उसको भाषान्तर करना और उसके रस में आनन्द होना, नेत्रों से जल का आना रोमाञ्चित होना व हृदय द्रवीभूत होजाना व कबहीं प्रेम के तरंग में कलम हाथ का हाथ रहजाना यह सब सुख मुझको प्राप्त हुआ और चारों संप्रदाय के उपासना इत्यादि के ग्रन्थ जब बहुत संग्रह करते व पढ़ते समझते तब अभिप्राय व सारांश व गुरु परम्परा लिखते सो ऐसे परिश्रम की नदी को उतरने के निमित्त मुझको यह पारसी आरसी सी ऐसी मिली कि जैसे चींटी को पुल मिल जाय सिवाय इसके यह कृपा की कि दूसरे की सहायता को भी न लेने दिया मेरे ही हाथ व लेखनी से सम्पूर्ण करादिया सो ऐसी कृपालुता व करुणा को विचारकर जो मेरा अल्पभागी मन ऐसे स्वामी के चरण कमलों में न लगे तो उससे अधिक भाग्यहीन व शठ कौन है और यह चरित्र भगवद्भक्तों के आप श्रीकृष्णस्वामी को श्रीराधिका महारानी व अपनी भक्ति महारानी के सदृश प्यारे हैं और विना निज कृपाकटाक्ष भये किसी को प्राप्त नहीं होती। दोनों लोक का मनोरथ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की दाता और श्रीकृष्णस्वामी के स्वरूप को हृदय में दृढ़ प्रकाश करदेनेवाली है इस हेतु इसके सम्पूर्ण होने से भगवत् की कृपा व धन्य मानना उचित न था काहेसे कि न जाने यह आनन्द फेर मेरे भाग्य से मिले कै न मिले परन्तु यह दृढ़ विश्वास है कि जिस कृपा से यह सत्संग प्राप्त हुआ और बहुत कालपर्यंत इसमें लगे रहे व मनोरथ पूर्ण हुआ सो कृपा सदा बनी रहेगी और सर्वदा को सत्संग मेरे भाग्य में बना रहेगा और एक कारण से विशेष करके कृपा की आशा मुझ को है कि स्वामी के मित्रों व सम्बन्धियों के चरित्रों को मन से भाषान्तर किया है जो कदाचित् अपने चरित्रों की रचना की मंजूरी न दें तो समर्थ हैं परन्तु यह कदापि नहीं हो सक्ता कि उनके मित्रों के चरित्रों की मंजूरी न मिले इस हेतु दृढ़ विश्वास है कि निश्चय करके रूप अनूप की दृढ़ चिन्तवन और स्मरण भजन का धन मुझको मिलेगा जो यह संदेह करूं कि भाषान्तर की वाणी गजबज व स्वामी के रीझ के योग्य नहीं है मुझको कौन आशा कुछ मिलने की है तो यह संदेह योग्य नहीं क्योंकि यह भाषान्तर की वाणी भदेश व गजबज सुनकर बहुत हँसेंगे व जब हँसने की चाह होगी तब इसको सुनेंगे व प्रसन्न होकर जो धन मैं चाहता हूँ सो निश्चय करके स्वामी देंगे और भगवद्भक्तों की रीति है कि जिस पद

व रचना में भगवत् व भक्तों के चरित्र व नाम हैं उसीको परममन्त्र व अच्छा काव्य समझते हैं जो वह कैसे ही बुरे व अवगुण भरे कवि की रची और काव्य गुण से रहित होय इस हेतु कि साथ बैठनेवाले भगवत् के भक्त हैं इस भाषान्तर को कि भगवत् और भक्तों के चरित्र का स्वरूप है अति प्रेम से सुनकर व प्रसन्न होकर निश्चय हमारे विनय की सहाय व सिफ़ारिश करेंगे व हमारे मनोकामना को पूर्ण करदेवेंगे अर्थात् भगवत् के रूप अनूप का चिन्तवन व भजन मुझको मिलेगा सिवाय इसके यह भक्तमाल एक कल्पवृक्ष का स्वरूप है कि भगवद्भक्त तो उसका मूल और चौबीसनिष्ठा जो वर्णन हुई सो शाखा हैं भगवद्भक्तों की कथा पत्र हैं और नवीन २ अर्थ व भाव सब फूल हैं और भगवत् स्वरूप का चिन्तवन भजन का दृढ़ होजाना यह जिसमें फल हैं सो जब किसी ने ऐसे कल्पवृक्ष को सेवन किया है तो वह फल मुझको क्यों न मिलेगा और कदाचित् हमारे कोई पापकर्म ऐसे उदय हो जावें कि इधर तो इस सत्संग से अन्तर पड़े और उधर भगवद्भजन व चिन्तवन में मन लगा तो निश्चय करके यह बात समझी जायगी कि यह मेरा तन श्वान, सूकर, खर व सर्प आदि से भी निन्दित है क्योंकि क्षुधा, पिपासा, निद्रा, मैथुन इत्यादि सब जीवों को बराबर है मनुष्य शरीर की बड़ाई भगवद्भजन से है तो जिस शरीर से भगवद्भजन आराधन नहीं होता वह सब शरीरों से अधम व अमङ्गल है जो शिर कि भगवत् व भगवद्भक्तों के चरणों में नहीं झुकता सो शिर बाजीगर के सूम का अथवा कडुई तूँबी और जिसकी जीभ से भगवत्कीर्तन नहीं होता सो दादुर की जीभ और कान से भगवच्चरित्र श्रवण नहीं किया सो सर्प का बिल जानना चाहिए और भगवत् का दर्शन जिन आंखों से नहीं हुआ सो आंखें मोर के पर अथवा जूती का सितारा और हाथ विना भगवत् पूजन सेवा के अधजली लकड़ी के सदृश हैं और चरण जो भगवत्तीर्थों व भगवत् स्थान में यात्रा नहीं करते तो सूखे वृक्ष के सदृश हैं। केवल भगवद्भजन ही से मनुष्य कहाजाता है नहीं तो श्वासा तो लुहार की धौंकनी से भी निकलती है, श्वासा लेने से मनुष्यने ही वृथा जन्म लेकर अपनी माता को दुःख दिया और यद्यपि निष्काम भजन की पदवी उत्तम है परन्तु जिन लोगों ने संसारी कामना के हेतु भगवत् की शरण को लिया है उनको मनवाञ्छित संसारी कामना प्राप्त हुई और होती है और अन्त को आवागमन के

बन्धन से छूटगये और छूटजाते हैं कि वेद श्रुति, गीता, भागवत और सब पुराण यह बात पुकारते हैं और ध्रुव, सुग्रीव, विभीषण, युधिष्ठिर, उग्रसेन व सुदामा इत्यादि हजारों भक्तोंकी साक्षी देते हैं और यह भी शिक्षा सबको करते हैं कि भगवत् से विमुख होकर किसीने सुख नहीं पाया न किसीका ऐश्वर्य बनारहा कि जरासन्ध, वेणु, दुर्योधन, रावण, कंस व शिशुपाल आदिकी कथा साक्षी है॥

भगवद्भजन की महिमा के वर्णन में—वर्तमान लोगों का वृत्तान्त व भगवद्भजन के विरोधी का॥

कईवार आपस में अच्छे लोगों के इस बात का वाद विवाद हुआ कि हस्तिनापुर के बादशाहोंपर एक हजारवर्ष के दिनों से बराबर उत्पात घोर किस कारण से होते हैं इसके उत्तर में किसीने तो व्यभिचार की रीति प्रवृत्त होजाने और उस पाप से भांति भांतिकी पीड़ा होनी वर्णन किया, किसी ने कहा कि परलोक का भय न रहा व सद्धान्य के खानेकी रीति उठगई, सब उद्यमीलोगों ने अपने सत्कर्म के धान्य में अधर्म का धान्य थोड़ा सा मिलाकर सबको नष्ट करलिया है, किसीने कारण प्रवृत्त होने रीति मिथ्या, धूर्तता, मद्यपान, कपट, द्यूत व चोरी इत्यादि बुरे कर्मों का वर्णन किया, कोई बोला कि शत्रुता व फूट इस देश में इतनी फैल गई कि सहोदर भ्राता आपस में बुरा चाहते हैं इसहेतु बिरानेलोग प्रबल पड़गये और भांति २ के दुःख दिये, एक किसी ने कहा कि शास्त्र विद्या इस देश में कम होगई अपने मन व दूसरी विद्याओं से बहुत से अज्ञ व मूर्ख हैं कुलीनलोगों में जो थोड़ी विद्या का प्रकाश है तो केवल संसार के लाभमात्र का है परलोक का निर्मूल चिन्तवन नहीं और दूसरी जाति सब लाभ के हेतु बिराने की विद्या व बोल पढ़ लिये उसीको पढ़ाते हैं स्वप्न में व भूलकर भी अपनी विद्याकी ओर चाह नहीं करते सो जैसी विद्या को पढ़ते हैं वैसाही स्वभाव होजाता है इस हेतु भगवत् के दरबार से भ्रष्ट होगये और होजाते हैं और अनेक प्रकार की पीड़ा दूसरों के हाथ से पाई और पाते हैं, किसीने कहा कि राजालोग अपने धर्मसे जातेरहे अर्थात् धर्मशास्त्र के अनुसार राजा ऐसा हो कि बुद्धिमान्, धर्मात्मा, विद्यावान्, पूर्णपण्डित, शास्त्र में सावधान, सूक्ष्मका समझनेवाला, न्याय के समय शत्रुमित्रको बराबर जाननेवाला, अठारह अवगुण जो हैं मद्य-पान, हिंसा, विहार, स्त्रीरत रहना, अन्याय, दुर्वचन बोलना, वाचालता,

बिन अपराध वध करना, प्रजा से शत्रुता, खेल, कूद इत्यादि इन सबसे बचा रहे, आठ जगह से चौकस रहे अर्थात् गुरु, पुरोहित, मन्त्री, कोट, क़िला, ख़ज़ाना, कारबारी, सब फ़ौज, मित्र इतने को सावधानी से रखनेवाला व साम, दाम, दण्ड, भेदकी रीति का जाननेवाला व उसका आचरण करनेवाला हो व अपनी प्रजा को दूसरे राजों के हाथ से व ठग, उचक्का, बटपार, चोर, फेरहा, मूर्ख, मद्यपी, धूर्त व जान मारनेवाला और दूसरे सब दुष्टों से अच्छेप्रकार की रक्षा में अपने प्राण के सदृश रखकर सबको अपने धर्म में स्थिर व दृढ़ राखे और कारिंदालोग और पुंश्चली स्त्रियों से अति अधिक रक्षा प्रजा की करे कि यह दोनों प्रबल प्रेत राजा को झूठ मूठ मीठी २ बातें कहकर अपने वश में करलेते हैं इसीहेतु मन्त्री बुद्धिमान्, परलोक का भय करनेवाला, समझदार व विद्यावान् को रखना शास्त्रों में लिखा है सो ऐसे राजा अपने प्रजा को रक्षा करके धर्म पर स्थिर रखते थे । अबके राजों का वह वृत्तान्त है कि नहीं कहना अच्छा सूक्ष्मकर कहते हैं कि सब विपरीत शास्त्र के आचरण हैं प्रजा की रक्षा व पालन की जगह अन्याय व लूटपाट है व धर्मकी जगह अधर्म व विद्या की जगह मूर्खता है व चतुराई की जगह अज्ञता व लाघवता की जगह असावधानता है । कारिन्दा व बख़शी व मन्त्री आदि ऐसे हैं कि विद्या जानना व धर्मकी प्रवृत्ति व प्रजा का पालन तो अलग रहा निज आप तीनों बात के नष्ट करने को लगे हैं और शुभ चिन्तना व धर्मनिष्ठता का यह वृत्तान्त है कि राजा का राज्य जातारहे तो जूती से परन्तु किसी प्रकार उनको मुद्रा लाभ होय । कोई राजालोगों के निमित्त यह दृष्टान्त योग्य है कि किसी वन में जंगलीजीवों का बादशाह एक वन्दर था बिल्ली व मूसा एक रोटी के बांट कराने के हेतु उसके पास गये । बादशाह साहबने उस रोटी के दो टुकड़े करादिये परन्तु एक बड़ा होगया था उसका भोजन करना प्रारम्भ किया दोनों फ़रयादियों ने कारण भोजन करने का पूछा तब बादशाह साहब ने आज्ञा किया कि दूसरे के बराबर करताहूं खाते २ वह छोटा होगया तो दूसरेका भोजन करना आरम्भ किया और इसी प्रकार बराबर करते वह रोटी समूची चट कर गये ? भला जब राजों का यह वृत्तान्त है तो प्रजा आदि दरिद्र व दुःखी हो क्यों न तुरन्त संकट में पड़ें और जब कि एक गरीब की आह से एक बड़ा देश भस्म हो सकता है तो जिस राज्य में लाखों गरीबों की आह हो क्यों न जातारहे व क्यों न

विध्वंसको प्राप्तहो। पीछे एक किसीने कहा कि धर्म के चार चरणथे सत्य १ शौच २ दया ३ दान ४ यही शास्त्रोक्त धर्मों के मूल थे सो कलियुग के प्रभाव करके उन चारों चरणों में महाविघ्न उत्पन्न हुआ व मनुष्य पापी व अपराधी होगये इसहेतु दूसरे के हाथसे उन पापों का दण्ड हुआ और होते हैं इसी प्रकार के कारण बहुत लोगों ने अपनी बुद्धि व समझ के अनुसार कहि सुनाये। सबसे पीछे एकपुरुष बुद्धिमान् व सर्वज्ञ व भगवद्भक्त ने कहा कि मुख्यकारण लूटजाने राजों के राज्य का व उठजाने शास्त्रोक्त धर्मों का व प्रवृत्त होने अपने धर्म व प्राप्त होने अनेक महाउत्पातों का यहहै कि भगवत् का भजन व आराधन न रहा जो वह प्रवर्तमान रहता तो कदापि नहीं किसी प्रकार का विघ्न किसी बात में होता व न कलियुग का कुछ बल चलता और कारण लुप्त होजाने भगवद्भजन व आराधन का यह है कि कोई पन्था तो लोगों ने ऐसी चलाई कि वेद व शास्त्र से सब बातें विरुद्ध हैं और कोई ऐसी चली कि यद्यपि मूल उसका शास्त्र से जा मिलता है परन्तु प्रवृत्ति में उसके अगले आचार्य अथवा पिछले आचार्यों से उस पन्थाई की ऐसी भूल व चूक होगई है कि उनके अनुयायी व पन्थाईवाले इधर के हुये न उधरके व निन्दितधर्म कर्म में रत हैं और कोई लोगों ने कलियुग व पापकर्म के प्रभाव करके नरक-कुण्ड के भरने के निमित्त शास्त्र का अर्थ विपरीत समझलिया और एक पन्थाई के बहाने से त्याज्य व वर्जित वस्तु के खाने पीने व विषयभोग इन्द्रियोंका मज़ा आनन्द खूब अच्छे प्रकार उड़ानेलगे धन्य यह पन्थाई व धन्य समझ अधिक शोच इस बात का यह है कि इन लोगों ने शास्त्र का सिद्धान्त व अर्थ तनकभी नहीं समझा सिवाय इसके हमारे अग्रज लोग आप निर्बल होगये और थोड़ेसे जो शेष हैं तो उनके आचरण व वचन के प्रभाव के अनुसार करके थोड़ा बहुत परम्परा भजन का प्रवर्त-मान है सिवाय इसके एक बड़ा अनर्थ यह उत्पन्न हुआ कि कोई २ लोग जो कि आप संसारगर्त गम्भीर व अन्ध व संकीर्ण में बिना हाथ पांव के पड़े हैं परन्तु किसी ऐसे कोई से कि वहभी उसी गर्त में उससे अति अ-धिक दीन व दुःखी हैं बड़ाई किसी ऐसे बादशाह की कि चौमहले के ऊपर हैं और चौमंजिले महलके ऊपर चढ़जाने पर जाने मिले कै न मिले और एक २ महल का चढ़ना हज़ार जन्ममें भी कठिन है व चढ़जाने पर भी गिरने का भय अनुक्षण बना रहता है तिसको सुनकर बिना चारों महलपर

चढ़े विना पनारे के सहारे इच्छा पहुँचजाने की रखते हैं आश्चर्य यह कि उस महल पर पहुँचना तो दूर रहा उस गढ़हेसे भी उनके निकलने का भरोसा नहीं और उस पर भी मजा यह है कि ऐसी मतिमन्दता व मलीन समझ पर दूसरे लोगों को अपना संघाती बनालेने में चूकते नहीं। विष्णुपुराण में उन लोगों के निमित्त जो कुछ लिखा है सो ठीकहै इन लोगों के सिवाय एक और यूथ ऐसाही है कि जिनके कारण से भजन और धर्म की जड़ निर्मूल होगई और ऐसा प्रवर्तमान है कि जैसा सतयुग में भगवद्भक्तों का यूथ था नाम उनका दुष्ट व विमुख व खल है वर्णन व उनकी बड़ाई की भगवद्भक्तों के चरित्र से दूना तिगुना विस्तार है थोड़े में लिखते हैं॥ उपासना उनकी यह है कि शास्त्र विरुद्ध आचरण करना यही कर्म व भगवद्धर्म है । दूसरों के अवगुण व दुष्ट कथा और दुष्टों के चरित्र सुनना यह उनकी श्रवणनिष्ठा है । मिथ्या, चुगली, निन्दा व गालीदेनेका रात दिन कीर्तन करते हैं। जैसे पोशाक और छवि से हिन्दू जनाईपड़ें ऐसी पोशाक व छवि बनानी यह उनकी वेषनिष्ठा है । मदिरा बेचनेवाले, जुवा खेलनेवाले, जो बड़े धूर्त, कपटी मिथ्या बोलने में व निर्लज्जता में अभ्यास रखता हो ऐसे सब उनके गुरु हैं। वेश्याओं, पराई स्त्रियों व लड़कों का भगवन्मूर्ति से भी अधिक सेवन करते हैं । विना कारण किसीकी हानि करदेनी व जीवहिंसा, कपट मिताई, लड़ाई व क्रोध यह उनकी दया है । मद्यपान करना व वर्जित वस्तु का खाना यह उनका चरणामृत व महाप्रसाद है । दिन रात नाच राग रङ्ग, कुत्सित इतिहास पढ़ना, खेल कूद, लीला, तमाशा, चकले की सैर, गलियों में घूमना और ऐसेही काम में रहना यह उनका सत्संगस्थान है। भगवद्भक्तों और साधु संन्यासी आदि की निन्दाकी रचना करनी यही उनकी साधुसेवा है। सत्य बात को भी मिथ्या समझलेना और संदेह युक्त रहना व एक काम व स्मृति की आज्ञा में मनमुखी तर्क उत्पन्न करके उसके अनुकूल न आप आचरण करना न दूसरे को आचरण करने देना यह उनका ज्ञान है। भगवत् व भक्तों के चरित्रों से इतना वैराग्य है कि कबहीं स्वप्नमें भी स्मरण नहीं होता । चाह, खोटापन, लालच, कामोल्लास, गर्व, दम्भ व असत्यता से मिताई है और जो उनके अनुकूल काम करे सोई उनका सम्बन्धी और प्रियहै। अर्थ के किंकर हैं और जिससे कुछ मिले तिसके शरणागत, मद्यस्थान, द्यूतस्थान व

विजयादि का स्थान और वेश्याओं का मकान व कुसंगियों का स्थान जिन का तीर्थ और धाम है। कईबार अथवा बहुत भोजन करना यह उपास है। ऊपर लिखिआये सो आचरण व कर्म को सुनकर व मन लगाकर विचार करके दिन रात उसमें प्रसन्न रहना और दूसरी ओर चाह न होनी यह उन लोगों का दृढ़ प्रेम है। परमधाम अर्थात् मुक्ति उनकी वह नरक है कि जिससे न निकले और जिनको सुनके हृदय कांपिजाय ऐसे कठिन व अपार दुःखोंका प्राप्त होना यही उस मुक्ति का सुख है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर उसके आदि आचार्य हैं। अग्रगामी, प्रकाशक व प्रवर्तक उसके वे महाराज धर्मवान् अथवा आज्ञा चलानेवाले अथवा कुलीन व पुराने घरानेदार अथवा लम्पटों व शोहदों के प्रधान लोग हैं कि जिनको भगवद्भजन में प्रीति नहीं काहेसे कि जैसा आचरण उनका दूसरे लोगों ने देखा वैसाही आचरण किया। भगवत् ने गीता में कहा है कि यद्यपि मैं शुभ अशुभ कर्मों से बध्यमान होने के योग्य नहीं हूं परन्तु लोकसंग्रह के निमित्त सब कर्म आप मैं करताहूं, जो मैं कर्मों को छोड़दूं तो दूसरे लोग भी मेरे अनुसार आचरण करें और सबका नाश होजावे इससे निश्चय होगया कि उन चारों प्रकार के लोगों से जो ऊपर लिखआये सब अनर्थों व अधर्मों की प्रवृत्ति हुई। कुछ निन्दा किसी की कोई न समझे केवल स्मृति व शास्त्र की शिक्षा लिखदेने में कुछ अनुचित न समझी। एकादशस्कन्ध की टीका में श्रीधरस्वामी ने क्रमसे नीच व नष्ट लोगों का वर्णन करके समाप्ति राजों के सेवकों पर लिखी और स्मृति का वचन भी उसके अनुसार पाया और एक वचन सारे संसार की कहनावतहै कि खेती की वृत्ति उत्तम है व वाणिज्य मध्यम है और सबसे नष्ट चाकरी की है सो कारण इसके नष्टता का यह है सब शास्त्र व सब संप्रदाय व मतकी राह मन के एकाग्र होनेके निमित्त है कि उसीको निर्मल मान सके हैं और जब मन निर्मल हुआ तब भगवत् मिलता है और मन के एकाग्र होने के निमित्त दया का होना विशेष से विशेष चाहिये मुख्य साधन है सो इस चाकरी की वृत्ति में दोनों बात नहीं हैं अर्थात् वे विश्वासता स्वामी से इतनी है कि कदापि मन सुस्थिर नहीं रहता ऐसा दूसरी वृत्ति में नहीं है और निर्दयपन इस अधिकाई से है कि भारी पीड़ा व दुःखको राजसेवक लोग एक बात प्रबन्धवाली व रीति व पद्धति अपने स्वामी की समझते हैं भला जब कि वे मुख्य बातें दोनों जो कि दृढ़ साधन व विशेष

कारण भगवत् के मिलने का इस वृत्ति के प्रभाव करके जातारहे तो सब वृत्तियों में यह वृत्ति नष्ट व निकृष्ट क्यों न गिनी जाय और क्यों न शास्त्रों में उसकी निन्दा लिखी जाय। अभिप्राय इस लिखने से यह है कि एक तो यह वृत्ति नष्ट तिसपर जो इस वृत्तिवाले भगवद्भजन करें तो अपनी अन्त दशा पर अच्छे शोच करलें कि क्या होनी है और जो ऐसी निन्दित वृत्ति के प्राप्त रहने पर भी भगवद्भजन करेंगे तो उसका अन्तसमय का फल भी देखलें कि सब से उत्तमपदवी उनको क्यों न मिलेगी अभिप्राय कहने का यह है कि जब भगवद्भजन रूप चन्द्रमा को कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है तो उस भगवद्भजन में हानि काहे न होय और उस परमधर्म की परम्परा काहे न भङ्ग होजाय और दूसरे लोगों के हाथसे भांति भांति की पीड़ा काहे न होय सो भगवद्भजन सार व तात्पर्य सब शास्त्रोंका है जिस प्रकार होसके भजन में मन लगाना उचित है और जाने रहो कि ब्रह्मा जोकि सबसे बड़ा है सो भी विना भगवद्भजन इस संसार समुद्र से नहीं उतर सक्ता है॥

मुक्ति का वृत्तान्त व स्वरूप॥

जगह २ इस ग्रन्थ में कहा है कि भगवत्आराधन व सब मतों का फल मुक्ति है उसी के निमित्त सब परिश्रम करते हैं सो वर्णन करना चाहिये कि मुक्ति किसको कहते हैं और वह कौन वस्तु है? सो जाने रहो कि जैसा ज्ञानशब्द के वर्णन में हरएक मत व शास्त्र के न्यारे २ अर्थ व सिद्धान्त हैं इसी प्रकार मुक्ति का निर्णय है कथन का भेद है नहीं तो अभिप्राय सबका एक ही निकल आता है अर्थात् किसीने संसार के आवागमन से छूटने को मुक्ति का स्वरूप वर्णन किया और किसीने कहा कि सब दुःख दूर होकर नित्य सुख होनेको मुक्ति कहते हैं और किसीने माया के गुणों से अलग होनेको और किसीने सुख दुःख दोनों के न रहने को और किसीने परतन्त्रता से छूटकर स्वतन्त्र होजाने को और किसीने शरीर व मन दोनों का न रहना और किसीने सब तत्त्व व पञ्चमहाभूत को ईश्वर में मिलजाने को और किसीने माया का नाश होजाना मुक्ति का रूप बतलाया परन्तु मुख्यबात जो शास्त्रों के सिद्धान्तके अनुसार मालूम हुई सो यह है कि ब्रह्मस्वरूप होजाने का नाम मुक्ति है यद्यपि शाब्दिक अर्थ मुक्ति शब्दका छूटने का है परन्तु जबतक ब्रह्मस्वरूप न होगा तबतक कब छूटसक्ता है इसहेतु ब्रह्मस्वरूप होना सिद्धान्त व सार ठहरा व ब्रह्मस्वरूप सो होताहै जो भगवत्कृपा से मायाकी फांसीसे छूटजाता है। अब यह वाद उत्पन्न

हुआ कि शास्त्रों में मुक्ति के चार नाम लिखे हैं और ऊपर की लिखावट से केवल एक मुक्ति अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होजाना जानने में आता है तो विरुद्धता की बात क्या है सो जाने रहो कि वास्तव में तो मुक्ति केवल ब्रह्मस्वरूप होने का नाम है परन्तु शास्त्रों ने जो चार नाम से विख्यात किया है तो कारण यह है कि भगवत् को सब दशा में अपने भक्त के मनकी चाह पूर्ण करनी अङ्गीकार रहती है और वे भक्त वहां भी उसी अपने भाव की चाह करते हैं कि जिस भाव व कैंकर्य के प्रभाव से ब्रह्मस्वरूप होने की पदवी उनको प्राप्त हुई इस हेतु उस एक मुक्ति अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होने के चार प्रकार शास्त्रों ने लिखे हैं। प्रथम सार्ष्टि अर्थात् परमात्मा के समान ऐश्वर्य का होना। दूसरी सालोक्य अर्थात् उस परमात्मा के लोक में रहना। तीसरी सारूप्य अर्थात् परमात्मा के स्वरूप ऐसा स्वरूप धारण करके वहां रहना। चौथी सामीप्य अर्थात् भगवत् के समीप रहना। सायुज्य पांचईं है अर्थात् भगवत् में मिल जाना उसका नाम भी सार्ष्टि कहते हैं कि इसमें किसी का तो यह निश्चय है कि भगवत् में एक हो जाना और फिर खोज उस जीव का उस लोक में न रहना उसका नाम सायुज्य है और किसी का यह वचन है कि यद्यपि भगवत् में जीव मिलजाता है परन्तु उस जीव को भगवत् में अपने मिलजाने का ज्ञान बना रहता है जिस प्रकार कोई पुरुष नदी में डुबकी लगाता है यद्यपि किसीको नदी से भिन्न वह दृष्टि में नहीं आता परन्तु उस डुबकी लेनेवाले को अपने डुबकी लेने का वृत्तान्त स्मरण रहता है और किसी का सिद्धांत सायुज्य शब्द से सहयोग का है अर्थात् भगवत् अङ्ग से अङ्ग का संलग्न होना॥ सो जिस समय उपासक की उपासना परिपक्वता को पहुँचती है उस समय जीवन्मुक्त कहलाता है और परमधाम जाने की इच्छा हुई तब इस देह को छोड़कर लिङ्गशरीर को धारण करता है फिर भगवत् पार्षदों के साथ उस राह से कि कुशीतकी उपनिषद् व आठयें अध्याय गीताजी में अग्नि व सूर्य और शुक्लपक्ष और छः महीने उत्तरायण के देवताओं का वृत्तान्त लिखा है यात्रा करके जो माया के गुण जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश व अहंकार जो यह छः नित्य हैं उनको एक २ के आवरण में छोड़ता हुआ अर्थात् पृथ्वी का आवरण जब भेदन कर चुका तो पृथ्वी के सब तत्त्वों को वहीं छोड़दिया जल के आवरण में जा मिला इसी प्रकार दूसरे आवरणों को भेदन करता हुआ इन्द्र, ध्रुव, ब्रह्मा इत्यादि देवता

व ऋषीश्वरों से पूजा, आदर, सत्कार ग्रहण करता हुआ इस ब्रह्माण्ड से बाहर होता है। जानेरहो कि पृथ्वी की रज और जल की शीकर जो गिन जायँ तो गिनजायँ परन्तु ब्रह्माण्डों की गणना नहीं हो सकती सो सब आवरणों के भेदन करने पीछे विरजा नदी पर कि वह प्रभाव व प्रकाश पूर्णब्रह्म परम सच्चिदानन्द का है पहुँचता है और उसमें स्नान करके लिङ्गशरीर को छोड़ देता है और दिव्य शरीर निर्विकार प्रकाशवान् ज्ञानानन्दस्वरूप को धारण करके माया के जो गुण हैं उनसे अलग व निर्लिप्त होता है और फिर उन गुणों से सम्बन्ध नहीं रहता वहां से आगे जो दूसरे स्थान सब नित्यमुक्त इत्यादि भगवद्भक्तों व पार्षदों के हैं उनके और वहां के रहनेवालों के दर्शन करता हुआ और उनसे पूजा व सत्कार को प्राप्त होता हुआ अपने स्वामी के निज निवासस्थान के द्वार पर पहुँ-चता है कि किसी के सिद्धांत में वह वैकुण्ठ है और किसीके गोलोक और किसीके अयोध्या। तब पार्षद लोग व द्वारपालक सब दण्डवत् व महासत्कार करने पीछे भीतर लेजाते हैं वहां की झलक, तड़प, प्रभाव व प्रकाश पूर्णब्रह्म परमात्मा का कि उसींसे सब स्थान व वाटिका, फुलवाड़ी, जल-यन्त्र, जलप्रणाली, कूप व मार्ग इत्यादि जो कुछ मन व विचार के बुद्धि को देखने में आवें तैयार हैं सुखसे दर्शन करता हुआ अपने स्वामी के पास पहुँचता है और वहां भगवत् पूर्णब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्दघन स्वामी और उनकी परम प्रिया व उनके निकट निवासी की ओर से सब रीति प्यार व दुलार व प्रेम कृपा व दया कि इस पहुँचनेवाले पर होती है बोल बतराव होने पीछे उस समय यह कहता है कि मैं नित्य निर्विकार ज्ञानानन्दस्वरूप प्रकाशवान् ब्रह्म हूँ अब तक माया के जाल में फँसा था अब आपकी कृपा से छूटा अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ पीछे उसके चाहे भगवत् स्वरूप में मिलजाय अथवा वही अधिकार व सेवा उसको मि-लती है कि जिस ओर चाह उसकी है और परमानन्द में निश्चल व मग्न होकर उस परमपद में वास करता है यद्यपि आप इतना बल व सामर्थ्य रखता है कि कोटानकोट ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करके पालन और नाश कर देवे परन्तु उस ब्रह्मानन्द के स्वाद में ऐसा मग्न रहता है कि दूसरी ओर चाह नहीं होती जो कुछ वेद व शास्त्र और संप्रदायवालों के सिद्धांत के अनुसार समझ में आया लिखा गया और कोई २ बात का विशेष वर्णन व निर्णय इस हेतु न किया कि किसी एक संप्रदाय के सम्बन्ध में वह

होजायगा और चाहना यह थी कि सब संप्रदायवाले अपने निश्चय के अनुकूल अपना अर्थ सिद्ध करलेवें सो ऐसेही अक्षरों से वहां लिखागया॥

निर्गुणपन्थ और भक्तिमार्ग में विशेषता किसकी है इस बात का वर्णन॥

अब एक यह संदेह हुआ कि बहुत से लोग भक्तिमार्ग पर ज्ञानमार्ग की बड़ाई वर्णनके श्रुति व शास्त्रों के वचन को प्रमाण देकर मुक्ति का होना निर्गुणब्रह्म के ज्ञान होने पर वर्णन करते हैं और इस भक्तमाल में आदि से अन्त पर्यन्त बड़ाई और महिमा भगवद्भक्ति और सगुणब्रह्म की वर्णन होकर उसी के प्रभाव करके उद्धार का होना वर्णन हुआ सो इन दोनों मार्गों में वास्तव करके बड़ाई किस मार्ग को है और किससे मुक्ति मिलती है सो उत्तर पीछे लिखेंगे यह बात जानेरहो कि वास्तव करके मुख्य अर्थ ज्ञान शब्द का ईश्वर माया जीव के स्वरूप जानने के हैं और निर्गुणब्रह्म का अर्थ यह है कि माया के गुणों से वह परमात्मा अलग निर्लेप है परन्तु कोई २ लोग ज्ञान शब्द का तात्पर्य जीव व ईश्वर के एक होने से समझते हैं और ईश्वर को अव्यक्त मानते हैं स्वरूपवान् नहीं मानते और उसको निर्गुणब्रह्म विख्यात करते हैं सो इस वादानुवाद में उन निर्गुणमतवालों के निश्चय के अनुसार दोनों पद के अर्थात् ज्ञानपद व निर्गुणपद के अर्थ को समझना चाहिये और सगुणपद का तात्पर्य उपासकों व भक्तों के इष्टदेव से और मुख्य अर्थ सगुणस्वरूप का आगे लिखेंगे व जो संदेह ऊपर लिखआये तिसका उत्तर पहलेही श्रीकृष्णस्वामी ने अर्जुन से गीता में वर्णन किया है अर्थात् अर्जुन ने भगवत् से पूछा कि दोनों मार्गों में से कौनसा मार्ग उद्धार के निमित्त विशेषतर है ? भगवत् ने आज्ञा की कि जो मेरे में मन लगाकर विश्वास से मेरी उपासना अर्थात् मेरी भक्ति करते हैं सो योग्यतम अर्थात् बहुत अच्छे हैं और जो निर्गुण अर्थात् अरूप व अव्यक्त जानकर उपासना करते हैं यद्यपि वे भी मुझको प्राप्त होंगे परन्तु क्लेश बहुत अधिक उसमें है काहे कि अव्यक्त अर्थात् अरूप की उपासना और प्राप्ति में दुःख व परिश्रम बहुत है फिर ब्रह्मस्तुति में ब्रह्माजी का वचन है कि हे महाराज ! जो कोई अपने आपको मुक्त होने का गर्व मानकर आपकी भक्ति नहीं करते और शुष्कवाद विवाद में बड़े बुद्धिमान् हैं जो वे बड़े कष्ट से किसी उत्तम पद को पहुँचभी जावें तो फिर गिर पड़ते हैं किस हेतु कि आपके चरणकमल से विमुख हैं और जिन लोगों ने आपके चरणकमलों में मन

लगाया है सो लोग बड़े २ देवताओं के ऊपर होकर वहां पहुँचते हैं कि जहां से फिर नहीं फिरते। तीसरे स्कन्ध में कपिलदेवजी ने अपनी माता को उपदेश किया कि भगवद्भक्ति सिद्ध है अर्थात् निर्गुण ज्ञान से अधिक है जो निष्काम हो फिर कैसे हो कि इन्द्रियां व उनके देवता व मन सब भगवत् में लगजावें। पद्मपुराण में लिखा है कि ज्ञान और योग इत्यादि से क्या है ? केवल भगवद्भक्ति ही मुक्ति की देनेवाली है भागवत का वचन है कि हे महाराज ! जो तुम्हारी भक्ति को छोड़कर केवल निर्गुण ज्ञान के लाभ के हेतु क्लेश व दुःख उठाते हैं उनको केवल दुःखही हाथ रहता है जिस प्रकार भूसे के कूटनेवालों को कि सिवाय दुःख के दूसरा कुछ हाथ नहीं लगता और जिन लोगों ने अपने सब कर्मों को आपके समर्पण किये हैं और तुम्हारे चरित्र सुनते हैं वे तुम्हारी भक्ति को पाकर मुक्त हो-जाते हैं यद्यपि इन वचनों से ज्ञानमार्ग पर भक्तिमार्ग की बड़ाई व विशे-षता स्थिर व सिद्ध होगया परन्तु मनको यह उमंग हुई कि थोड़ा और भी वृत्तान्त लिखाजाय सो कुछ लिखता हूं और सब पुराणों में श्रीमद्भाग-वतको प्राधान्यता है इस हेतु प्रमाण के निमित्त कुछ वचन भागवत के लिखे जावैंगे दूसरे पुराणों के वचन लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं समझा और जानेरहो कि चारों वेदका सार उपनिषद् और सब उपनिषदों का सार गीता उपनिषद् है और निर्गुण व सगुण मत के सब उपासकों ने उस गीता के वचन का प्रमाण दृढ़ करके अंगीकार किया है इसहेतु कि जैसा वेद भगवत् के मुख से उत्पन्न हुआ ऐसेही यह गीता है सो उसके मुख्य सिद्धान्त के कोई २ वचनों को तर्जुमा करके लिखूंगा। भागवत में भगवत् का वचन है कि भक्तियोग जो विख्यात है और मैंने वर्णन किया है उसके प्रभाव करके तीनों गुणों से अर्थात् माया से छूटकर जीव मेरे भाव को प्राप्त होता है। वचन दूसरा मेरे भक्त सारूप्य इत्यादि मुक्ति को मेरे देनेपर भी नहीं लेते केवल मेरी भक्ति चाहते हैं। वचन तीसरा मेरे भक्त स्वर्ग और धरती पर के सब सुख कदापि नहीं चाहते हैं परन्तु मेरी भक्ति चाहते हैं। वचन चौथा मेरे भक्त कैवल्य मुक्ति को भी नहीं चाहते यद्यपि मैं देताहूं। वचन पांचवां दूसरे वचन के अनुसार कुछ थोड़ा न्यून विशेष है हे अर्जुन ! मेरे ही में मन लगावे और मेराही भक्त हो और मेरे ही निमित्त यज्ञ करे अर्थात् जपकर और मुझी को दण्डवत् कर कि मुझ ही को प्राप्त होगा यह सत्य कहता हूं इस अध्याय से बहुत अच्छेप्रकार

निश्यच्चय होगया कि ज्ञान व विज्ञान केवल भक्ति है। दशवें अध्याय में भगवत् ने अपनी विभूति के स्वरूप का वर्णन करके ग्यारहवें अध्याय में अपना स्वरूप अर्जुन को दिखाया और कहा कि न मैं वेदों से, न तप से, न दान से, न यज्ञ से देखने में आताहूं कि जैसा हे अर्जुन ! तू ने देखा और यह भी कहा कि अनन्य भक्ति से मिलता हूं जैसा मैं हूं। इस अध्याय से भी यही सिद्धान्त ठहरा कि भगवत् केवल भक्ति से जानाजाता है। बारहवें अध्याय में सम्पूर्ण भक्ति का वर्णन हुआ दूसरी चर्चा कुछ नहीं और निज अभिप्राय उसका इस विवाद के आरम्भ में वर्णन कर चुका हूं। तेरहवें अध्याय में यद्यपि भगवद्भक्ति का वर्णन एक जगह हो चुका है परन्तु वह अध्याय प्रारम्भ से समाप्तिपर्यन्त ईश्वर माया जीव और दूसरे तत्त्वों को वर्णन करता है। चौदहवें अध्याय में भगवत् ने माया के तीनों गुणों का वर्णन करके अन्त में कहा कि जो मुझको दृढ़भक्ति से सेवन करते हैं सो उन तीनों गुणों से छूटकर ब्रह्मस्वरूप होने के योग्य होते हैं। पन्द्रहवें अध्याय में भगवत् ने अर्जुन को शरणागती मन्त्र उपदेश किया और जीव तटस्थ से अपने आप को अलग पुरुषोत्तम नाम से वर्णन करके कहा कि जो मुझको पुरुषोत्तम जानता है सो सब प्रकार से मेरा भजन करता है यह अतिगुप्त बात तुझसे मैंने कही है। हे अर्जुन ! जिसको जानकर कृतकृत्य होजावे भगवत् के इस वचन पर अच्छेप्रकार विचार करना चाहिये कि निर्गुण मार्ग कब सिद्धान्त रहा अर्थात् भगवत् ने जीव को पुरुषोत्तम से अलग वर्णन किया और कृतकृत्य होने का निश्चय पुरुषोत्तम के जानने पर समाप्त किया तो विना परिश्रम और विना संदेश प्रकट व दृढ़ होगया कि ईश्वर सगुणस्वरूप है और भक्ति से जानाजाता है। सोलहवें अध्याय में विमुख व असुरभाव का वर्णन है। सत्रहवें व अठारहवें अध्याय में सबप्रकार के कर्म धर्म वर्णन करके अन्त में भगवत् ने कहा कि जिस प्रकार ब्रह्म को प्राप्त होता है सो ज्ञाननिष्ठा संक्षेप करके कहता हूं बुद्धि से मन को एकाग्र करके और इन्द्रियों के स्वाद व द्वैत अर्थात् दुःख सुख, मित्रता शत्रुता इत्यादि को त्याग करके एकान्त में छठवां वचन भगवत् ने गोपियों से कहा कि अच्छा हुआ तुम्हारी प्रीति मेरे में हुई काहेसे कि मेरी भक्ति निश्चय करके मुक्ति की देनेवाली है। वचन सातवां वेद करके क्या है और बड़े शास्त्रों से क्या है और तीर्थ सेवन से क्या है ? मेरी भक्ति ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की

देनेवाली है। आठवां वचन शुभ कर्म व योग इत्यादि सबका यह फल है कि भगवत् में भक्ति हो और वह भक्ति मुक्ति इत्यादि सब पदार्थों को देती है। गीताजी के प्रथम अध्याय में गीताशास्त्र के वर्णन का कारण लिखा है। दूसरे अध्याय में जीव का स्वरूप और सांख्ययोग का वर्णन है। तीसरे अध्याय में कर्मयोग कहाहै। चौथे अध्याय में ब्रह्मयज्ञ का कथन है। पांचवें अध्याय में संन्यासयोग कहा है। छठयें अध्याय में मन और इन्द्रियों और आत्मा को स्थिर करने का योग है। योग के वर्णन करने के पीछे छठयें अध्याय के अन्त में भगवत् ने कहा है कि जिस किसीका मन मेरे में लगा है और सच्चे मन से मेरा भजन करता है सो सब योगियों में युक्तम अर्थात् सबसे उत्तम है इस वचन से दृढ़ निश्चय होगया कि छहों अध्याय में जो सब मार्ग लिखे हैं तिन सबमें भगवद्भक्तिही की बड़ाई है। सातवें अध्याय में लिखा है कि बहुत जन्मों के पश्चात् ज्ञानवान् होकर तब मेरी शरण होता है इस वचन से यह बात स्थिर हुई कि ज्ञान एक अङ्ग भक्ति का है फिर उसी अध्याय में लिखा है कि मुक्ति के निमित्त जो मेरे शरण होकर सेवन करते हैं सोई ब्रह्म और सोई उसके जाननेवाले और सोई अध्यात्मज्ञानी और सोई सब कर्मों के जाननेवाले हैं फिर लिखा है कि जो कोई मुझको अनन्य जानकर मेरा भजन करते हैं उन योगियों को बहुत सहज से मिलताहूं। आठवें अध्याय में भगवत् का वचन है कि वह परम पुरुष अर्थात् भगवत् अनन्य भक्ति से जानाजाता है। नवें अध्याय के आरम्भ में भगवत् का वचन है कि ज्ञान व विज्ञान सब तुझसे कहता हूं और उन सब अध्यायों में अपना स्वरूप ईश्वरता का वर्णन करके मिलना अपना अपनी भक्तिसे वर्णन किया और अपने मिलनेका उपाय वर्णनकरके अन्त में लिखा कि मेरे शरण होने से स्त्री शूद्र वैश्य इत्यादि भी तरजाते हैं ब्राह्मणों को तो कुछ कहनाही नहीं इसहेतु बैठकर गर्व व चाहना आदि से छूटा हुआ ब्रह्म होने के योग्य होता है तिसके पाश्चत् ब्रह्म में एकाग्र होकर न शोचहै, न कुछ चाहना है और सब जीवमात्र को बराबर देखता है सो मेरी पराभक्ति को पहुँचता है भक्तिहीसे जाना जाता हूं वास्तव में जैसा हूं उसी भक्ति से मुझको जानकर वह भक्त मेरे में वास करता है अर्थात् मुझको प्राप्त होता है उसके पीछे सबके अन्त में कहा कि अतिगुह्यतम परम वचन फिर तू सुन क्योंकि तू मेरा मित्र है और मेरे में तेरी मति दृढ़ है इसहेतु तेरे कल्याण होने के निमित्त वह सिद्धान्त कहताहूं कि मेरेही

में मन लगाव, मेराही भक्त हो, मेरा ही यज्ञ अर्थात् जप कर और मुझही को दण्डवत् कर मुझी को प्राप्त होगा । सच कहता हूं कि तू मेरा प्यारा है सब धर्मों को छोड़कर एक मेरे शरण होने से मैं तुझको सब पापों से छुड़ा देऊंगा, शोच मत कर इस उपदेश करने पर पीछे भगवत् ने कुछ उपदेश नहीं किया । इस अध्याय से भगवद्भक्ति ही मूलसार व सिद्धान्त ठहरगई और यह श्लोक कि मेरे में मन लगाव और मेरा भक्त हो जो भगवत् ने दो जगह अर्थात् पहले नवें अध्याय में, दुहरायके अठारहवें अध्याय के अन्त में कहा तो इसके दो हेतु हैं एक यह कि जो बात आवश्यक व विशेष जताने के योग्य होती है तिसको बारबार कहने में आता है सो दो बार कहने से भगवत् अपनी प्रेरणा भक्ति के निमित्त दृढ़ व प्रकट जनाते हैं दूसरे यह कि भगवत् को ज्ञान व विज्ञान नवें अध्याय में कहने की इच्छा थी सो भगवद्भक्ति से अधिक ज्ञान और विज्ञान और कुछ नहीं इसहेतु एकबेर तो वहां इस श्लोक को कहा और अठारहवें अध्याय में भगवत् को सार व सिद्धान्त सम्पूर्ण गीता के कहने की इच्छा हुई सो जब कि भगवद्भक्ति सब शास्त्र और वेद व उपनिषद् इत्यादि का सिद्धान्त और निज अभिप्राय है इस हेतु वहां भी वही श्लोक जो ज्ञान विज्ञानकी स्थिति के निमित्त नवें अध्याय में कहा था वर्णन किया और इस वर्णन से इस बात को दृढ़ व स्थिर किया कि ज्ञान और विज्ञान भी भगवद्भक्ति है और सार व सिद्धान्त भी भगवद्भक्ति ही है तात्पर्य कहने का यही कि सम्पूर्ण गीताशास्त्र का अभिप्राय आदि से अन्तपर्यन्त यह है कि भगवद्भक्ति सार है तो जब कि भगवत् के वचनों से सिद्धान्त सब शास्त्रों का भगवद्भक्ति ही दृढ़ हुई और दूसरे पुराण भी भगवद्भक्ति ही को सब मार्ग और धर्म कर्म का फल वर्णन करते हैं और भगवत् का मिलना भी कि उसका नाम मुक्ति है केवल भक्ति से बहुत शीघ्र होती है तो भक्ति से अधिक दूसरे किस मार्ग को अच्छा समझाजाय और दूसरी कौनसी राह ऐसी है कि जिसको बड़ाई दीजाय ? भक्तिही भगवत् के मिलने के निमित्त मालिक, स्वतन्त्र, सार व सिद्धान्त सब वेद व शास्त्रों की है विना भक्ति किसी प्रकार भगवत् किसी को न पहले मिला न अब मिलेगा । ज्ञान शब्द का अर्थ पहले ही लिखिआये कि जीव माया ईश्वर के जानने को कहते हैं जो निर्गुण उपासकों का यह हठ और निश्चय कि यह शब्द एक तत्त्व को कहता है तो इसमें भी भक्ति ही की सहायता है क्योंकि जबतक ईश्वर के एक और

सबसे निर्लेप होनेका ज्ञान न होगा तबतक मुक्ति कब होसक्ती है सो अनन्य भक्ति का कई जगह वर्णन हुआ है । उपासक तत्त्वमसि और सोहं इत्यादि महावाक्य को मूलकारण अपने मत का समझते हैं और उन महावाक्यों के अर्थ सगुणउपासना को प्रकट करते हैं कि सो पद से अहं-पद आप भिन्नता का अर्थ सूचित करता है व इसी प्रकार त्वंपद तत् पद से भिन्न सूचित होता है और जो यह सब महावाक्य और ज्ञान शब्द भी जीव ईश्वर के एक होनेको निर्गुण उपासकों के कथनके अनुसार समझाजावे तब भी सिद्धान्त सगुण उपासकों की विशेषता है क्योंकि कोई २ उपासकों ने जीव ईश्वर को एकही अङ्गीकार किया है और सा-युज्यमुक्ति उनका मुख्य निश्चय है । अब यह विवाद उत्पन्न हुआ कि वेदान्तशास्त्र वेद का अङ्ग है और उस शास्त्र के बड़े २ विस्तारग्रन्थ देखने में आते हैं उसमें निर्गुण उपासकों का सिद्धान्त लिखा है उसका क्या वृ-त्तान्त है ? सो जाने रहो कि वेदान्त वेद के अन्तभाग अर्थात् उपनिषद् को कहते हैं और जो उपनिषदों में वर्णन हुआ सोई गीताजी और शारी-रकसूत्र में लिखा है तो मुख्य वेदान्तशास्त्र यह तीनों हैं कि बड़े बड़े ग्रन्थ ऊपर कहे हैं सो निर्गुण उपासकों ने उनका तिलक आप बनाया और उसके सहाय के निमित्त विस्तार करके ग्रन्थ अलग बनाया उसका नाम वेदान्त रखलिया नहीं तो वास्तव करके उपनिषद् और गीता और सूत्रों का सिद्धान्त व सम्मत भगवद्भक्ति है और भगवद्भक्ति के सम्बन्ध के जो तिलक व भाष्य व ग्रन्थ हैं सो मुख्य वेदान्त है और भगवत् उपासकों में प्रवर्तमान व विख्यात है इस कहने का तात्पर्य यह कि कुतर्क रहित निर्विवाद भगवद्भक्ति ही सर्व मार्गों की सरताज व शिरोमणि है यह सिद्धान्त सब शास्त्रों का द्वेषरहित लिखागया भला इसको रहने दीजिये जो निर्गुण उपासकों ही के वचनों को सिद्धान्त माना जाय तब भी भक्ति ही को बड़ाई प्राप्त होती है क्योंकि उनका वचन है कि वही निर्गुणब्रह्म सगुणस्वरूप होजाता है अब इसमें यह पूछते हैं कि वह सगुणस्वरूप जो निर्गुण ब्रह्म ने प्रकट करलिया ईश्वर है कि आवागमन के परम्परा में बद्ध है जो जन्म लेना व मरना उसको है तो ईश्वर कहना न चाहिये और जो ईश्वर है तो उसके सेवन से मुक्ति क्यों न होगी सिवाय इस बात के और एक यह बात है कि निर्गुण मार्गके अनुसार वेदश्रुति ने कहा है कि निर्गुण परमात्मा अपने भक्तों पर कृपा करके सगुणरूप होजाता है इसमें यह

पूछते हैं कि जो उस सगुणरूपकी भक्ति व सेवन से मुक्ति न हुई तो उस निर्गुणब्रह्म ने कृपा क्या करी बरु वह कृपा एक प्राणपीड़ा होगई क्योंकि हज़ारों जन्मोंतक एक जीव बेचारे ने परिश्रम किया और अन्तकाल वह ईश्वर मुख्य कार्यके सिद्ध करने में असमर्थ निकला तो वह निर्गुण ब्रह्म एक धोखेबाज़ व कपटी हुआ कि लोगों को एक हरा बग़ीचा बातों का दिखलाता है और उसी श्रुति के अनुसार दूसरा प्रश्न यह है कि जो वेद श्रुति व सिद्धान्त ठीकहै और यह भी बात उनकी सचहैकि निर्गुणमार्ग से ही मुक्ति होती है तो इस भगवद्वाक्य का क्या अर्थ किया जायगा ? हे अर्जुन ! मेरे जन्म व कर्म जो कोई जानता है अर्थात् मेरे चरित्रों में मन लगाता है सो शरीर को छोड़कर फिर जन्म नहीं लेता और मुझको प्राप्त होता है अभिप्राय इसके लिखनेका यह है कि मुक्ति होना भगवद्भक्ति से जो मानलिया है तो इस सिद्धान्त में विरुद्ध पड़ता है कि विना निर्गुण मार्ग के भक्ति नहीं और जो यह सिद्धान्त ठीक है तो उस श्रुति और भगवत् के वचन का उत्तर देना उचित है कि सच है कि झूंठ इसके सिवाय सिद्धान्त की बात है कि जो जिस किसी का ध्यान करता है सो वहीरूप होजाता है तो इस सिद्धान्तके अनुसार जिस किसीने भगवत् को पूर्णब्रह्म, परमात्मा, सच्चिदानन्दघन, व्यापक, मायाधीश, अनन्तब्रह्माण्डों का नायक जानकर उसके रूप अनूप का चिन्तवन किया सो कहा जायगा जो यह कहोगे कि वह अपने स्वामी का रूप होजायगा तो यह भी कहना उचित है कि उसके स्वामी में वे गुण कि जैसा जानकर उसने चिन्तवन किया है कि नहीं जो हैं तो सब प्रकारसे वह चिन्तवन करने वाला मुक्त होगया कि सिद्धान्त यही है और जो वे गुण नहीं तो वैसा गुणवाला दूसरे किसीको निश्चय कर देना चाहिये नहीं तो सिद्धान्त में बड़ा विरुद्ध पड़ेगा यद्यपि इन बातोंको निर्गुण मतवाले मानके यह बात बनावते हैं कि निश्चय करके जो भक्ति करके अपने स्वामीको पहुँचगया है उसको आवागमन नहीं होगा परन्तु वास्तव में मुक्ति अर्थात् निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति तबहीं होगी कि जब अपने स्वामी के साथ अन्तर्धान हो-कर निर्गुण ब्रह्म में मिलजावेगा । अभिप्राय उनका यह है कि निर्गुण ब्रह्म के मिलने का भक्ति एक साधन है सो इसका उत्तर तो हम ऐसी मोटी बुद्धिवालों का तो यह है कि हमको आंब खाना कि पेड़ गिनना तात्पर्य हमारा आवागमन से छूटने का था सो तुम्हारी कृपा से आप प्राप्त होगया

अब अधिक वाद विवाद का क्या प्रयोजन है और किस हेतु सिवाय अपने स्वामी के दूसरे किसी को ईश्वर अङ्गीकार करें परन्तु जो कोई निज निचोवा के वृत्तान्त और वेदशास्त्रों के सिद्धान्त जानते हैं वे निर्गुण मतवालों की बातों को विना जड़मूल का कहकर उत्तर देते हैं कि वह वचन उनका तब निश्चय करने के योग्य होता कि जो सगुण ब्रह्म एक अङ्ग निर्गुणब्रह्म का होता और जब कि निर्गुणब्रह्म एकअङ्ग सगुणब्रह्म का है तो वह सिद्धान्त उनका कब अङ्गीकार करनेके योग्य है निश्चय विरुद्ध व विपरीत है सो सूक्ष्म करके वृत्तान्त उसका यह है कि पन्द्रहवीं निष्ठा में शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार जहां ईश्वर का वर्णन हुआ है तहां पांच प्रकार का निरूपण लिखागया उसके चौथे निरूपण में यह लिखागया है कि वह स्वरूप चौथा उस सगुणब्रह्म का अन्तर्यामी, अव्यक्त, ज्ञानानन्द, अलख, अविनाशी, निरञ्जन, निर्गुणब्रह्म, सर्वव्यापक है तो प्रकट होगया कि निर्गुणब्रह्म अङ्ग सगुणब्रह्म का है और निर्गुणमतवाले उसी चौथे स्वरूप के उपासक हैं सिवाय इसके वाराहीसंहिता में लिखा है कि निर्गुणब्रह्म प्रकाश व छाया सगुणब्रह्म का है और निजरूप भगवत् का सगुणब्रह्म है और इसी प्रकार का वचन सनकादिक संहिता में लिखा है तो इन वचनों से पन्द्रहवीं निष्ठा के चौथे निरूपण की मिलान होती है सो निस्संदेह निर्गुणब्रह्म एक अङ्ग सगुणब्रह्मका है और प्रकारके विवाद व संदेहके दूर करने के निमित्त निर्गुणब्रह्म का अर्थ इस वाद के प्रारम्भ में लिखि आया हूँ कि जो ईश्वर मायाके गुणों से भिन्न व निर्लेप होय उसको निर्गुणब्रह्म कहते हैं अरूप को नहीं कहते हैं और इसी प्रकार ज्ञानशब्द का अर्थ भी लिखागया कि ईश्वर मायाजीव के जानने का नाम ज्ञान है और वह एक साधन भगवद्भक्ति का है कि इसका सिद्धान्त गीताजी के श्लोकों के तर्जुमे जो ऊपर लिखिआये हैं उनसे अच्छे प्रकार होता है और यहां भी दो एक वचन लिखता हूँ । गीताजीमें भगवत् ने कहा है कि जो मुक्तिके निमित्त मेरे शरण होते हैं सोई ब्रह्म के जानने वाले और अध्यात्मज्ञान व सब कर्मोंके जाननेवाले हैं (शाण्डिल्यसूत्र है) कि ब्रह्मकाण्ड अर्थात् ज्ञान भगवद्भक्ति जानने के निमित्त है सो निश्चय करके ज्ञान एक साधन भक्ति का है और भगवद्भक्ति में दृढ़ होना विज्ञान है अब जो यह शङ्का होय कि निर्गुण शब्द का अर्थ जो उपासकों के इष्टदेव के सम्बन्ध का ठहरा तो सगुणस्वरूप का कौन अर्थ किया

जायगा ? सो प्रकट है कि जब निर्गुणब्रह्मका अर्थ माया से निर्लेपका हुआ तो सगुण शब्द का अर्थ उस भगवत् स्वरूप का ठहरा कि अपनी माया के आश्रय होकर अपने भक्त के कार्य के हेतु प्रकट होता है और जिसका चरित्र संसारसमुद्र के उतरने के वास्ते दृढ़ सेतु है जो कोई संसारसमुद्र से पार हुआ तो उन चरित्रों ही के कृपा व प्रभाव से उन चरित्रों से अधिक और कोई निर्वाह की राह न आगे रही न अब है न आगे पर होगी इस बात को वेद व शास्त्र उच्चस्वर से पुकारकर कहते हैं। नितान्त सब शङ्का संदेह दूर होनेपर भगवद्भक्ति ही मुख्य है उसके सिवाय और कोई राह अच्छी व सीधी नहीं और ईश्वर का स्वरूप निर्गुण मतवालों का भगवद्भक्ति के उपास्य ईश्वर परमात्मा का एक अङ्ग है। इस लिखने में जो यह कोई शङ्का करे कि जो वह निर्गुणब्रह्म भगवत् के सब रूपों में एक अन्तर्यामी व व्यापक अथवा छाया है तो उसके उपासना में क्या विवाद है क्योंकि भगवत् उपासकों का सिद्धांत है कि भगवत् के कोई एक रूप चाहे धाम, चाहे नाम अथवा चरित्र की उपासना दृढ़ होनी चाहिये निश्चय करके उद्धार होगा। उत्तर इसका यह है कि इस विवाद के आरम्भ से व यहां तक यह बात कहीं नहीं लिखी कि उनका मत अशुद्ध है केवल भगवद्भक्ति और सगुणस्वरूप की विशेषता का वर्णन किया गया है जो वह लोग सिद्धांत व सच्ची बात को समझ कर निर्गुण ब्रह्म का आराधन करें तो निश्चय करके कबहीं न कबहीं भगवत् सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म का वास्तव स्वरूप उनके हृदय में प्रकट हो और उद्धार हो जाय परन्तु विचार करना भी तो उचित है कि वह मार्ग कैसा कठिन और क्लिष्ट है। पहले तो भगवत् ने आप गीताजी में कहा है कि अव्यक्त की राह अर्थात् निरूप की प्राप्ति देहाभिमानी को दुःखरूप है, अति कठिन है, सिवाय इसके उसका निरूपण करना कठिन जो कदाचित् किसीने निरूपण भी किया तो उसका समझना उससे और अधिक कठिन और जो किसी प्रकार समझ भी लिया तो आचरण व आरूढ़ होना उसपर कैसा कठिन व क्लिष्ट है कि जाने पहले युग व समय में कोई आचरण करनेवाला उसका हुआ होगा क्योंकि जो वस्तु बुद्धि व समझ से बाहर है उसमें किस प्रकार मन लगे और विना एकाग्र होने मन के उसका प्राप्त होना दुर्लभ है इस हेतु उस परम्परा पर पहुँचना। जाने रहना कदाचित् अगणित जन्मों में बड़े कष्ट से किसी एकको कोई पदवी प्राप्त भी हुई तो ऊपर

ठहरना अत्यन्त कठिन है और गिरना बहुत सहज क्योंकि इंद्रियों की बलात्कारी सबको मालूम है। तात्पर्य यह कि आदि से अन्त पर्यन्त सिवाय क्लिष्टता के और कोई बात दिखाई नहीं पड़ती और भगवद्भक्ति की सहजता व भगवत् के शीघ्र मिलने का वृत्तान्त यह है कि किसी प्रकार से भगवच्चरित्रों में थोड़ी सी प्रीति होनी चाहिये वह चरित्र ही भजन और कीर्तन में लगाकर भगवत्स्वरूप को हृदय में प्रकट कर देते हैं। उस स्वरूप का यह प्रताप है कि दिन २ भक्त के हृदय में अपने निज झलक व प्रकाश को बढ़ावता हुआ दृढ़ निश्चय व विश्वास कृपा करके अनन्य मन से संसार के स्वाद की चाहना दूर करता हुआ और ज्ञान वैराग्य को प्रकाशित करता हुआ और नाम कीर्तन व भजन के सहाय से पहले करुणा, क्षमा, तितिक्षा इत्यादि भक्त के मन में उत्पन्न कर देता है तिसके पीछे अपनी यथार्थ सुन्दरता व अनूप छवि हृदय की आंखों को दिखाकर ऐसा वश व मोहित कर लेता है कि सिवाय उस रूप अनूप और छवि माधुरी के दूसरी ओर वह मन नहीं जाता फिर वह कृतकृत्य व कृतार्थ होकर उस रूप अनूप में दृढ़ व निश्चल होजाता है कि उसीका नाम जीवन्मुक्त है इसके पीछे मुक्ति होती है सो आदि अन्त तक सहज और शनैः शनैः सुखरूप इस मार्ग के और मार्ग कठिन हैं कोई बात देखने में नहीं आती जन्म मरण की पीड़ा से भय करके उसी ओर सम्मुख होने की देर है भगवत् को अपनी करुणा और दयालुता और दीनवत्सलता में तनक देर नहीं अपने मिलने का सब सामान व सामग्री आप कर देता है। जगत् में बहुत जगह सुना और कहीं कहीं देखने में भी आया कि झूंठे व विषयी प्रेमियों के मनकी लगन अज्ञानी व अनेक पाप व अवगुणों से भरी हुई स्त्रियोंके मन में प्रवेश करके उन स्त्रियों को उनकी चाह करनेवालों को मिला देता है तो वह परमात्मा जो कि शुद्ध सच्चिदानन्दघन सब जानने वाला व उत्पन्न करनेवाला सब परिपाटी व प्रबन्ध व रीति पर कायाभिमानी व प्रियवल्लभपने का अर्थात् आशिक़ी व माशूक़ी का है अपने प्रेम करनेवाले पर दया करके क्यों नहीं शीघ्र वह मिलेगा और क्यों न मनोरथ पूर्ण करेगा नहीं तो उसीकी मर्यादा प्रबन्ध में दोष प्राप्त होगा। तात्पर्य इन बातों के कहने का यह है कि जो कोई ऐसे सहज व मुख्य मार्ग को छोड़कर भगवत् के मिलने के निमित्त अति क्लिष्ट व एक अङ्ग की ओर चित्त देते हैं वे निश्चय करके बुद्धिहीन, अल्पभागी व कर्महीन

हैं, रत्नों को डालकर कंकरों को उठाते हैं, कामधेनु को छोड़कर दूध के निमित्त आक का पेड़ खोजते हैं और एक चोर की बात स्मरण होआई कि निर्गुण खसम को स्त्री भी अङ्गीकार नहीं करती। पुरुष समझदार व बुद्धिमान् तो निर्गुण को अपना स्वामी क्यों अङ्गीकार करे सो गोपिका भगवत् की परमप्रिया उद्धव से कहती हैं ॥ सूर छांड़ि गुणधाम सांवरो को निर्गुण निरवाहै ॥ और एक बात विचार व न्याय के योग्य है कि प्रेम विना सुन्दरता व शोभा के नहीं होता और जबतक प्रेम नहीं तबतक मिलना भगवत् का कदापि नहीं होसक्ता ॥ उस मतवालों का सिद्धान्त है कि जबतक वर्णाश्रम के धर्मों को करके हृदय निर्मल न हो तबतक वह ज्ञान उपदेश का अधिकारी नहीं अब वह ब्रह्मज्ञान गली गली ऐसा बहा २ फिरता है कि जो थोड़ा भी वर्णन करूं तो बहुत विस्तार होजाय और द्वेषता का कलङ्क अलग रहा इस हेतु उसकी चर्चा ही को छोड़दिया और अच्छीप्रकार समझलिया कि विष्णुपुराण व भागवत इत्यादि में जो वृत्तान्त कलिधर्म के लिखे हैं और यह भी वर्णन हुआ है कि कलियुग में स्त्री पुरुष ऐसे होंगे कि सिवाय ब्रह्मज्ञान के और कुछ न करेंगे और कर्म उनके ऐसे होंगे कि थोड़े से लालच में आयकर ऐसे कर्म करेंगे कि जिससे चाण्डाल का भी हृदय कांपजावे सो वह समय अब आगया अब और वाद विवाद को विरुद्ध करके अति अधीनताई व प्रार्थनापूर्वक बिनती करता हूं कि जो सूर्य पश्चिम उगे और शशा के शिर पर सींग जमे व आकाश में फुलवारी लगे व पानी में आग लगे तो संदेह नहीं यह सब होय परन्तु यह कदापि कदापि नहीं होसक्ता कि विना भजन भगवत् पूर्णब्रह्म परमात्मा मेरे स्वामी के इस संसारसमुद्र से पार होजावे। यह प्रताप भगवत् के सेवन भजन ही का है कि वह संसारसमुद्र गोपद जल के सदृश होजाता है यह सिद्धान्त व सार वेद व शास्त्रों का है ॥

थोड़ासा वृत्तान्त संप्रदायों के चारों भेद का और वास्तव में उनका परिणाम में एक होना ॥

अब यह लिखना उचित हुआ कि सब संप्रदायवाले अपनी संप्रदाय को दूसरी संप्रदाय पर विशेष जानकर उद्धार के निमित्त उसीको सत्य व सिद्धान्त समझते हैं और उसीकी विशेषता वर्णन करते हैं सो इन चारों संप्रदाय में अच्छी व विशेष कौन संप्रदाय है सो जानेरहो कि संसारसमुद्र से पार करदेने के निमित्त चारों संप्रदाय एकही भांति व

बराबर हैं किसी में कुछ न्यून व विशेषता नहीं। सब संप्रदायवालों ने भगवत् की अद्वैतता एक ही प्रकार व बराबर लिखी है और प्रमाण श्रुति व स्मृति इत्यादि का सब संप्रदायवालों में एक है और युक्त है कि सिवाय भगवत् के न कोई उद्धार करनेवाला है न उसके सिवाय और किसी देवता का साधन चाहिये और इसी प्रकार भगवत् के धाम व विग्रह में सबका बराबर एक सम्मत है केवल थोड़ी बात पर झगड़ते हैं एक तो माया और जीव के निर्णय में आपस में उन लोगों के निश्चय में भेद है, दूसरे तिलक और मुद्रा धारण करने और उसकी मूर्ति बनाने में विरुद्ध है, तीसरे सब संप्रदायवाले अपने इष्टदेव को अवतारी व स्वयंस्वरूप और दूसरों को अवतार व अंश व विभूति अपने स्वामी का जानते हैं सो इस विरुद्धता का वृत्तान्त वेषनिष्ठा व धामनिष्ठा और चारों आचार्यों की कथा व चारों निष्ठाओं से मालूम होसक्ता है॥ रामानुजस्वामी की संप्रदाय में कैङ्कर्यनिष्ठा है व ईश्वर को चिदचिद्विशिष्टाद्वैत मानते हैं अर्थात् माया और जीव भी उसी अद्वैत से मिलेहुये हैं और नित्य हैं व निम्बार्कस्वामी की संप्रदाय में अनन्यता की निष्ठा है व जीव ईश्वर में भेदाभेद द्वैताद्वैत अर्थात् एक भी व दो भी हैं और व्याप्त व्यापक सम्बन्ध करके तात्पर्य यह कि जो जिस करके व्याप्य है सो तद्रूप है और माध्वसंप्रदायवालों की निष्ठा कीर्तन की ओर द्वैतसिद्धान्त है व विष्णुस्वामीसंप्रदाय आत्मनिवेदन की निष्ठा व शुद्ध अद्वैत सम्मत है सो इन भेदों पर विचार कियाजाय तो एकही है क्योंकि वास्तव वस्तु सब निष्ठाओं की एकही प्रकार की है जो कुछ झगड़ा व वाद आपस में है सो अपनी २ राह में प्रीति व विश्वास के बढ़ाने के निमित्त है वास्तव करके कुछ विरुद्ध नहीं॥

स्मार्तमत के वर्णन के बहाने अनन्यशब्द का अर्थ वर्णन और प्रयोजनवाली दूसरी बात का भी वर्णन॥

अब यह बात वर्णन करनीपड़ी कि स्मार्तसंप्रदाय की भी चर्चा इस भक्तमाल में हुई है उस संप्रदायवालों का क्या मार्ग है और किस देवता का आराधन करते हैं और फल व परिणाम उस मार्ग का क्या है? सो जानेरहो कि स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र के अनुसार चलना व सोलह कर्म गर्भ के आरम्भ से मरणपर्यन्त को मुख्य जानना उनका परम्परा मार्ग है। जिसने पहले यज्ञोपवीत दिया अथवा जिससे विद्या पढ़ी उसी

को गुरु जानते हैं। ऋषीश्वरों अर्थात् मनु और याज्ञवल्क्य इत्यादि को आदि आचार्य समझते हैं और ऋषीश्वर बहुत हो गये इस हेतु कोई एक मुख्य प्रवर्तक उस मार्ग का नहीं कहने में आता परन्तु अन्त में सेवड़ों के वध होने के पीछे शङ्करस्वामी से उस मार्ग की बहुत विशेष प्रवृत्ति हुई और वे लोग सारफल अपने धर्म कर्म का निराकार निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति को समझते हैं इस हेतु शङ्करस्वामी को अन्त का आचार्य समझना चाहिये। स्मृति की पूजा इत्यादि के निमित्त पुस्तक पद्धति की जानते हैं पञ्चाङ्गपूजा करते हैं अर्थात् गणेश, शिव, विष्णु, दुर्गा, सूर्य की मूर्ति एक सिंहासन पर विराजमान करके सबको पूजते हैं और जिस देवता पर विश्वास व प्रेम अधिक होय तिसको मध्य में और चारों कोनों पर चार देवता को बैठालते हैं। चारों संप्रदाय वैष्णवी में से किसी के चेले नहीं होते उनमें से कोई कोई ऐसे भी हैं कि निज एक किसी देवता की पूजा करते हैं और अपने आपको स्मार्त कहते हैं। देवता की पूजा की पद्धति और स्तोत्र पाठ इत्यादि सब रखते हैं परन्तु उपासना के ग्रन्थ जिस प्रकार चारों संप्रदाय में हैं कोई नहीं और होना भी निश्चय विना निष्प्रयोजन है क्योंकि वह लोग पूजा देवताओं की दूसरे कर्मों के सदृश समझते हैं और वेदान्त निर्गुण मत का पढते हैं। इस भक्तमाल में जो कोई २ जगह स्मार्तसम्प्रदाय का वर्णन हुआ है तो कारण यह है कि उन लोगों में किसी किसी को भगवत् आराधक ऐसा देखा कि भूलकर भी दूसरी ओर चित्त नहीं देते सो भगवत् को अपना अनन्य दास प्यारा है जो कोई हो सोई भगवत् का भक्त है। भगवत् को जाति विद्या बड़ाई सम्पत्ति मार्ग इत्यादि पर कुछ दृष्टि नहीं केवल अनन्य भक्ति चाहिये। बालमीकि, श्वपच, शबरी, गज, गणिका, सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण, प्रह्लाद इत्यादि हजारों भक्तों की कथा इसके प्रमाण व दृष्टांत को प्रसिद्ध हैं और गीता में कहा है कि अनन्य चित्त से भजन करनेवाले को सुलभ हूँ—दूसरा वचन है कि अनन्यदास कीर्तन करने वालों को मुक्ति देता हूँ अनन्य शब्द का अर्थ साधन अवस्था में तो यह है कि अपने स्वामी के सिवाय और किसी से जानि सुनकर किसी बात का कोई प्रकार का सम्बन्ध न हो व सिद्धावस्था यह है कि सिवाय अपने स्वामी रूपराशि के और कोई बाहर व भीतर की दृष्टि में दिखाई न पड़े दोनों अवस्था में एक से सिवाय दूसरा अङ्गीकार व विश्वास के योग्य नहीं और

सिद्धांत की बात है कि दो सुन्दर रूपपर एक की प्रीति नहीं हो सक्ती सो एक दृष्टांत भी स्मरण हो आया, किसी धूर्त दगाबाज़ ने एक सुन्दरी स्त्री से कहा कि मैं तेरा आशक्त हूं, उसने उत्तर दिया कि फलानी स्त्री बड़ी सुन्दरी है उसपर आशक्त हो, वह पुरुष उस स्त्री को ढूंढ़ने गया व फिर आकर कहा कि कोई स्त्री न मिली। उस स्त्री ने उत्तर दिया कि तेरी परीक्षा मैं लेती थी जो तू सच्चा मेरा आशक्त था तो दूसरी स्त्री को ढूंढ़ने के हेतु क्यों गया था सो ऐसी बातों से हम नहीं जानें कि जिनको विश्वास व निष्ठा कई ओर हैं और निज अभिप्राय का सिद्ध करने वाला जिसकी पूजा पत्री करते हैं उसके सिवाय और किसी को जानते हैं तो उनको प्रेम किसमें और किस प्रकार होगा और कैसे अपने मनोवाञ्छित पद को पहुँचेंगे और ऐसी निष्ठा पर कौतुक यह है कि जो कोई शास्त्र के प्रमाण के अनुसार एक ओर मनको लगाये हैं उनको अपने मनमुखी ज्ञान करके वे विश्वास और निन्दक ठहराते हैं और वह कदापि न किसी से द्वेष रखते व न किसी की निन्दा करते जिस देवता का जैसा प्रभाव व प्रभुत्व है तैसा ही यथार्थ जानकर सच्चे मन से उसको वैसाही मानते हैं परन्तु वहां इतना भेद है कि उन लोगों के सदृश सबको ईश्वर नहीं मानते इस हेतु कि शास्त्रों के वचन के अनुसार ईश्वर एक है दो चार नहीं अभिप्राय इस विस्तार से कहने का यह है कि जो कुत्ता द्वार द्वार फिरता है कदापि उसका पेट नहीं भरता और जो कुत्ता एक द्वार सेयकर रहता है सो यद्यपि अपवित्र व अशुद्धता के भी घर के मालिक को ऐसा प्यारा हो जाता है कि आप उसकी खबरगीरी करता है और यह भी विचार करने योग्य है कि पुंश्चली स्त्री का पुत्र बाप किसको कहै ॥

भगवत् के अवतार लेने और भक्तों के चाह के अनुसार चरित्र करने का सब हेतु ॥

अब यह प्रश्न है कि इस तर्जुमे भक्तमाल में व सब शास्त्रों में भगवत् की महिमा लिखी गई कि वह अच्युत अनन्त व्यापक सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा है कि वेद जिसको नेति २ कहते हैं और उसी का यह वर्णन हुआ कि किसी भक्त के निमित्त स्वामी और कहीं टहलुआ, कहीं चरवाहा, कहीं मशालची, कहीं सुनार, कहीं चोर, कहीं साहूकार, कहीं बेटा, कहीं बाप, कहीं आशक़, कहीं माशूक़, कहीं यार, कहीं नातेदार हुआ तो उस महिमा की ओर देख करके ऐसे चरित्रों पर दृष्टि जाती है तो महा आश्चर्य होता है इसका क्या वृत्तान्त है ? सो जानेरहो कि जो भगवत् व

शास्त्र के जाननेवाले हैं उनलोगों की तो यह आशङ्का नहीं और न उन को कुछ उत्तर का प्रयोजन है क्योंकि उनको यह चरित्र परम आनन्द के देनेवाले व सब संदेहों के दूर करनेवाले और भगवद्भक्ति व दृढ़ प्रेम के कृपा करनेवाले हैं व उनको भगवच्चरित्रों के सिवाय वास्तव करके तनकभी दूसरी कथा पर चाह नहीं होती काहेसे कि उन चरित्रों का यह बल व प्रताप है कि भगवत् के रूप अनूप और छविमाधुरी का हृदय में प्रकाश करके भगवत्परायण करदेते हैं परन्तु जो लोग ना समझ हैं उनसे यह विनय है कि इस प्रश्न का उत्तर केवल भगवत् की करुणा व दयालुता भक्तों की चाह पूर्ण करने के निमित्त कई जगह थोड़े में वर्णन हुआ है। यहां भी थोड़ेमें लिखा जाता है वेद श्रुति कहते हैं कि भगवत् पूर्ण-ब्रह्म अपने भक्तों पर करुणा व दया करके आविर्भाव होताहै शाण्डिल्य सूत्र में लिखा है कि भगवत् के स्वरूप धारण करने में केवल करुणा व दया का कारण है भगवत् ने गीताजी में कहा है कि भक्तों की रक्षा करने को और धर्म को स्थिर रखने के निमित्त युगयुग में अवतार लेताहूँ मेरे उन जन्मों और कर्मों के जानने से फिर जन्म नहीं होता तो उन वचनों के अनुसार जब कि भगवत् अपने परमधाम को छोड़कर प्रकट होता है तो जो चरित्र करता है सो भक्तों पर दया व करुणा के कारण से है इस हेतु कि भक्तलोग उन चरित्रों को कीर्तन करके और अपने स्वामी की करुणा व दयालुता को देखकर उसी ओर लगे रहते हैं दूसरी ओर चित्त नहीं देते और दूसरों का भी उन चरित्रों के प्रभाव करके उद्धार होजाता है सिवाय इसके भगवद्भक्तों को अनुक्षण ध्यान व चिन्तन अपने स्वामी का रहता है और जो प्रयोजन आन पड़ता है तो भगवत् को छोड़ और किसी से नहीं याचते तो रीति व सिद्धान्त के अनुसार भक्त के प्रयोजन के समय उसीका आना योग्य व उचित होताहै कि जिसको उस भक्त का ध्यान रहता है और जो उसमें यह कोई कहे कि भगवत् में सब कुछ सामर्थ्य और पराक्रम है क्या और किसी प्रकार से वह प्रयोजन सिद्ध नहीं होसक्ता निज आप आनेका क्या प्रयोजन है ? सो जानेरहो कि इस आशङ्कासे पहले तो रीति और सिद्धान्त में भेद पड़ता है कि ध्यान तो किया किसी और रूपका और कार्य व मनोरथकी सिद्धता किसी और प्रकार से यह कब होसक्ता है दूसरे उन वचनों के अनुसार जो ऊपर लिखे हैं दया करुणा में भगवत् के विरुद्ध पड़ता है अर्थात् जब भक्तों को

प्रयोजन हुआ और आप नहीं आया दूसरे किसी प्रकार से प्रयोजन सिद्ध होगया तो वह वचन भगवत् का और दया कहां सच रही किस हेतु कि उन वचनों में यह बात लिखी है कि आप मैं आताहूं यह बात नहीं लिखी है कि प्रयोजन सिद्ध करदेताहूं और इसी शङ्का के समाधान में एक इतिहास स्मरण होआया यह कि किसी महाराज ने किसी एक बड़े महानुभाव से पूछा कि ईश्वर सब प्रकार समर्थ है अवतार लेनेका क्या प्रयोजनथा? किसी और प्रकार से भक्तों का कार्य क्यों न करदिया? वे महानुभाव उस दिन चुप रहे एकमूर्ति उसके छोटे बालक के तदाकार ऐसी बनवाई कि तनक उसके लड़के के स्वरूप से भेद नहीं था और लड़का खिलानेवालेको समझादिया कि जिस समय हम और महाराज यमुना के सैर को नावपर चढ़ें उस समय वह मूर्ति गोद में लेआना सो वह उसीसमय पर लेगया व वह महानुभाव उस लड़केको लेकर महाराज को देनेलगा परन्तु वह मूर्ति हाथ से छूटकर यमुना में गिरपड़ी महाराज जो कि उस मूर्ति को अपना लड़का समझता था विकल होकर यमुना में कूदपड़ा कुछ अपने प्राण व डूबने का शोच न किया उस महानुभाव ने निकलवाया और पूछा कि तुम्हारे नौकर व मल्लाह सैकड़ों खड़े थे तुम आप क्यों यमुना में कूद पड़े? महाराज ने कहा कि मुझको उस लड़के के स्नेह व प्रेम के कारण से इतनी सुधि व सम्हार न रही कि कुछ कहूं इस हेतु आप कूदपड़ा उस महानुभाव ने उत्तर दिया कि यही दशा उस भगवत् की है कि जब अपने भक्त को दुःख में देखता है दया करके विकल हो आप चला आता है सिवाय इस बात के भगवत् का दृढ़ वाचाप्रबन्ध है कि अपने भक्तों की चाहना पूर्ण करता हूं और उन श्लोकों का अर्थ कई जगह इस ग्रन्थ में लिखागया तो उस वाचाप्रबन्ध के अनुसार जैसी चाहना भक्त की हुई सोई आय के भगवत् ने पूर्ण की इसके सिवाय भगवत् व भगवत् का चरित्र कल्पवृक्ष के सदृश है जैसा जिस किसी को विश्वास है उसको वैसाही फल देते हैं सो जानकी महारानी के स्वयम्बर में श्रीरामचन्द्र स्वामी व मथुरा के रङ्गभूमि में आप श्रीकृष्णस्वामी सब लोगों के भाव के अनुसार दिखाई दिये इससे निश्चय होगया कि जिस भक्त ने जिस भाव से चिन्तन किया उसको उसी भाव से देखपड़े और वैसाही फल दिया और वैसेही चरित्र किये एक वृत्तान्त बरसाने में देखने में आया अर्थात् बनयात्रा के समय जब

बरसाने श्रीराधिका महारानी के मैके में जानेका संयोग हुआ तो वहां की व्रजवासिनी सब यात्रियों से पैसा रुपैया मांगने लगीं किसीने कहा कि जब यह बात कहोगी कि नन्दनन्दन व्रजकिशोर हमारा बहनोई है तब कुछ देवेंगे उन व्रजवासिनियों ने अपने नाते व भाव के अनुसार उस राधिकावल्लभ और उसके सम्बन्धीलोगों को सौ गालियां सुनाईं और भगवद्भक्तों और रसिकों के हृदय में प्रिया प्रियतम के रूप अनूप का एक समाज प्रकट कर दिया उस समय एक दो की तो यह दशा देखी कि प्रेम का प्रवाह आंखों से बहता था भगवत् की छवि माधुरी की चिन्तन में मग्न व बेसुधि थे और उन व्रजवासिनियों को भगवत् की सखी जानकर प्रणाम करते थे और कोई दुष्टभाववालों को देखा कि उन स्त्रियों से गाली देकर कुदृष्टि से देखते थे और हँसी ठट्ठा उनके साथ करते थे अब विचार करना चाहिये कि एक ओरवालों को तो गालियों ने महामन्त्र का फल दिया और दूसरे गोलवालों को वे स्त्री और उनकी बातचीत नरक का कारण होगई अभिप्राय इस कहने का यह है कि जिस किसी को भगवत् व भगवच्चरित्रों में जैसा भाव है उसको वैसाही देखने में आता है और शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि भगवत् का चरित्र भक्तों को तो आनन्द का देनेवाला और दुष्ट व विमुखों को रसातल पहुँचानेवाला है जैसे सूर्य को कमल तो देखकर खिल जाता है और कुमुदिनी सम्पुटित होजाती है अथवा सारेसंसार को तो प्रकाश प्राप्त होता है व उलूक व चमगीदड़ी की आंखों की ज्योति जाती रहती है इससे कोई संदेह का स्थान नहीं कि भगवत् समर्थ और मालिक और अपने वाचाप्रबन्ध का दृढ़ और अपने वचन को सत्य कहनेवाला और अपने भक्तों पर अत्यन्त दया करनेवाला है जो चरित्र उसने किया और आगे करेगा सब सत्य व समीचीन हैं शङ्का व कुतर्क की कदापि समवाई नहीं विश्वासयुक्त और प्रेमियों को वह चरित्र निश्चय व निस्संदेह आनन्द व ब्रह्मपद का देनेवाला है और विमुख व बेविश्वासियों को विश्वास छुड़ाकर सातवें पाताल को प्राप्त कर देनेवाला है काहे से कि कल्पवृक्ष से आनन्द के मांगनेवाले को आनन्द मिलता है और दुःख मांगनेवाले को दुःख कि यह पहले भी लीलानुकरणनिष्ठा में वर्णन हुआ है मुझको ऐसे शङ्का करनेवालों की प्रश्न पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उन्हों ने विना समझे शोचे ऐसा प्रश्न निर्बल व अयोग्य किया

काहेको क्योंकि जिन भक्तों के हृदय के नयनों को सिवाय भगवत् के और कोई दृष्टि में नहीं आता व न बाहर सिवाय उसके और किसी को जानते हैं तो जो उनको चाहना किसी प्रकार की हो उसका पूर्ण करनेवाला सिवाय भक्तवत्सल कृपासिन्धु के और कौन निश्चय कियाजाय और उन भक्तों के भीतर व बाहर के नयनों को सिवाय उसके और कौन दिखाई दे ॥

कुसंगसे हानि व सुसंग से लाभ तिसका वर्णन ॥

अब लिखने का प्रयोजन पड़ा कि कौन वस्तु तुरन्त त्यागने योग्य है और कौन वस्तु अङ्गीकार करने योग्य है ? सो जानेरहो कि दुष्ट और खल व विमुखों के संग का त्याग शीघ्र उचित व योग्य है उसका वर्णन करना व लिखना कुछ प्रयोजन नहीं कि थोड़ा बहुत कोई कोई निष्ठा में व विशेष करके इसके अन्त में लिखि आया हूं उनके संग को एक करामात विचार करना चाहिये अनेकरूप से लोगों को सताते हैं अर्थात् किसी को बीछ व काले भौंरा के सदृश हैं और किसीको बौड़हे कुत्ते के सदृश व किसी को मदिरा की रङ्गत दिखाती है और किसी के निमित्त हलाहल विष की मूर्ति होजाती है गोसाईं तुलसीदासजी ने जो इनलोगों के संग त्याग के हेतु जो चौपाई उत्तरकाण्ड में कही है सो यह है ॥

उदासीन नित रहिय गोसाईं । खल परिहरिय श्वान की नाईं ॥

इस चौपाई के अर्थ कई एक हैं परन्तु सूक्ष्म करके अर्थ यह है कि दुष्ट से दूर रहिये और श्वान जो कुत्ता हैं तिसकी भांति उसका त्याग उचित है तात्पर्य दूर रहने से यह है कि कुत्ते से जो स्नेह करिये तो वह शरीर में लगके व चाटकर अपवित्र करे और जो उसको मारिये तो भूँकै व काटखाय ॥ इसी पर व्यासजी का दोहा है ॥

दो० व्यास बड़ाई जगतकी, कुत्ते की पहिचान । प्यारकिये मुँहचाटई बैरकिये तनहान ॥

अर्थात् दोनों प्रकार से हानि है और दूर रहने में कुछ हानि नहीं और टुकड़ा डाल देने में भी कुछ हर्ज नहीं होता अर्थात् इस दोहा व चौपाई के दृष्टान्त से कुछ उपकार व भलाई करदेने में रुकावट नहीं समझना उनसे बैर व प्रीति नहीं करना यह मना करते हैं व दूर रहने को आज्ञा है किसीने इसी वचन के अनुसार एक दो के साथ आचरण किया आनन्द में रहा निश्चय त्याग करना संग विमुख व दुष्टों का बहुत उचित है भूलकर भी निकट न जाय व जैसा विमुख व दुष्टों का और उनके प्रीति

का त्याग करना अत्यन्त उचित है इसी प्रकार अङ्गीकार करना सत्संग व समागम भगवद्भक्तों का बहुत योग्य व उचित है सत्संग वह वस्तु है कि जिस पदवी का मिलना मन व बुद्धि में न समाय व न समझ में आवे सो पदवी सहज में मिल जाती है इस संसार व स्वर्गादिक के सुख तो तुच्छ हैं ब्रह्मानन्द का सुख भी सत्संग की बराबरी नहीं कर सकता बरु वे सब सुख सत्संग के सेवक हैं सब हाथ बांधे सम्मुख होजाते हैं और जब कि पूर्णब्रह्म परमात्मा सत्संग के प्रभाव करके सहज में मिलजाता है और जहां सत्संग है तहां आप देवताओं के सहित प्राप्त रहता है तो दूसरी पदवी के सुख सब प्राप्त होजावें तो क्या आश्चर्य है? सत्संग का वह प्रताप है कि अजामिल ऐसा पापी यमदूतों को मार पीट कर उस स्थान पर पहुँचा कि योगियों को मिलना कठिन है वेश्या जो सब पाप की मूर्ति हैं उनको वह पद मिले कि रङ्गनाथ स्वामी और नाथजी महाराज वशीभूत होगये और नित्यविहार में अपने मिलाय लिया बाल्मीकि व नारद जी के वृत्तान्त पर दृष्टि करनी चाहिये कि पहले वे क्या थे और अब सत्संग के प्रभाव से क्या हैं सो किसको किसको गिनावें जो कोई जिस उत्तम पदवी को पहुँचता है सो सत्संग ही के प्रभाव से सो जिस किसी को संसार समुद्र से उतरना है सो सत्संग करे विना सत्संग न तो नाम कीर्तन प्राप्त होता है न भक्ति न भगवत्॥

बहुत निष्ठा स्थापित होने का कारण व उसके साथ माहात्म्य नाम कीर्तन का॥

इस ग्रन्थ में चौबीस निष्ठा लिखी हैं व सब निष्ठाओं के वर्णन में यह लिखा गया कि इस निष्ठा से भगवत् मिलता है अब चित्त डगमग में है कि उनमें से किसके अनुकूल आचरण करना चाहिये और जो एक निष्ठा से भगवत् मिलता है तो इतनी निष्ठा के लिखने का क्या प्रयोजन? एक निष्ठा लिख देनी बहुत थी और जो किसी कारण से चौबीसों निष्ठा ठीक हैं तो यह भी वर्णन करना चाहिये कि उनमें कौनसी निष्ठा ऐसी हैं कि जिससे मनोरथ अतिशीघ्र सिद्ध हो? उत्तर यह है कि सब निष्ठाओं की जो कुछ महिमा लिखी गई है सब सत्य व ठीक है किसी भांति कुछ संदेह नहीं है उनमें से किसी एक निष्ठा पर चित्त दृढ़ आरूढ़ होजाना चाहिये वही एक निष्ठा इस संसार समुद्र से पार उतार देवेगी दूसरी निष्ठा का प्रयोजन न होगा और उसी एक निष्ठा के विश्वास व निश्चय का यह प्रताप है कि शेष दूसरी सब निष्ठाओं में आपसे आप अधिकार

होजायगा जैसे एक दीपक के प्रकाश होने से सब वस्तु घर में हैं सो दीखने लगती हैं और जिस निष्ठा पर जिसका चित्त लगे तो उस निष्ठा से सिवाय भगवत् के मिलने के निमित्त दूसरे साधन का प्रयोजन नहीं दिन दिन प्रीति को वृद्धि करके अधिकारता को पहुँचाय देती है व बहुत निष्ठा स्थापित होने का कारण यह है कि सब किसी की रुचि मन की एकसी नहीं है किसी की बाल चरित्रों में रुचि है और किसी को माधुर्य व शृङ्गार में व किसी का हँसी खेल सखाभाव के चरित्रों में मन लगता है और कोई ईश्वरता व कृपालुता के चरित्रों पर चाह रखता है इसी प्रकार सब उपासक अपने मन की रुचि के अनुसार भगवत् के शोभा व चिन्तन में सावधान होता है तो शास्त्रों में जो उनके सब भाव की निष्ठा लिखी न जाती तो विना ठहरने रीति आराधन उस निष्ठा के भगवत् के मिलने में व्यवधान पड़ना प्रमाण इस वचन का आप भगवत् के चरित्रों से प्रसिद्ध है कि भगवत् ने सब निष्ठा के सम्बन्धी चरित्र किये जिसमें जैसे चरित्रों पर जिसको चाह हो वैसे ही चरित्रों पर मन को लगा कर भगवत् परायण हो जावे इस हेतु चौबीस निष्ठा जो ठहराई गई बरु जितनी अधिक लिखी जातीं तितनी अधिक प्रकाशित होतीं यही बात ग्रन्थ के आरम्भ में जहां भक्ति अनेक प्रकार की होजाने का उत्तर लिखा गया है तहां प्रथम ही पद्धति व रीति के नाम से लिखी हैं यहां उसी को विशेष करके लिख दिया है और यह नहीं कहा जाता कि इस निष्ठा से भगवत् बहुत शीघ्र मिलता है और इस निष्ठा से शीघ्र नहीं क्योंकि यह चौबीस निष्ठा आवागमन के समुद्र से पार होने को चौबीस जहाज के सदृश हैं जिस जहाज पर बैठेगा बेखटके पार होजायगा जहाज पर बैठने अर्थात् विश्वास दृढ़ व आचरण पक्का करने की देर है पार उतारने वाला अपनी दया के वश पार उतारने को सदा सर्वकाल सावधान है परन्तु इस काल में अर्थात् कलियुग के निमित्त जो कुछ शास्त्रों में लिखा है कि सतयुग में भगवत् का ज्ञान व ध्यान और त्रेता में भगवत् की यज्ञ और द्वापर में भगवत् की पूजा करने से उद्धार होता था अब कलियुग में केवल भगवत् का नाम मुख्य आधार है और इस वचन का निश्चय भागवत व स्कन्दपुराण व पद्मपुराण इत्यादि से अच्छे प्रकार होता है व रामतापिनी वेदश्रुति कहती है कि नाम के प्रभाव से पूर्णब्रह्म परमात्मा मिलता है नाम-

माहात्म्यकौमुदी ग्रन्थ में सूत्र व स्मृति पुराण व वेद के प्रमाण से निश्चय करके मिलना मुक्ति का केवल भगवत् नाम से ऐसा सिद्धान्त लिखा है कि वह ग्रन्थ पढ़ने व सुनने से बनि आता है विस्तार के भय से उसके भाषान्तर का कुछ प्रयोजन न समझा जितने मत व पन्थई देखने सुनने में आये उनके अग्रगामी अपने २ मत व पन्थ की बड़ाई करके आपस में लड़ते झगड़ते हैं परन्तु भगवत्नाम की महिमा और बड़ाई करने में सबका सम्मत एक है व सब बराबर कहते हैं कि यह नाम सब काम दोनोंलोक के सुधार देता है व परीक्षा की बात है कि दश आदमी गाढ़निद्रा में सोते हैं उनमें किसी एक का नाम लेकर किसीने पुकारा तो वही जगता है जिसका नाम लेकर पुकारा इस दृष्टान्त व प्रमाण से दो बात की निश्चय हुई एक यह कि सोता हुआ पुरुष नाम के पुकारने से जगकर प्राप्त होजाता है तो वह भगवत् कि सर्वकाल जागनेवाला व सर्वत्र व्यापक है क्यों नहीं सम्मुख होजायगा दूसरे यह कि इस प्रमाण से नाम व नामी की अभेदता निश्चय ठहर गई अर्थात् जो नाम है सोई नामवाला है तो जब कि नाम भगवत् कि वास्तवमें भगवत् है अनुक्षण जिसके जिह्वा पर रहेगा तो वह जापक क्यों न ब्रह्मरूप होजायगा शास्त्रों का जो यह वचन है कि नाम के लेने से सम्पूर्ण पाप आगे के व अबके दूर होजाते हैं उसका निर्णय नाममाहात्म्यकौमुदी ग्रन्थ में अच्छे प्रकार से लिखा है अर्थात् शङ्का करनेवाले ने यह शङ्का किया कि जो धोखे व भूलकर एक बेर के नाम लेनेसे सम्पूर्ण पाप आगे के संचित व वर्तमानकाल के नाश को प्राप्त होजाते हैं तो वह लोग संसार व अन्तकाल में क्यों दुःख पाते हैं उत्तर यह है कि एकबेर नाम लेनेके पीछे जो नाम नहीं लेते इसहेतु नाम नहीं लेनेके पापमें बद्ध होकर भांति भांति की पीड़ा व दुःखको भोगते हैं जो बराबर नाम लेते रहें तो कोई पाप न हो व ब्रह्मरूप होजावें और श्वेत वस्त्रपर स्याही बहुत शीघ्र भीनजाती है तो जिस जिह्वा से एक बेर नाम उच्चारण हुआ और वे फिर नाम नहीं लेते तो उनको नाम नहीं लेनेका पाप अधिक होता है अभिप्राय यह निकला कि भगवत् का नाम प्रतिश्वासा व प्रतिक्षण जपता रहे कि फिर कोई पाप निकट न आवे यह सिद्धान्त ऐसा है कि कोई संदेह अथवा शङ्का उचित नहीं व जो किसीको संदेह हो तो अजामिल के प्रसंग से शङ्का का समाधान करदे सर्वथा इस कलियुग में सिवाय नाम

मङ्गलरूप मेरे स्वामी के और कोई उपाय विशेष व सुष्टुतर ऐसा नहीं कि जिसके अवलम्ब से अतिशीघ्र मनोवाञ्छित पद को पहुँचजाय व नाम लेने में न कुछ अटपट है न कुछ ख़र्च होता है केवल जीभ हिलानी है सो जीभ अनुक्षण मुख में प्राप्त है जिन लोगों ने अनन्य होकर उस नामी के नाम की शरण ली है वही भक्त है और वही भजनानन्द व वही साधु है और वही वैष्णव और वही जीवन्मुक्त है ॥

भगवद्भक्तों के आगे विनय व श्रीराधाश्याम आनन्दधाम के चरणारविन्द में निवेदन ॥

अब भगवद्भक्तों व उपासकों के चरणकमलों को दण्डवत् प्रणाम करके विनय करता हूं कि यह चरित्र भगवद्भक्तों का सम्पूर्ण पाप व दुःखों का दूर करनेवाला और भगवच्चरणों में प्रीति का बढ़ानेवाला व दोनों लोक का सब सुख कृपा करनेवाला व ब्रह्मानन्द का देनेवाला जैसा अपनी मति अनुसार मुझ मतिमन्द से होसका देवनागरी में भाषान्तर रचि करके निवेदन किया यह तुम्हारे परमप्रीतम के चरित्रों से भरा है इस हेतु मेरे बुरे कर्मों की ओर न देखिके अवश्य अङ्गीकार करने योग्य है और सब संप्रदायवालों को आनन्द का देनेवाला है क्योंकि सब संप्रदायों के आश्चर्य व रीति व परम्परा का वृत्तान्त निखोट सब बड़ाई व मर्याद के सहित लिखा है जो कुछ चूक होगी सो मेरी अज्ञता है प्रारम्भ से व अन्ततक केवल एक सिद्धान्तपर दृष्टि व परिश्रम रहा है कि जिस प्रकार होसके किसी निष्ठा के अवलम्ब से अथवा चरित्र से कै नाम से कै संप्रदाय से भगवत् पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन छविसमुद्र शोभा धाम के चरित्रों व रूप अनूप में अज्ञलोगों को प्रीति व ज्ञाता लोगों को प्रीति की वृद्धि व दृढ़ता प्राप्त होय व दो अपराध जानि बूझि के अलबत्ते हुये एक यह कि बहुत जगह इस समय के लोगों को वृत्तान्त का वह निश्चय करके मेरा वृत्तान्त है सो लिखा गया है सो प्रयोजन इसका इतनाही है कि संग्रह व त्याग विना पहिंचान नहीं होसक्ता दूसरा यह कि कोई २ जगह वह भेद व भाव लिखगया है कि जो विमुख व संप्रदायों से बहिर्मुख लोगों से गुप्त रखने योग्य थे सो इसमें शुचिताई व दृढ़ताई यह है कि उन लोगों को उस भेद व भाव के पढ़ने व सुनने का संयोग ही नहीं पहुँचेगा कदाचित् जो हज़ार दो हज़ार में कोई एक पढ़ सुनलेगा तो उसके स्वाद व भाव और मुख्य अभिप्राय से निश्चय करके अज्ञ रहेगा व कथा व इतिहास की भांति समझेगा जैसे पीनसवारे को कपूर की सुगन्ध का ज्ञान

नहीं होता क्योंकि उस रसके वेही भागी हैं कि जिनकी भगवत्चरित्रों में प्रीति है और उस रसके उपासक हैं और उनहीं के निमित्त वे भाव भेद लिखे गये हैं ।। हे श्रीनन्दनन्दन, राधावर, वृन्दावनविहारी, शोभाधाम! हे शरणागतवत्सल, प्रणतार्तिभञ्जन, दीनबन्धु ! हे करुणाकर, सच्चिदानन्दघन, पूर्णब्रह्म, नित्य, निर्विकार ! हे यशोदाकिशोर, परममनोहर, सुकुमार ! हे पतितपावन! हे अधमउधारन! हे करुणानिधान ! हे दयासिन्धु! जैसा मेरा वृत्तान्त है किस प्रकार किस मुख से निवेदन करूँ कि आपको विना मेरे निवेदन किये सब अच्छीप्रकार ज्ञात है मेरे बराबर पतित अनेक अपराधों का पात्र व मतिमन्द दृष्टान्त को भी कोई नहीं और न इस बात पर मुझको निश्चय व दृढ़ता है कि छोटे से राजा का किंकर अपने स्वामी व प्रजा का हजारों अपराध करके दण्ड इत्यादि से बचा रहता है वरु सब पर आज्ञा चलाता है व जब कि मैं बिन मोलका चेरा वरु घरजाया किंकर साख दरसाख से तुम ऐसे पूर्णब्रह्म का हूँ कि जिसकी माया एक अदनेको अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी बना देती है तो मुझको क्या भय व डर किसीसे है? परन्तु क्या कहूँ और इस मन भाग्यहीन को क्या करूँ कि किसी भांति नहीं मानता व न आपके सम्मुख होता है वरु ऐसी दशा है—भजन बिन जीवत जैसे प्रेत ॥ दूसरा—भजन विन मिथ्या जन्म गँवायो ॥ तीसरा—दोऊमें एको न भई ॥ चौथा—सब दिन गये विषय के हेतु ॥ पाँचवां—जन्म गयो बादिही पर बीते ॥ ऐसे अपने बुरे आचरण पर दृष्टि करके जो परिणाम को शोचता हूँ तो अपना कुछ ठिकाना नहीं देखता न सहारा दिखाई पड़ता है परन्तु आधार व अवलम्ब एक वचन का सो वह यह है कि अपने निज श्रीमुखारविन्द से कहा है कि जो कोई एकबेर मेरे शरण होकर और यह बात कहिकर कि तुम्हारा हूँ मुझसे माँगता है तो मेरा यह प्रण है कि उसको निर्भयपद देदेता हूँ और इस प्रणमें यह नियम नहीं कि वह साधु हो कै असाधु अथवा मन से शरण हो अथवा ऊपरसे सो उस वचनके अनुसार सत्य करके अथवा मिथ्या अथवा दिखलाने के निमित्त अथवा वञ्चकता से अथवा मनसे अथवा ऊपरसे आपके शरण होकर और तुम्हारा हूँ उच्चस्वर से पुकारकर यह भिक्षा मांगता हूँ कि किसी शरीर में जावें किसी लोक में कहीं रहें यह ध्यान व चिन्तन आपका रात दिन निश्चल मेरे हृदय में बनारहे कि श्रीयमुनाजी के किनारे परम शोभायमान चौरासी कोस व्रजमण्डल

बारह वन बारह उपवन करके मण्डित जिसकी रज को ब्रह्मादिक अपने मस्तकका तिलक बनाकर व चौरासी कोसकी परिक्रमा करके शुद्धता व सिद्धता को पहुँचते व एकबेर दर्शन जिसका असंख्य जन्म के पाप व उपपातकों को दूर करके श्रीकृष्णपरायण करदेता है विराजमान है तिसके बीच में अनेक विहारस्थान उसके मध्य में कमलकर्णिका की भांति निज विहारस्थल नित्यवान् श्रीवृन्दावन तिस वनके बीच में गऊ व गोप व सखा व गोपियों की सभा पांच आवरण जिसके कमलाकार हैं छठवें आवरण में रत्नसिंहासन श्रीयुगल महामङ्गल मूर्तिके विराजमान होनेका शोभायमान है उसकी सुन्दरता व दमक चमक का वर्णन कौन करसक्ता है? सौ करोड़ चन्द्रमा सूर्य की ज्योति जिसके आगे गर्द हैं उस सिंहासन पर वितान ऐसा शोभायमान तना है कि जिसकी जग-मगाहट और झलक से मन की आंखें चकाचौंध खाती हैं मुक्केश व मोती और जवाहिरात की लड़ियों से झालर लगीहुई है और भूमि व लता, द्रुम, गुल्म, दल, फल, फूल व मृग, मयूर, हंस, सारस, कोकिला, भँवरसब मणिमय नानारङ्ग के चैतन्यस्वरूप हैं उनकी तड़प झलक जैसा सिंहा-सन है वैसीही है उस सिंहासन पर श्रीनन्दनन्दन, व्रजचन्द्र, राधाकान्त-महाराज, वंशीधारी ऐसे शोभा व शृङ्गारके सहित विराजमान हैं कि जिसका वर्णन वेद व ब्रह्मा व शेष व शारदा से भी नहीं हो सक्का और जो कुछ शास्त्रों ने और वेदोंने वर्णन किया है तो अन्त में कहदिया कि वर्णन में नहीं आता अपार है चरणकमलों के नख की द्युति ब्रह्मा व शिव इत्यादि योगीश्वरों को ब्रह्मानन्द के प्रकाश की देनेवाली है व च-रण मनोहर ऊपर से श्याम और नीचे से अरुण ऐसे सुन्दर हैं कि उपमा श्याम व अरुणकमल की व ज्योति नीलमणि व पद्मराग मणि की अति फीकी लगती है तिस पर सखियों ने कहीं रङ्ग मेहँदी व कहीं रङ्ग महावर रचिदिया है उन चरणों के अँगूठों में जड़ाऊ छल्ले, उसपर कड़े और पायजेब जड़ाऊ झलकि रहे हैं पीताम्बरी धोती बिजली की छवि को लजानेवाली पहिनेहुये नाभि गम्भीर मनोहर के ऊपर ललित त्रिवली चौड़ी छाती उस पर धुकधुकी और वनमाल व वैजयन्ती माला व गजमोतियों का हार बागा बारीक जरतारी धानी रङ्ग की मनोहर व सुकुमार श्रीअङ्गपर सजे जरी का पीताम्बरी दुपट्टा कसेहुये सोने की हैकल माणिक व पन्ना और हीरे इत्यादि मणिगणों से जड़े हुये दोनों

कन्धे और छाती पर आकर कमर तक लटका मोतियों के छोटे २ दानों की दोहरी कण्ठी गले में हाथों में अँगूठी छल्ले कङ्कन पहुँची बाजूबन्द नवरत्न पहिने हुए मुख ऐसा चित्त चुरानेवाला मनोहर कि जिसकी शीतलता व मनोहरता को पूर्ण चन्द्रमा व प्रकाश व दमक को सूर्य व बिजली व चिक्कणता व लावण्यता को नीलमणि व नवीन श्यामघन व प्रफुल्लता व सुन्दरता को कमल व गुलाब देखकर ऐसे फीके व शोभाहीन हैं जैसे सूर्य के सम्मुख बालू का कण मोरमुकुट शिर पर जिसमें मोती व चुन्नी व पन्नों की लड़ी लटक रही हैं जहां तहां फूल गुँथे हुये भालपर केशर के तिलक की झलक कानों में कुण्डल व झूमके उनमें रङ्ग रङ्ग के फूलों के गुच्छे प्रियाजी ने अपने हाथ से बनाकर पहिनाये हैं आंखें रसीली व अलसीली में काजल लगा हुआ झलकते हुए शोभायमान गोल कपोलों पर घुँघुरारी अलकैं झुकी हुईं ओठों पर पानकी लाली और सखियों के किसी छेड़ छांड़ पर मुसक्याते हुए और उस शोभा व शृङ्गार पर जो डीठ लगने के बचाव के निमित्त जो अगणित कामदेव व सब ब्रह्माण्डों की शोभा और सुन्दरता और सजावट व माधुर्य व चिक्कणता इत्यादि को निछावर किया जाय तो उसकी यह उपमा होती है कि किसी चक्रवर्ती राजा पर कोई कानी कौड़ी न्यवछावर करे वामभाग में श्रीराधिका महारानीजी विराजमान हैं उनको जो श्रीनन्दनन्दनस्वामी से भेद कहा जाय तो गोपालसहस्रनाम व गोलोकतापिनी इत्यादि उपनिषद् व दूसरे शास्त्रों से विरुद्ध पड़ता है व महादेव के वचन के अनुसार ब्रह्महत्या का पाप प्राप्त होता है और जो एक रूप श्रीनन्दनन्दन स्वामी का वर्णन कियाजाय तो माधुर्य व शृङ्गार व छवि व शोभा व सुन्दरता इत्यादि प्रिया प्रियतम के नित्य हैं उनकी नित्यता में विरुद्ध आता है यही बात सिद्धान्त है कि जो नन्दनन्दन स्वामी हैं सोई राधिका महारानी व जो राधिका महारानी सोई नन्दनन्दन स्वामी हैं भक्तों को अपने चरित्रों में लगाकर उद्धार करने के हेतु और शृङ्गार व माधुर्य की उपासना प्रवर्तमान करने के निमित्त भगवत् ने अपने दो रूप प्रकट किये इसी कारण माधुर्य व शृङ्गारनिष्ठा सब निष्ठाओं पर अग्रवर्ती मुख्य है कि उसके प्रभावसे बहुत शीघ्र भगवत् मिलता है और प्रिया प्रियतम के एक होने की एक यह छटा है कि उस सिंहासन पर जो दोनों विराजमान हैं तो गौरश्याम श्रीअङ्गन की सुन्दरता व निर्मल शोभा व पोशाक व आभूषण

की झलक व चमक दमक दोनों स्वरूप के परस्पर मुखारविन्द व वस्त्र आभूषण पर पड़ते हैं उस समय यह नहीं विवेक होता कि कौन श्रीप्रियाजी महारानी हैं व कौन श्रीकृष्णस्वामी इस पहिचान करने में शिव व शारदा की भी बुद्धि दङ्ग है दूसरे की तो क्या सामर्थ्य है जो निरुवार सके व प्रिया प्रियतम के प्रेम का यह वृत्तांत है कि प्रियाजी के हृदय में प्रियतम व प्रियतम के हृदय में प्रियाजी निरन्तर वसी रहती हैं सो जब कि अन्तर व बाहर का यह वृत्तान्त है तो दोनों में किस प्रकार कहा जाय कि प्रिया प्रियतम दो हैं निश्चय करके एक हैं जैसे शब्द व अर्थ व जल व तरङ्ग सो ऐसी श्रीवृषभानुनन्दिनी साक्षात् कृष्णप्रिया जिसकी चरणनखचन्द्रिका परम रसिकों का जीवन आधार व सम्पूर्ण शोभा व शृङ्गार का कारण तिसकी सुन्दरता शोभा व शृङ्गार का वर्णन किस प्रकार कोई कर सके जितनी उपमा रहीं सो प्राकृत स्त्रियों की शोभा के वर्णन में लगि गईं प्रियाजी महारानी के योग्य न रहीं ऐसी श्रीप्रियाजी महारानी श्रीकृष्णस्वामी के वामअङ्ग में विराजमान हैं कि जिसकी शोभा व सुन्दरता के कारण से श्रीनन्दनन्दन महाराज की शोभा व सुन्दरता प्राप्त होती है ललिता व विशाखा इत्यादि सब सखी चमर छत्र व्यजन पानदान उगालदान इत्यादि नाना प्रकार की सामां सेवा के लिये अपनी २ सज से सेवा में सजी हुईं खड़ी हैं सम्मुख सखीगण नृत्य करती हैं वीणा वेणु वंशी मृदङ्ग सारंगी व करताल आदि भांति भांति के वाद्य यन्त्र सब एक स्वर में मिले बजते हैं घुंघुरू व किङ्किणी गति पर छमाछम छमाकि रही हैं व मधुर आलाप व गान व तान व उपज व मूर्च्छना की तरङ्ग उठ रही है सब रागिनी व छओं ऋतु सखीरूप मूर्तिमान् सेवा में खड़ी हैं वह शोभा व समाज व सुख परमरसिक भक्तों के हृदय में समाय रहा है सो सब विराजमान व प्राप्त है ॥

श्लोकः ।

येषां श्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा ।
येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथासादरौ नैव कर्णौ
धिक्तान्धिक्तान्धिगेतान्कथयति सततं कीर्तनस्थो मृदङ्गः ॥ १ ॥

———

छप्पय ।

जय जय नन्दकिशोर, जयतु वृषभानुकिशोरी ।
चिदानन्द घन रूप, नित्य सुन्दर शुभ जोरी ॥
लीला धाम स्वरूप, नाम नित भक्त जो गावैं ।
नेति नेति कहि वेद, भेद जाको नहिं पावैं ॥
गौरश्यामशोभासदन, प्रणतपाल आरतहरण ।
जन प्रताप के कल्पतरु, सर्व काव्य पूरण करण ॥

इति श्रीभक्तमालकथा समाप्ता ॥
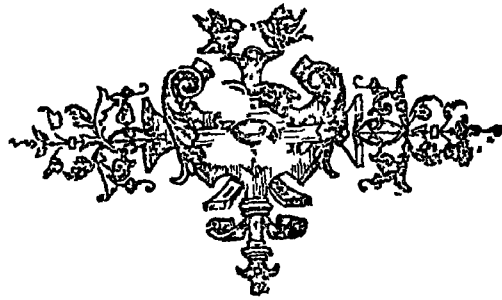
वेदान्त और योग-संबंधी पुस्तकें ।

नाम पुस्तक	मूल्य	नाम पुस्तक	मूल्य
भगवद्गीता पंचरत्न मूल	॥)	विहार-वृंदावन	१=)
भगवद्गीता सटीक बा० ज़ालिमसिंह	३)	वैराग्यप्रकाश	।)
भगवद्गीता सटीक पं० सूर्यदीन	१=)	सांख्यतत्त्वसुबोधिनी सटीक....	।-)
भगवद्गीता स० मुं० हरिवंशलाल	॥)	अष्टावक्रगीता (सं० टी० स०)	।)
भगवद्गीता स० पं० गिरिजाप्रसाद	।॥=)	रामगीता सटीक....	१)
अवतार-सिद्धि	=)॥	बीजक कबीरदास सटीक	१।=)
ईश्वर-दीपिका सटीक	≡)॥	भक्ति-सागर (सजिल्द)	२॥)
पञ्चदशी (भा० टी० स०)	३॥)	भगवद्गीता भाषा....	।)
पञ्चदशी (सं० टी० स०)	१)	भ्रमनाशक	=)
योगवाशिष्ठ (भाषा वार्त्तिक)	८)	ईश्वरदीपिका भाषा-टीका	≡)॥
सिद्धान्त-प्रकाश	।≡)॥	ज्ञानस्वरोदय	-)
ज्ञान-प्रकाश	।=)	भक्तमाल नाभादास	।॥=)
जपग्रन्थ (साधुसिंह)	१)	भक्तमाल सटीक श्रीसीताराम-शरण भगवानप्रसाद-कृत	३॥)
पारसभाग	३)	मुक्ति-मार्ग	१॥=)
सांख्यकारिका तत्त्वबोधिनी	।=)	सुन्दर-विलास	।)॥
प्रश्नोत्तरमाला	)॥।		

मिलने का पताः—

मुंशी विष्णुनारायण भार्गव,

मालिक—नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.